महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत

विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह

महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत

लेखक : श्वेन त्साङ और प्येन ची

विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह

प्रथम संस्करण 1991

प्रथम संस्करण 2015

अनुवादक: छन चुङरूङ, छन लीशिङ और सुन पाओकाङ

संपादक: ली चुङई और ली लुङछाङ

ISBN 978-7-119-08966-9

© विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह, पेइचिङ, चीन लोक गणराज्य

प्रकाशक: विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह

24 पाएवानच्वाङ मार्ग, पेइचिङ 100037, चीन

वितरक: चीन अन्तरराष्ट्रीय पुस्तक व्यापार निगम

35 पश्चिमी छकुङच्वाङ मार्ग, पेइचिङ 100044, चीन

पो. आ. बाक्स 399, पेइचिङ

चीन लोक गणराज्य में मुद्रित

प्रकाशकीय

"महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" के अनेक चीनी संस्करण उपलब्ध हैं। प्रस्तुत हिन्दी संस्करण चुङ्ह्वा प्रकाशन-गृह द्वारा 1985 में प्रकाशित "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा के वृत्तांत के भाष्य" के प्रथम चीनी संस्करण पर आधारित है। ये भाष्य प्रोफेसर ची श्येनलिन आदि विद्वानों ने लिखे हैं। इनके हिन्दी संस्करण में कई नई टिप्पणियां भी दे दी गई हैं।

विषय-सूची

श्वेन त्साङ एवं उनका "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" 1

भूमिका (1) 9

भूमिका (2) 13

भूमिका (3) 17

खण्ड एक 22

अग्नि राज्य 22

कुचि राज्य 23

एक. महानाग कुंड और सुवर्ण पुष्प राजा 23

दो. चकुरी संघाराम 24

तीन. महा सभास्थल 24

चार. आश्चर्य संघाराम तथा उसकी दंतकथा 25

बालुका राज्य 26

मुज-अर्त और इसिक कुल 26

सुयाब नगर 27

सुलीक क्षेत्र का सामान्य विवरण 27

सहस्र निर्झर (बिंग-युल) 28

तालास नगर 28

छोटा एकाकी नगर 28

इस्बीजाब नगर 29
कुङ्ख्वी नगर 29
नूजकथ राज्य 29
चच राज्य 29
फरगना राज्य 30
सुत्रूशन राज्य 30
विशाल मरुभूमि 30
समरकंद राज्य 31
मायमुर्ग राज्य 31
कपूताना राज्य 31
कुषाणिक राज्य 32
खर्गांकिथ राज्य 32
बुखारा राज्य 32
बेटिक राज्य 32
होरिष्मिक राज्य 33
कुशान राज्य 33
दरबन्द-ए-आहनीन 33
तत्कालीन तुखार राज्य 33
तिर्मिध राज्य 34
चवानियान राज्य 35
खरून राज्य 35
शूमान राज्य 35

कुवायान राज्य 35
वख्श राज्य 35
खुत्तलान राज्य 36
कुमेध राज्य 36
बगलन राज्य 36
रूब-सिमिंगान राज्य 36
खुल्म राज्य 36
बक्त्र राज्य 37
एक. नव विहार 37
दो. त्रपुस नगर और भल्लिक नगर 38
जुमथान राज्य 39
गूजगानान राज्य 39
तालकान राज्य 39
गज राज्य 40
हिन्दुकुश पर्वत 40
बामियान राज्य 40
एक. खड़ी बुद्ध मूर्ति और सुप्त बुद्ध मूर्तियां 41
दो. लघु सरिता संघाराम 41
कापिशी राज्य 42
एक. बंधक संघाराम 43
दो. राहुल संघाराम 44
तीन. श्वेतवतालय तथा अरुणाचल 45
चार. हिमगिरि का नाग कुंड तथा उसकी दंतकथा 45

पांच. पुराना राजा-रानी-संघाराम 48
छः. पीलुसार पर्वत और नाग स्रोत 49

खण्ड दो 50

भारत का सामान्य परिचय 50

एक. भारत का नाम 50
दो. सीमाएं 51
तीन. माप 51
चार. पंचांग 51
पांच. नगर एवं निवास 53
छः. वस्त्र 54
सात. खाद्य 55
आठ. लिपि 55
नौ. शिक्षा 56
दस. बौद्ध धर्म 57
ग्यारह. वर्ण-व्यवस्था 58
बारह. सेना 59
तेरह. दंड और विधि 59
चौदह. अभिवादन 60
पन्द्रह. रोग एवं मृत्यु 61
सोलह. कराधान 62
सत्रह. उपजें 63

लंपाक 64

नगरहार 64

एक. राजधानी के निकट के अवशेष 65

दो. लघु शैल पर बुद्ध छाया-मूर्ति शैलगृह 66
तीन. हिड्डु नगर 67

गंधार 68
एक. पीपल वृक्ष और कनिष्क स्तूप 69
दो. बृहद स्तूप के निकट की बुद्ध मूर्तियां 70
तीन. कनिष्क संघाराम एवं पूजनीय पार्श्व, वसुबंधु व मनोरथ संबंधी अवशेष 72
चार. पुष्करावती नगर एवं नाना अवशेष 74
पांच. वर्षपुर 75
छः. दंडलोक पर्वत और अन्य अवशेष 76
सात. उडखंद नगर 77
आठ. शलातुर नगर और ऋषि पाणिनी 77

खण्ड तीन 80

उद्यान 80
एक. क्षांत ऋषि संबंधी अवशेष 80
दो. अपलाल नाग स्रोत एवं बुद्ध संबंधी अवशेष 81
तीन. हिड्डु पर्वत 82
चार. महावन संघाराम 82
पांच. मयू संघाराम 82
छः. राजा शिविक की जातक कथा 83
सात. सर्पोषधि संघाराम एवं बुद्ध की जातक कथा 83
आठ. राजा उत्तरसेन स्तूप 84
नौ. रोहितक स्तूप, अद्‌भुत स्तूप एवं बोधिसत्व अवलोकितेश्वर चैत्य-विहार 84

दस. लम्बौर पर्वत पर नाग-तालाब एवं उद्यान के राजवंश की कथा 85
ग्यारह. दरद नदी-घाटी 88

बलूर 89
तक्षशिला 89
एक. एलापत्र नाग कुंड 90
दो. चार निधियों में से एक 90
तीन. शीश-दान स्तूप 90
चार. जहां शास्त्राचार्य कुमारलब्ध ने शास्त्र लिखे थे 91
पांच. दक्षिण पर्वत स्तूप एवं राजकुमार कुणाल की कथा 91

सिंहपुर 93
एक. राजधानी के निकट देव-मंदिर और स्तूप तथा जहां श्वेताम्बर संप्रदाय के अंतिम तीर्थंकर ने अपने धर्म का प्रचार किया था 94
दो. शैल घाटी एवं जहां राजकुमार ने अपना शरीर बाघ को खिलाया था 95
तीन. पृथक पर्वत में संघाराम 95

उरशा 95
काश्मीर 96
एक. राज्य की उत्पत्ति की दंतकथा 96
दो. पांच सौ अर्हतों की कथा 97
तीन. सम्राट कनिष्क और चौथी संगीति 98
चार. राजा हिमतल के अभियान की कथा 100

पांच. बुद्ध दंत संघाराम एवं उसकी कथा 101
छः. लघु संघाराम एवं शास्त्राचार्य संघभद्र संबंधी अवशेष 102
सात. शास्त्राचार्य स्कंधिल एवं हाथी जितना आहार करने वाले अर्हत संबंधी अवशेष 103
आठ. शास्त्राचार्य पूर्ण और बोधिल संबंधी अवशेष 104
पर्णोत्स 104
राजपुर 104
खण्ड चार 106
टक्क 106
एक. पुराना शाकल नगर एवं राजा मिहिरकुल के उत्थान और पतन की कथा 106
दो. जहां वसुबंधु ने शास्त्र का प्रतिपादन किया था एवं अन्य अवशेष 110
चीनभुक्ति 110
एक. राज्य के नाम की कथा 110
दो. तमसावन संघाराम और शास्त्राचार्य कात्यायन संबंधी अवशेष 111
जालंधर 112
कुलूत 112
शतद्रु 113
पारियात्र 113
मथुरा 114

	एक. शाक्य के शिष्यों संबंधी अवशेष	114
	दो. उपगुप्त संबंधी अवशेष	115
	तीन. जहां वानर ने तथागत को मधु अर्पित किया था एवं अन्य अवशेष	115
स्थानेश्वर		116
	एक. धर्मक्षेत्र	116
	दो. बुद्ध अस्थि स्तूप एवं गोविन्द संघाराम	117
स्रुघ्न		118
	एक. तथागत एवं अर्हंतों के केश व नख सुरक्षित रखने वाले स्तूप	118
	दो. गंगा के उद्गम और देव द्वारा उपदेश दिए जाने की कथा	119
मटिपुर		120
	एक. गुणप्रभ संघाराम एवं उसकी कथा	120
	दो. बृहद संघाराम और संघभद्र एवं वसुबंधु की कथा	121
	तीन. विमलमित्र की कथा	123
	चार. मयूर नगर	124
ब्राह्मपुर		124
गोविसन		125
अहिच्छत्र		126
विरसन		126
कपिथ		127
	एक. बृहद संघाराम का त्रिविध सोपान व उसकी कथा	127

दो. जहां उत्पल भिक्षुणी ने बुद्ध के दर्शन किए तथा इस संदर्भ में कथा 128

खण्ड पांच 129

कान्यकुब्ज 129

एक. राज्य के नाम की कथा 129

दो. सम्राट शीलादित्य का वंशक्रम और उनका सुशासन 131

तीन. श्वेन त्साङ की सम्राट शीलादित्य से भेंट 134

चार. कान्यकुब्ज में धर्म महासभा 135

पांच. कान्यकुब्ज के निकट बुद्ध संबंधी अवशेष 138

छः. नवदेवकुल नगर 139

अयोध्या 140

एक. वसुबंधु, श्रीलब्ध एवं बुद्ध संबंधी अवशेष 140

दो. असंग एवं वसुबंधु की कथा 141

अयोमुखी 143

प्रयाग 143

एक. तथागत के अवशेष और देव की कहानी 144

दो. देव-मंदिर और दंतकथा 144

तीन. महादान भूमि और तपस्वी 145

कौशांबी 147

एक. चन्दन की बुद्ध प्रतिमा 147

दो. घोषिल, वसुबंधु, असंग और अवशेष 148

तीन. काशपुर और धर्मपाल द्वारा परधर्म पर

विजय-प्राप्ति के स्थल का अवशेष 148

विशोक 150

एक. राजधानी के समीप अवशेषों का विवरण 150

खण्ड छः 152

श्रावस्ती 152

एक. राजा प्रसेनजित के प्रासाद के अवशेष और स्तूप 152

दो. जहां अंगुलीमाल अपाचरण से विमुख हुआ था

तीन. जेतवनानाथपिंडकाराम 153

चार. जहां तथागत ने रोगी भिक्षु को स्नान कराया था 154

पांच. जहां सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बीच दैवी शक्ति की परीक्षा हुई थी और बुद्ध संबंधी अवशेष 154

छः. संघाराम के समीप तीन गड्ढों की कहानी 155

सात. छाया डालने वाला विहार 157

आठ. राजा विरूढक की कहानी 157

नौ. आप्तनेत्र वन 158

दस. पुराना नगर 159

कपिलवस्तु 159

एक. राजकुमार शाक्य की कहानी 159

दो. जहां राजकुमार ने नगर के प्राचीर को लांघा था 161

तीन. भद्रकल्प के दो बुद्धों के जन्मस्थान 161

चार. जहां राजकुमार वृक्ष की छाया में बैठे थे 162

पांच. जहां शाक्यों का वध किया गया था 162

छः. जहां शाक्यमुनि बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपने पिता से मिले थे 163
सात. शिव मंदिर और बाण-स्रोत 164
आठ. लुंबिनी वन और शाक्यमुनि के जन्म की कथा 164
ग्राम 166
एक. बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित रखने वाला स्तूप 166
दो. श्रामणेर संघाराम 167
तीन. जहां राजकुमार ने राजसी वस्त्र त्यागे थे और केश मुंडवा लिए थे 168
चार. भस्म स्तूप 169
कुशीनगर 169
एक. चुंद का पुराना निवास 169
दो. शाल वन और शाक्य का निर्वाण स्थल 170
१. चकोर राजा की जातक कथा 170
२. हिरन की जातक कथा 171
३. जहां सुभद्र ने अर्हत्व प्राप्त किया था 171
४. जहां वज्रपाणि धरती पर गिर पड़े थे 172
५. शाक्य के परिनिर्वाण और देवों की कथा 173
६. आठ राजाओं द्वारा बुद्ध की अस्थियों के विभाजन की कहानी 174
तीन. एक बड़े नगर में राहुल की कथा 175
खण्ड सात 177
वाराणसी 177
एक. मृग-दाव 177
१. मैत्रेय तथा प्रभापाल-सिद्ध-आदेश-प्राप्ति-स्तूप 178

२. तीन नाग-कुंड और शाक्य संबंधी अवशेष 179
३. हस्तिराज, पक्षी-राज तथा मृग-राज की जातक कथाएं 180
४. जहां अज्ञातकौंडिन्य आदि पंचवर्गीय परिव्राजकों ने बुद्ध का स्वागत किया था 181
दो. वीर-कुंड 183
तीन. त्रिपशु स्तूप 185
गर्जनपतिपुर 186
एक. बुद्ध की अस्थियों वाला स्तूप 186
दो. अविद्धकर्ण संघाराम 187
तीन. महाशाल और नाना अवशेष 188
वैशाली 189
एक. जहां बुद्ध ने "विमलकीर्ति निर्देश सूत्र" प्रतिपादित किए थे 189
दो. बुद्ध-अस्थि-स्तूप एवं अन्य अवशेष 189
तीन. विमलकीर्ति और रत्नकार के पुराने निवास 190
चार. आम्रपाली उद्यान और जहां बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण की घोषणा की थी 190
पांच. सहस्र बुद्धों की जातक कथा 191
छः. द्विखंडी प्रवचन भवन और अन्य अवशेष 193
सात. महादेव की जातक कथा 193
आठ. जहां सात सौ आचार्यों की नई संगीति हुई थी 194
नौ. श्वेतपुर संघाराम 194
दस. परिनिर्वाण के समय आनंद के शरीर के विभाजन की कथा 195
वृजि 196

एक. जहां धीवरों का धर्म परिवर्तित किया गया था तथा अन्य अवशेष 196
नेपाल 198
एक. अंशुवर्मन और उनकी "शब्द-विद्या" 198
दो. छोटा कुंड 198
खण्ड आठ 199
मगध (क) 199
एक. पाटलिपुत्र और उसकी कथा 199
दो. अशोक का नरक 201
तीन. सम्राट अशोक ने बुद्ध की अस्थियां रखने वाले स्तूप बनवाए 202
चार. तथागत के पदचिह्नों वाली शिला 203
पांच. अशोक का स्तंभ लेख 204
छः. महेंद्र की कथा 204
सात. सम्राट अशोक के अन्य निर्माणों के अवशेष 205
आठ. कुक्कुटाराम 206
नौ. आमलक स्तूप 207
दस. घंटा-शब्द-स्तूप एवं देव की कथा 208
ग्यारह. अश्वघोष के अवशेष 209
बारह. तेलाढक संघाराम और उसके समीप बुद्ध संबंधी अवशेष 211
तेरह. गुणमति संघाराम और उसकी कथा 212
चौदह. शीलभद्र संघाराम और तीर्थिकों पर विजय की कथा 216

पंद्रह. गया नगर और गया शिर 217

सोलह. प्रागबोध पर्वत और बुद्ध की संबोधि-प्राप्ति की कथा 218

सत्रह. बोधि-वृक्ष का प्राचीर 219

१. वज्रासन 219
२. बोधि-वृक्ष 220
३. तथागत की बुद्धत्व-प्राप्ति की तिथि 224
४. बुद्धत्व-प्राप्ति एवं बुद्ध की सेवाओं के चिह्न 224
५. बोधि-वृक्ष के प्राचीर के निकट के अवशेष 227
६. दक्षिण द्वार के बाहर के अवशेष 227
७. पूर्वी द्वार के बाहर के अवशेष 230
८. उत्तर द्वार के बाहर महाबोधि संघाराम 231
९. वर्षावास का समय 232

खण्ड नौ 234

मगध (ख) 234

अठारह. गंधहस्तिन कुंड 234

उन्नीस. जहां एक तीर्थिक ने शपथ खाई थी 235

बीस. कुक्कुटपाद गिरि और महाकाश्यप की कथा 236

इक्कीस. बुद्धवन गिरि और यष्टिवन 237

१. जयसेन की कथा 238
२. यष्टिवन के निकट के अवशेष 239
३. असुर प्रासाद की अनोखी कथा 239
४. सेतु 240

बाईस. कुशाग्रपुर (पुराना राजगृह) 240

१. जहां मदोन्मत्त हाथी का वशीकरण किया गया था 240
२. सारिपुत्र की अर्हत्व-प्राप्ति की कथा 241
३. श्रीगुप्त अग्नि-कुंड की कथा 241

४. वैद्य जीवक संबंधी अवशेष 242
तेईस. गृध्रकूट और बुद्ध के स्मारक-चिह्न 242
चौबीस. विपुल गिरि 244
१. पीपल शैलगृह और समाधि का अभ्यास करने वाले भिक्षुओं की कथा 244
२. अन्य अवशेष 245
पच्चीस. कलंदक वेणुवन 246
१. बुद्ध की अस्थियों का स्तूप 247
२. आनंद की आधी अस्थियां रखने वाला स्तूप 247
३. प्रथम संगीति 247
४. कलंदक कुंड और प्रस्तर स्तंभ 250
छब्बीस. राजगृह 250
सत्ताईस. नालंदा संघाराम 251
१. संघाराम के निकट के अवशेष 254
अट्ठाईस. कोलिक ग्राम और मौद्गल्यायन का जन्मस्थान 255
उनतीस. जहां राजा बिंबिसार ने बुद्ध का स्वागत किया था 256
तीस. कालपिनाक ग्राम और सारिपुत्र का जन्मस्थान 257
इकतीस. इन्द्रशैलगुहा गिरि 258
१. हंस स्तूप 259
२. कपोतक संघाराम 259
बत्तीस. एकाकी पहाड़ी पर अवलोकितेश्वर की प्रतिमा 260
तैंतीस. अन्य अवशेष, जहां बुद्ध ने धर्मोपदेश दिए थे 260

खण्ड दस 262

हिरण्य पर्वत राज्य 262

एक. हिरण्य पर्वत 262

दो. भिक्षु श्रुतविंशतिकोटि की कथा 262

तीन. छोटी पृथक पहाड़ी पर बुद्ध संबंधी अवशेष 264

चम्पा 265

कजंगल 266

पुंड्रवर्द्धन 266

एक. वाशिभा संघाराम 267

कामरूप 267

एक. राजा कुमार का आमंत्रण 268

दो. पूर्वी सीमा की प्राकृतिक स्थिति 269

समतट 270

एक. छः श्रुत राज्य : श्रीक्षेत्र, कामलंक, द्वारपति, ईशानपुर, महाचम्पा और यवनद्वीप 270

ताम्रलिप्ति 270

कर्णसुवर्ण 271

एक. रक्त मृत्तिका संघाराम 271

ओड्र 273

एक. पुष्पगिरि संघाराम 273

दो. चरित्र नगर 273

कोंगोद 274

कलिंग 274

कोसल 275

एक. नागार्जुन व देव 276

दो. नागार्जुन की आत्महत्या की कथा 277

तीन. भ्रामर गिरि 279

आंध्र 281

एक. आचार अर्हंत संघाराम 281

दो. दिग्नाग एवं "हेतुविद्या-भाष्य" 281

धान्यकटक 282

एक. पूर्व शिला संघाराम एवं अवर शिला संघाराम 283

दो. भाविवेक की कथा 283

चोल 285

एक. देव की कथा 285

द्रविड़ 286

एक. धर्मपाल की उपकथा 287

मलकूट 287

एक. मलय पर्वत 288

दो. पोतलक पर्वत 288

खण्ड ग्यारह 290

सिंहल 290

एक. रत्न द्वीप की दंतकथा 290

दो. सिंहल की कथा 293

तीन. बौद्ध धर्म के दो संप्रदाय 297

चार. बुद्ध दंत विहार 297
पांच. सिर झुकी बुद्ध-मूर्ति 298
छः. भिक्षुओं का भोजन और मणियों का संग्रह 298
सात. लंका पर्वत और नारिकेल द्वीप 299
कोंकनपुर 300
एक. प्रासाद के निकट के अवशेष 300
महाराष्ट्र 301
एक. समीप के अवशेष 302
दो. आचार संघाराम और शैलगुहा 302
भरुकच्छप 303
मालव 304
एक. धर्मादित्य की कथा 304
दो. भद्ररुचि द्वारा असत्य का खण्डन 305
अटली 307
कच्छ 307
वलभी 308
एक. निकट के अवशेष 308
दो. बौद्ध धर्म में राजा ध्रुवभट्ट का दृढ़ विश्वास 308
तीन. आचार संघाराम 309
आनंदपुर 309
सुराष्ट्र 309
गुर्जर 310
उज्जयनी 310

चितौड़ 311
महेश्वरपुर 311
सिंधु 311
एक. चीवर पहने गृहस्थ 312
मूलस्थानपुर 313
एक. सूर्य देव मंदिर 313
पर्वत राज्य 314
एक. राजधानी के समीप का संघाराम 314
ग्रौदुमबतिर 314
एक. महेश्वर मंदिर ग्रौर बुद्ध संबंधी ग्रवशेष 315
लंगल 315
पारस 316
पाटासिल 317
एक. राजधानी के उत्तर में ग्रवशेष 317
ग्रवंड 318
एक. विस्तृत वेणुवन के समीप के ग्रवशेष 318
वर्णु 319
खण्ड बारह 320
जागुड 320
एक. शुन देव की पूजा 320
वर्दस्थान 321
बालसेन पर्वत शृंखला 321

अंदराब 322
खोस्त 323
वरवालीज 323
प्लांडु पर्वतमाला 323
मुंजान 324
आर्हन 324
राहुल 324
किश्म 325
पारघर 325
हिमतल 325
बदख्शान 326
यमगान 326
कुरान 327
दर-ए-मस्तित 327
एक. खम्दाध नगर का संघाराम 328
सिकनी 330
शाङ्मी 330
पामीर घाटी 331
तशकुरगान 332
एक. राज्य की स्थापना के संदर्भ में कथा 332
दो. कुमारलब्ध संघाराम 334
तीन. दो शैलगृहों में समाधिस्थ अर्हंत 334

चार. पुण्यशाला 335
उशर 335
एक. निरोध समाप्ति समाधि से उठकर दिव्य शक्ति प्रदर्शित करने वाले ग्रर्हत की कथा 336
काशगर 337
चकुक्लक 338
खोस्तन 339
एक. राज्य की स्थापना की कथा 339
दो. वैरोचन संघाराम 341
तीन. गोश्रृंग पर्वत 342
चार. दित्कबानी संघाराम 342
पांच. भगय नगर 343
छः. मूषक टीला 343
सात. समाज्ञा संघाराम 344
साठ. माजा संघाराम एवं रेशमी कीड़े का प्रवेश 346
नौ. नाग-ढोल की कथा 347
दस. प्राचीन रणक्षेत्र 349
ग्यारह. भीम्मामना नगर ग्रौर चंदन की बुद्ध-मूर्ति 349
बारह. निना नगर 350
चलती रेत की विस्तृत भूमि से पूर्व में यात्रा 351
परिशिष्ट 351
उपसंहार 353

श्वेन त्साङ एवं उनका "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत"

श्वेन त्साङ (600?–664) चीन के थाङ राजवंश काल (618–907) के एक सुप्रसिद्ध बौद्ध आचार्य थे। चीन के बौद्ध धर्म के इतिहास में उन्होंने अतीत और भविष्य को साथ जोड़ कर अपना अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। बौद्ध धर्म के विस्तृत अध्ययन के लिए वे भारत में सत्रह वर्षों तक रहे। स्वदेश लौटने के बाद उनके द्वारा लिखवाये एवं उनके शिष्य प्येन ची द्वारा संकलित "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" में भारत और मध्य एशिया के उन 110 राज्यों, जिनकी श्वेन त्साङ ने यात्रा की थी, एवं श्रुत 28 राज्यों का श्रेणीबद्ध रूप से विवरण दिया गया है। प्राचीन भारत के ऐतिहासिक अभिलेखों का अभाव होने के कारण यह यात्रा-वृत्तांत अपनी व्यापक विषयवस्तुओं, सुस्पष्ट वर्णन एवं सही विवरण से मध्य एशिया, अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा भारत के प्राचीन इतिहास एवं भूगोल के अध्ययन के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष संदर्भ-सामग्री बन गया है। यह यात्रा-वृत्तांत "बुद्ध के देश का यात्रा-वृत्तांत" से कहीं अधिक मूल्यवान है, जिसे पूर्वी चिन राजवंश काल में भारत की तीर्थ-यात्रा पर गए आचार्य फ़ा ह्यान (337?–423) ने लिखा था। श्वेन त्साङ ने बौद्ध सूत्रों के अनुवाद को बड़ा महत्व दिया था। यह कहना अतिरंजना नहीं होगी कि अनुवाद के इतिहास में वे प्रथम विभूति भी थे और अंतिम विभूति भी। उन्हीं के तत्वावधान में बौद्ध सूत्रों के 1335 खंडों का चीनी में अनुवाद किया गया। चीन एवं भारत के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान के इतिहास में श्वेन त्साङ सर्वश्रेष्ठ दूत थे। भारत में प्रवास के दौरान वे महायान के प्रचार के सुप्रसिद्ध आचार्य बन गए और चीन लौटने के उपरान्त उन्होंने जिस फ़ा श्याङ चुङ अर्थात धर्म लक्षण शाखा की स्थापना की, वह ल्वोयाङ तथा शीआन में दसियों वर्षों तक प्रचलित रही।

पूर्व के दो प्राचीन सभ्यता वाले देशों अर्थात चीन व भारत के बीच बहुत पुराने जमाने में ही संबंध स्थापित हो चुके थे। लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी में भारत से बौद्ध धर्म मध्य एशिया से हो कर चीन के भीतरी क्षेत्र में आ पहुंचा था। थाङ राजवंश काल तक बौद्ध धर्म प्रचारित हुए छः-सात सौ वर्ष बीत चुके थे। वह और चीन की परंपरागत सांस्कृतिक विचारधारा कंफ्यूशियसवाद तथा ताओ धर्म एक दूसरे में पैठ गये थे और इस प्रकार चीन

की विशेषतावाला बौद्ध धर्म अस्तित्व में आ चुका था। अनेक महत्वपूर्ण बौद्ध सूत्रों का चीनी में अनुवाद किया जा चुका था। उनके सिद्धान्तों का चीनी बौद्ध विद्वानों द्वारा विकास किया गया था। चीनी भिक्षु नई शाखाएं स्थापित करने में समर्थ हो चुके थे। बौद्ध धर्म चीन में पैर जमा चुका था।

थाङ राजवंश काल में चीन व भारत के बीच बौद्ध संस्कृति का आदान-प्रदान तो और भी सुगम रूप से होने लगा। चीन के इतिहास में थाङ राजवंश काल एक शानदार काल रहा है। तब पूरे चीन में स्थिरता थी और सामंती अर्थतंत्र एवं संस्कृति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुके थे। तत्कालीन राजधानी छाङआन उस काल का पूर्व का एक महानगर था। अन्य देशों के दूतों, विद्वानों एवं व्यापारियों का छाङआन में जमघट रहता था और छाङआन तत्कालीन अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। थाङ राजवंश ने खुली नीति अपनाई। उस समय चीन मध्य एशिया, दक्षिण एशिया, अरब, यहां तक कि अफ्रीका के साथ भी व्यापक रूप से व्यापार करता था और आर्थिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान करता रहता था। विशेषकर चीन-भारत संबंध उस काल में एक नए शिखर पर पहुंच गया था। जहाजरानी की तकनीक में विकास के कारण क्रमशः बढ़ती संख्या में लोग समुद्री मार्गों से दोनों देशों में आते-जाते रहते थे। मध्य एशिया के द्वारा भारत जाने के पुराने मार्ग के अतिरिक्त तिब्बत व नेपाल से होकर भारत जाने वाला मार्ग भी एक महत्वपूर्ण मार्ग सिद्ध हुआ। इन समुद्री एवं स्थलीय मार्गों पर आने-जाने वाले भिक्षुओं का तांता लगा रहता था। थाङ राजवंश काल के दौरान 52 चीनी भिक्षु बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए भारत गए, और भारत से 16 आचार्य चीन आए। उन्होंने स्वाभाविक रूप से दोनों देशों की संस्कृतियों का प्रचार-प्रसार और आदान-प्रदान करने का ऐतिहासिक दायित्व निभाया। भारत से बौद्ध धर्म के साथ-साथ साहित्य, कला, संगीत, मूर्तिकला, शब्दविद्या, यहां तक कि ज्योतिष, पंचांग और चिकित्सा भी चीन आए। चीनी संस्कृति के विकास में इनकी यथेष्ट भूमिका थी।

परन्तु थाङ राजवंश काल में ईसा की चौथी एवं पांचवीं शताब्दियों में उत्पन्न महायानिक योगाचार संप्रदाय के प्रचार से चीन में बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं के बीच अन्तरविरोध व मतभेद और तीव्र हो गए। महायान व हीनयान के बीच पहले से ही तकरार थी और फिर महायान के योगाचार व शून्यवाद के बीच भी भिड़न्त होने लग गई। प्रमुख मतभेद बुद्धत्व को लेकर था। बौद्ध धर्म के सिद्धान्त-पक्ष के क्षेत्र में हीनयान स्वयं दुःखविमुक्ति पर बल देता था। उसका लक्ष्य अपने लिए अर्हत्व की प्राप्ति था। वह शाक्य मुनि को धर्मराज मानता था। महायान का लक्ष्य था बुद्धत्व की प्राप्ति कर सभी प्राणियों का उद्धार करना और सुखावती स्थापित करना। महायानिक शून्यवादी संप्रदाय असत और निस्वभावता के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर अस्ति-नास्ति के दृष्टिकोण से विमुख हो कर माध्यमिक हो

गया, जबकि योगाचार ने विज्ञानवादी मतों का विकास कर अपनी अलग पहचान बना ली।

बुद्धत्व की समस्या श्वेन त्साङ के लिए भी एक चिन्तन का विषय थी और इसी समस्या ने उन्हें भारत जाने के लिए प्रेरित किया था।

श्वेन त्साङ का कुलनाम छन ई था। उनकी जन्मभूमि वर्तमान हनान प्रांत की येनस काउंटी का छनह गांव था। वे "त्रिपिटक आचार्य" या "थाङ भिक्षु" कहलाते थे। उनका जन्म एक कंफ्यूशियसवादी परिवार में हुआ था। उनके दादा थाङ राजवंश के सर्वोच्च विद्यालय, क्वो चशि, में पोसि का पद संभालते थे और पिता प्राचीन शास्त्रों और कंफ्यूशियसवाद में पारंगत थे। बचपन से ही वे अपने पिता तथा दादा के प्रभाव में आकर प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में प्रवीण हुए थे और कंफ्यूशियसवादी नीति दर्शन के अनुरूप आचार-व्यवहार करते थे। तेरह वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्रव्रज्या प्राप्त की और अपना नाम बदलकर श्वेन त्साङ रखा। इक्कीस वर्ष पूरे होने पर वे उपसंपन्न हुए। बौद्ध सूत्रों के अध्ययन के लिए उन्होंने हूपेइ, हनान, शेनशी और सछ्वान आदि क्षेत्रों का भ्रमण कर तेरह सुविज्ञ भिक्षुओं से "महा परिनिर्वाण सूत्र", "महायान संपरिग्रह शास्त्र", "संयुक्त अभिधर्म हृदय शास्त्र" एवं "अभिधर्म कोष शास्त्र" सीखे। इस बीच उन्होंने नवोदित विज्ञानवाद का भी अध्ययन किया। फिर भी बौद्ध धर्म की मूल समस्या – बुद्धत्व की समस्या – पर उन्हें एक सुनिश्चित व सर्वसम्मत उत्तर न मिल सका। क्या मनुष्य सुखावती में जा सकता है? क्या वह स्वयं बुद्ध बन सकता है? वह अभी बुद्ध बनेगा या फिर कभी भविष्य में? इन समस्याओं पर श्वेन त्साङ के विभिन्न आचार्यों के मत अलग-अलग थे, जबकि मध्य व पश्चिम एशिया से प्राप्त संस्कृत बौद्ध सूत्रों के अनूदित पाठ समझना कठिन लगता था और सूक्ष्म तत्वों का सम्यक अनुवाद नहीं किया गया था। फलस्वरूप, श्वेन त्साङ के मन में अनेक शंकाएं उत्पन्न हुईं और वे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर अधिकार न कर पाए। उन्होंने कहा, "भगवान बुद्ध के काल से अब तक बहुत समय व्यतीत हो चुका है और बौद्ध धर्म की व्याख्या में भिन्नता है, जिसके परिणामस्वरूप शालवन में बुद्ध के प्रतिपादित मत नित्यता व अनित्यता के दो भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में विभाजित हो गए हैं। महायान पहले तो एक ही संप्रदाय था, परन्तु अब इसकी दक्षिण व उत्तर, दो शाखाएं प्रकाश में आ गई हैं। मतभेद एवं वाद-विवाद सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी पर ऐसी शंकाएं उत्पन्न हो गई हैं, जिन्हें कोई भी दूर नहीं कर सकता।" (देखें, काराहोजा के राजा के प्रति आभार प्रकट करने के लिए श्वेन त्साङ का पत्र, "छिअन आचार्य की जीवनी" का खंड एक)। विशेष कर योगाचार के सिद्धान्त ने उन्हें अत्यंत प्रभावित किया। किन्तु इस संप्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण शास्त्र "योगाचार्य भूमि शास्त्र" का चीनी में अनूदित पाठ विखंडित था। "बौद्ध धर्म के सूक्ष्म तत्वों का अध्ययन करने और उनका सटीक अर्थ जानने" के लिए

उन्होंने प्रशासन से "सद्धर्म का अध्ययन करने" भारत जाने की अनुमति मांगी, परन्तु उनकी मांग अस्वीकार कर दी गई। सन 629 में श्वेन त्साङ ने निषेधाज्ञा का उल्लंघन कर छाङआन से प्रस्थान कर पश्चिम की दिशा में बढ़ते हुए य्वीमन दर्रे से गुजर कर मध्य भारत में नालंदा संघाराम की ओर अपना अभियान आरंभ कर दिया। ईवू और काराहोजा से होकर हिमाच्छादित पर्वतमालाओं को पार कर दक्षिण की ओर बढ़ते हुए उन्होंने दरबंद-ए-आहनीन (अर्थात लोहे के द्वार) से निकल अमू दरिया पार की और पंचनद में प्रवेश किया। रास्ते में उन्होंने नाना कष्ट झेले। कई बार तो वे मरते-मरते बचे। परन्तु वे बौद्ध धर्म का सही ज्ञान पाने के लिए वीरता से आगे बढ़ते गए। उन्होंने जलविहीन रेगिस्तान को पार किया, वर्ष भर बर्फ से ढके रहने वाले ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों एवं हिमनदियों को पार किया और जिन राज्यों के थाङ राजवंश के साथ संबंध अच्छे नहीं थे, उन द्वारा डाली गई घेराबन्दी को तोड़ दिया। अन्त में वे मध्य भारत में मगध के राजगृह पहुंच गए और बौद्ध धर्म के केन्द्र, नालंदा संघाराम के भिक्षुओं ने उनका स्वागत किया। तब से उन्होंने नालंदा में अपना अध्ययन-कार्य आरंभ किया। इस बीच उन्होंने छ: प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थों की यात्रा भी की।

नालंदा संघाराम भारत में बौद्ध धर्म का सर्वोच्च विद्यालय था। इसके स्थविर आचार्य शीलभद्र की आयु तब नब्बे वर्ष से अधिक हो चुकी थी। वे असंग, वसुबंधु और धर्मपाल के सिद्धान्त ग्रहण कर योगाचार, विज्ञानवाद, हेतु विद्या और शब्द विद्या में प्रवीण थे। वे बौद्ध धर्म के आधिकारिक विद्वान माने जाते थे। श्वेन त्साङ ने उनसे "योगाचार्य भूमि शास्त्र" पर व्याख्यान सुने, सभी बौद्ध सूत्र पढ़ डाले और ब्राह्मण सूत्रों व ग्रंथों का सर्वांगीण अध्ययन किया। पांच वर्ष तक कड़ी मेहनत करने के पश्चात उनकी शिक्षा पूरी हुई। फिर उन्होंने समूचे भारत की यात्रा प्रारम्भ कर दी। यात्रा के दौरान उन्होंने सुप्रसिद्ध बौद्ध आचार्यों से शिक्षा ली। यात्रा पूरी होने पर वे फिर नालंदा वापस लौट गए। शीलभद्र की अनुशंसा पर श्वेन त्साङ ने "महायान संपरिग्रह शास्त्र" एवं "विज्ञापति मात्र सिद्धि त्रिशंक कारिका शास्त्र" पर व्याख्यान दिए। उन्होंने भारतीय भाषा में बोलते हुए शास्त्रों के सूक्ष्म तत्वों पर प्रकाश डाला और सुबोध रूप से मतों को स्पष्ट किया। उनके व्याख्यान सुनने वालों का जमघट लग गया एवं उनकी ख्याति समूचे भारत में फैल गई। श्वेन त्साङ ने तीन हजार श्लोकों में "वाद-प्रतिवाद का विश्लेषण" प्रतिपादित कर योगाचार के सिद्धान्तों का विकास किया और योगाचार व माध्यमक इन दो संप्रदायों के सिद्धान्तों का संमिश्रण किया। उन्होंने ब्राह्मण शास्त्रकार के साथ तर्क-वितर्क में विजय पाई और फिर "असत्यवाद खंडन शास्त्र" शीर्षक से एक व्याख्यान दे कर उड्र के हीनयानी प्रज्ञागुप्त के "महायान विभंग शास्त्र" का खंडन किया। इस बात की ओर सम्राट शीलादित्य का ध्यान आकर्षित हुआ। श्वेन त्साङ ने सम्राट

शीलादित्य को चीन की राजनीति, अर्थतंत्र एवं संस्कृति का परिचय दिया। उन्होंने विशेष कर "छिनवाङ की विजय का संगीत" का उल्लेख करते हुए थाङ राजवंश के सम्राट थाए चुङ का गुणगान किया एवं थाङ संस्कृति का प्रचार किया। सन 642 के बारहवें माह में शीलादित्य ने कन्याकुब्ज में श्वेन त्साङ के लिए पंचवार्षिक परिषद का आयोजन किया। परिषद में श्वेन त्साङ ने महायान के सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया। परिषद में भारत के 18 राजा, तीन हजार से अधिक महायानी एवं हीनयानी भिक्षु, दो हजार ब्राह्मण व निर्ग्रंथ और नालंदा के एक हजार भिक्षु सम्मिलित हुए थे। यह सभा अभूतपूर्व थी। श्वेन त्साङ ने अपने प्रगल्भ पांडित्य से विभिन्न संप्रदायों के अनुयायियों को प्रभावित किया। उनके "असत्यवाद खंडन शास्त्र" पर किसी को भी आपत्ति उठाने का साहस न हुआ। परिषद अठारह दिन तक चली और श्वेन त्साङ वाद-विवाद में विजयी हुए। उन्हें "महायानदेव" व "मोक्षदेव" की उपाधियों से अलंकृत किया गया।

सन 645 के वसंत में श्वेन त्साङ स्थलीय मार्ग से स्वदेश लौट आए। छाङआन में उनका भावभीना स्वागत किया गया। वे अपने साथ बारह घोड़ों पर 657 संस्कृत बौद्ध सूत्रों और बड़ी संख्या में बुद्ध मूर्तियों को लाद कर लाए थे। पूर्व हान राजवंश काल (25–220) में छाए आन द्वारा सम्राट की आज्ञा पा कर मध्य एवं पश्चिम एशिया से बौद्ध सूत्र और बुद्ध मूर्तियां लाए जाने के बाद यह चीन में बौद्ध धर्म का दूसरी बार व्यापक प्रचार था। श्वेन त्साङ की मान्यता थी कि उनकी शंकाएं भारत में दूर हो चुकी थीं, इसलिए उन्होंने स्वदेश लौटने के बाद धर्म लक्षण शाखा स्थापित की जो भारत के उत्तरकालीन योगाचार सिद्धान्त अर्थात असंग तथा वसुबंधु की दार्शनिक व्यवस्था का निष्कपट और सर्वांगीण रूप से प्रचार करती है। धर्म लक्षण शाखा का मूल शास्त्र श्वेन त्साङ द्वारा भारत के दस सुप्रसिद्ध शास्त्राचार्यों की रचनाओं का सर्वांगीण अध्ययन करने के उपरान्त प्रतिपादित "विज्ञान मात्र सिद्धि शास्त्र" था। वह विज्ञान मात्र एवं विशुद्ध चैतन्य पर बल देता था और छाङआन तथा ल्वोयाङ में कोई चालीस वर्षों तक प्रचलित रहा। स्वदेश लौटने के अनन्तर श्वेन त्साङ ने बौद्ध धर्म की नई शाखा स्थापित करने के साथ-साथ बौद्ध सूत्रों का अनुवाद भी किया। सम्राट थाए चुङ ने छाङआन में छुङफ़ू (विस्तृत सुख) संघाराम को उनका निवास बनाया और एक बृहद् बौद्ध सूत्र अनुवाद प्रतिष्ठान की स्थापना के लिए देश के विभिन्न स्थानों से ज्ञानी भिक्षुओं के चयन में उन्हें सहायता दी। इस प्रतिष्ठान के अध्यक्ष एवं प्रमुख अनुवादक स्वयं श्वेन त्साङ ही थे। इस प्रतिष्ठान में 19 वर्षों में 75 बौद्ध सूत्रों का चीनी में अनुवाद किया गया, जिनके चीनी अक्षरों की कुल संख्या एक करोड़ तीन लाख थी। श्वेन त्साङ द्वारा अनूदित बौद्ध सूत्रों के मूल पाठ कालांतर में भारत में अनुपलब्ध हो गए और उनके अनूदित पाठ प्राचीन भारत की विचारधारा एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए अमूल्य सामग्री हो गए।

श्वेन त्साङ दिन-रात बौद्ध सूत्रों के अनुवाद-कार्य में लीन रहते थे। वे बहुधा आधी रात में सोने चले जाते थे, परन्तु मुंह अंधेरे ही उठ जाते थे। वे ध्यानपूर्वक संस्कृत बौद्ध सूत्र पढ़ते, रेखांकन करते तथा दिन में अनुवाद करते थे। यह क्रम सन 664 में प्रथम मास की पहली तिथि तक बना रहा। उस दिन उन्होंने अभी "महारत्नकूट सूत्रों" के आरंभ के श्लोकों का अनुवाद शुरू किया ही था कि निर्बलता अनुभव कर उन्हें यह काम छोड़ देना पड़ा। उसी वर्ष दूसरे मास की पंचमी की आधी रात उन्हें य्वीह्वा संघाराम में निर्वाण प्राप्त हुआ। उनके सिद्धान्तों को बाद में उनके शिष्य ख्वेइ ची आदि ने ही विकसित किया।

श्वेन त्साङ एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। सम्राट थाए चुङ ने मध्य व पश्चिम एशिया और भारत की उपजों तथा प्रथाओं के विषय में उनसे अनेक प्रश्न किए और उन्होंने तुरन्त ही उनके विस्तृत उत्तर दिए। सम्राट थाए चुङ ने अत्यन्त प्रसन्न हो, उनसे एक पुस्तक लिखने तथा फिर गृहस्थ होकर राजकीय काम-काज निपटाने में योग देने का आग्रह किया। श्वेन त्साङ ने पुनः गृहस्थ होने से तो अवश्य ही इनकार कर दिया, तथापि उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक गतिविधियों में भाग लिया। उदाहरणार्थ, शीलादित्य द्वारा दूत भेज कर सम्राट थाए चुङ के साथ मैत्री स्थापित किए जाने, चीन के ताओ धर्म की महत्वपूर्ण रचना "लाओचि" का संस्कृत पाठ तैयार करने और भारत में तब अनुपलब्ध हो चुके "महायान श्रद्धोत्पाद शास्त्र" को फिर से संस्कृत में अनूद्रित कर वापस भारत भेजे जाने में उनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। विशेषकर श्वेन त्साङ ने सम्राट थाए चुङ की आज्ञानुसार जो "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" लिखा है, उसका संस्कृति के इतिहास में अनुपम एवं अमूल्य स्थान है।

"महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" भारत के प्राचीन एवं ईसा की सातवीं शताब्दी से पूर्व के इतिहास के संदर्भ में एक सर्वाधिक मूल्यवान कृति है। आज भी प्राचीन एवं ईसा की सातवीं शताब्दी से पूर्व के भारत का गंभीरता से अध्ययन करने के लिए इस कृति का सहारा लेना पड़ता है।

उनके यात्रा-वृत्तांत के कुल बारह खंड हैं। उसमें उन 110 राज्यों, जिनकी श्वेन त्साङ ने यात्रा की थी और 28 अन्य राज्यों का विवरण दिया गया है। उनके विवरण का एक निश्चित व सर्वतोमुखी नियम है अर्थात उन राज्यों की भौगोलिक स्थितियां, बौद्ध तीर्थ और उनसे संबंधित दंतकथाएं, महापुरुषों की जीवन-गाथाएं और बौद्ध धर्म की तात्कालिक स्थितियां विस्तृत रूप से लिपिबद्ध करना, उसमें विभिन्न स्थानों के धरातल, क्षेत्रफल, नगरों, सीमाओं, संचार, लोकाचार, प्रथाओं, उपजों, जलवायु, राजनीति और संस्कृति आदि लगभग सभी पक्षों का उल्लेख मिलता है। श्वेन त्साङ ने जिन विशाल क्षेत्रों का वर्णन किया है, वे उत्तर-पश्चिम चीन से पश्चिम में ईरान तथा भूमध्य सागर के पूर्वी तट, दक्षिण में भारत प्रायद्वीप एवं श्रीलंका, उत्तर में मध्य एशिया के दक्षिण भाग व उत्तर

अफगानिस्तान और पूर्व में हिन्द-चीन प्रायद्वीप एवं इंडोनेशिया तक फैले हुए हैं। उस काल में भारत कुल अस्सी राज्यों में विभाजित था। उनमें से 75 राज्यों का श्वेन त्साङ ने भ्रमण किया था। वे भाषा के धनी थे और इतिहास एवं भूगोल का वर्णन करने में पटु थे। श्रावस्ती में शाक्य मुनि के निवास स्थल, जेतवनानाथपिंडकाराम, कुशीनगर के निकट शाक्य के परिनिर्वाण का स्थल, शालवन, वाराणसी में शाक्य द्वारा प्रथम धर्म-चक्र प्रवर्तन का स्थान, मृगदाव, मगध में गृध्रकूट, जहां शाक्य ने पचास वर्ष तक धर्मोपदेश दिए थे, तथा अन्य तीर्थ स्वाभाविक रूप से श्वेन त्साङ के लिए प्रमुख दर्शनीय एवं वर्णनीय स्थल थे। उन्होंने अल्प शब्दों में ही अनेक लक्ष्य उपस्थित किए। उनका वर्णन सटीक ही नहीं, जीवन्त भी है। भारत की तात्कालिक राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों, चीन व भारत के मध्य आवागमन के इतिहास, महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं, विभिन्न धर्मों की स्थितियों, बौद्ध धर्म की संगीतियों, हीनयान के वितरण, महायान व हीनयान की शक्तियों की तुलनात्मक स्थितियों जैसी कठिन ऐतिहासिक समस्याओं का समाधान श्वेन त्साङ के यात्रा-वृत्तांत के बिना असंभव है।

पिछले एक हजार वर्षों से अधिक समय में पुरातत्व के क्षेत्र में नई-नई खोजों एवं इतिहास के अध्ययन में निरन्तर प्रगति के साथ-साथ श्वेन त्साङ के यात्रा-वृत्तांत का महत्व सिद्ध होता गया है। पुरातत्ववेताओं ने उनके उल्लेखों के अनुसार राजगृह के खंडहरों, मृग-दाव, अजन्ता और नालंदा में खुदाई की और भारी उपलब्धियां प्राप्त कर लीं। भारत पर लिखी गई शायद ही ऐसी कोई शास्त्रीय कृति मिल सकती है, जिसमें श्वेन त्साङ के यात्रा-वृत्तांत से उद्धरण न लिया गया हो। रचयिता के दृष्टिकोण जो भी हों, उनमें से कोई भी श्वेन त्साङ के यात्रा-वृत्तांत में प्रदत्त असंख्य एवं विशिष्ट सामग्री पर ध्यान दिए बिना नहीं रह सकता। श्वेन त्साङ का यात्रा-वृत्तांत भारत के इतिहास और उसके दर्शन शास्त्र, धर्म एवं साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए एक बहुमूल्य निधि बन चुका है। यद्यपि श्वेन त्साङ एक हजार वर्ष से पूर्व के महापुरुष थे, तथापि आज भी उनका नाम भारतीय जनता की जिह्वा पर है। वे चीन-भारत मैत्री के एक जीवन्त प्रतीक बन चुके हैं। संसार में श्वेन त्साङ के यात्रा-वृत्तांत की प्रशंसा के पुल बंधते ही रहे हैं। यहां हम केवल भारत के विख्यात इतिहासकार अली के हवाले से कहना चाहते हैं कि "फ़ा श्येन, श्वेन त्साङ एवं मा ह्वान की कृतियों के बिना भारत का इतिहास नए सिरे से लिखना नितान्त असंभव है।"

"महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" के अंग्रेजी में कई अनूदित पाठ तो प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु उनमें नाना प्रकार की भूल-चूक पाई जाती हैं। इसलिए उसका दुबारा अनुवाद करना आवश्यक हो गया है। हम चीन के चुङ्ह्वा शूच्वी (चीन पुस्तक प्रकाशन) द्वारा प्रकाशित श्री ची श्येनलिन आदि द्वारा लिखे गए "महा

थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा के वृत्तांत के भाष्य" से सहायता ले कर श्वेन त्साङ के इस यात्रा-वृत्तांत का हिन्दी में अनुवाद कर पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। हमारी यह भी आशा है कि इससे चीन और भारत के बीच मैत्री का एक नया सेतु खड़ा होगा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में नए आयाम जुड़ जाएंगे।

भूमिका (1)

शाही लिपिकार और लेखक चिङ पो

मेरी यह मान्यता है कि ब्रह्मांड अपार है और चैतन्य तथा बुद्धिमान प्राणी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। चओयेन (लगभग 305–240 ईसापूर्व) की "आकाश की चर्चा" इसकी थाह लेने में असफल रही है और त्रिराज्यकाल (220–280) के ह्वाङ श्यान के "भुवनकोश" में इसकी उत्पत्ति का उल्लेख कैसे संभव हो सकता है? इससे यह ज्ञात होता है कि जिन स्थानों का स्थानीय ऐतिहासिक ग्रंथों में वर्णन न किया गया हो और जिन तक वर्तमान राजवंश की प्रतिष्ठा एवं प्रभाव न फैल सका हो, उनका समग्र उल्लेख संभव नहीं हो सकता। जहां तक भारत का संबंध है, उसका इतिहास तो बहुत ही पुराना है। उस दूरस्थ देश में अनेक मुनि एवं ज्ञानी हुए हैं और इस प्रकार वहां सदाचार पर बल देने का वातावरण बना है। परन्तु अतीत में उसके साथ चीन का कोई आवागमन न था। फिर उसकी सीमा चीन से जुड़ी भी नहीं है। प्राचीन ग्रंथ "शानहाए चिङ" (अर्थात पर्वत-सागर शास्त्र)[1] में उसका उल्लेख नहीं मिलता और "ईचओशू के राजाओं का मिलन खंड" में भी इसकी चर्चा नहीं की गई है। हान राजवंश (ईसापूर्व 206–ईसवी 221) के चाङ छ्येन ने पश्चिमी क्षेत्र जाने का रास्ता खोजने में बड़ा योगदान किया था, किन्तु भारत जाने का मार्ग खोजने में विफल हो वे गोंग पर्वत की यष्टि एवं सछ्वान के कपडे का स्मरण करते हुए मन मसोस कर रह गए थे। तब दक्षिण-पश्चिमी चीन में खुङमिन जाने का रास्ता बन्द था, अतएव हान राजवंश के सम्राट ऊती (141–87 ईसापूर्व) ने छाङआन के दैवी ताल (खुङमिन ताल) में जलसेना को प्रशिक्षण देकर अपना मनसूबा पूरा करने की व्यर्थ कोशिश की। यद्यपि चओ राजवश के सम्राट चाओवाङ के शासन के चौबीसवें वर्ष (लगभग 976 ईसापूर्व) में चौथे मास की आठवीं तिथि की रात को पांच रंगों के

---

1. "शानहाए चिङ" चीन में युद्धरत राज्य काल (475–221 ईसापूर्व) की एक भूगोल संबंधी कृति है। रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है। इस पुस्तक में अनुश्रुतियों का भौगोलिक ज्ञान संगृहीत है, जिसमें धरातल, संचार, जाति, उपज, औषधि, यज्ञ व झाड़-फूंक आदि विषय हैं। पुस्तक में अनेक प्राचीन पौराणिक कथाएं संकलित हैं। यह पुस्तक प्राचीन इतिहास, भूगोल, संस्कृति, चीन एवं विदेशों के बीच संबंधों, प्रथाओं और पौराणिक कथाओं के लिए एक उपयोगी संदर्भ-सामग्री है।

ग्रहों द्वारा बुद्ध के जन्म का शुभ लक्षण दिखाई दिया था, तथापि पिछले कोई एक हजार वर्षों तक गुह्य बौद्ध धर्म के संदर्भ में कोई ज्ञान न मिल सका था। हान राजवंश के सम्राट मिङती (शासनकाल 58–74) ने स्वप्न में एक चाङ[1] छै छि[2] ऊंचे स्वर्ण पुरुष के गले में चमकता प्रभामंडल तो देखा था, फिर भी बौद्ध धर्म की दैवी प्रभा चीन की सीमा से हजारों ली[3] दूर बाहर ही रुक गई थी। बाद में छाए ग्रान बौद्ध धर्म ग्रहण करने पश्चिम क्षेत्र गए ग्रौर काश्यप-मातंग ने ल्वोयाङ ग्राकर बौद्ध सूत्रों के ग्रनुवाद का श्रीगणेश किया। तब से बौद्ध सूत्र शैलगृहों में सुरक्षित रखे जाने लगे, पर वे भारत के नाग प्रासाद में सुरक्षित बौद्ध सूत्रों जैसे गूढ़ नहीं थे। ऊंचे मंडप पर बुद्ध का चित्र ग्रवश्य टांगा गया, किन्तु वहां गृध्रकूट की भव्यता कहां थी? कालांतर में हान राजवंश ने कई गलतियां कर डालीं, जिनका ग्रनुचित लाभ उठाकर खोजाग्रों एवं दुष्टाचारियों ने सत्ता हथिया ली, पूर्वी राजधानी ल्वोयाङ में उत्पात मच गया ग्रौर परस्पर मुकाबले की नौबत ग्रा गई। पटरानी ग्रौर राजमाता की भूल से उपद्रव हुए तथा देश उसी प्रकार विभाजित हो गया, जिस प्रकार रेशमी कपड़े को काटकर फाड़ा जाता है। राजनियम ग्रौर विधियां हानकूक्वाङ व ल्वोयाङ में नष्ट हो गए। सीमा-चौकियों पर खतरे की सूचना देने के लिए ग्राग जलाकर धुग्रां उठाया जाता रहा। नगरों के चारों ग्रोर शत्रु से बचाव के लिए दुर्ग खड़े किए गए। फिर भारत तो ग्रत्यंत दूर भी था! परन्तु ऐसे खोजी यात्री भी थे, जो एकाध बार वहां गए थे। उन्होंने ग्रपने यात्रा-वृत्तांत ग्रवश्य लिख छोड़े हैं, पर उनमें भला वहां की उपजों व भूमि का संपूर्ण विवरण कैसे मिल सकता है? उनमें केवल बौद्ध सूत्रों के कुछ श्लोक उद्धृत किए गए हैं, परन्तु बौद्ध धर्म के परमार्थ का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता। स्वे राजवंश (589–618) ने देश के दक्षिण एवं उत्तर भागों का एकीकरण कर सत्ता स्थापित की। परन्तु वह पश्चिम के सागर के समक्ष निःश्वास भर कर ही रह गया ग्रौर पूर्व के देशों पर दूर से ही दृष्टि डालने के लिए लाचार हो गया। यह सत्य है कि ग्रनेक लोगों ने य्वीमन दर्रे के बाहर ग्रपनी विजय के झंडे गाड़ दिए थे। परन्तु ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि किसी ने सुरक्षित रूप से पामीर पार किया हो। ऐसी स्थिति में हिमगिरि की ग्रोर बढ़ने ग्रौर नाग ताल के निकट सांस लेने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती थी। इसका कारण, यह था कि स्वे राजवश सभी वस्तुग्रों को उपकार न दे सका था ग्रौर उसकी प्रतिष्ठा दूर तक न बढ़ सकी थी। ग्राज हमारे महा थाङ राजवंश ने देश पर एकीकृत शासन कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया ग्रौर ग्रशुभ धूमकेतुग्रों (ग्रर्थात देशद्रोहियों) का ग्रंत कर देश का पुनरुत्थान किया है। इसका योगदान जगत के ग्राविभाव के तुल्य है ग्रौर

1. एक चाङ तीन सही एक बटे तीन मीटर के बराबर है।
2. एक छि एक तिहाई मीटर के बराबर है।
3. एक ली एक बटे दो किलोमीटर के बराबर है।

इसकी प्रभा सूर्य व चन्द्रमा की भांति सारे विश्व में पड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति मानों सियारों और भेड़ियों की दबोच से बच निकलकर जीवित रह सकने के लिए कृतज्ञ है। प्रत्येक परिवार मानों प्रेतों के लोक से लौट कर नया जीवन मिलने पर प्रसन्न है। विभिन्न देशों के प्रवासी एवं अन्य जातियों के नेता छाङग्रान के निवास गृहों में एकत्र हैं। सभी दूरस्थ और निर्जन स्थान चीन की सीमा के अन्दर शामिल कर लिए गए हैं। यह कहा जा सकता है कि थाङ राजबंश दस द्वीपों को उद्यान मान चार सागरों को ताल बनाए हुए है और ह्वाङती, च्वानश्वी, तीखू, याओ और शुन पांच सम्राटों[1] को क्षुद्र मानता है और फ़ूशी[2] की उपेक्षा करता है।

आचार्य श्वेन त्साङ बचपन से ही बौद्ध धर्म के प्रभाव में आने लगे थे और उन्हें खेद रहता था कि उन्हें जेतवन जाने का अवसर न मिल सका, जहां तथागत ने धर्मोपदेश दिए थे। वयस्क हो जाने पर उन्हें शाक्य मुनि के देश को अपनी आंखों से देखने का विचार आया और मृग-दाव, जहां भगवान बुद्ध ने प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन किया था, की ओर उन्मुख हो जाने का मन हुआ। बौद्ध धर्म के गांभीर्यपूर्ण एव पवित्र उत्पत्ति स्थल में पदार्पण करना उनकी चिरपोषित अभिलाषा थी। जब सच्चरित्र की प्रवृति पश्चिम में बढ़ती गई और मौसम सुहावना होने लगा, तब उन्होंने सम्राट थाए चुङ के राज्यारोहण के तीसरे वर्ष (627–649 ईसवी) में यष्टि लिए पश्चिम की ओर अपना अभियान आरंभ किया। देवताओं की कृपा से ही वे भिन्न प्रथाओं वाले परदेश पहुंच पाए और नाना संकटों से पार पाने में समर्थ हुए। तथागत की परोक्ष सहायता से ही खतरनाक रास्ते तय कर वे अनेक बार मरते-मरते बच गए। सहसा ही एक दूसरे में बदल जाने वाली भीषण गर्मी एवं कड़ाके की सर्दी की मार सहते हुए वे पद-पद पर ठोकरें खाते भारत पहुंच गए। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों की खोज में शून्य एवं भव के संदर्भ में शुद्ध एवं अशुद्ध दृष्टिकोणों में भेद करना है और बौद्ध धर्म के सूक्ष्म तत्वों के विस्तृत अध्ययन में जाति एवं अनित्यता के उपदेश सुन कर प्रज्ञा पाना है। परिणामस्वरूप सागर जैसे परमार्थ के संबंधों में प्राणियों की शंकाएं दूर हो सकती हैं और उन्हें भटकते रास्ते में बुद्धत्व की प्राप्ति के सही रास्ते के संबंध में बोध हो सकता है। इसके लिए श्वेन त्साङ ने किसी भी बात को न त्याग कर असंख्य बौद्ध सूत्रों का अध्ययन किया और सभी तथागत संबंधित तीर्थों की यात्रा की और कोई ऐसी वस्तु न रही, जिसे उन्होंने न देखा हो। अनेक वर्षों तक जहां तहां भ्रमण करने के पश्चात ही वे स्वदेश लौटे। सम्राट थाए चुङ के राज्यारोहण के उन्नीसवें वर्ष के प्रथम मास में वे

1. अनुश्रुतियों के अनुसार वे प्राचीनकालीन चीन के सम्राट थे। वास्तव में वे कबीलों के संघों के सरदार थे। ह्वाङती और उनके समकालीन येनती दोनों चीनी राष्ट्र के पितामह माने जाते हैं। चीनी अपने आपको उन दोनों की संतान मानते हैं।

2. चीनी पौराणिक कथाओं में मानव के पितामह थे।

छाङग्रान पहुंच गए। अपने साथ वे जो 657 बौद्ध सूत्र लाए थे, उन्होंने सम्राट के आज्ञापत्र का पालन कर उनका अनुवाद किया।

वे स्वयं 110 राज्यों में गए थे और उन्होंने अन्य 28 राज्यों संबंधी बातें भी सुनी थीं। इन राज्यों में से कुछ का उल्लेख तो विगत राजवंशों के अभिलेखों में मिलता है और अन्य कुछ के नाम अभी ज्ञात हो सके हैं। वे सभी महा थाङ राजवंश के उपकार के लिए आभारी हैं और उन्होंने उसके अधीन होने का निवेदन किया है। उन्होंने महा थाङ राजवंश से अपने यहां अधिकारी भेजने का अनुरोध किया और पर्वतों को पार कर रत्न अर्पित किए। उनकी राज्य सभाओं में तालियां बजा कर जी भर खुशियां मनाई गईं और महा थाङ राजवंश की शैली की टोपियां व आभूषण पहनने वालों की भीड़ हो गई। वहां की उपजों तथा भूमि, प्रथाओं तथा धरातल में भिन्नताओं का वर्णन करने के लिए श्वेन त्साङ ने जो राज्य दूरस्थ थे, उनके राजकीय अभिलेखों का सहारा लिया तथा जो राज्य निकट थे, उनके स्थानीय लोगों से विस्तार से पूछताछ की। वे राज्य कितने ही दूर हों, परन्तु उनकी स्पष्ट छवि आंखों के सामने घूमती ही है। यह सब कुछ बांस की खपच्चियों पर अक्षर खोदने के बजाए चिकने रेशमी कपड़ों पर ही लिपिबद्ध किया गया है। इसका नाम "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" रखा गया है और इसके कुल बारह खंड हैं। मेरी मान्यता है कि इस पुस्तक में जो कहानियां और बातें समाविष्ट हैं, वे बड़े विस्तार से संकलित हैं। इसमें जो कुछ छोटी-मोटी बातें लिपिबद्ध हैं, आशा है, उनसे पूर्व के ऐतिहासिक ग्रंथों में त्रुटियां दूर हो सकेंगी। यह भूमिका चिन पो ने लिखी है।

भूमिका (2)

मंत्री और येनक्वो सामंत ग्वी चनिङ

सूर्य की प्रखर किरणें पृथ्वी को आलोकित करती हैं और बौद्ध धर्म का अमृत इस जगह में छिड़कता है ; स्वर्ण-कांच की भांति उजली चांदनी समूचे मनुष्य लोक में छिटकती है और थाङ राजवंश के सुशासन का मंद समीर चारों समुद्रों को अपनी लपेट में लेता है। बौद्ध धर्म ने त्रिलोक दर्शाया है और वह सारे संसार में सर्वोतम कहला सकता है। थाङ राजवंश का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलता है और वह विश्व में सबसे बड़ा देश है। बुद्ध के परिनिर्वाण से प्रज्ञा का सूर्य डूब गया। हान राजवंश के सम्राट मिङती द्वारा दूत भेजे जाने पर ही बुद्ध की मूर्तियों और बौद्ध धर्म का पूर्वी देश में प्रवेश हो सका था। इस प्रकार सम्राट के सुशासन का व्यापक प्रचार हुआ और चीन का संगीत दूर पश्चिम में प्रचलित हो गया।

छिअन संघाराम के त्रिपिटिकाचार्य का धर्मनाम श्वेन त्साङ है एवं उनका गोत्रनाम छन है। उनके पूर्वज इङछ्वान के निवासी थे। सम्राट ह्वाङती के शासनकाल में पंचांग का आविर्भाव हुआ और रनसि एक बृहद ग्रह की किरणों में यात्रा कर गर्भवती हो गईं। उन्होंने येनती को जन्म दिया। सम्राट येनती ने छन नामक स्थान में अपनी राजधानी स्थापित की। तब छन के नाम की उत्पत्ति हुई। सम्राट शुन ने चारों दिशाओं में द्वार खोलकर अभिजातों एवं मंत्रियों का स्वागत किया। उन्होंने लीशान पर्वत में खेती करते समय ही अपने राज्य की नींव डाल दी थी। चओ राजवंश के सम्राट ऊवाङ[1] ने सम्राट शुन के वंशजों को छन नामक स्थान दानस्वरूप दिया। तब से छन, छी एवं सुङ ये तीनों सम्माननीय अभिजात चओ राजवंश काल (ग्यारहवीं शताब्दी—256 ईसापूर्व) में सुप्रसिद्ध हो चुके थे। छन फिङ[2] ने छ: अद्‌भुत युक्तियां निकाल हान राजवंश काल में नाम कमाया

---

1. सम्राट ऊवाङ सम्राट वनवाङ के पुत्र और चओ राजवंश के संस्थापक थे। उन्होंने इन (अर्थात शाङ) राजवंश (सोलहवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी ईसापूर्व तक) का तख्ता उलट दिया और अभिजातों तथा प्राचीनकालीन सम्राटों की संतानों को उपहारस्वरूप भूमि या नगर दिए।

2. छन फिङ (?—178 ईसापूर्व) हान राजवंश के प्रथम सम्राट काओचू का प्रमुख परामर्शदाता था। ऐतिहासिक ग्रंथों में छन फिङ की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि "उन्होंने छ: अद्‌भुत युक्तियां सुझाकर विपत्तियों को टाल दिया और देश को संकट से उबार दिया।"

था। छन छुन और उनके सुपुत्र द्वारा सम्राट को दिए गए आवेदनपत्र उजली चांदनी की भांति चमकदार रहे। जब छन शी अपने पुत्रों तथा भतीजों को लेकर ज्ञानियों से मिलने गए, तब शुभसूचक ग्रहों का मिलन हुआ। छन कुटुम्ब में असाधारण व्यक्ति एक के बाद एक उभर आए हैं, जैसे नदियों में भीमकाय मत्स्य साथ-साथ तैरते हैं या ऊंचे आकाश में गरुड़ साथ-साथ पंख फड़फड़ाते हुए उड़ते हैं। वंशगत सद्‌गुणों को ग्रहण कर छन कुटुम्ब एक उच्च कुल बन गया। धर्माचार्य श्वेन त्साङ का जन्म अपने पूर्वजों के पुण्यकर्मों के चलते हुआ था। एक मंगल ग्रह प्रभा के साथ इस पृथ्वी पर उतर आया। वे मानों गहरी जड़ें पकड़ा हुआ एक ऊंचा वृक्ष हैं और उनका सौभाग्य बड़ी नदी की भांति दीर्घ है। शैशव में ही उनका रूप अरुणोदय की लाली और उगते चन्द्र की भांति चित्ताकर्षक था। बचपन में उनमें एवं उनके भाइयों में इतनी अनुरक्ति थी जैसे शतावरी एवं ओसमांथस के सुवासित पुष्प साथ-साथ चटके हों। वयस्क होने तक उन्होंने सभी प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन कर डाला था। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और विभिन्न सरकारी कार्यालयों ने उन्हें नौकरियां देने के प्रस्ताव दिए। परन्तु वे तो बहुत पहले से ही बौद्ध धर्म की दीक्षा ले कर सत्य और मिथ्या में भेद करने में समर्थ हो चुके थे और जानते थे कि यह लोक एक माया मात्र है। उन्होंने प्राणिमात्र पर दया करना अपना धर्म माना और प्रज्ञा प्राप्त कर ली। वे परमसत्य के दर्पण के समक्ष खड़े जीवन की सीमाबद्धता को देख निःश्वास लेते रहे। इसलिए वे मानते हैं कि (अधिकारी का) लाल अंगरखा और बैंगनी पट्टी पहनने की तड़क-भड़क मायाजाल मात्र है, केवल एकयान एवं बौद्ध सूत्र इस मायाजाल से निकलने का सेतु एवं मार्ग है। वे इहलोक की उपेक्षा कर शांति व दूरदर्शिता की बातें करते हैं। उनके ज्येष्ठ भ्राता धर्माचार्य छाङ च्ये शाक्य धर्म के स्तंभ हैं। वे नाग की भांति वीर्य के साधक हैं एवं सारिपुत्र की भांति प्रज्ञात्मा हैं। अधिकारी एवं जन-साधारण उनके सदाचार एवं विद्वत्ता के प्रशंसक हैं और देश-विदेश में उनका सम्मान किया जाता है। उन दो भाइयों में गहन प्रेम एवं भ्रातृत्व नीतिदर्शन के अनुरूप है। धर्माचार्य श्वेन त्साङ अपने भाई की तन-मन से सेवा करते हैं तथा प्रत्येक पल उनसे शिक्षा लेते रहते हैं। उनकी विद्वत्ता स्थविर के स्तर की है और संघाराम में अनुपम है; उनके आचरण माध्यमिक मतों के अनुरूप हैं और उनकी प्रसिद्धि अरण्यों में फैल चुकी है। महायान के उपेक्षा मत पर उनके युनमङ झील जितने विस्तृत व्याख्यान में नौ प्रकार के बौद्ध सूत्रों के विषय समाविष्ट हैं। गूढ़ार्थों पर चर्चा करते समय उनकी दृष्टि में चतुर्वेद उसी प्रकार क्षुद्र लगता है, जिस प्रकार थाएशान पर्वत की चोटी पर से नीचे दृष्टि डालने पर लू राज्य[1] छोटा दीखता है। उन्होंने उन सभी

1. लू राज्य (11वीं शताब्दी – 256 ईसापूर्व) वर्तमान शानतुङ प्रांत के दक्षिण-पश्चिम में स्थित था। थाएशान पर्वत वर्तमान शानतुङ प्रांत में स्थित है। वह एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है।

संघारामों की यात्रा की जहां ज्ञानी भिक्षुओं की सभा होती थी। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए। उन्होंने पुण्य कर्म भी किए और शिक्षा भी पूरी कर ली। उनका आचरण उनके अंतःकरण की अभिव्यक्ति है तथा याङ शुङ के लेख उसी की आत्मा का उद्घाटन करते हैं। बौद्ध ग्रंथों से उन्हें आभास प्राप्त हुआ और घोड़ा दौड़ाकर चारों ओर भ्रमण करने का विचार आया। श्वेन त्साङ ने चंवर फेरा, समुद्र पर मृग-मरीचिका हटा उमड़ती लहरें दिखा दीं। वे उसी प्रकार एक अनुभवी शिल्पी की भांति मुख्य तत्वों पर शीघ्र अधिकार कर लेते हैं, जिस प्रकार फ़ूशी सं नामक वाद्य बनाने की कला का रहस्य जानता था। वे वैसे ही श्रुतवृद्ध हैं, जैसे कुंभ से जल गिरता है और वे ज्ञान के सागर में नौका खेते हुए आगे दूर बढ़ते हैं। उन्होंने मध्य चीन के य्वानह्वान नामक स्थान में उस आत्मश्लाघा करने वाले को निरुत्तर कर दिया था, जो कहता-फिरता था कि उसके उदर में समस्त प्रज्ञा संगृहीत है, सो ताम्र पटों से उसके उदर की रक्षा करनी है। छङ्तू में उन्होंने अपने बड़े भाई से पूर्व की ओर जल-यात्रा कर प्रतिष्ठित भिक्षुओं से मिलने की इच्छा प्रकट की। यह सुन कर दूर एवं निकट के लोगों के मन में उनके प्रति असीम आदर-भाव उत्पन्न हुआ। उनकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा, "पहले सुना था कि श्युन कुटुम्ब में आठ नाग उत्पन्न हुए थे (पूर्वी हान राजवंश काल में श्युन शू के आठों सुपुत्र प्रतिष्ठित थे)। आज हमें छन कुटुम्ब के दो बढ़िया अश्वों (इसका अभिप्राय श्वेन त्साङ एवं उनके बड़े भाई धर्माचार्य छाङ च्ये से है) को अपनी आंखों से देखने का अवसर मिला है। यह सत्य है कि रुचओ एवं इङछ्वान विभूतियों की जन्मभूमि हैं!"

धर्माचार्य श्वेन त्साङ बचपन से युवावस्था तक अपना मन बौद्ध सूत्रों के अध्ययन में ही लगाए रहे हैं। बौद्ध विद्वान और आयुष्मान विभिन्न निकायों के प्रति अपने अपने मतों पर स्थिर रहे और मुख्य तत्वों को छोड़ गौण तत्वों पर ऊहापोह करते रहे थे। उन्होंने फूल तो उठा लिए, किन्तु फल योंही छोड़ दिए। परिणामस्वरूप तीलुन चुङ अर्थात भूमिका सूत्र संप्रदाय में दो परस्पर विरोधी पंथ – दक्षिण पंथ एवं उत्तर पंथ उत्पन्न हुए और दोनों पंथों के मध्य वाद-विवाद होता रहा। इस अनन्त वाद-विवाद के सम्मुख श्वेन त्साङ दुविधा में पड़ गए। उन्हें आशंका थी कि अनुवाद में दोषों के कारण कदाचित सत्य ज्ञात न हो सके। उनके मन में बौद्ध सूत्रों के मूल पाठ पढ़ने और भारत में नाग-प्रासाद में संगृहीत बौद्ध सूत्र पाने की प्रबल इच्छा हुई। तब हमारा देश समृद्धि की पराकाष्ठा पर था। वे अनुपम दृढ़ता से यष्टि लिए दूरस्थ परदेश जाने को उद्यत हुए। उन्होंने छाङआन से प्रस्थान कर पाश्वेइ नदी को पीछे छोड़ पामीर पठार की ओर कदम बढ़ा दिए। लम्बे जल व थल मार्गों पर उन्हें नाना कष्ट झेलने पड़े और विभिन्न संकटों का सामना करना पड़ा। चाङ छ्येन

उपेक्षणीय हैं, जो पश्चिम क्षेत्र में अधिक दूर नहीं गए थे ; धर्माचार्य फ़ा श्येन[1] उपहास्य हैं, जिन्होंने सीमित स्थानों की यात्रा की थी। धर्माचार्य श्वेन त्साङ ने, जहां भी वे गए, स्थानीय बोली का विस्तृत अध्ययन किया, गुह्य सिद्धान्तों पर शोध किया और बौद्ध धर्म के मुख्य तत्वों की खोज की। उन्होंने अपनी वाक्पटुता से भारत में अपना नाम चमकाया और वे पत्रों पर अंकित बौद्ध सूत्र चीन स्थान ले आए।

स्वर्गीय सम्राट थाए चुङ स्वर्ण चक्रवर्ती राजा के रूप में राजसिंहासन पर बैठे और देश के सर्वेश्वर बने। वे सदा ज्ञानियों का सम्मान करते थे। उन्होंने धर्माचार्य श्वेन त्साङ को अपने शयनकक्ष में बुलाया। उनकी विद्वता से प्रभावित हो उन्होंने रथ में आसन बदल कर उनसे वार्तालाप किया। सम्राट स्वयं भक्ति भाव से परिपूर्ण पत्र लिखते रहे और उनके एवं धर्माचार्य के मध्य दूत आते-जाते रहे। धर्माचार्य के अनुरोध पर सम्राट ने अपनी प्रखर बुद्धि प्रदर्शित कर "महा थाङ त्रिपिटक सद्धर्म" के लिए 680 अक्षरों में प्रस्तावना लिखी। वर्तमान सम्राट काओ चुङ जब युवराज थे, उन्होंने "त्रिपिटक सद्धर्म के विवरण की भूमिका" लिखी थी। इस भूमिका में कुल 579 अक्षर हैं। सद्धर्म के मुख्य तत्वों पर प्रकाश डालने के लिए ये दो लेख लिखने का उद्देश्य सद्धर्म का प्रचार करना है। यदि धर्माचार्य श्वेन त्साङ का मान कुक्कुटाराम में न रखा गया होता और उनकी प्रसिद्धि गृध्रकूट पर न फैली होती, तो सम्राटों ने विवेकपूर्ण लेख लिखने का कष्ट उठा कर हमारे युग के इस महात्मा की प्रशंसा न की होती। धर्माचार्य श्वेन त्साङ ने सम्राट का आज्ञापत्र पा कर कुल 657 संस्कृत बौद्ध सूत्रों का अनुवाद किया है। उन्होंने दूरस्थ परदेशों की अद्भुत प्रथाओं और विशिष्ट छवियों, उपजों, मानव संबंधों के क्रमों, वहां थाङ पंचांग के प्रचलन और सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचार को देख कर "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" लिखा, जो कुल बारह खंडों में विभाजित है। इसमें गूढ़ार्थ, विस्तृत भाष्य एवं अमर लेख संकलित हैं।

---

1. फ़ा श्येन अर्थात फ़ाह्यान (लगभग 337?–422) चीन के पूर्व चिन राजवंश काल के भिक्षु, यात्री एवं अनुवादक थे। उनका गोत्रनाम कुङ था। जन्मस्थान फिङ्याङ का ऊयांङ (वर्तमान शानशी प्रांत की श्याङय्वाङ काउंटी) था। वे चीनी भिक्षुओं में प्रथम थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए भारत का भ्रमण किया था। 399 से 412 तक के चौदह वर्षों में उन्होंने दक्षिण एशिया में क्रमशः तीस से अधिक राज्यों की यात्रा की। वे अपने साथ अनेक संस्कृत बौद्ध सूत्र स्वदेश लाए। उन्होंने दूसरों के साथ मिल कर छः सूत्रों का अनुवाद किया और दक्षिण एशिया की यात्रा के समय जो कुछ देखा-सुना था, उसे अपनी कृति "बुद्ध के देश का यात्रा-वृत्तांत" में समाविष्ट किया। यह कृति दक्षिण एशिया के देशों के प्राचीन इतिहास एवं भूगोल के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री है। 1957 में चीनी में उनके इस यात्रा-वृत्तांत का अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित हुआ है।

भूमिका (3)

विगत वंशों के सम्राटों के सुराज्य के विवरण श्रौर उनके इतिवृत्त से यह ज्ञात होता है कि फ़ूशी के श्रष्टतत्वों का चित्र बनाते ही मेघ गरज उठा श्रौर मनुष्य लोक की उत्पत्ति हो गई ; फिर सम्राट ह्वाङती शासन चलाने लगा। प्रजा पर शासन करने के लिए भिन्न श्रधिकारियों को नियुक्त किया गया श्रौर भूमि को राजाश्रों में बांटा गया। जब सम्राट थाङयाश्रो राजगद्दी पर बैठे तब उनका प्रभाव चारों दिशाश्रों में फैल गया। सम्राट य्वी-शुन ने समूचे नौ प्रदेशों को श्रपने श्रधीन कर लिया। तब से खपच्चियों पर श्रंकित इतिवृत्त, पूर्ववर्ती मुनियों की सूक्तियां श्रौर इतिहास के ग्रंथ तो उपलब्ध थे, पर सुशासन का युग फिर नहीं देखा गया था।

श्राज का थाङ राजवंश श्राकाश के श्रनुरूप श्रपनी विधि बना युग की मांग के श्रनुसार उभर श्राया है श्रौर देश का एकीकरण कर सुशासन कर रहा है तथा तीन प्राचीनकालीन सम्राटों[1] के सत्कर्म ग्रहण कर प्रभापूर्ण हो गया है। जैसे सारा श्राकाश पूरी पृथ्वी को ढक लेता है श्रौर वायु एवं वर्षा से सभी वस्तुश्रों में प्राण श्रा जाते हैं, वैसे ही उसकी नैतिक विशालता का प्रभाव जहां-तहां फैलता रहता है श्रौर सुख का समीर दूर-दूर तक चलता रहता है। तुङई (पूर्व में स्थित विदेशों) ने दूत भेज कर हमारे सम्राटों को उपहार भेंट किए हैं श्रौर शीरुङ (पश्चिम में स्थित राज्यों) ने उनकी श्रधीनता स्वीकार कर ली है। थाङ राजवंश ने इतने श्रधिक सत्कार्य किए हैं श्रौर ऐसा सुशासन स्थापित किया है जो विगत सम्राटों से कहीं श्रागे निकल गया है श्रौर पिछले राजवंशों से कहीं श्रधिक बढ़-चढ़ कर है। लिपियों को एकीकृत रूप देने श्रौर रथों के धुरों की लम्बाई को समान बनाने के महान कर्म यदि लिपिबद्ध न किए गए होते, तो बृहद योजना की प्रशंसा कैसे हो पाती ? यदि उन कर्मों का प्रचार न किया गया होता, तो उपलब्धियां कैसे प्रदर्शित हो सकतीं ? मैं, श्वेन त्साङ, श्रपनी यात्रा के समय जहां भी गया, मैंने वहां की प्राकृतिक स्थितियां लिपिबद्ध कीं। यद्यपि मैं उन स्थानों की स्थिति निश्चित नहीं कर पाया श्रौर उनके लोकाचार में भी भेद नहीं कर पाया हूं, किन्तु मुझे यह विश्वास श्रवश्य है कि थाङ राजवंश के सत्कर्म स्पष्टत: विगत तीनों सम्राटों एवं पांचों प्राचीन राजेश्वरों से कहीं श्रधिक बढ़-चढ़कर हैं। सभी जीव थाङ राजवंश के उपकार के पात्र हैं श्रौर प्राणियों में से जिस किसी से भेंट हुई, वह थाङ

1. यानी ऊपर उल्लिखित सम्राट हवाङती, सम्राट थाङयाश्रो एवं सम्राट य्वीशुन।

राजवंश का यशोगान किए बिना नहीं रह सकता था। मैं थाङ राजवंश की भूमि से प्रस्थान कर भारत गया था। मैंने पाया कि भिन्न प्रथाओं वाले दूरस्थ क्षेत्रों में एवं दुर्गम स्थानों में अवस्थित राज्यों में भी थाङ राजवंश का पंचांग प्रचलित था और वे सभी थाङ राजवंश की सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित थे। थाङ राजवंश के पराक्रम लोगों में चर्चा का विषय बने हुए थे और उनकी प्रशंसा के पुल बंधते रहते थे। थाङ राजवंश की सांस्कृतिक उपलब्धियों की स्तुति करते हुए सर्वत्र यह माना जाता था कि वे संसार में प्रथम स्थान पर हैं। मैंने अपने पढ़े हुए प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख कभी नहीं पाया और न ही पूर्व के मानचित्रों एवं आगमन-निर्गमन अभिलेखों में मुझे इस आशय का विवरण मिला। यदि मैं इसका वर्णन न करूं, तो थाङ राजवंश के प्रभाव के विस्तार का तथ्य कैसे लिपिबद्ध हो सकेगा? अब जो कुछ मैंने देखा-सुना है यहां बताता हूं।

सहालोकधातु का तीन हजार बृहद सहस्र जगत एक ही बुद्ध के प्रभाव में है। एक ही सूर्य एवं चन्द्र से आलोकित इस तीन हजार बृहद सहस्र जगत में अनेक भगवान बुद्धों के अवतार हुए हैं और वे जीवन व मरण की अभिव्यक्ति कर अर्हतों व जन-साधारण का मार्गदर्शन करते रहे हैं। सुमेरु चार रत्नों से बना है। वह सागर में स्वर्ण चक्र पर अवस्थित है। सूर्य तथा चन्द्र उसकी परिक्रमा करते हैं। वह देवों का निवास है। उसके चारों ओर सात स्वर्ण पर्वत एवं सात अपार सागर घिरे हुए हैं। स्वर्ण पर्वतों के मध्य समुद्रों का जल आठ गुणों से युक्त है। सात स्वर्ण पर्वतों के बाहर लवण सागर है। सागर में निवास के लिए चार महाद्वीप विद्यमान हैं। वे हैं पूर्व में विदेहद्वीप, दक्षिण में जम्बूद्वीप, पश्चिम में गोदानीय द्वीप एवं उत्तर में कुरुद्वीप। स्वर्ण चक्रवर्ती राजा चारों द्वीपों पर शासन करता है, रजत चक्रवर्ती राजा कुरुद्वीप को छोड़कर शेष तीन द्वीपों का शासक होता है, ताम्र चक्रवर्ती राजा कुरुद्वीप एवं गोदानीय द्वीप को छोड़ शेष दो द्वीपों का स्वामी होता है, और लौह चक्रवर्ती राजा मात्र जम्बूद्वीप का राजेश्वर रहता है। जब कोई चक्रवर्ती राजा राज्यारोहण करता है, तो उसके भाग्य एवं सद्गुणों के अनुरूप बृहदाकार चक्र आकाश में दीखने लगता है। उसके भाग्य एवं सद्गुणों में भिन्नता के कारण दीखने वाला चक्र क्रमशः स्वर्ण, रजत, ताम्र या लौह का होता है। चक्रवर्ती राजाओं का शासन-क्षेत्र भी तदनुरूप चार, तीन, दो या एक ही द्वीप होता है। पहले ही चक्र से लक्षण दिखाई दे जाते हैं, इसलिए उसे तदनुरूप उपाधि मिलती है।

जम्बूद्वीप के मध्य में अनवतप्त ताल गंधागिरि के दक्षिण में एवं हिमगिरि के उत्तर में स्थित है और उसका घेरा आठ सौ ली का है। ताल के तट स्वर्ण, रजत, कांच और स्फटिक से सज्जित हैं। ताल में स्वर्ण रेणु व्याप्त हैं एवं जल दर्पण की भांति स्वच्छ है। आठ भूमियों के बोधिसत्व अपनी भक्ति के कारण नाग का रूप धारण कर इसी ताल में वास करते हैं और शीतल जल प्रवाहित कर जम्बूद्वीप को प्रदान करते हैं। ताल के पूर्व में रजत गौ

के मुख से गंगा बह निकलती है और वह ताल का एक चक्कर लगा कर दक्षिण-पूर्व में सागर में जा गिरती है। ताल के दक्षिण में स्वर्ण हस्ती के मुख से सिंधु बह निकलती है और वह ताल का एक चक्कर लगा कर दक्षिण-पश्चिम में सागर में जा गिरती है। ताल के पश्चिम में कांच अश्व के मुख से वंक्षु नदी निकलती है और वह ताल का एक चक्कर लगा कर उत्तर-पश्चिम में सागर में जा गिरती है। ताल के उत्तर में स्फटिक सिंह के मुख से शीत नदी निकलती है और वह ताल का एक चक्कर लगा कर उत्तर-पूर्व में सागर में जा गिरती है। और यह भी कहा जाता है कि यह नदी भूमि के नीचे बहती हुई चीशि पर्वत से बाहर निकलती है और शीत नदी की एक शाखा बन कर चीन की पीली नदी का उद्गम बनती है।

जब चक्रवर्ती राजा उत्पन्न नहीं हुए थे, उस काल में जम्बूद्वीप में चार राजा थे। दक्षिण में हस्ती राजा था, अतएव वहां उष्णता एवं आर्द्रता थी, जो हाथियों की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त थी; पश्चिम में रत्न राजा था, जिस कारण वहां समुद्रतट पर रत्न विपुलता से मिलते थे; उत्तर में अश्व राजा था, अतएव वहां की शीत वायु घोड़ों के पालन के अनुकूल थी; और पूर्व में मनुष्य राजा था, जिससे वहां मेल-मिलाप एवं सुख था एवं जनसंख्या अधिक थी। हस्ती राजा के देश में लोग स्वभाव के तो उग्र थे, किन्तु वे अध्ययनशील थे, विशेषकर अद्भुत कलाओं में पारंगत थे। वे शरीर पर चादर ओढ़ते थे और दायें कंधे को अनावृत्त रखते थे। सिर पर चोटी बनाते और शेष केश चारों ओर नीचे लटके हुए होते थे। वे गांवों व नगरों में बसे होते थे। उनके अधिकांश भवन दो तल्लों के होते थे। रत्न राजा की धरती पर लोग असभ्य थे और केवल धन संचित करना ही जानते थे। वे छोटे कपड़े पहनते थे, जिसका आगे का भाग बायीं ओर खुलता था। उनके केश मुंडित होते थे और दाढ़ी बढ़ी रहती थी। वे लोग नगरों में रहते थे और व्यापार कर लाभ कमा लेते थे। अश्व राजा के राज्य में लोग स्वभाव के कठोर एवं निष्ठुर होते थे और मार-पीट करते हिचकिचाते नहीं थे। वे तंबुओं में रहते थे और पक्षियों की भांति घुमन्तू जीवन बिताते थे। मनुष्य राजा की भूमि पर लोग मेधावी व कुशाग्रबुद्धि होते थे और वे सत्य-निष्ठा व सदाचार पर बल देते थे। वे सजावट के लिए टोपी और पेटी पहनते थे तथा उनके वस्त्र का आगे का भाग दायीं ओर खुलता था। गाड़ियां, वस्त्र एवं आभूषण सबके सब श्रेणियों के अनुरूप वर्गीकृत होते थे। लोगों को अपने जन्मस्थानों में रहना ही अधिक प्रिय था और बहुत कम लोग विस्थापित होते थे। वस्तुओं के विनिमय के लिए विशेष रूप से व्यापारी होते थे। पहले के तीन राजाओं की भूमि में पूर्व दिशा को सर्वोत्तम मानने की प्रथा थी। लोगों के रहने के भवनों के द्वार पूर्व की ओर खुले होते थे और प्रातःकाल होते ही वे पूर्व की दिशा में प्रणाम करते थे, जबकि मनुष्य राजा के देश में दक्षिण दिशा को सर्वोत्तम मानने की परम्परा थी। अभी जो कुछ बताया गया है, वह विभिन्न स्थानों की रीति-नीतियों एवं विशिष्ट प्रथाओं का एक संक्षिप्त विवरण है। जहां तक राजा और मंत्री

के बीच तथा ऊंच-नीच के मध्य शिष्टाचार, विधियों एवं व्यवस्थाओं का संबंध है, वे मनुष्य राजा के देश से अधिक उत्तम नहीं हो सकतीं। चित्त शुद्ध हो, सभी तृष्णाओं एवं क्लेशों से मुक्ति तथा जीवन-मरण के चक्र से निकल निर्वाण की प्राप्ति के संदर्भ में सिद्धान्त हस्ती राजा के देश के सर्वश्रेष्ठ हैं। यह सब कुछ सूत्रों व अभिलेखों में उल्लिखित है और विभिन्न स्थानों की प्रथाओं में देखा जा सकता है। यह प्राचीन काल से आज तक प्रचलित है और इसका विस्तृत सर्वेक्षण भी हो चुका है। परन्तु बौद्ध धर्म का आविर्भाव पश्चिम में हुआ था। जब उसका पूर्व के देश में प्रचार हुआ, तब अनुवाद के समय उच्चारण अशुद्ध हुए, फिर स्थानीय बोलियों के प्रभाव से उच्चारण भ्रष्ट हो गए। जब भी किसी शब्द का उच्चारण अशुद्ध होता है, उसका अर्थ भी बिगड़ जाता है। जब किसी शब्द का गलत अर्थ निकाला जाए, तब प्रसंग भी गलत हो जाता है। अतएव कन्फ्यूशियस[1] ने कहा था : "किसी वस्तु का सही नाम रखना चाहिए!" यह बात इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह दोषरहित है।

मनुष्य के स्वभाव और भाषा व उच्चारण में भिन्नता प्राकृतिक स्थिति के कारण उत्पन्न हुई है और प्रथा की उपज भी है। प्राकृतिक स्थिति एवं उपजों में भिन्नता तथा प्रथाओं एवं स्वभाव में अन्तर के संदर्भ में मनुष्य राजा के देश में सरकारी इतिवृत्त में विस्तृत उल्लेख है। अश्व राजा के देश की प्रथाओं और रत्न राजा की भूमि की प्राकृतिक स्थितियों के ब्योरेवार विवरण ऐतिहासिक ग्रंथों में मिल सकते हैं। यहां उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु हस्ती राजा के देश की स्थितियां प्राचीन अभिलेखों में विस्तृत रूप से उल्लिखित नहीं की गई हैं। किसी अभिलेख में कहा गया है कि वहां की अधिकांश भूमि उष्ण एवं आर्द्र है। किसी में यह लिपिबद्ध है कि वहां दयालुता को महत्व दिया जाता है। कुछ उल्लेख तो स्थानीय ऐतिहासिक ग्रंथों में भी मिलते हैं, किन्तु उनमें विस्तृत विवरण नहीं मिलता। कोई "पंथ" कभी प्रचलित होता है, तो कभी नहीं भी होता, इसलिए इस जगत में परिवर्तन होता रहता है। इससे यह ज्ञात हो सकता है कि यह कितना कठिन है कि वे राज्य अवसर पाकर थाङ राजवंश की अधीनता स्वीकार करें, उसके उपकार के पात्र

---

1. कन्फ्यूशियस (551–479 ईसापूर्व) बसंत-शरद काल के अंत में चीन के विचारक, राजनीतिज्ञ एवं शिक्षाविद और कन्फ्यूशियसवाद के संस्थापक थे। वे एक गुरुकुल चलाने के साथ-साथ राजनीतिक गतिविधियों में भी भाग लेते थे। वे एक समय में लू राज्य के विधि मंत्री रहे थे और कार्यवाहक प्रधान मंत्री भी बने थे। बुढ़ापे में वे शिक्षा कार्य एवं सांस्कृतिक ग्रंथों के संकलन में लगे रहे। उन्होंने लू राज्य के सरकारी इतिहासकारों द्वारा लिखित "छुन छ्यू" नामक ग्रंथ को पुनः संपादित किया था, जिससे इस पुस्तक ने चीन के प्रथम इतिवृत्त का रूप ले लिया। अनुश्रुतियों के अनुसार उनके तीन हजार शिष्य थे। उनमें से सत्तर अधिक प्रसिद्ध हुए थे। पश्चिमी हान राजवंश के उपरान्त कन्फ्यूशियस के उपदेश दो हजारों वर्षों तक चीन की सामंती संस्कृति की प्रामाणिक परम्परा माने गए और चीन के सामंती शासक उन्हें एक संत मान कर उनका सम्मान करते रहे थे। उनके विचार एवं कथन उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध "लुन य्वी (अर्थात् उक्तियां)" में सम्मिलित हैं।

बन उसके संरक्षण में आ जाएं, नाना संकटों से पार कर य्वीमन दर्रे का द्वार खटखटाएं और थाङ राज्यसभा को अद्भुत वस्तुएं भेंट करें। यही कारण था कि अपनी लम्बी यात्रा के समय मैंने दीक्षा लेने के उपरान्त अवकाश के समय में स्थानीय स्थितियां एवं प्रथाएं लिपिबद्ध की हैं। स्याहकोह के इस ओर हू जाति की ही प्रथाएं प्रचलित हैं। वे और रुङ जाति के लोग एक ही स्थान में बसे तो हुए थे, परन्तु उन्होंने विभिन्न जनपदों में बंट कर अपने-अपने राज्य स्थापित किए हैं। उन्होंने नगर बसाए, खेती अथवा पशु-पालन आरंभ किया। वे सत्यनिष्ठा की अपेक्षा धन-संपत्ति को अधिक महत्व देते हैं। उनमें विवाह-विधि नहीं है। ऊंच-नीच का भेद नहीं है। स्त्रियों की बात मान ली जाती है और पुरुषों की स्थिति दीन है। मृतक का शव जलाया जाता है और शोक मनाने की कोई निश्चित अवधि नहीं है। इस कालावधि में लोग अपने चेहरों पर घाव कर लेते हैं, कान काट देते हैं, बाल मुंड़वा लेते हैं और कपड़ों के चीथड़े-चीथड़े कर देते हैं। मृतक के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है। शुभ अवसर पर लोग श्वेत वस्त्र पहनते हैं, जबकि अमंगल घड़ी में श्याम वस्त्र पहनते हैं। ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह उनकी समान प्रथाओं और मिलती-जुलती रीति-नीतियों का एक संक्षिप्त विवरण है। जहां तक राजतंत्रों तथा विशेष राजनियमों का संबंध है, उनका वर्णन स्थानानुसार किया जाएगा। भारत की प्रथाओं का विवरण तो आगे दिया ही जाएगा।

खण्ड एक

तत्कालीन काराहोजा को छोड़ मैं अग्नि राज्य आया, जो काराहोजा राज्य से सबसे निकट था। अब मैं इसी राज्य का विवरण देता हूं। (इस राज्य का पुराना नाम अची था)।

अग्नि राज्य

अग्नि राज्य पूर्व से पश्चिम तक छ: सौ ली और दक्षिण से उत्तर तक चार सौ ली क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि 6–7 ली थी। राज्य चारों ओर पर्वतों से घिरा था और यातायात दुर्गम था। इसलिए इसे आक्रमण से बचाए रखना सरल था। राज्य में अनेक चश्मे और नाले फैले हुए थे जिनके पानी से खेतों की सिंचाई की जाती थी। यहां की भूमि जोंधरी, बाजरा, गेहूं, बेर, अंगूर, नाशपाती और कर्कसेव आदि फसलों के लिए उपयुक्त थी। चारों ऋतुएं शीतोष्ण, सुहावनी और सुखदायक थीं। रीति-रिवाज सीधे-सादे थे। लोग आपस में निष्कपटतापूर्वक व्यवहार करते थे। लिपि सिंधु से लाई जा कर उसमें थोड़ा-बहुत फेर-बदल कर तैयार हुई थी। निवासी मोटे और पतले ऊनी कपड़े पहनते थे। उनके बाल कटे रहते थे। वे पगड़ियां नहीं बांधते थे। प्रचलित मुद्राओं में सोने, चांदी और तांबे के छोटे सिक्के शामिल थे। राजा देशवासी था। वह वीर तो था, पर अधिक बुद्धिमान न था। डींग मारना पसन्द करता था। राज्य में विधि-विधान का अभाव था। अध्यादेश भी गंभीर और संपूर्ण नहीं थे। राज्य में दसेक संघाराम थे और कोई दो हजार बौद्ध भिक्षु थे। वे हीनयान के सर्वास्तिवाद का अध्ययन करते थे। बौद्ध उपदेशों और शील-विनय के अध्ययन में सिंधु का पूर्ण अनुसरण करने के कारण सभी अनुयायी मूल-पाठ के अध्ययन में संलग्न थे। वे पाठ-विधि और शील-विनय का कड़ाई से पालन कर अपने को पवित्र बनाए रखते थे। वे मेहनती थे। पर उनके खाद्य-पदार्थों में 'तीन अदूषित' कहलाने वाला मांस शामिल था। वे प्रारम्भिक दौर की धार्मिक क्रिया से चिपके हुए थे।

यहां से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में दो सौ से अधिक ली चल कर और एक पहाड़ी तथा दो बड़ी नदियां पार कर पश्चिम की ओर एक मैदान आया, फिर सात सौ ली का रास्ता तय कर मैं कुचि राज्य पहुंचा। (जिसका पुराना नाम था खुत्सी)।

कुचि राज्य

कुचि राज्य पूर्व से पश्चिम तक एक हजार से अधिक ली और दक्षिण से उत्तर तक छः सौ ली क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि 17–18 ली थी। यहां की भूमि जोंधरी और गेहूं के लिए उपयुक्त थी। धान, अंगूर व अनार की पैदावार होती थी और नाशपाती, कर्कसेव, आड़ू और खूबानी की भरमार थी। सोना ,तांबा, लोहा, सीसा और टीन की खानें उपलब्ध थीं। चारों ऋतुएं शीतोष्ण थीं। रीति-रिवाज सीधे-सादे थे। लिपि सिंधु से ला कर थोड़ा-बहुत फेर-बदल कर तैयार हुई थी। यह राज्य विशेषकर संगीत और नृत्यगान में निपुण था। इस क्षेत्र में वह अन्य राज्यों से कहीं आगे निकल गया था। निवासी रेशमी कपड़े पहनते थे। उनके बाल कटे रहते थे और वे सिर पर टोपी पहनते थे। मुद्राओं में सोने, चांदी और तांबे के सिक्के होते थे। राजा कुचिवासी था। वह अधिक प्रतिभावान नहीं था और उसमें चतुराई और हथकंडों की कमी थी। वह मंत्रियों की उंगलियों पर नाचता रहता था। यहां एक स्थानीय रीति थी कि खोपड़ी को चपटा बनाने के लिए जन्म से ही शिशु के सिर को तख्ते से कस दिया जाता था। राज्य में सौ से अधिक संघाराम थे और पांच हजार से अधिक बौद्ध भिक्षु थे। वे हीनयान के सर्वास्तिवाद का अध्ययन करते थे। सभी बौद्ध उपदेश और शील-विनय सिंधु से लाए गए थे। इसलिए, अनुयायी मूल-पाठ पढ़ते थे। पर वे भी प्रारम्भिक दौर की धार्मिक क्रिया से ही चिपके हुए थे और "तीन अदूषित' मांस खाते थे। लोग अपने को पवित्र बनाए रखते थे और बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन में तल्लीन रहते थे। वे कर्मकांड की प्रतियोगिताओं में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे।

एक. महानाग कुंड और सुवर्ण पुष्प राजा

कुचि राज्य के पूर्व क्षेत्र में एक नगर स्थित था। नगर के उत्तर में एक मंदिर के सामने एक महानाग कुंड था। कुंड में रहनेवाला नाग बहुधा अपना रूप बदलता रहता था। कुंड से निकलकर वह घोड़ी के साथ संभोग करता था। उन्होंने जिस टट्टू को जन्म दिया, वह तेज-मिजाज और बेकाबू था। जब उस टट्टू ने फिर एक टट्टू को जन्म दिया तब वह पाल-पोस कर गाड़ी चलाने योग्य बन सका। यही कारण था कि इस राज्य में बड़ी संख्या में श्रेष्ठ घोड़े उपलब्ध थे। मैंने यहां बुजुर्गों से एक कथा सुनी थी। कहा जाता है कि एक राजा था जिसका नाम था सुवर्ण पुष्प। राजनीति और धर्म में वह स्पष्ट-हृदय था जिससे प्रभावित होकर नाग उसकी गाड़ी खींचने लगा। मृत्युशय्या पर लेटे राजा ने जब चाबुक से नाग

के कान का स्पर्श किया, तो नाग कुंड में डूबकर पानी के नीचे चला गया ग्रौर तब से ग्राज तक वह फिर कभी दिखाई नहीं दिया। इस नगर में कोई कुग्रां नहीं था। लोगों को पीने के लिए कुंड से पानी लाना पड़ता था। नाग मनुष्य का रूप धारण कर स्त्रियों से मिला करता था। उनके बेटे बहुत हृष्ट-पुष्ट थे ग्रौर घोड़ों की तरह दौड़ते थे। इस तरह लोगों में नाग-रक्त धीरे-धीरे प्रसारित होता रहा ग्रौर लोग नाग की नस्ल के बन गए। ये ग्रपने शारीरिक बल के सहारे लोगों पर रोब जमाते थे ग्रौर राजा के ग्रादेश नहीं मानते थे। ग्रन्ततः राजा तुर्कों को बुला लाया ग्रौर उन्होंने इस नगर के सभी वृद्धों एवं बालकों की हत्या कर डाली। कोई नहीं बचा। ग्रब यह नगर निर्जन हो गया।

दो. चकुरी संघाराम

इस निर्जन नगर के उत्तर-पश्चिम में कोई चालीस ली की दूरी पर पहाड़ी तलहटी से जुड़े एक स्थान में स्थित नदी के दोनों तटों पर एक-एक संघाराम था। दोनों का नाम चकुरी था। वे सम्मिलित रूप से पूर्व ग्रौर पश्चिम में खड़े थे। बुद्ध-मूर्तियों की सजावट लोक-कला-कौशल से परे लगती थी। भिक्षु गंभीरतापूर्वक ग्रपने काम में तल्लीन थे। पूर्वी चकुरी संघाराम के पूजा-भवन में एक जेड रखा था जिसकी चौड़ाई दो छि से ग्रधिक थी ग्रौर रंग पीला-सफेद था। ग्राकार-प्रकार एक सीप जैसा था जिस पर बुद्ध का पदचिह्न ग्रंकित था। उसकी लम्बाई एक छि ग्राठ छुन ग्रौर चौड़ाई 6 छुन थी। उपवास के दिन में वह चमकने लगता था।

तीन. महा सभास्थल

राजधानी के पश्चिमी द्वार के बाहर सड़क की दायीं-बायीं दोनों ग्रोर एक-एक बुद्ध-मूर्ति खड़ी थी जिसकी ऊंचाई नब्बे छि से ग्रधिक थी। इन बुद्ध-मूर्तियों के सामने एक महा सभास्थल बनाया गया था जिसमें प्रति पांच वर्षों में एक बार सभा ग्रायोजित होती थी। प्रत्येक वर्ष के मध्य शरद में राज्य भर के भिक्षु ग्रौर ग्रनुयायी यहां ग्राकर एकत्रित होते थे। राजा से लगा कर ग्रधिकारियों ग्रौर प्रजा तक सभी लोग दैनन्दिन झंझटों से मुक्त हो कर यहां उपवास रखते ग्रौर बौद्ध सूत्र ग्रथवा धर्म ग्रंथ सुनते थे। इनमें वे इतने संलग्न हो जाते थे कि भूख ग्रौर थकान भी भूल जाते थे। सभी संघारामों में बुद्ध-मूर्तियों को ग्रनोखे व ग्रमूल्य रत्नों ग्रौर रेशमी चादरों से सजाधजा कर गाड़ियों पर रखा जाता था। ये चलन्त मूर्तियां कहलाती थीं। कभी-कभी हजारों की संख्या में मूर्तियां सभास्थल में एकत्रित

हो जाती थीं। इस राज्य के राजा और मंत्री प्राय: प्रत्येक मास के पखवाड़े में या मास के अन्त में राज्य कार्य पर विचार-विमर्श किया करते थे और महा भिक्षुओं के परामर्श लेने के बाद निर्णयों की घोषणा की जाती थी।

चार. आश्चर्य संघाराम तथा उसकी दंतकथा

महा सभास्थल के उत्तर-पश्चिम में एक नदी को पार कर मैं आश्चर्य संघाराम पहुंचा। इस संघाराम का प्रांगण विशाल और बुद्ध-मूर्तियां सुसज्जित थीं। संघाराम में भिक्षु गंभीर और अध्ययनशील थे। वे सब वृद्ध, नीतिपरायण और ज्ञानी थे। बहुत से विचारविज्ञ उन पर श्रद्धा रखते हुए दूर-दूर से उनसे मिलने आते थे। राजा, मंत्री, विद्वान, प्रजा और बलशाली धनी इन भिक्षुओं को खाना-पीना, कपड़े-लत्ते, शय्याएं और दवा-दारू प्रदान करते थे। इस तरह लोगों की श्रद्धा वर्ष प्रति वर्ष और भी गहन होती चली गई।

मैंने वृद्धों से सुना था कि इस राज्य का पूर्वराजा त्रिरत्न पर बहुत श्रद्धा रखता था। एक बार वह तीर्थ-यात्रा पर जाने को था। उसने अपने सगे भाई से अपनी जगह राज-कार्य चलाने को कहा। राजाज्ञा पाने के बाद भाई ने मिथ्यापवाद को दूर करने के उद्देश्य से छिपे-छिपे अपनी जननेन्द्रिय को काट कर एक स्वर्ण संदूक में बन्द कर राजा को दे दी।

"यह क्या है?" राजा ने पूछा।

"वापस लौटने के बाद देखिएगा, महाराज!" राजा के छोटे भाई ने उत्तर दिया।

राजा ने स्वर्ण संदूक अपने एक अधिकारी को सौंपा और इसकी रक्षा के लिए सेना के साथ उसे अपने पास रखने को कहा। बाद में जब राजा वापस लौटा तो सचमुच किसी ने अफवाह फैला दी कि राजा ने उसे राज-कार्य चलाने को कहा, पर उसने राजमहल में रानी और उपरानियों के साथ स्वच्छन्द संभोग किया। यह सुन राजा को बड़ा क्रोध आया और उसने अपने भाई को कड़ा दंड देना चाहा। भाई ने कहा: "मुझे अपना उत्तरदायित्व टालने का साहस नहीं है। पर पहले उस स्वर्ण संदूक को खुलवाइए, महाराज!"

राजा ने स्वर्ण संदूक को खुलवाया और उसमें एक कटी हुई जननेन्द्रिय पाई। राजा ने कहा: "यह अनोखी वस्तु क्या है और इससे तुम मुझे क्या बताना चाहते हो?" भाई ने उत्तर दिया: "महाराज, आपने तीर्थ-यात्रा पर चले जाने से पहले मुझे राज-कार्य चलाने की आज्ञा दी थी। मैं मिथ्यापवाद से भयभीत था। इसलिए मैंने अपने बचाव के लिए अपनी जननेन्द्रिय काट डाली। आज वही स्थिति सामने आ गई। महाराज, अब आप स्वयं ही इस पर विवेचन-निर्णय कीजिए।" राजा अत्यंत आश्चर्यचकित और प्रभावित हुआ। तब से भाइयों के बीच बंधुत्व और भी प्रगाढ़ होता गया। राजा का भाई स्वेच्छा से राजमहल में कहीं भी आ-जा सकता था और उस पर कोई भी पाबन्दी नहीं थी। एक दिन, राजा के

भाई ने मार्ग पर एक पुरुष को पांच सौ बैल हांकते चले जाते देखा। इन बैलों को बधिया किया जाना था। यह देख कर राजा का भाई गहरे विचार में डूब गया। इन निरीह जन्तुओं को भी उसकी भांति उसी दु:ख का सामना करना पड़ेगा। यह सोच कर वह बेहद खिन्न हो गया।

"आज मैं जो विकलांग हो गया हूं, क्या यह पूर्वजन्म के पाप से नहीं हुआ है?" उसने अपने धन से इन बैलों को खरीद लिया। इस परोपकार से उसकी जननेन्द्रिय धीरे-धीरे पुन: उग आई। इसके पश्चात वह फिर कभी राजमहल में नहीं जाता। यह जान कर राजा को बड़ा अचंभा हुआ और उससे कारण पूछा। उसने पूरी कथा कह सुनाई। राजा ने इसे महान आश्चर्य समझकर अपने भाई के कार्य की प्रशंसा में एक संघाराम बनवाया ताकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका नाम बना रह सके।

यहां से पश्चिम की दिशा में छ: सौ ली का रास्ता तय कर और एक छोटी मरुभूमि से हो कर मैं बालुका राज्य पहुंचा। (जिसका पुराना नाम था कूम या जीम)।

बालुका राज्य

बालुका राज्य पूर्व से पश्चिम तक 6 सौ से अधिक ली और दक्षिण से उत्तर तक तीन सौ से अधिक ली क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि 5–6 ली थी। यहां की भूमि, जलवायु, रीति-रिवाज और लिपि कुचि राज्य के समान थी। भाषा में थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य था। इसके पड़ोसी राज्य इस राज्य में उत्पादित सूक्ष्म नमदे और कपड़े को मूल्यवान समझते थे। राज्य में दसियों संघाराम थे और एक हजार से अधिक बौद्ध भिक्षु थे जो हीनयान के सर्वास्तिवाद का अध्ययन करते थे।

मुज-अर्त और इसिक कुल

बालुका राज्य से उत्तर-पश्चिम की दिशा में तीन सौ से अधिक ली का रास्ता तय कर और गोबी मरुस्थल को पार कर मैं मुज-अर्त पहुंचा जो उत्तरी पामीर पठार पर अवस्थित था। अधिकांश नदियां यहां से पूर्व दिशा में बहती थीं। पर्वत हिमाच्छादित थे। उन पर वसन्त और ग्रीष्म में भी बर्फ जमी रहती थी। यातायात दुर्गम और खतरनाक ही नहीं था बल्कि यात्रियों को चुभने वाली हिमानी वायु का सामना भी करना पड़ता था। यहां प्राय: भयंकर तूफान आते रहते थे। यात्री भूरे रंगवाले कपड़े नहीं पहन सकते थे, अपने साथ लौकी नहीं ले जा सकते थे और कोलाहल नहीं कर सकते थे अन्यथा उनके सिर पर मुसीबत

आ पड़ती थी। देखते-देखते रेतीला तूफान उठ जाता था और कंकड़-पत्थरों की बौछार होने लगती थी। जो भी उसमें फंस जाता वह अपने प्राणों से हाथ धो बैठता। कोई नहीं बच पाता था। मुज-अर्त से चार सौ से अधिक ली चल कर मैं इसिक कुल पहुंचा, जिसका दूसरा नाम उष्म सागर अथवा क्षार सागर था। इसिक कुल की परिधि एक हजार से अधिक ली थी। वह पूर्व से पश्चिम में चौड़ा और दक्षिण से उत्तर में संकरा था। वह चारों ओर पर्वतों से घिरा था, अनेक नद-नदियां उसमें आ गिरती थीं। पानी का बहाव तेज था। इसिक कुल में नाग और मगरमच्छ साथ-साथ रहते थे। कभी-कभी प्रेतात्माएं भी दिखाई देती थीं। इसलिए यात्री प्रेतात्माओं की पूजा करते थे और उन्हें अर्घ्य देकर प्रार्थना करते थे। फलतः इसिक कुल में जलीय जीव-जंतुओं की बहुतायत तो थी पर किसी को उन्हें पकड़ने अथवा मारने का साहस नहीं होता था।

सुयाब नगर

इसिक कुल से उत्तर-पश्चिम की दिशा में कोई पांच सौ ली का रास्ता तय कर मैं सुयाब नगर पहुंचा। इस नगर की परिधि 6-7 ली थी। नगर में विभिन्न देशों के व्यापारी रहते थे। यहां की भूमि जोंधरी, गेहूं और अंगूर के लिए उपयुक्त थी। वृक्ष कम थे और वे भी इधर-उधर बिखरे हुए थे। जलवायु शीतल थी और हवा तेज बहती थी। ठंड से बचने के लिए लोग नमदा और सन के कपड़े पहनते थे। सुयाब के पश्चिम में एक दूसरे से अलग-अलग दसियों नगर स्थित थे। हर नगर का अपना राजा या अमीर था। वे एक दूसरे का अंकुश नहीं मानते थे, पर सभी तुर्कों के आज्ञाकारी थे।

सुलीक क्षेत्र का सामान्य विवरण

सुयाब नगर से कुशान तक के क्षेत्र का नाम सुलीक था। इस क्षेत्र के लोग सुलीकवासी कहलाते थे। लिपि और भाषा भी। सुलीक लिपि के मूल अक्षर सरल थे और केवल बीसेक मात्र थे जिनसे विस्तृत शब्द बन जाते थे। लोगों के पास बहुत कम लेख थे। उन्हें ऊपर से नीचे पढ़ा जाता था। अध्यापक छात्रों को पढ़ाते थे, फिर वे छात्र अपने छात्रों को पढ़ाते थे। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता था। लोग तंग और छोटे नमदे और सन के अथवा ऊनी कपड़े पहनते थे। उनके बाल करीने से कटे रहते थे और सिर पर चोटी रहती थी। अथवा, बाल एकदम मूंड़ दिए जाते थे। सिर पर रंग-बिरंगी झालरें बंधी रहती थीं। वे हृष्ट-पुष्ट तो होते थे किन्तु कायर और डरपोक भी होते थे। उनके रीति-रिवाज ढोंगी और

ग्राचार-व्यवहार पाखंडपूर्ण थे। ग्रधिकांश लोग धन के लोभी होते थे। यहां तक कि बाप-बेटे के बीच भी धन की खींचतान होती रहती थी। जिसके पास ग्रधिक धन-संपत्ति हो, वह कुलीन माना जाता था। धनवानों ग्रौर निर्धनों के बीच ग्रधिक ग्रन्तर नहीं था। लखपती भी मोटा खाना खाते थे ग्रौर मोटे कपड़े पहनते थे। इस क्षेत्र के ग्राधे लोग खेती करते थे ग्रौर ग्रन्य ग्राधे लोग व्यापारी थे।

सहस्र निर्झर (बिंग-युल)

सुयाब नगर से पश्चिम की दशा में कोई चार सौ ली का रास्ता तय कर मैं सहस्र निर्झर पहुंचा। सहस्त्र निर्झर क्षेत्र की परिधि दो सौ ली थी। उसके दक्षिण में हिम पर्वत ग्रौर ग्रन्य तीनों ग्रोर मैदानी क्षेत्र फैला था। यहां जल-स्रोत पर्याप्त थे ग्रौर भूमि उपजाऊ थी। वृक्षों की बहुलता थी। उत्तरकालीन वसन्त पुष्पित हो जाता था। यहां ऐसे सहस्र कुंड थे जिनका पानी निर्झर से ग्राता था। इसलिए इसका नाम 'सहस्र निर्झर' पड़ा। तुर्कों का खान गर्मी से बचने बहुधा यहां ग्राता रहता था। हरिणों के झुंड के झुंड चलते-फिरते दिखाई देते थे। हिरणों के गलों में घंटियां लटकी हुई थीं। वे प्यार से लोगों के साथ घुल मिल जाते थे। मनुष्यों को देख कर भी वे भागते नहीं थे। ये हिरण खान के लाड़ले थे जिसने मंत्रियों ग्रौर प्रजा को ग्राज्ञा दी थी कि यदि कोई उन्हें मारने का दुस्साहस करेगा तो उसे मृत्यु-दंड दिया जाएगा। कदापि क्षमा नहीं किया जाएगा। फलत: ये सभी हिरण चैन से रहते ग्रौर ग्रपनी मौत मरते थे।

तालास नगर

सहस्र निर्झर से पश्चिम की ग्रोर 140–150 ली का रास्ता तय कर मैं तालास नगर पहुंचा। नगर की परिधि 8–9 ली थी। नगर में विभिन्न राज्यों के व्यापारी रहते थे। यहां की भूमि ग्रौर जलवायु सुयाब नगर से मिलती-जुलती थी।

छोटा एकाकी नगर

तालास नगर से पश्चिम की दिशा में दसेक ली की दूरी पर एक छोटा एकाकी नगर स्थित था। इस नगर में तीन सौ से ग्रधिक परिवार रहते थे। पहले वे सब चीनी थे। बाद में उन्हें तुर्कों ने कैदी बनाकर ग्रपने साथ रख लिया तथा इस नगर पर ग्रधिकार कर लिया।

नगर में उन्होंने मकान बनवाए। उनकी पोशाकें तुर्कों से कदापि भिन्न नहीं थीं, किन्तु भाषा, शिष्टाचार और रीति-रिवाजों में फिर भी उन्होंने अपने देश की विशेषताएं बनाए रखी थीं।

इस्बीजाब नगर

यहां से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में दो सौ से अधिक ली का रास्ता तय कर मैं इस्बीजाब नगर पहुंचा। इस नगर की परिधि 6–7 ली थी। यहां की पैदावार और जलवायु तालास से कहीं अच्छी थी।

कुङय्वी नगर

इस्बीजाब नगर से दक्षिण-पश्चिम की ओर दो सौ से अधिक ली का रास्ता चल कर मैं कुङय्वी नगर पहुंचा। इस नगर की परिधि 5–6 ली थी। यहां की भूमि और दलदली भूमि बहुत उपजाऊ थी, और यह नगर हरे-भरे वृक्षों से आच्छादित था।

यहां से दक्षिण में 40–50 ली का रास्ता तय कर मैं नूजकथ राज्य पहुंचा।

नूजकथ राज्य

नूजकथ राज्य की परिधि एक हजार से अधिक ली थी। भूमि उपजाऊ थी। खेतीबारी की विधि संपूर्ण थी। धरती हरी-भरी थी और पेड़ों में फल लगे रहते थे। अंगूर खूब पैदा होता था। वह लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण उपज भी थी। राज्य में एक सौ से अधिक नगर थे। हर नगर का अपना एक अधिनायक था। प्रत्येक नगर अपनी कार्य-प्रणाली तथा बाहर के साथ अपने सम्पर्क निश्चित करता था। वह अन्य किसी दूसरे नगर की आज्ञा नहीं मानता था। यद्यपि सभी नगरों की अपनी सीमाएं थीं, फिर भी इनका संयुक्त नाम नूजकथ राज्य था।

यहां से पश्चिम की दिशा में दो सौ ली का रास्ता तय कर मैं चच राज्य पहुंचा। (थाङ भाषा में श राज्य था)।

चच राज्य

चच राज्य की परिधि एक हजार से अधिक ली थी। इसकी पश्चिमी सीमा जक्शर्त

नदी से लगी थी। इस राज्य का क्षेत्र पूर्व से पश्चिम तक संकरा और दक्षिण से उत्तर तक लम्बा था। भूमि और जलवायु नूजकथ राज्य के समान थी। राज्य में दसियों नगर थे। प्रत्येक नगर का अपना अधिनायक था, पर इनका कोई एक प्रधान अधिनायक नहीं था। वे सब तुर्कों के अधीन थे।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में कोई एक हजार ली की दूरी पर फ़रगना राज्य स्थित था।

फ़रगना राज्य

फ़रगना राज्य की परिधि चार हजार ली के लगभग थी। यह राज्य चारों ओर पर्वतों से घिरा था। भूमि उपजाऊ थी और पैदावार प्रचुर होती थी। हर प्रकार के फल उपलब्ध थे। भेड़-बकरियों और घोड़ों के पालन के लिए उपयुक्त वातावरण था। यहां की जलवायु शीतल थी और हवा खूब चलती रहती थी। यहां के निवासी साहसी और वीर थे। भाषा अन्य राज्यों से भिन्न थी। लोगों के चेहरे भद्दे थे। अनेक दशकों से इस राज्य का कोई राजा नहीं था। विभिन्न अधिनायक आपस में छीना-झपटी करते रहते थे। वे नदियों और प्राकृतिक बाधाओं के आधार पर आपस में प्रभाव-क्षेत्रों का बंटवारा करते थे।

यहां से पश्चिम में कोई एक हजार ली की दूरी पर सुत्रूशन राज्य था।

सुत्रूशन राज्य

सुत्रूशन राज्य की परिधि कोई एक हजार चार सौ ली थी। इसकी पूर्वी सीमा जक्शर्त नदी से लगी थी। जक्शर्त नदी का उद्गम पामीर पर्वत के उत्तरी भाग में स्थित था। वह उत्तर-पश्चिम की ओर बहती थी। इसका जल विपुल और अस्वच्छ था। बहाव तीव्र था। यहां की भूमि और निवासियों की रीति चच राज्य के समान थी। राजा तो था पर वह तुर्कों के अधीन था।

विशाल मरुभूमि

सुत्रूशन के उत्तर-पश्चिम में विशाल मरुभूमि थी। यहां जल और वनस्पतियों का कोई चिह्न तक नहीं था। मरुभूमि में कोई निश्चित रास्ता नहीं था। सीमा को पहचानना बहुत

कठिन था। पहाड़ों को दूर से देख कर और मरुभूमि पर पड़ी हड्डियों की खोज कर दिशा का पता लगाया जाता था। पांच सौ ली का रास्ता तय कर मैं समरकंद आया। (थाङ भाषा में खान राज्य था)।

समरकंद राज्य

समरकंद राज्य की परिधि एक हजार 6–7 सौ ली थी। यह राज्य पूर्व से पश्चिम में लम्बा और दक्षिण से उत्तर में संकरा था। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से वह बहुत संकटपूर्ण और सुदृढ़ था। जनसंख्या अधिक थी। यह एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। भूमि उपजाऊ थी। सभी फसलें उगाई जाती थीं। नगर वृक्षों और पुष्पों से छाया रहता था। फलों की भरमार थी। यहां श्रेष्ठ जाति के घोड़े उपलब्ध थे। दस्तकारी और शिल्पकला अन्य राज्यों से बढ़ी-चढ़ी थी। जलवायु समशीतोष्ण थी। निवासी उग्र और उतावले थे। सभी हू जाति के लोग इस राज्य को अपना केन्द्र समझते थे। शिष्टाचार और आचार-व्यवहार में भी वे इसे अपना आदर्श मानते थे, चाहे वे इस राज्य से दूर हों या निकट। राजा बहुत साहसी और वीर था। पड़ोसी राज्य उसके आज्ञाकारी थे। इसका एक शक्तिशाली सैन्यदल था, जो छाक नामक सैनिकों से बना था। ये सैनिक बहुत वीर थे और मौत के मंह में कूद जाने में भी नहीं हिचकते थे। वे अपराजित थे। समरकंद से दक्षिण-पूर्व में मायमुर्ग राज्य था। (थाङ भाषा में मी राज्य कहलाता था)।

मायमुर्ग राज्य

मायमुर्ग राज्य की परिधि चार-पांच सौ ली थी। यह एक पहाड़ी घाटी में अवस्थित था। पूर्व से पश्चिम तक संकरा और दक्षिण से उत्तर तक लम्बा था। यहां की भूमि और रीति-रिवाज समरकंद राज्य के सदृश्य ही थे। इस राज्य के उत्तर में कपूताना राज्य था। (थाङ भाषा में छाओ राज्य था)।

कपूताना राज्य

कपूताना राज्य की परिधि एक हजार चार-पाच सौ ली थी। यह पूर्व से पश्चिम तक

लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक सकरा था। इसकी भूमि और रीति-रिवाज भी समरकंद राज्य के समान ही थे। इस राज्य के पश्चिम में तीन सौ से अधिक ली की दूरी पर कुषाणिक राज्य था। (थाङ भाषा में हो राज्य था)।

कुषाणिक राज्य

कुषाणिक राज्य की परिधि एक हजार चार-पांच सौ ली थी। यह पूर्व से पश्चिम तक संकरा और दक्षिण से उत्तर तक लम्बा था। भूमि और रीति-रिवाज समरकंद के समान ही थे। इस राज्य के पश्चिम में कोई दो सौ ली की दूरी पर खर्गांकथ राज्य था। (थाङ भाषा में तुङआन राज्य था)।

खर्गांकथ राज्य

खर्गांकथ राज्य की परिधि एक हजार ली के लगभग थी। भूमि और रीति-रिवाज समरकद के समान थे। इस राज्य से पश्चिम की ओर कोई चार सौ ली दूरी पर वुखारा राज्य था। (थाङ भाषा में चुङआन राज्य था)।

बुखारा राज्य

बुखारा राज्य की परिधि एक हजार 6–7 सौ ली थी। यह पूर्व से पश्चिम तक लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक संकरा था। भूमि और रीति-रिवाज समरकंद के समान थे। इस राज्य से पश्चिम की दिशा में कोई चार सौ ली की दूरी पर बेटिक राज्य था। (थाङ भाषा में शिआन राज्य था)।

बेटिक राज्य

बेटिक राज्य की परिधि चार सौ ली के लगभग थी। भूमि और रीति-रिवाज समरकंद के समान थे। यहां से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में कोई पांच सौ ली की दूरी पर होरिष्मिक राज्य था।

होरिष्मिक राज्य

होरिष्मिक राज्य वंक्षु नदी के दोनों तटों पर फैला था। यह पूर्व से पश्चिम तक बीस-तीस ली और दक्षिण से उत्तर तक कोई पांच सौ ली था। भूमि और रीति-रिवाज बेटिक राज्य के समान थे। बस, बोली में थोड़ा अन्तर था।

समरकंद राज्य से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में तीन सौ ली की दूरी पर कुशान राज्य अवस्थित था। (थाङ भाषा में शि राज्य कहलाता था)।

कुशान राज्य

कुशान राज्य की परिधि एक हजार चार–पांच सौ ली थी। भूमि और रीति-रिवाज समरकंद राज्य के समान थे।

यहां से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में कोई दो सौ ली का रास्ता पार कर मैं पर्वतों में प्रविष्ट हुआ। पगडंडियां टेढ़ी-मेढ़ी थीं। घाटी के साथ-साथ चलती पगडंडी दुर्गम थी और खतरनाक भी। स्थान निर्जन था, जल और घास-फूस कम था। यहां से फिर दक्षिण-पूर्व की दिशा में कोई तीन सौ ली का रास्ता चल कर मैं दरबन्द-ए-आहनीन पर जा पहुंचा।

दरबन्द-ए-आहनीन

दरबन्द-ए-आहनीन ऊंचे और सीधे-खड़े पर्वतों के बीच अवस्थित था। पगडंडियां संकरी तो थीं ही, बहुत दुर्गम और भयपूर्ण भी थीं। पगडंडी के दोनों ओर सीधी-सीधी चट्टानें खड़ी थीं, जिनका रंग लोहे जैसा था। दर्रे पर एक द्वार लगाया गया था और उसमें लोहा लगा कर उसे सुदृढ़ बनाया गया था। द्वार के ऊपर अनेक लौह घंटियां लटकायी गई थीं। यह स्थान अभेद्य होने के कारण इसका नाम दरबन्द-ए-आहनीन पड़ गया था।

तत्कालीन तुखार राज्य

दरबन्द-ए-आहनीन से निकलकर मैं तत्कालीन तुखार राज्य पहुंचा। (पुराना नाम थूहोलो था, जो गलत था)। तत्कालीन तुखार राज्य का क्षेत्र दक्षिण से उत्तर तक कोई एक हजार ली और पूर्व से पश्चिम तक तीन हजार ली था। पूर्व में पामीर उसकी अधीनता

में था। पश्चिम में वह पारस से लगा था। दक्षिण में हिन्दुकुश पर्वत और उत्तर में दरबन्द-ए-आहनीन था। वंक्षु नदी इस राज्य के मध्य भाग में पूर्व से पश्चिम की ओर बह जाती थी। सदियों से महाराजाओं के संतानहीन होने के कारण विभिन्न अधिनायकों और मुखियाओं के बीच प्रभुत्व के लिए खींचातानी चलती रहती थी। वे भौगोलिक स्थितियों के भरोसे स्वयं को राजा घोषित करते रहते थे। इस प्रकार पूरा क्षेत्र 27 राज्यों में विभाजित हो गया था। यद्यपि उनका अपना-अपना अधिकार-क्षेत्र था, पर वे सब तुर्कों के अधीन थे। इस क्षेत्र की जलवायु शीतोष्ण थी, सो महामारी भी अधिक फैलती रहती थी। जाड़े के अन्त और वसन्त के प्रारम्भ में वर्षा अधिक होती थी। इसलिए इस क्षेत्र से दक्षिण में लंपाक के उत्तर तक सभी स्थानों में महामारी का बोलबाला रहता था। बौद्ध भिक्षुओं में गुरु से शिष्य तक सभी 16 फाल्गुन से वर्षावास करने लगते थे और 15 ज्येष्ठ में इसे समाप्त करते थे। इस क्षेत्र की अधिक वर्षा की विशेषता के अनुसार ये धार्मिक नियम निर्धारित कर दिए गए थे। यहां से लोग जन्म से ही कायर और डरपोक होते थे। निवासियों के चेहरे भद्दे थे। वे मोटे तौर पर विश्वासपात्र तो थे, किन्तु अधिक चतुर नहीं थे। उनकी बोली और आचार-व्यवहार में अन्य राज्यों से थोड़ा अन्तर था। मूल लिपि 25 अक्षरों से बनी थी। इन 25 अक्षरों से बहुत सारे शब्द बनते थे जिनका सभी बातों में प्रयोग किया जाता था। लिपि दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी। अभिलेखों की संख्या अधिकाधिक होती गई थी जो सुलीक क्षेत्र से कहीं अधिक थी। अधिकांश लोग सूती कपड़े पहनते थे। वे सन के कपड़े कम पहनते थे। सोने और चांदी के सिक्के प्रचलित थे जिनका आकार-प्रकार अन्य राज्यों से भिन्न था।

वंक्षु नदी के उत्तरी तट का अनुसरण करते और नीचे की ओर जाते हुए मैं तिर्मिध राज्य पहुंचा।

तिर्मिध राज्य

तिर्मिध राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई छः सौ ली लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक प्रायः चार सौ ली चौड़ा था। इस राज्य की राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। क्षेत्र पूर्व से पश्चिम में लम्बा और दक्षिण से उत्तर में संकरा था। राज्य में दसेक संघाराम थे जिनमें एक हजार से अधिक बौद्ध भिक्षु थे। यहां अनेक स्तूप और बुद्ध-मूर्तियां थीं। इनके बारे में बहुत सी विचित्र कथाएं प्रचलित थीं। इसके पूर्व में चवानियान राज्य था।

चवानियान राज्य

चवानियान राज्य पूर्व से पश्चिम तक प्राय: चार सौ ली चौड़ा और दक्षिण से उत्तर तक लगभग पांच सौ ली लम्बा था। राजधानी की परिधि दसेक ली थी जिसमें पांच संघाराम थे और बौद्ध भिक्षु बहुत कम थे। इसके पूर्व में खरून राज्य था।

खरून राज्य

खरून राज्य पूर्व से पश्चिम तक प्राय: एक सौ ली चौड़ा और दक्षिण से उत्तर तक लगभग तीन सौ ली लम्बा था। राजधानी की परिधि दसेक ली थी जिसका राजा शीसु तुर्क था। दो संघाराम थे। एक सौ से अधिक बौद्ध भिक्षु थे। इसके पूर्व में शूमान राज्य था।

शूमान राज्य

शूमान राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई चार सौ ली लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक प्राय: एक सौ ली चौड़ा था। राजधानी की परिधि सोलह-सत्रह ली थी जिसका राजा शीसु तुर्क था। दो संघाराम थे। बौद्ध भिक्षु बहुत कम थे। इस राज्य के दक्षिण-पश्चिम में वंक्षु नदी थी और कुवायान राज्य था।

कुवायान राज्य

कुवायान राज्य पूर्व से पश्चिम तक लगभग दो सौ ली चौड़ा और दक्षिण से पूर्व तक प्राय: तीन सौ ली लम्बा था। राजधानी की परिधि दसेक ली थी। राज्य में तीन संघाराम थे। एक सौ से अधिक बौद्ध भिक्षु थे। इसके पूर्व में वख्श राज्य था।

वख्श राज्य

वख्श राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई तीन सौ ली चौड़ा और दक्षिण से उत्तर तक पांच सौ ली लम्बा था। राजधानी की परिधि सोलह-सत्रह ली थी। इस राज्य के पूर्व में खुत्तलान राज्य था।

खुत्तलान राज्य

खुत्तलान राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई एक हजार ली लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक कोई एक हजार ली चौड़ा था। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। पूर्व में पामीर पठार और कुमेध राज्य था।

कुमेध राज्य

कुमेध राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई दो हजार ली लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक कोई दो सौ ली चौड़ा था, जो पामीर पर्वत में स्थित था। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। इसके दक्षिण-पश्चिम में वंक्षु नदी और दक्षिण में सिकनी राज्य थे। दक्षिण में वंक्षु नदी को पार कर आप दर-ए-मस्तित, बदख्शान, यमगान, कुरान, हिमतल, पारघर, किश्म, राहुल, आर्हन, मुंजान, वरवालीज से दक्षिण-पूर्व में खोस्त राज्य और अंदराब राज्य थे। इन राज्यों के विषय में मेरे वापसी के विवरण देखिए।

वरवालीज के दक्षिण-पश्चिम में बगलन राज्य था।

बगलन राज्य

बगलन राज्य की परिधि पूर्व से पश्चिम तक कोई पचास ली और दक्षिण से उत्तर तक दो सौ ली के लगभग थी। राजधानी की परिधि दसेक ली थी। इसके दक्षिण में रूब-सिमिंगान राज्य था।

रूब-सिमिंगान राज्य

रूब-सिमिंगान राज्य की परिधि प्रायः एक हजार ली थी। राजधानी की परिधि चौदह—पन्द्रह ली थी। इसके उत्तर-पश्चिम में खुल्म राज्य था।

खुल्म राज्य

खुल्म राज्य की परिधि आठ सौ ली के लगभग थी। राजधानी की परिधि पांच-छः

ली थी। राज्य में दसेक संघाराम थे, कोई पांच सौ बौद्ध भिक्षु थे। इसके पश्चिम में बक्त्र राज्य था।

बक्त्र राज्य

बक्त्र राज्य पूर्व से पश्चिम तक लगभग आठ सौ ली और दक्षिण से उत्तर तक प्रायः चार सौ ली के क्षेत्र में फैला था। उसकी उत्तरी सीमा वंक्षु नदी से लगी थी। राजधानी को परिधि दसेक ली थी। इसे लोग छोटा राजगृह कहकर पुकारते थे। नगर सुदृढ़ तो बना था पर नगर में निवासियों की संख्या बहुत कम थी। यहां नाना प्रकार की फसलें पैदा होती थीं। जलीय और स्थलीय पुष्पों को विस्तार से बताना कठिन है। राज्य में एक सौ से अधिक संघाराम थे और कोई तीन हजार बौद्ध भिक्षु थे। वे सब हीनयानी थे।

एक. नव विहार

राजधानी के बाहर दक्षिण-पश्चिमी उपनगर में नव विहार था। यह विहार इस राज्य के पूर्ववर्ती राजा ने बनवाया था। हिन्दुकुश के उत्तरी क्षेत्र में केवल यही विहार था जिसमें बौद्ध उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए शास्त्राचार्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी सूत्रों का सृजन करते रहे थे। विहार में बुद्ध-मूर्तियां अमूल्य वस्तुओं से बनायी गई थीं। अनोखे रत्नों से पूजा-भवन सुसज्जित किया गया था। इसलिए अन्य राज्यों के राजा लूट-पाट के उद्देश्य से इस विहार पर हमला करना चाहते थे। पहले इस विहार में वैश्रवण देव की एक मूर्ति थी। वह अपनी शक्ति प्रदर्शित कर इस विहार की रक्षा करती रहती थी। कुछ समय पहले तुर्कों के येहो खान के पुत्र सियेहो खान ने रत्नों की लूट-मार के उद्देश्य से अपने कबीले की सम्पूर्ण सेना लेकर इस विहार पर धावा बोला। उसने इस विहार से कुछ दूरी पर अपनी सेना तैनात कर रखी। इसी दिन रात को उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में वैश्रवण देव ने उससे कहा : "क्या इस विहार को नष्ट करने का तुममें साहस और शक्ति है ?" यह कहकर उन्होंने बर्छे से खान की छाती को भेद दिया। मारे भय के खान जाग उठा और उसे हृदय-पीड़ा होने लगी। उसने अपने मंत्रियों को स्वप्न में अपनी आपबीती बताई। प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने तुरन्त भिक्षुओं को बुलवाने के लिए अपना दूत भेजा। लेकिन उनका उत्तर पाने से पहले ही खान का देहान्त हो गया।

इस विहार के दक्षिणी पूजा-भवन में बुद्ध का एक स्नान-पात्र था जिसमें एक तउ[1]

1. एक समाई औजार।

से अधिक जल समा सकता था। वह रंगीन और चमकदार था। यह कहना कठिन था कि वह सोने से बना था या रत्नों से। इसके अलावा यहां बुद्ध का एक दांत भी था जिसकी लम्बाई एक छुन से अधिक और चौड़ाई एक छुन से कम थी। वह दूधिया रंग का स्वच्छ और चमकदार था। एक झाड़ू भी था जिसे कुशा से बनाया गया था। उसकी लबाई प्राय: दो छि थी, परिधि सात छुन थी। इसका कुंदा रंग-बिरंगे रत्नों से सजाया गया था। उप-वास के दिवसों पर भिक्षु और अनुयायी एकत्रित होकर इन तीनों की पूजा करते थे। लोगों की भक्ति से प्रभावित होकर ये कभी-कभी चमचमाने लग जाते थे।

विहार के उत्तर में एक स्तूप था, जिसकी ऊंचाई कोई दो सौ छि थी। स्तूप पर हीरे लगाए गए थे और वह रंग-बिरंगे रत्नों से सुसज्जित था। स्तूप में बुद्ध के शरीरावशेष रखे गए थे और वह कभी-कभी चमकने लगता था।

विहार के दक्षिण-पश्चिम में एक भव्य भवन स्थित था। वह वर्षों पुराना था। लोग दूर-दूर से यहां आते थे। श्रेष्ठ व्यक्ति आपस में मिलने यहां आते थे। उनमें से अनेक व्यक्तियों ने चार फल प्राप्त किए थे जिनके अलग-अलग उदाहरण देना कठिन था। ये अर्हंत निर्वाण होने से पहले बहुधा अपनी दिव्य शक्ति दिखाया करते थे। जिन्हें पहचान लिया गया उनके लिए लोगों ने स्तूप खड़े किए। इन स्तूपों की आधार-शिलाएं एक दूसरे से सटी हुई थीं और वे सैकड़ों की संख्या में थीं। उन अर्हंतों की संख्या जिन्होंने फल प्राप्त तो कर लिए थे परन्तु निर्वाण होने से पहले कोई दिव्य शक्ति नहीं दिखाई थी, कोई एक हजार तक पहुंच गई थी। उनके लिए स्तूप खड़े नहीं किए गए थे। आज यहां लगभग एक सौ बौद्ध भिक्षु थे। वे भी दिन-रात लगन से अध्ययन कर रहे थे। यह अनुमान लगाना कठिन था कि उनमें से कौन अर्हंत हैं और कौन साधारण भिक्षु।

दो. त्रपुस नगर और भल्लिक नगर

राजधानी के उत्तर-पश्चिम में कोई पचास ली की दूरी पर एक त्रपुस नगर था। उत्तर में कोई चालीस ली की दूरी पर भल्लिक नगर था। हर नगर में एक-एक स्तूप था जिसकी ऊंचाई तीन चाङ से अधिक थी। शाक्यमुनि बुद्ध बनने के बाद पीपल वृक्ष से मृग-दाव आए। उस समय दो व्यापारी शाक्यमुनि के प्रभाव को देखकर उनके साथ हो लिए और उन्होंने उनको मठ्ठा और लड्डू अर्पित किए। शाक्यमुनि ने उन्हें स्वस्त्ययन सिखाया। उन्होंने ही सर्वप्रथम पांच शील और दस वर्जनाओं के उपदेश सुने थे। धार्मिक दीक्षा पाने के बाद उन्होंने पूजा करने के लिए शाक्यमुनि से कुछ न कुछ देने की प्रार्थना की। शाक्यमुनि ने उन्हें अपने केश और नाखून दे दिए। जब वे स्वदेश लौटने को ही थे, उन्होंने पूजा-विधि बताने का आग्रह किया। शाक्यमुनि ने संघाटी को चौकोर रूप में तह कर जमीन पर बिछाया

श्रौर फिर उत्तरासंग को श्रौर इसके बाद संकक्षिका को उतार कर इस पर रखा। फिर शाक्यमुनि ने उन पर भिक्षापात्र उलट कर रख दिया श्रौर पात्र पर एक लाठी खड़ी कर दी। इस प्रकार एक स्तूप बन गया। दोनों व्यापारी यह श्रादेश पाकर श्रपने-श्रपने नगर वापस लौटे श्रौर शाक्यमुनि के बतलाए श्राकार-प्रकार के श्रनुसार बहुमंजिले वास्तु बनवाए। यही बौद्ध स्तूप का प्रारम्भिक रूप था।

नगर के पश्चिम में कोई सत्तर ली की दूरी पर एक स्तूप था, जिसकी ऊंचाई दो चाङ के लगभग थी। इसे काश्यप बुद्ध ने निर्मित किया था।

राजधानी के दक्षिण-पश्चिमी भाग से हिन्दुकुश पर्वत में प्रविष्ट हो कर मैं जुमथान राज्य पहुंचा।

जुमथान राज्य

जुमथान राज्य पूर्व से पश्चिम तक पचास–साठ ली श्रौर दक्षिण से उत्तर तक कोई एक सौ ली के क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि दसेक ली थी।

इसके दक्षिण-पश्चिम में गूजगानान राज्य था।

गूजगानान राज्य

गूजगानान राज्य पूर्व से पश्चिम तक प्राय: पांच सौ ली श्रौर दक्षिण से उत्तर तक कोई एक हजार ली के क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। राज्य में श्रनेक पहाड़ श्रौर नदियां थीं। यहां श्रेष्ठ घोड़े उपलब्ध थे। इसके उत्तर-पश्चिम में तालकान राज्य था।

तालकान राज्य

तालकान राज्य पूर्व से पश्चिम तक लगभग पांच सौ ली श्रौर दक्षिण से उत्तर तक पचास-साठ ली के क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि दसेक ली थी। इसकी पश्चिमी सीमा पारस से लगी थी।

बक्त्र राज्य के दक्षिण में कोई एक सौ ली की दूरी पर ग़ज़्न राज्य था।

ग़ज़ राज्य

ग़ज़ राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई पांच सौ ली और दक्षिण से उत्तर तक लगभग तीन सौ ली के क्षेत्र में फैला था। राजधानी की परिधि चार-पांच ली थी। भूमि कठोर और अनुपजाऊ थी। पहाड़ और टीले एक से एक सटे हुए थे। फूल और फल बहुत कम देखने को मिलते थे। सेम और गेहूं पैदा होते थे। जलवायु शीतल थी। लोग हृष्ट-पुष्ट और मुष्टि-युद्ध में निपुण थे। राज्य में दसेक संघाराम थे और कोई तीन सौ भिक्षु थे जो हीनयान के सर्वास्तिवाद का अध्ययन करते थे।

हिन्दुकुश पर्वत

ग़ज़ राज्य के दक्षिण-पूर्व में हिन्दुकुश पर्वत था। पर्वत ऊंचा और घाटी गहरी थी। चोटी सीधी और खतरनाक थी। चारों ऋतुओं में बर्फ पड़ती रहती थी और तेज हवा चलती थी। ग्रीष्म ऋतु में भी बर्फ पिघलती नहीं थी। पगडंडियां टेढ़ी-मेढ़ी और दुर्गम थीं। कभी-कभी पर्वत में पहाड़ी दानव और पिशाच भी उत्पात करते रहते थे। इनके अतिरिक्त डाकुओं के गिरोह भी डाकाजनी और रक्तपात करते रहते थे।

पर्वतों में कोई छः सौ ली का फसला तय करने के बाद मैं तुखार राज्य से निकल कर बामियान राज्य पहुंचा।

बामियान राज्य

बामियान राज्य पूर्व से पश्चिम तक प्रायः दो हजार ली और दक्षिण से उत्तर तक लगभग तीन सौ ली के क्षेत्र में फैला था। यह हिन्दुकुश पर्वत में अवस्थित था। लोगों ने पर्वतों और घाटियों की प्राकृतिक स्थितियों के अनुसार कस्बों और नगरों का निर्माण कर लिया था। राज्य की राजधानी एक घाटी में चट्टानों पर निर्मित की गई थी। उसकी लम्बाई छः-सात ली थी। उत्तर में ऊंची-ऊंची चट्टानें थीं। यहां गेहूं उत्पन्न होता था, पर फूल-फल कम देखने को मिलते थे। भेड़ों और घोड़ों के चरने के लिए श्रेष्ठ चरागाह था। भेड़-बकरियों और घोड़ों की बहुलता थी। जलवायु शीत और परिवर्तनीय थी। लोगों का स्वभाव रूखा और अनमनीय था। अधिकांश निवासी चमड़े, ऊन और मोटे सन के कपड़े पहनते थे, जो यहां की जलवायु के अनुकूल थे। इस राज्य की लिपि, रीति-रिवाज और प्रचलित मुद्राएं तुखार राज्य की सी थी। भाषा तुखार राज्य से थोड़ी भिन्न थी।

लोगों की आकृति भी तुखार से मिलती-जुलती थी। लोग ईमानदार और श्रद्धालु थे। इस क्षेत्र में वे अपने पड़ोसी राज्यों से कहीं आगे निकले हुए थे। त्रिरत्न से लेकर ग्राम देवताओं तक सब के प्रति लोग श्रद्धा रखते थे और उनकी पूजा करते रहते थे। व्यापारी आते-जाते रहते थे। देवतागण उन्हें शकुन या अपशकुन बताते और उन्हें अपने सौभाग्य के लिए प्रार्थना करने की प्रेरणा देते थे। राज्य में दसियों संघाराम थे और उनमें कई हजार बौद्ध भिक्षु थे। वे हीनयान के लोकोत्तरवादिन मत का अध्ययन करते थे।

एक. खड़ी बुद्ध-मूर्ति और सुप्त बुद्ध-मूर्तियां

राजधानी के उत्तर-पूर्व की तलहटी में एक खड़ी प्रस्तर बुद्ध-मूर्ति थी जिसकी ऊंचाई 140–150 छि थी। यह सुनहरी बुद्ध-मूर्ति चमचमाती रहती थी और चमकीले रत्नों से सुसज्जित थी। पत्थर की खड़ी मूर्ति के पूर्व में एक संघाराम था, जो इस राज्य के पूर्ववर्ती राजा ने निर्मित कराया था। संघाराम के पूर्व में शाक्यमुनि बुद्ध की तांबे की एक खड़ी मूर्ति थी जिसकी ऊंचाई लगभग एक सौ छि थी। मूर्ति के विभिन्न भाग अलग-अलग बनाए गए थे, फिर उन्हें एक साथ जोड़ दिया गया था।

राजधानी के पूर्व में दो-तीन ली की दूरी पर एक संघाराम में निर्वाण-प्राप्त बुद्ध की एक लेटी हुई मूर्ति थी, जिसकी लम्बाई प्रायः एक हजार छि थी। बामियान राज्य का राजा यहां पंचवार्षिक-परिषद आयोजित करता था। समारोह में राजा अपनी पत्नी से लेकर राजकोष के रत्नों तक सब कुछ दान दे देता था। राजकोष के खाली हो जाने के बाद वह स्वयं अपने को दान के रूप में अर्पित कर देता था। फिर मंत्री तथा अन्य पदाधिकारी प्रचुर धन देकर राजा को भिक्षुओं से छुड़ा लेते थे। बात इतनी बढ़ी कि यह राजा के जीवन की एक सामान्य घटना बन गई।

दो. लघु सरिता संघाराम

सुप्त बुद्ध-मूर्ति वाले संघाराम से दक्षिण-पूर्व की दिशा में कोई दो सौ ली का मार्ग पार कर और हिन्दुकुश पर्वत को लांघ कर फिर पूर्व में चल कर मैं लघु सरिता के तट पर पहुंचा। इस सरिता का जल स्वच्छ और दर्पण जैसा स्पष्ट था। वृक्ष हरे-भरे थे। यहां एक संघाराम था। संघाराम में बुद्ध का दांत तथा कल्प के प्रारंभ के प्रत्येक बुद्ध का दांत सुशोभित थे। इसकी लंबाई प्रायः पांच छुन और चौड़ाई चार छुन से कुछ कम थी। इनके अलावा स्वर्ण चक्रवर्ती राजा का दांत भी था जिसकी लम्बाई तीन छुन और चौड़ाई दो छुन थी, और

महा अर्हत शाणकवास का लौह पात्र था जिसकी समाई आठ-नौ शङ[1] थी। इन तीन पवित्र अवशेषों को सोने से सीलबन्द किया गया था। संघाराम में शाणकवास का एक नौ पट्टियों का काषाय भी था, जो गहरे लाल रंग का था। यह सन से बनाया गया था। शाणकवास आनन्द का शिष्य था। अपने पूर्वजन्म में वह सन के कपड़े पहनता था। वर्षावास की समाप्ति के दिन उसने इन कपड़ों को भिक्षुओं में बांट दिया था। इस परोपकार के कारण वह पांच सौ जन्म-जन्मांतरों में सदैव यही कपड़ा पहनता रहा था। अपने अन्तिम जन्म में भी वह यही वस्त्र पहने हुए इस संसार में आया था। वह जैसे-जैसे बड़ा होता गया, कपड़ा भी बड़ा होता रहा। जब आनन्द से परिचय होने के बाद वह भिक्षु बना, तब यह कपड़ा धर्मवस्त्र बन गया। जब वह भिक्षु जीवन बिताने लगा, तो यह नौ पट्टियों वाला काषाय बन गया। निर्वाण होने से पहले उसने स्वेच्छा से इस काषाय का त्याग कर दिया और आशा प्रकट की कि वह वस्त्र शाक्यमुनि के धर्म के साथ साथ सदैव स्थिर रहेगा और धर्म के अन्त होने के साथ नष्ट हो जाएगा। अब इस काषाय में थोड़ा-बहुत नष्ट होने का आसार दिखाई देने लगा था। यह कथन निराधार नहीं था।

मैं यहां से पूर्व में चल कर हिन्दुकुश पर्वत में प्रविष्ट हुआ और स्याहकोह को पार कर कापिशी राज्य में पहुंचा।

कापिशी राज्य

कापिशी राज्य की परिधि प्रायः चार हजार ली थी। उत्तर में वह हिन्दुकुश से लगा हुआ था। बाकी तीन ओर वह स्याहकोह से घिरा हुआ था। राजधानी की परिधि दसेक ली थी। यहां की भूमि जोंधरी और गेहूं के लिए उपयुक्त थी। फूल वृक्षों की भरमार थी। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ घोड़े और केसर भी उपलब्ध होते थे। आस-पास के स्थानों से अनेक मूल्यवान तथा विचित्र वस्तुएं यहां एकत्रित होती रहती थीं। जलवायु ठंडी और हवा अधिक थी। लोग उग्र तथा उच्छृंखल थे। उनकी बोली अश्लील और असभ्य थी। विवाह-संबंध अव्यवस्थित थे। लिपि सामान्यतः तुखार राज्य से मिलती-जुलती थी। किन्तु उनके रीति-रिवाज, भाषा और संस्कृति में काफी अन्तर था। लोग ऊनी, सूती तथा चमड़े के भी वस्त्र पहनते थे। सोने, चांदी और तांबे आदि की मुद्राओं का उपयोग होता था। इन मुद्राओं के आकार-प्रकार दूसरे राज्यों से भिन्न थे। राजा क्षत्रिय था। वह बहुत बुद्धिमान और उपायकुशल था। वीर और उग्र स्वभाव भी था। दसेक पड़ोसी राज्यों पर उसका प्रभुत्व जमा था और वे उसके अधीन थे। वह साधारण जनता से स्नेह करता था और त्रिरत्न

---

1. एक समाई औजार।

को सिर आंखों पर रखता था। वह प्रति वर्ष एक चाङ आठ छि ऊंची रजत-बुद्ध-मूर्ति का निर्माण करवाता था। इसके अतिरिक्त वह पंचवार्षिक परिषद भी आयोजित कर गरीबों तथा विधवाओं एवं विधुरों को दान देता था। इस राज्य में कोई एक सौ संघाराम और छः हजार बौद्ध भिक्षु थे। वे अधिकांशतः महायान धर्म का अध्ययन करते थे स्तूप और संघाराम ऊंचे और विशाल थे। इनके अतिरिक्त दसियों मंदिर भी थे और कोई एक हजार विधर्मी थे। उनमें कुछ दिगम्बर और कुछ पाशुपत सम्प्रदाय के थे। वे मृतकों की खोपड़ियों को माला के रूप में डोरे में पिरो कर बालों में लगा देते थे।

एक. बंधक संघाराम

राजधानी के पूर्व में तीन-चार ली दूर उत्तर पहाड़ की तलहटी में एक बृहद संघाराम स्थित था, जिसमें कोई तीन सौ भिक्षु थे। वे सब हीनयानी थे। वृद्ध लोगों का कथन था कि गत काल में गंधार राज्य के महाराजा कनिष्क का प्रभाव पड़ोसी देशों तक प्रसारित था और दूर-दूर के राज्य भी उससे प्रभावित थे। वह अपनी सैन्य-शक्ति का विस्तार कर अपने राज्य की सीमा बढ़ाता रहा। उसने अपने प्रभाव को पामीर के पूर्व तक फैला दिया। हशी क्षेत्र के शासक ने उसके प्रभाव से अभिभूत होकर अपने बेटे को बंधक के रूप में भेजा। कनिष्क ने उनके साथ विशेष रूप से शिष्ट व्यवहार किया। भयंकर सर्दियों व गर्मियों में रहने के लिए उसने विभिन्न स्थानों पर अतिथि-भवनों का प्रबंध करवाया। जाड़े में वह भारत के विभिन्न स्थानों में रहता था और गर्मियों में फिर वह कापिशी राज्य में लौटता था। वसन्त और शरद में वह गंधार राज्य में रहता था। इसलिए बंधक बेटे के लिए तीन जगहों में एक-एक संघाराम स्थापित किए गए। जिस संघाराम की चर्चा मैं कर रहा था, वह बंधक बेटे के ग्रीष्मकालीन निवास के लिए स्थापित किया गया था। इसलिए प्रत्येक मकान की दीवारों पर बंधक बेटे की तस्वीरें लगाई गई थीं। उसके रंगरूप और वस्त्र-परिधान चीनी थे। बाद में बंधक बेटे को स्वदेश लौटने का अवसर मिला, परन्तु पुराने निवास की याद उसे सताती रहती थी। पहाड़ों एवं नदियों की बाधाओं के उपरान्त भी वह दान भेजता रहा। इसलिए बौद्ध भिक्षु वर्षावास के आरम्भ और समाप्ति के दिन प्रार्थना सभा आयोजित करते थे और बंधक बेटे के लिए आशीर्वाद भिजवाते थे। यह क्रम आज तक जारी है। संघाराम में भवन के पूर्वी द्वार के दक्षिण में महादेव की मूर्ति के बायें पैर के नीचे गोलक में जो रत्न सुरक्षित थे, उन्हें बंधक बेटे ने ही गाड़ा था। इसके ऊपर खड़े स्मारक में लिखा था : "जब यह संघाराम जीर्ण-शीर्ण हो जाए तो इसके जीर्णोद्धार के लिए इन्हें निकालिएगा।" हाल में एक दूरस्थ सीमावर्ती राज्य का राजा था। वह बहुत लोभी और क्रूर था। जब उसने यह सुना कि इस संघाराम में बड़ी संख्या में रत्न गड़े थे तो उसने बौद्ध

भिक्षुत्रों को संघाराम से निकाल बाहर करवाया। जब उसने रत्न निकालना प्रारम्भ किया तो महादेव के मुकुट पर बने तोते का पंख स्वयं फड़फड़ाने और चीखने लग गया जिससे धरती भी कांप उठी। मारे घबड़ाहट के राजा और उसके आदमी पीछे हट गए और बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। अनेक समय बीतने के बाद वे जमीन पर से उठे और क्षमा याचना कर भाग खड़े हुए।

बंधक संघाराम के उत्तर के पर्वतों पर कई गुफाएं स्थित थीं, जहां बंधक बेटा समाधि लगाता था। इन गुफाओं में बड़ी संख्या में तरह-तरह के रत्न और जवाहरात सुरक्षित थे। इनके पास एक स्मारक था जिसकी रक्षा एक यक्ष किया करता था। यदि कोई इन रत्नों को निकालने की चेष्टा करता तो यक्ष नाना प्रकार के रूप बदलकर सिंह, नाग, अन्य हिंस्र पशु अथवा विषाक्त कीड़ों का क्रुद्ध रूप धारण कर लेता था। अन्त में किसी को इन रत्नों को चुराने का साहस नहीं रहा।

गुफाओं के पश्चिम में दो-तीन ली की दूरी पर स्थित बड़े पर्वत पर अवलोकितेश्वर की मूर्ति थी। यदि कोई यात्री उनके असली रूप के दर्शन करने की सदिच्छा रखता, तो उसे आशीर्वाद देने अवलोकितेश्वर मूर्ति से प्रगट हो कर उतर आते थे।

दो. राहुल संघाराम

राजधानी के दक्षिण-पूर्व में कोई तीस ली की दूरी पर राहुल संघाराम स्थित था। इसके पास एक स्तूप था, जिसकी ऊंचाई एक सौ छि से अधिक थी। यह स्तूप उपवास के दिनों में रह-रह कर चमकता रहता था। स्तूप के कटोरे जैसे भाग के पत्थरों की दरारों से काला सुगंधित तेल निकलता था। रात के सन्नाटे में स्तूप से संगीत की आवाज रह-रह कर सुनाई पड़ती थी। बूढ़ों ने कहा था कि यह स्तूप इस राज्य के तत्कालीन मंत्री राहुल ने निर्मित करवाया था। स्तूप का निर्माण पूरा होने के बाद इस मंत्री ने रात को एक स्वप्न देखा जिसमें किसी ने उससे कहा : "तुम्हारे स्तूप में बुद्ध का शरीरावशेष नहीं है। कल सुबह कोई शरीरावशेष राजा को अर्पित करने आएगा। तब तुम्हें दान में उसे तुमको देने का अनुरोध करना चाहिए।" मंत्री ने सुबह राजभवन में आ कर राजा से याचना करते हुए कहा : "महामहिम, आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कर लें।" राजा ने कहा : "तुम्हारी क्या प्रार्थना है ?" मंत्री ने उत्तर दिया : "आज जो भी आपको उपहार प्रदान करने आएं, उनमें से आप कृपया पहला उपहार मुझे दे दें।" "ठीक है, मैं दे दूंगा।" राहुल राजमहल के द्वार पर खड़ा राह देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने एक व्यक्ति को हाथ में शरीरावशेष-कलश लिए आते देखा। मंत्री ने पूछा : "तुम्हें क्या उपहार प्रदान करना है।"

उस व्यक्ति ने जवाब में कहा : "बुद्ध का शरीरावशेष।"

"मुझे शरीरावशेष की देखभाल करने दीजिए। सर्वप्रथम आपको राजा को सूचित करना होगा।"

इस भय से कि राजा कहीं इस मूल्यवान शरीरावशेष को देखकर अपने वचन पर पश्चाताप न करे, मंत्री झटपट संघाराम की ओर दौड़ा-दौड़ा आया और स्तूप पर जा चढ़ा। उसकी श्रद्धा से प्रभावित होकर स्तूप का प्रस्तर पात्र जैसा भाग स्वयं खुल गया। मंत्री शरीरावशेष को प्रतिष्ठित करने के बाद झटपट वहां से हट गया; उसका आंचल बन्द हो रही दरारों के बीच दब गया। राजा ने उसे पकड़ने के लिए एक आदमी भेजा। जब राजा का आदमी वहां पहुंचा तो स्तूप की दरारें पूरी तरह बन्द हो गई थीं। इसी कारण से दरारों के बीच से काला सुगंधित तेल अभी भी बाहर निकलता रहता था।

तीन. श्वेतवतालय तथा अरुणाचल

राजधानी के दक्षिण में कोई चालीस ली की दूरी पर श्वेतवतालय नगर था। भीषण भूकम्प आने पर पहाड़ और चट्टानें टूट जाती थीं, किन्तु उसका इस नगर और आसपास के क्षेत्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

श्वेतवतालय नगर के दक्षिण में कोई तीसेक ली की दूरी पर अरुणाचल स्थित था जिसकी चट्टानें सीधी और खतरनाक थीं और घाटियां गहरी और सुनसान थीं। इस पर्वत की चोटी प्रति वर्ष सैकड़ों छि बढ़ जाती थी। जब चोटी बढ़ते-बढ़ते जागुड राज्य के शुनशिर के बराबर हो जाती थी तो वह टूटकर ढह पड़ती थी। स्थानीय निवासियों का कथन था कि प्रारम्भ में जब शुनदेव दूर से यहां आया और उसने यहां रहना चाहा तो पहाड़ी देव बहुत घबरा गया और पहाड़ को हिलाने लगा। शुनदेव ने उससे कहा: "क्या तुम मुझे यहां रहने न देना चाहने के कारण पहाड़ को हिला रहे हो? वास्तव में यदि तुम थोड़ा आतिथ्य-सत्कार करते तो तुम्हें अनगिनत धन-दौलत मिलती। अब मैं जागुड राज्य के शुनशिर के लिए प्रस्थान कर रहा हूं। प्रति वर्ष जब मैं राजा और मंत्रियों की बलि और दान ग्रहण करता हूं तो तुम दूर खड़े उसे देख सकोगे।" यही कारण था कि अरुणाचल बढ़ते-बढ़ते एक निश्चित ऊंचाई पर पहुंचने के बाद गिर कर ढह जाता था।

चार. हिमगिरि का नाग कुंड तथा उसकी दंतकथा

राजधानी के उत्तर-पश्चिम में कोई दो सौ ली की दूरी पर एक हिम पर्वत था। पर्वत की चोटी पर एक कुंड था। लोग इस कुंड से वर्षा होने अथवा धूप निकलने की प्रार्थना

करते थे और लोगों की मनोकामना अवश्य पूरी हो जाती थी। बूढ़ों का कहना था कि इस कुंड का नागराज गंधार राज्य के एक अर्हंत को बलि चढ़ाया करता था। मध्याह्न-भोजन के समय यह अर्हंत अपनी दिव्य शक्ति से आसन लगा आकाश में उड़ कर नाग के यहां जाता था। अर्हंत का सेवक श्रामणेर आसन का किनारा पकड़कर आसन के बीच छिप जाता था। अर्हंत समय पर रवाना होता था। नागराज महल पहुंचने पर वह श्रामणेर को वहां उपस्थित पाता था। इसलिए नागराज ने भी उसे राजमहल में खाना खाने को निमंत्रित किया। नागराज अर्हंत को अमृत और श्रामणेर को सामान्य भोजन खिलाता था। एक बार खाना खाने के पश्चात जब अर्हंत नाग को धर्मोपदेश दे रहा था और श्रामणेर अन्य दिनों की भांति अपने गुरु के भोजनपात्र धो रहा था, उसने पात्र पर एक दाना चिपका देखा। उसकी सुगंधि को सूंघ कर श्रामणेर के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके दिल में एक कुविचार आया। वह अपने गुरु और नागराज दोनों से रुष्ट था। उसकी इच्छा थी कि दैवी शक्तियां प्रकट हो कर नागराज का प्राण ले लें और वह स्वयं नागराज बन जाए। जब श्रामणेर शपथ ले रहा था तो नागराज के सिर में दर्द होने लगा। अर्हंत उपदेश देता रहा और नागराज प्रायश्चित और आत्मभर्त्सना करता रहा, जबकि श्रामणेर का क्रोध उबल रहा था। उसने न तो अर्हंत के उपदेश को माना और न ही नागराज के प्रायश्चित को स्वीकार किया। श्रामणेर ने संघाराम में लौट कर आन्तरिक शपथ ली। दिव्य शक्तियों से उसी रात श्रामणेर मरकर महानागराज बन गया।

वह जोश में आकर कुंड में डूब गया और उसने नागराज की हत्या कर महल पर अधिकार कर लिया। साथ ही उसने नागराज के सभी आदमियों को अपने अधीन कर लिया और उन पर अपने आदेश चलाने लगा। पहले उसने अर्हंत से भी बदला लेने की शपथ ली थी, अतएव वह बहुधा आंधी-तूफान बरसा कर वृक्षों को तुड़वाता था। यहां तक कि उसने संघाराम को भी नष्ट करना चाहा था। राजा कनिष्क ने आश्चर्यचकित हो कर इस विषय में पूछा। अर्हंत ने राजा कनिष्क को इसका पूरा विवरण दिया। राजा कनिष्क ने नाग के लिए हिम पर्वत की तलहटी में एक संघाराम और एक स्तूप बनवाया। स्तूप की ऊंचाई कोई एक सौ छि थी। रोष में भरा होने के कारण नाग प्रायः झंझावात द्वारा उन्हें भी नष्ट करने की कोशिश करता रहता था। राजा कनिष्क धर्मोपदेशों का प्रचार करने और कठिन अवसरों पर लोगों की सहायता करने का आकांक्षी था। परन्तु नाग का क्रोध नाना प्रकार की विपत्तियां ढाता रहता था जिससे संघाराम और स्तूप छः बार नष्ट हो गए। तब कहीं जाकर सातवीं बार इनका निर्माण पूरा हुआ। संघाराम और स्तूप के निर्माण में असफलता होते देख राजा कनिष्क को बड़ी लज्जा आई और उसने कुंड को पाटना और नाग के निवास को नष्ट करना चाहा। राजा कनिष्क बड़े दल-बल सहित हिम पर्वत की तलहटी में आ पहुंचा। नागराज बहुत घबरा गया और एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में उसने

राजा कनिष्क के हाथी को रोककर कहा : "महाराज, ग्राप परोपकारी हैं, ग्रतएव ग्राप ग्रपराजित रहे हैं ग्रौर राजा बन गए हैं। ग्रापकी ग्राज्ञा न मानने का किसी में भी साहस नहीं है। तो ग्राज ग्राप एक नाग से क्यों लड़ रहे हैं ? नाग एक पशु है ग्रौर नीच जाति का है। पर उसकी शक्ति बहुत प्रबल है। बल से उसे परास्त नहीं किया जा सकता। वह बादलों पर सवार हो कर ग्राकाश में उड़ान भर सकता है ग्रौर पानी पर सैर-सपाटा कर सकता है। यह सब मनुष्य नहीं कर पाते। महाराज, ग्रापको इससे क्रोध क्यों ग्राता है ? ग्राज ग्राप देश भर के सैनिकों को लेकर नाग के साथ शक्तियों की परीक्षा करने पधारे हैं। यदि ग्राप जीत भी गए तो भी ग्राप में दूर देशों को ग्रपने ग्रधीन करने का प्रभाव नहीं रह जाएगा। ग्रौर यदि ग्राप हार गए तो ग्रापको शत्रु पर विजय प्राप्त न करने की लज्जा का सामना करना पड़ेगा। ग्रापके हित का विचार रख मैं सोचता हूं कि ग्रापको ग्रपनी सेना वापस बुला लेनी चाहिए।"

राजा कनिष्क ने उसकी बात नहीं मानी। नागराज तुरन्त कुंड में लौट ग्राया। क्षण भर में बिजली गरजने लगी। ग्रांधी ने पेड़ों को जड़ से उखाड़ दिया। कंकड़-पत्थरों की बौछारें होने लगीं। चारों ग्रोर काले बादल छा गए ग्रौर ग्रंधकार हो गया। राजा के सैनिक बहुत घबरा गए। राजा ने त्रिरत्न से सैनिकों की रक्षा की प्रार्थना करने का ग्रादेश दिया ग्रौर कहा : "मैं सदैव परोपकार करता ग्राया हूं, इसलिए मैं एक राज्य का राजा बन सका हूं। शक्तिशाली शत्रुग्रों पर मेरा प्रभाव जम गया है ग्रौर दक्षिण जम्बूद्वीप मेरे शासन में ग्रा गया है। ग्राज मैं इस पशु द्वारा वशीभूत किया जा रहा हूं। सचमुच मेरा सौभाग्य ग्रत्यन्त तुच्छ है। मेरी ग्राशा है कि दैवी शक्तियां तुरन्त मेरे सम्मुख प्रकट होंगी।" इतने में राजा कनिष्क के दोनों कंधों पर से दो बड़े-बड़े धूमायित ग्रग्निपिंड उठने लगे। यह देख कर नाग चट से हट गया। ग्रांधी शान्त हो गई ग्रौर बादल छंट गए। राजा कनिष्क ने सैनिकों को कुंड को पाटने के लिए उसमें एक-एक पत्थर डालने को कहा। नागराज फिर से ब्राह्मण के रूप में ग्राकर राजा से प्रार्थना करने लगा, "मैं इस कुंड का नागराज हूं। ग्रब ग्रापकी शक्ति से भयभीत हो कर मैं ग्रापके वश में ग्रा गया हूं ग्रौर ग्रापकी दया पाने की ग्राशा करता हूं। मुझे क्षमा कीजिए। महाराज, ग्राप लोगों को शिक्षा देने ग्रौर उनकी रक्षा करने को ग्रपना कर्तव्य मानते हैं। तो ग्राप केवल मुझे ही क्यों पीड़ित कर रहे हैं ? महाराज, यदि ग्रापने मेरी हत्या कर दी तो ग्राप भी मेरे साथ ही कुमार्ग पर चले जाएंगे। महामहिम, ग्राप दूसरे का प्राण हरने का ग्रपराध कर डालेंगे। मेरे मन में द्वेष ग्रौर प्रतिशोध भरा है, मुझे ग्रपने कर्म भोगने पड़ेंगे। कौन भला है ग्रौर कौन बुरा है, यह बहुत ही स्पष्ट है।" राजा कनिष्क ग्रौर नागराज ने लोगों के सम्मुख गंभीरतापूर्वक संधि सम्पन्न की कि यदि नाग बाद में फिर गड़बड़ी पैदा करने ग्राया तो उसे कदापि क्षमा नहीं किया जाएगा। नाग ने कहा : "पूर्वजन्म के पापों से मैं इस जन्म में नाग बन गया। नाग की प्रकृति हिंस्र है ग्रौर

वह अपने को संयत नहीं कर पाता। जब एक बार उसके मस्तिष्क में कुविचार उत्पन्न हो गए तो वह अपने आपे से बाहर हो जाता है। महाराज, यदि आप फिर से संघाराम का निर्माण करेंगे तो मुझे उसे नष्ट करने का कदापि साहस नहीं होगा। मेरा निवेदन है कि आप पर्वत की चोटी पर पहरा देने के लिए एक आदमी भिजवा दें। यदि वह काला बादल उठते देखे तो तुरन्त घंटा बजाने लगे। उसकी आवाज सुन कर मैं सतर्क रह सकूंगा और अपने दुष्ट विचारों को दूर कर दूंगा।" राजा कनिष्क ने फिर दूसरे संघाराम का निर्माण करवाया और एक स्तूप बनवाया। उसने बादलों की निगरानी करने के लिए आदमी नियुक्त किया। यह स्थिति आज तक बनी रही है।

स्थानीय लोगों का कहना था कि इस स्तूप में तथागत का शरीरावशेष रखा हुआ है जिसकी मात्रा कोई एक शङ थी। शरीरावशेष के विषय में अनेक विचित्र दन्तकथाएं थीं। प्रत्येक का वर्णन करना कठिन है। कभी-कभी स्तूप से अचानक काला धुआं उठने लगता था और फिर थोड़ी देर बाद आग की प्रचंड लपटें भड़कने लगती थीं। तब लोग समझते थे कि स्तूप आग में जलकर राख हो गया होगा। किन्तु लोग सिर उठाकर देर तक देखने पर पाते थे कि आग बुझ गई और धुआं गायब हो गया। फिर वे जेड सा सफेद शरीरावशेष देखते थे जो स्तम्भ के चारों ओर चक्कर लगाते हुए ऊपर आकाश में बादलों तक जा पहुंचता था तथा फिर धीरे-धीरे नीचे आ जाता था।

पांच. पुराना राजा-रानी-संघाराम

राजधानी के उत्तर-पश्चिम में स्थित बड़ी नदी के दक्षिणी तट पर पुराने राजा संघाराम में शाक्य बोधिसत्व का एक दूध का दांत सुरक्षित था, जिसकी लम्बाई कोई एक छुन थी। इसी संघाराम के दक्षिण-पूर्व में एक और संघाराम था, जिसका नाम भी पुराना राजा संघाराम था। संघाराम में तथागत की खोपड़ी का एक टुकड़ा सुरक्षित था। चौड़ाई कोई एक छुन थी, रंग दूधिया था। बालों की जड़ें भी स्पष्ट दिखाई देती थीं। तथागत के बाल भी थे। उनका रंग गहरा काला-नीला था। ये घुंघराले बाल तान लेने पर प्रायः एक छि लम्बे थे। सिकुड़ कर वे केवल आधा छुन मात्र रह जाते थे। छः उपवासों के अवसरों पर राजा और मंत्री फूलों की पंखुड़ियां छिटका कर इन तीनों की पूजा करते थे। खोपड़ी संघाराम के दक्षिण-पश्चिम में पुरानी रानी संघाराम स्थित था। उसमें एक स्वर्ण कांस्य स्तूप था, जिसकी ऊंचाई एक सौ से अधिक छि थी। स्थानीय निवासियों का कहना था कि इस स्तूप में बुद्ध का एक शङ से अधिक शरीरावशेष सुरक्षित था। प्रत्येक मास के 15वें दिन की रात को उसका प्रकाश और चांदनी सुबह तक घुल-मिल कर चमकती रहती थी। बाद में वह प्रकाश धीरे-धीरे सिमट कर स्तूप में लुप्त हो जाता था।

छः. पीलुसार पर्वत श्रौर नाग स्रोत

राजधानी के दक्षिण-पश्चिम में पीलुसार पर्वत (थाङ भाषा में श्याङ चेन) स्थित था। इसके संरक्षक पहाड़ी देव का रंगरूप एक हाथी जैसा था। इसीलिए इसका नाम पीलुसार पड़ा। जब तथागत जीवित थे तो पीलुसार तथा श्रन्य 1200 श्रर्हतों को श्रामंत्रित कर यहां बुलाया गया था। पर्वत की चोटी पर एक बड़ी चट्टान थी, जिस पर तथागत ने बैठकर पीलुसार का पूजा-प्रसाद स्वीकार किया था। बाद में राजा श्रशोक ने इसी चट्टान पर एक स्तूप खड़ा करवा दिया। स्तूप की ऊंचाई कोई एक सौ छि थी। श्राज लोग उसे पीलुसार स्तूप कह कर पुकारते थे। लोगों का यह भी कहना था कि इस स्तूप में तथागत का कोई एक शङ शरीरावशेष सुरक्षित था।

पीलुसार स्तूप के उत्तर में चट्टानों के नीचे एक नाग स्रोत था, जहां तथागत श्रौर श्रर्हत प्रसाद लेने के पश्चात मुंह धोते थे श्रौर दतकाष्ठ चबाते थे। एक दंतकाष्ठ ने जड़ जमा ली थी। श्राज उसने पनप कर समृद्ध घने उपवन का रूप धारण कर लिया था। बाद में लोगों ने यहां एक संघाराम का निर्माण किया, जिसका नाम पिण्डक था।

यहां से छै सौ ली दूर पूर्व में पर्वतमाला श्रौर घाटियां फैली थीं। चट्टानें बड़ी व सकटजनक थीं। स्याहकोह को पार कर मैं उत्तरापथ में प्रविष्ट हुश्रा श्रौर लपाक राज्य पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

खण्ड दो

भारत का सामान्य परिचय

एक. भारत का नाम

यदि विस्तृत रूप से थ्येनचू[1] के नाम का अध्ययन किया जाय, तो अनेक नाम पाए जाते हैं और इसी से गड़बड़ी उत्पन्न होती है। पुराने युग में इसका नाम शनदू या श्येनतउ[2] था। सही उच्चारण के अनुसार इसका नाम इन्दु होना चाहिए। इन्दु की जनता ने अपने-अपने राज्यों के अलग-अलग नाम रखे हैं। पर दूरस्थ विदेशियों और परदेशियों ने इन राज्यों का एक सामान्य नाम रखा एवं अपने इस प्रिय भूभाग को इन्दु कहा। इन्दु का थाङ भाषा में अर्थ है चन्द्रमा। चन्द्रमा के अनेक नाम हैं और इन्दु उनमें से एक है। सभी प्राणियों का जीवन-मरण होता है और भवचक्र चलता ही रहता है उसी प्रकार, जिस प्रकार एक लम्बी अप्रकाशित रात्रि होती है और प्रात:काल के अधिपति सूर्य का अभाव हो जाता है। सूर्यास्त होने पर रात को चन्द्रमा उग आता है, तारागण अवश्य जगमगाते रहते हैं, किन्तु उनका प्रकाश धवल ज्योत्स्ना की बराबरी कैसे कर सकता है? इसी स्थिति को ध्यान में रख कर भारत को इन्दु की सज्ञा दी गई है। वास्तव में इस देश में महात्माओं का लगातार जन्म होता रहा है और उनके उपदेशों का पीढ़ियों से प्रचार होता रहा है, जिससे प्राणियों को शिक्षा मिलती रही है और सभी वस्तुओं को सुव्यवस्थित किया जाता रहा है, जैसे चन्द्रमा की रश्मियां संसार पर पड़ती हैं। यही कारण है कि भारतीयों ने अपने देश का नाम इन्दु रखा है। भारत में अनेक जातियां हैं। यहां वर्ण-व्यवस्था है और ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उन्हीं के कारण भोगौलिक भेदों के होने पर भी इस देश का एक अन्य सुन्दर नाम पड़ा है—ब्राह्मणदेश।

---

1. प्राचीनकालीन चीन में भारत का नाम।
2. ये दोनों नाम सिधु के अलग-अलग उच्चारण के अनुसार अनूदित हुए थे।

दो. सीमाएं

जहां तक भारत की सीमाओं का संबंध है, हम यहां उनकी चर्चा करते हैं। भारत की परिधि नब्बे हजार ली है। वह तीन ओर से सागर से घिरा हुआ है और एक ओर हिमगिरि है। उत्तरी भाग चौड़ा और दक्षिणी भाग संकीर्ण है। उसका आकार अर्धचन्द्र का-सा है। सारे देश में सत्तर से अधिक राज्य हैं। जलवायु विशेष उष्ण है और यहां आर्द्रता भी है। उत्तर में पर्वतश्रृंखलाएं फैली हुई हैं और पहाड़ियों में भूमि क्षारयुक्त है। पूर्व में नदियों की घाटियों की भूमि उर्वर है। दक्षिण में वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। पश्चिम में भूमि अनुपजाऊ है। यह एक संक्षिप्त विवरण मात्र है।

तीन. माप

दूरी का माप है योजन। योजन का अर्थ उस दूरी से है जो प्राचीन काल में राजाओं की सेनाएं एक दिन में पूरा कर लेती थीं। चीन में पहले एक योजन चालीस ली का बताया गया था। भारत में एक योजन प्राय: तीस ली का होता है, जबकि बौद्ध सूत्रों के अनुसार वह केवल सोलह ली का है। इस दूरी को छोटे-छोटे भागों में बांटने पर एक योजन आठ कोस (क्रोश) का होता है। गौ के रंभाने का शब्द जितनी दूरी तक पहुंच सकता है, उतनी दूरी एक क्रोश की है। एक क्रोश पांच सौ धनुस का है और एक धनुस चार हस्त का। एक हस्त चौबीस उंगलियों का है, और एक अंगुल का प्रत्येक जोड़ गेहूं के सात दानों का है। उसके बाद जूं, लीख, कण, गौ के बाल, बकरे के बाल, शशक के बाल और तांबे के पानी को क्रमश: सात-सात भागों में विभाजित कर अंत में रज मिलता है। रज का सातवां भाग परमाणु है। परमाणु के और टुकड़े नहीं हो सकते। अन्यथा कुछ भी शेष नहीं रहेगा। इसलिए यह परमाणु कहलाता है।

चार. पंचांग

भारत में ग्रहों की स्थिति एवं सूर्य-चन्द्रमा के उदय-अस्त के संदर्भ की परिभाषा चीन से अवश्य भिन्न है, किन्तु उभय में कोई अंतर नहीं। नक्षत्रों के अनुसार मासों के नाम रखे गए हैं। सबसे अल्प अवकाश क्षण का है। एक सौ बीस क्षण एक तत्क्षण के समान है। साठ तत्क्षण एक लव के समान, तीस लव एक मुहूर्त के और पांच मुहूर्त एक काल के समान होते हैं। छ: काल एक दिन तथा एक रात का समय होता है। गृहस्थ परंपरा के अनुसार

एक दिन तथा एक रात का समय आठ प्रहर का होता है। चन्द्रमा की कला के बढ़ने से ले कर पूर्णिमा तक का समय शुक्ल पक्ष कहलाता है और चन्द्रमा की कला के घटने से ले कर अमावस्या तक का समय कृष्ण पक्ष कहलाता है। कृष्ण पक्ष में चौदह या पन्द्रह दिन होते हैं, क्योंकि मास घटता-बढ़ता रहता है। दो पक्षों का एक मास होता है। मास का आरंभ कृष्ण पक्ष से होता है और समाप्ति शुक्ल पक्ष से। छ: मासों का एक अयन होता है। जिस काल में सूर्य की गति उत्तर की ओर रहती है, वह काल उत्तरायण कहलाता है। जिस काल में सूर्य की गति दक्षिण की ओर रहती है, वह काल दक्षिणायण कहलाता है। इन दो अयनों का संयुक्त समय एक वर्ष होता है। एक वर्ष में छ: ऋतुएं होती हैं। प्रथम मास की सोलहवीं तिथि से तीसरे मास की पन्द्रहवीं तिथि तक वसंत रहता है। तीसरे मास की सोलहवीं तिथि से पांचवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक ग्रीष्म और पांचवें मास की सोलहवीं तिथि से सातवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक वर्षा। सातवें मास की सोलहवीं तिथि से नवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक शरद तथा नवें मास की सोलहवीं तिथि से ग्यारहवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक हेमंत और ग्यारहवें मास की सोलहवीं तिथि से प्रथम मास की पन्द्रहवीं तिथि तक शिशिर रहता है। तथागत के सद्धर्म के अनुसार वर्ष में तीन ऋतुएं हैं, अर्थात प्रथम मास की सोलहवीं तिथि से पांचवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक ग्रीष्म, पांचवें मास की सोलहवीं तिथि से नवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक वर्षा तथा नवें मास की सोलहवीं तिथि से प्रथम मास की पन्द्रहवीं तिथि तक हेमंत रहता है। अथवा फिर वसन्त, ग्रीष्म, शरद और हेमंत यही चार ऋतुएं भी मानी जा सकती हैं। वसन्त में तीन मास हैं और वे हैं चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ। यह ऋतु चीनी पंचांग के प्रथम मास की सोलहवीं तिथि से चौथे मास की पन्द्रहवीं तिथि तक होती है। ग्रीष्म में तीन मास हैं और वे हैं आषाढ़, श्रावण एवं भाद्रपद। यह ऋतु चीनी पंचांग के अनुसार चौथे मास की सोलहवीं तिथि से सातवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक होती है। शरद में तीन मासों के नाम हैं आश्विन, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष। यह ऋतु चीनी पंचांग के अनुसार सोलहवें मास की सोलहवीं तिथि से दसवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक होती है। हेमंत में पौष, माघ एवं फाल्गुन ये तीन मास हैं। यह ऋतु चीनी पंचांग के अनुसार दसवें मास की सोलहवीं तिथि से प्रथम मास की पन्द्रहवीं तिथि तक है। भारत के भिक्षु बुद्ध के उपदेशों के अनुसार पहले तीन पूर्व मासों या बाद के उत्तर तीन मासों में वर्षावास करते हैं। पहले के तीन मासों का समय चीनी पंचांग के अनुसार पांचवें मास की सोलहवीं तिथि से आठवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक का है और बाद के तीन मासों का समय चीनी पंचांग के अनुसार छठे मास की सोलहवीं तिथि से नवें मास की पन्द्रहवीं तिथि तक का है। सूत्रों एवं विनय के पूर्ववर्ती अनुवादकों ने वर्षावास को 'ग्रीष्म-आवास' या 'हेमन्तांत-आवास' कहा था। अनुवाद में यह अशुद्धि होने का कारण यह है कि वे सभी सीमांत क्षेत्रों के निवासी थे और उनकी विशिष्ट प्रथाएं थीं। वे मध्यदेश की प्रामा-

णिक भाषा नहीं जानते थे या फिर स्थानीय बोलियां नहीं समझ सकते थे। और फिर तथागत के गर्भ में आने, जन्म, प्रव्रज्या, बुद्धत्व-प्राप्ति एवं परिनिर्वाण की तिथियों पर भी मतभेद है। इसका स्पष्टीकरण मैं आगे के अध्यायों में करूगा।

पांच. नगर एवं निवास

नगरों के चौकोर प्राचीर चौड़े और ऊंचे होते थे। सड़कें और गलियां बल खाती हुई दिखाई देती थीं। सड़कों पर ही मंडियां थीं और दूकानें सड़कों के दोनों ओर खड़ी रहती थीं। कसाइयों, मछुओं, वेश्याओं, नटों, पाचकों एवं भंगियों के टोलों पर विशेष चिह्न लगे रहते थे। उन्हें नगरों के बाहर बसना पड़ता है और नगरों में आते-जाते समय उन्हें दूसरों की दृष्टि बचाकर सड़कों से हट कर चलना पड़ता है। अब भवनों और प्राचीर के निर्माण की बात करता हूं। चूंकि भूमि नीची और आर्द्र थी, इसलिए प्राचीर बहुधा पक्की ईंटों से बने थे तथा भवनों की भीतें कभी-कभी लकड़ी और बांस से बनी हुई भी देखी जा सकती थीं। भवनों, अटारियों और अट्टालिकाओं के पाटन लकड़ी से बनाए जाते थे। उन पर चूना पोतकर कच्ची ईंटें लगाई जाती थीं। ऐसे निर्माण बहुत ही ऊंचे थे और उनकी वास्तु-शैली चीन से मिलती-जुलती थी। घर घास-फूस, पक्की ईंटों या लकड़ी की पट्टियों से छाए जाते थे। उनकी भीत पर चूना पोत दिया जाता था और फर्श पवित्र रखने के लिए लीपा जाता था एवं उस पर फूल बिखेर दिए जाते थे। यह चीन से भिन्न है। संघारामों की संरचना नितान्त अनोखी होती थी। चार कोनों पर अटारियां रहती थीं। भवन तीन तल्लों के थे। छज्जों एवं धरनों को काट-काट कर विलक्षण रूप दिए गए थे और द्वारों, खिड़कियों एवं भीतों पर रंगीन बेल-बूटे बनाए गए थे। गृहस्थों के भवनों के भीतर तड़क-भड़क रहती थीं, किन्तु बाहर से वे सरल से ही दीखते थे। शयनकक्षों और बैठकों की लम्बाई-चौड़ाई अलग-अलग होती थी। अटारियों एवं भवनों की वास्तु-शैली एक-जैसी नहीं थी। द्वार पूर्व की ओर खुले होते थे। राजा-महाराजाओं की गद्दियां भी पूर्वाभिमुख रहती थीं। बैठने के लिए चारपाई लगाई जाती थी। राजा-महाराजाओं, अधिकारियों, सुसंस्कृत व्यक्तियों, साधारण गृहस्थों और अभिजातों के घरों में चारपाइयों के रूप में कोई अन्तर न था, पर उनकी सजावट भिन्न-भिन्न होती थी। राजा-महाराजाओं के आसन तो विशेषकर ऊचे एवं चौड़े हुआ करते थे। उन पर मोती जड़े रहते थे। वे सिंहासन कहलाते थे। उन पर महीन कपड़ा बिछा रहता था और सिंहासन के सामने एक रत्नों से जड़ित पाद पीठ रखा जाता था। साधारण अधिकारी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने आसनों को सजाते थे। उनके आसनों पर भी रत्न जड़े होते थे।

छः. वस्त्र

ऊपर ग्रौर नीचे तथा भीतर ग्रौर बाहर के सभी वस्त्र सिले हुए नहीं होते थे। उजले रंग को विशेष महत्व दिया जाता था ग्रौर मटमैले रंग की ग्रवहेलना की जाती थी। पुरुष ग्रपनी कमर में कांख तक कपड़ा बांध लेते थे, कपड़े का सिरा बायें कंधे पर लटकाते थे ग्रौर दाएं कंधे को ग्रनावृत छोड़ देते थे। स्त्रियां ग्रंगे पहनकर ग्रपने दोनों कंधों को ग्राच्छादित करती थीं ग्रौर ग्रंगों के पल्ले नीचे लटके रहते थे। सिर पर जटा होती थी ग्रौर शेष बाल नीचे लटके रहते थे। कुछ पुरुष दाढ़ी मूंड़ देते थे ग्रौर ग्रन्य कुछ ग्रनोखी रीतियां भी थीं। सिर पर फूलों के हार ग्रौर शरीर पर मालाएं पहनी जाती थीं। वे कौषेय ग्रौर महीन कपड़े से बने वस्त्र पहनते थे। कथित कौषेय वन्य रेशम ही था। क्षौम एक प्रकार का सन का कपड़ा था। कंबल ऊन से बुने होते थे। हलाली[1] वन्य पशुग्रों के बालों से बुना कपड़ा था। ये बाल महीन ग्रौर नरम थे ग्रौर काते एवं बुने जा सकते थे। इसलिए उन्हें बहुमूल्य समझ कर पहनने के काम में लाया जाता था। उत्तरापथ में ठण्ड रहती थी, ग्रतएव वस्त्र चुस्त होते थे ग्रौर वे चीन की सीमा पर बसे घुमन्तू जातियों के लोगों के वस्त्रों से मिलते-जुलते थे। बौद्ध धर्म को न मानने वाले तीर्थिकों के वस्त्र विविध एवं विचित्र थे। कोई मयूर पंख पहने रहता था तो कोई कपालों की माला। कोई नंगा रहता था, तो कोई घास-फूस तथा पट्ट से ग्रपना तन ढांपता था। किसी के बाल व दाढ़ी उखड़े रहते थे, तो किसी के सिर पर बाल गूंथकर जटा बनाई हुई थी ग्रौर शेष बाल ग्रस्तव्यस्त पड़े थे। उनके पहनावे निश्चित ग्राकार-प्रकार के नहीं थे ग्रौर उनका रंग भी विविध था। श्रमणों के पहनावे केवल त्रिचीवर, संघाटी एवं निवसन थे। भिन्न-भिन्न शाखाग्रों के त्रिचीवर ग्रलग-ग्रलग शैली के थे। चीवरों की गोटें चौड़ी या संकीर्ण थीं ग्रौर उनकी परतें छोटी-बड़ी होती थीं। संघाटी बायें कंधे पर लिपट दोनों कांखों को ढांप देती थी। वह कमर तक लम्बी थी ग्रौर बायीं ग्रोर खुलती थी एवं दायीं ग्रोर बन्द होती थी। निवसन में पेटी नहीं थी। पहनते समय उसकी परतें लगाई जाती थीं फिर कमर में रेशमी डोरी बांधी जाती थी। परतों का रूपाकार विभिन्न शाखाग्रों में ग्रलग था ग्रौर उनका रंग लाल ग्रथवा पीला होता था। क्षत्रिय एवं ब्राह्मण सदाचारी, निराडंबर एवं जीवन में सरल तथा मितव्ययी थे, जबकि राजा-महाराजाग्रों ग्रौर वरिष्ठ ग्रधिकारियों का पहनावा एवं ग्राभूषण उनसे बिलकुल भिन्न होता था। उनके सिर पर फूलों के हार ग्रौर शिरोमौलि रहते थे, तन पर वलय ग्रौर माला हुग्रा करते थे। कुछ बड़े-बड़े सेठ तो केवल वलय ही पहनते थे। ग्रधिकतर

1. यह शब्द चीनी उच्चारण के ग्रनुसार नागरी लिपि में लिखा गया है। इसका शुद्ध संस्कृत नाम ग्रभी ज्ञात नहीं हो पाया है।

लोगों के पैर नंगे रहते थे। बहुत कम लोग जूते पहनते थे। दांत लाल या काले रंग से रंगे जाते थे। बाल कटे रहते थे। कानों में छेद थे। नाक ऊंची और आंखें बड़ी-बड़ी थीं। यही है उनका रंग-रूप।

सात. खाद्य

वे सब अपनी विशुद्धता बनाए रखते थे और किसी भी विवशता से मुक्त थे। भोजन करने से पूर्व हाथ अवश्य धोते थे। जूठे भोजन फिर नहीं खाए जाते थे। भोजन-पात्र एक दूसरे को नहीं दिए जाते थे। मिट्टी और लकड़ी के बर्तन प्रयोग कर लिए जाने के पश्चात फेंक दिए जाते थे। सोने, चांदी, तांबे और लोहे के बर्तन मांज-मांजकर चमकाए जाते थे। भोजन के बाद वे टहनियों से दातुन करते थे। स्नान और दातुन से पूर्व वे एक दूसरे के निकट नहीं जाते थे। मल-मूत्र के विसर्जन के अनंतर वे हाथ अवश्य धोते थे। वे अपने तन पर चन्दन और केसर के सुंगधित लेप लगाते थे। जब राजा-महाराजा स्नान करने जाते, तब ढोल एवं तंतुवाद्य बजाए जाते थे। यज्ञ और पूजा से पूर्व लोग स्नान अवश्य करते थे और हाथ-मुंह धोते थे।

आठ. लिपि

उनकी लिपि का विस्तृत अध्ययन करने से ज्ञात हुआ है कि यह लिपि ब्रह्मा ने रची थी। उन्होंने सैंतालीस अक्षर बनाए थे। वस्तुओं के अनुरूप अक्षरों का विन्यास कर वस्तुओं और बातों की अभिव्यंजना की जाती थी। विकास के साथ-साथ नए-नए शब्द प्रकाश में आए एवं उनका व्यापक प्रयोग किया जाने लगा। स्थानों और मनुष्यों में अन्तर होने के कारण उनमें कुछ परिवर्तन भी आए। कुल मिलाकर कहा जाए, तो वे अपने मूल से हटे नहीं थे। पर मध्यदेश में लोगों की भाषा विशेषकर स्पष्ट एवं शुद्ध थी। अभिव्यंजना की शैली देवों के समान समन्वित एवं परिष्कृत थी। उच्चारण सुस्पष्ट था, जो दूसरों के लिए मानक था। पड़ोसी प्रदेशों और परदेशों में तो अशुद्धियों को दोहरा-दोहरा कर सामान्य मान लिया गया एवं शुद्ध शैली के बदले गंवारपन की ओर झुकाव उत्पन्न हो गया।

जहां तक अभिलेखन और विवरण के कार्यों का संबंध था, उनकी देखरेख के लिए अलग-अलग व्यक्ति नियुक्त होते थे। ऐतिहासिक और सरकारी अभिलेख के संग्रह नीलपिट कहलाते थे। उन में पुण्य-कर्म एवं दुष्कर्म दोनों लिपिबद्ध रहते थे तथा शुभाशुभ का विस्तृत उल्लेख होता था।

नौ. शिक्षा

बच्चों को प्रारंभिक ज्ञान सिखाने ग्रौर उन्हें प्रगति के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से उन्हें सर्वप्रथम सिद्धम पढ़ाए जाते थे। जब से बच्चे सात वर्ष के होते थे, तब से उन्हें क्रमशः पांच विद्याएं सिखाई जाने लगती थीं। ये पांच विद्याएं थीं : पहली, शब्द-विद्या, जो शब्दों का ग्रर्थ समझाती थी ग्रौर शब्दों का वर्ग-विन्यास करती थी। दूसरी, शिल्पकर्मस्थान-विद्या थी जिसमें शिल्प, कलाएं ग्रौर ज्योतिष शास्त्र समाविष्ट थे। तीसरी चिकित्सा-विद्या थी, जिसमें तंत्र-मंत्र, जड़ी-बूटियों ग्रौर खनिज ग्रौषधियों एवं सूची भेदन ग्रादि का ज्ञान था। चौथी हेतु-विद्या थी, जिसमें शास्त्रसम्मत एवं शास्त्रविरुद्ध विषय निश्चित किए जाते थे तथा सत्य ग्रौर ग्रसत्य में भेद किया जाता था। ग्रौर पांचवीं ग्रध्यात्म-विद्या थी, जो पांच यानों के कर्मफलों एवं सिद्धान्तों का ग्रध्ययन करती थी।

ब्राह्मणों को चार वेदों का ग्रध्ययन करना पड़ता था। प्रथम ग्रायुर्वेद, जिसमें ग्रायुर्वृद्धि ग्रौर स्वास्थ्य-रक्षा का ज्ञान था। दूसरा यजुर्वेद था, जिसमें यज्ञ की क्रियाग्रों का विवरण था। तीसरा सामवेद था, जिसमें रीति-नीति, शकुन-शास्त्र, युद्ध-शास्त्र एवं व्यूह-रचना समाविष्ट थे। ग्रौर चौथा ग्रथर्ववेद था, जिसमें विविध कलाग्रों का ज्ञान, झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र ग्रौर चिकित्सा-शास्त्र सम्मिलित थे।

गुरुग्रों को सूक्ष्म बातों का व्यापक ग्रध्ययन करने एवं गूढ़ार्थ पर गहन चिंतन करने की ग्रावश्यकता थी। वे शिष्यों को सामान्य सिद्धान्त सिखाते थे एवं सटीक भाषा में उन्हें प्रबुद्ध करते थे, उनकी सहायता एवं उनका दिग्दर्शन करते थे, जिससे ग्रसमर्थ शिष्य समर्थ हो जाते थे तथा मूर्ख शिष्यों को भी प्रगति करने की प्रेरणा मिल जाती थी। यदि शिष्य प्रतिभावान एवं मेधावी होते ग्रौर संसार से सन्यास लेना चाहते, तो वे ग्रपने ग्रापको ग्रपनी कोठरियों के भीतर तब तक बन्द कर लेते थे जब तक वे इसमें सफल न हो जाते।

तीस वर्ष की ग्रवस्था में चित्त शुद्ध होने ग्रौर शिक्षा पूरी होने पर जब शिष्य सरकारी ग्रधिकारी बन जाते थे, तो वे सर्वप्रथम ग्रपने गुरुग्रों के उपकार का बदला चुकाते थे। कुछ शिष्य ऐसे भी थे जो प्राचीन विद्याग्रों में पारंगत थे ग्रौर ग्रपने ज्ञान के परिष्कार में संलग्न रहते थे। वे एकांतवास कर ग्रपना ब्रह्मचर्य बनाए रखते थे, सांसारिक बातों से उदासीन ग्रौर मनुष्य लोक के काम-काज से उन्मुक्त रहते थे। ग्रपनी कीर्ति या ग्रपकीर्ति होने पर भी उनका चित्त शांत रहता था। इस प्रकार उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल जाती थी। राजा-महाराजाग्रों की कृपादृष्टि उन पर पड़ जाती थी, लेकिन वे उनकी सेवा करना ग्रस्वीकार कर देते थे। फिर भी राज्य ज्ञानी ग्रौर प्रतिभाशाली व्यक्तियों का समादर करता था ग्रौर प्रजा सद्गुण ग्रौर शुद्धहृदय व्यक्तियों को सिर ग्रांखों पर बिठाती थी। उनकी स्तुति ग्रौर प्रशंसा सार्वजनिक रूप से की जाती थी ग्रौर उनका भारी ग्रादर-सत्कार

किया जाता था। अतएव लोग ज्ञान सीखने के लिए संकल्पबद्ध रहते थे। थकान भूल कर वे विद्याओं और कलाओं के अध्ययन में लीन रहते थे। वे विद्वानों से मिलते और सदाचारियों के यहां शरण लेने जाते थे, भले ही उन्हें सैकड़ों ली लम्बी यात्रा क्यों न करनी पड़े। यद्यपि उनके घर बहुत संपन्न थे, तथापि वे प्रव्रज्या करने का संकल्प कर लेते थे और भिक्षा मांगकर खाते थे। उन्हें सत्य के ज्ञान पर गर्व होता था और दरिद्रता पर लज्जा नहीं आती थी। जो आलसी हो केवल विलास करना, बढ़िया भोजन खाना और भड़कीले वस्त्र पहनना जानते थे, वे निर्गुणी होते थे और फिर रीति-नीति के विरुद्ध भी थे। ऐसे व्यक्तियों का अपमान और तिरस्कार किया जाता था और उनकी अपकीर्ति होती थी।

दस. बौद्ध धर्म

तथागत के धर्म के परमसत्य के प्रति विभिन्न प्राणी अपनी तीक्ष्ण अथवा कुंद बुद्धि के अनुरूप बोध प्राप्त करते थे। अब शाक्यमुनि के जीवन-काल से बहुत ही लम्बा समय व्यतीत हो चुका है। उनके उपदेशों में से कुछ की शुचिता बनी रही है, तो अन्य कुछ की नष्ट हो गई है। अनुयायी अपनी-अपनी चित्तवृतियों से इन उपदेशों को समझते थे। अब विभिन्न संप्रदाय और शाखाएं अपने-अपने मतों पर दृढ़ हैं। उनके बीच वाद-विवाद उफनती लहरों की भांति उठते रहते हैं। मतभेद होने पर भी उनका लक्ष्य समान ही है। अठारह संप्रदायों और शाखाओं में से प्रत्येक चुभती शब्दावलियों का प्रयोग करते हुए अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है। महायान एवं हीनयान के व्यवहार में भी अन्तर है। कोई एकाग्रचित्त से चिन्तन करता हुआ ध्यान लगाता था, और कोई चंक्रमण करता रहता था या फिर एक स्थान पर खड़ा रहता था। समाधि और प्रज्ञा में भेद था। हलचल एवं निस्तब्धता भी समान नहीं थी। भिन्न-भिन्न संघों ने अपने-अपने नियम बना लिए थे। विनय, अभिधर्म तथा सूत्र, ये सभी बौद्ध ग्रंथ थे। जो एक सूत्र ग्रंथ की व्याख्या कर सकता था, उसे संघाराम में सामान्य कार्यों से मुक्त कर दिया जाता था। जो दो सूत्र ग्रंथों की व्याख्या करने में समर्थ होता था, उसे सुसज्जित कक्ष एवं शैया प्रदान किए जाते थे। जो तीन सूत्र ग्रंथों की व्याख्या करने में समर्थ हो जाता था, उसकी सेवार्थ एक सेवक नियुक्त किया जाता था। जो चार सूत्र ग्रंथों की व्याख्या करने में समर्थ था, उसकी सेवार्थ गृहस्थ भेजे जाते थे। जो पांच सूत्र ग्रंथों की व्याख्या करने में समर्थ होता, उसे हाथी पर सवार होने की अनुमति मिलती थी, और जो छः सूत्र ग्रंथों की व्याख्या करने में समर्थ हो जाता था, वह हाथी पर तो सवार हो ही सकता था, उसकी सेवा में रक्षक भी भेजा जाता था। जो जितना समर्थ था, उसकी उतनी ही असाधारण रूप से प्रशस्ति की जाती थी। भिक्षु बहुधा सभाएं कर भले-बुरे पर विचार करते थे। सदाचारी की प्रशंसा की जाती थी और दुराचारी को दण्ड दिया जाता

था। अकर्मण्य का बहिष्कार किया जाता था एवं बुद्धिमान को प्रोत्साहन दिया जाता था। जो गूढ़ार्थों पर सटीक व्याख्यान देने एवं सूक्ष्म सिद्धान्तों पर टिप्पणी करने में समर्थ था और जिसका शब्द-नियोजन अलंकृत होता था तथा जिसकी बुद्धि तर्क-वितर्क में तीक्ष्ण होती थी, वह सुसज्जित हाथी पर सवार होता एवं उसके आगे-पीछे परिचारक ही परिचारक होते थे। किन्तु जिसके धार्मिक मत निःसार थे और जो तर्क-वितर्क में निरुत्तर हो जाता था, सिद्धान्तों के बदले शब्दाडम्बर पर बल देता था और सत्य का मिथ्या अर्थ निकाल कर चिकनी-चुपड़ी बातें करता था, उसके मुंह पर लाल एवं श्वेत मिट्टी पोत दी जाती थी और तन पर धूल बिखेर दी जाती थी। फिर उसे किसी निर्जन स्थान में या घाटी में भगा दिया जाता था। जहां एक ओर सद्गुण की प्रशंसा और निर्गुणी की निन्दा की जाती थी, वहां दूसरी ओर प्रतिभावान प्रशंसित होता था और अकर्मण्य बहिष्कृत होता था। अतएव लोग सुकर्मी हो घर में लगन से अध्ययन करते रहते थे। वे अपनी इच्छानुसार प्रव्राजक या गृहस्थ बन सकते थे। यदि कोई विनय का उल्लंघन करता था, तो संघ में उसे दंडित किया जाता था। हलका उल्लंघन करने पर उसे सभा में फटकारा जाता था। इससे कुछ भारी उल्लंघन करने पर उससे सभी अन्य भिक्षु वार्तालाप नहीं करते थे। और गंभीर उल्लंघन करने पर उसके साथ अन्य भिक्षु कभी नहीं रहते थे। ऐसा होने पर उसका बहिष्कार कर दिया जाता था और वह धर्मच्युत हो जाता था। जब कोई भिक्षु संघ से बाहर निकाल दिया जाता था, तो उसे रहने के लिए स्थान नहीं मिल सकता था। उसे मारे-मारे फिरते हुए अनेक कष्ट झेलने पड़ते थे अथवा विवश हो कर फिर से गृहस्थ बन जाना पड़ता था।

ग्यारह. वर्ण-व्यवस्था

जहां तक वर्ण-व्यवस्था का संबंध था, यहां कुल चार वर्ण थे। पहला वर्ण ब्राह्मण था। इस वर्ण के लोग ब्रह्मचारी होते थे। वे धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय एवं सच्चरित्र होते थे। दूसरा वर्ण क्षत्रिय था। यह वर्ण राजा की जाति का था। इसके लोग पीढ़ियों से राजा-महाराजा रहे थे और उनका लक्ष्य स्नेह एवं करुणा का होता था। तीसरा वर्ण वैश्य था। इस वर्ण के लोग व्यापारी थे। वे वस्तुएं इधर-उधर ला ले जा कर बेचते थे और लाभ-प्राप्ति करते रहते थे। चौथा वर्ण था शूद्र। इसके लोग किसान थे। वे जी तोड खेत जोतते थे एवं फसलों की बोवाई व कटाई करते थे। इन चार वर्णों की शुद्धता में भेद है। किसी एक वर्ण का व्यक्ति अपने वर्ण के भीतर ही विवाह करता था। धनी और निर्धन के मध्य विवाह-संबंध स्थापित नहीं होता था। पितृपक्ष एवं मातृपक्ष के व्यक्ति परस्पर विवाह नहीं करते थे। स्त्री को दूसरा विवाह करने की अनुमति न थी। अंत्यज जातियां अनगिनत थीं और प्रत्येक अंत्यज जाति के लोग परस्पर मिल-जुल कर रहते थे। यहां इसका विस्तृत विवरण

देना असंभव है।

बारह. सेना

जो राजा-महाराजा पीढ़ियों से देश पर शासन चलाते रहे थे, वे क्षत्रिय ही थे। राज-विप्लव एवं राजवध हुआ करते थे और अन्य वर्णों के लोग भी राजगद्दी पर बैठ जाते थे। योद्धा वीरों में से चुने जाते थे। यह व्यवसाय वंशगत होने के कारण वे युद्ध-कौशल में निपुण थे। शान्ति काल में वे राजप्रासाद की रक्षा करते थे तथा युद्ध में वे वीरतापूर्वक आगे बढ़ कर लड़ते थे। सेना चार अंगों की थी – पैदल, घोड़े, रथ और हाथी। हाथी को कड़ा कवच ओढ़ा दिया जाता था और उसके दांतों पर नुकीले कांटे लगा दिए जाते थे। हाथी पर सेनापति सवार होता था। उसके दोनों ओर एक एक सैनिक रहता था, जो महावत का काम करता था। रथ में चार घोड़े जोते जाते थे और उस पर एक सैनिक अधिकारी सवार होता था। दोनों पहियों के निकट पैदल रक्षक चलते थे। रक्षा के लिए रथ बिखर जाते थे और भागते हुए शत्रु सैनिकों का पीछा करते थे। पैदल सैनिक हलके शस्त्रों से सज्जित रहते थे। वे सभी वीरों में से चुने जाते थे। वे बड़ी-बड़ी ढालें और भाले या खड्ग उठाए आगे बढ़ जाते थे। सभी शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण होते थे। उनमें भाले, ढाल, धनुष, बाण, तलवार, खड्ग, कुल्हाड़े, बर्छे, यष्टि और चक्र आदि सम्मिलित थे। सैनिक वंशगत रूप से इन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने में निपुण होते थे।

तेरह. दंड और विधि

भारतीय स्वभाव से चिड़चिड़े तो होते थे, परन्तु वे शुद्धहृदय एवं भोले-भाले हुआ करते थे। वे अनुचित ढंग से धन-संपत्ति प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते थे और जो कुछ न्याय की मांग होती वे उससे अधिक ही समर्पित करते थे। वे परलोक में कष्ट झेलने से डरते थे और अपने जीवन में सिद्धि को अत्यन्त तुच्छ समझते थे। वे कभी प्रतारणा नहीं करते थे और अपने वचन का पालन करते थे। प्रशासन सत्यनिष्ठ था और लोग घुल-मिल कर रहते थे। अपराधी मुट्ठी भर थे। वे कभी-कभी राज्यनियमों का उल्लंघन कर डालते थे और राजा-महाराजा के विरुद्ध षड़यंत्र रचते थे। यदि अपराध का भंडाफोड़ हो जाता, तो अपराधी को कारागृह में डाल दिया जाता था। उसे मृत्यु दंड देने के बदले आजीवन कारा-गृह में बन्द होना पड़ता था और वह लोक-निन्दा का पात्र बन जाता था। जो रीति-नीति का उल्लंघन करता था और विश्वासघात एव पुत्रधर्म के विरुद्ध कार्य करता था, उसके

नाक, कान, हाथ या पैर काट दिये जाते थे, या उसको देशनिकाला अथवा किसी उजाड़ स्थान में निष्कासित कर दिया जाता था। अन्य अपराधी धन देकर मुक्त हो सकते थे।

न्यायिक पूछताछ के समय यातनाएं नहीं दी जाती थीं। जो पूछा जाता था, उसी का उत्तर दिया जाता था और तथ्य के आधार पर दंड सुनाया जाता था। यदि कोई अपने अपराध को अस्वीकार कर स्वयं को निर्दोष ठहराने की चेष्टा करता था, तो सत्य की खोज कर निर्णय लेने के लिए चार परीक्षाएं ली जाती थीं : जल परीक्षा, अग्नि परीक्षा, तौल परीक्षा एवं विष परीक्षा। जल परीक्षा में अभियुक्त और एक पत्थर को एक-एक बोरे में बन्द कर दोनों बोरों को एक साथ जोड़ दिया जाता था और फिर उन्हें गहरे जल में डाल दिया जाता था। यदि अभियुक्त वाला बोरा डूब जाता था तथा पत्थर वाला बोरा तैरता रहता था, तो अभियुक्त अपराधी सिद्ध हो जाता था। अन्यथा, अभियुक्त निर्दोष सिद्ध हो जाता था। अग्नि परीक्षा में लोहे के एक टुकड़े को जलाया जाता था, फिर अभियुक्त से उस पर बैठने, पैर रखने और जीभ फेरने तथा उसे हाथ से छूने को कहा जाता था। यदि अभियुक्त निर्दोष होता था, तो उसे कुछ भी नहीं होता था। यदि वह अपराधी होता, तो घायल हो जाता था। निर्बल अभियुक्त ऐसा नहीं कर पाता था। अतएव उससे फूलों की कलियों को धधकती आग पर बिखेरने को कहा जाता था। यदि वह निर्दोष होता, तो फूल खिल जाते थे। यदि वह अपराधी होता, तो फूल झुलस जाते थे। तौल परीक्षा में अभियुक्त और पत्थर कांटे पर रखे जाते थे। यदि अभियुक्त निर्दोष होता तो उसका पल्ला हलका और पत्थर का पल्ला भारी होता था। यदि वह अपराधी होता, तो उसका पल्ला भारी और पत्थर का पल्ला हलका होता था। विष परीक्षा में काले बकरे की दायीं टांग काट कर उस में विष मिलाया जाता था और फिर अभियुक्त से उसे खाने को कहा जाता था। यदि वह अपराधी होता, तो विष से उसकी मृत्यु हो जाती थी। यदि वह निर्दोष रहता, तो विष समाप्त हो जाता था और वह जीवित बना रहता था। इन्हीं चार परीक्षाओं से संभावित अन्यायपूर्ण निर्णय की रोकथाम की जाती थी।

चौदह. अभिवादन

आदर-भाव व्यक्त करने के लिए अभिवादन के नौ प्रकार थे : 1. कुशल-क्षेम पूछना ; 2. आदरपूर्वक सिर झुकाना ; 3. दोनों हाथ सिर के सामने ले जाकर उन्हें जोड़ते हुए कमर झुकाना ; 4. दोनों हाथ वक्ष के सामने ले जाकर जोड़ना ; 5. एक घुटने के बल बैठना ; 6. दोनों घुटनों के बल बैठना ; 7. दोनों हाथों एवं घुटनों के बल पृथ्वी पर झुकना ; 8. दोनों कोहनियों और घुटनों एवं सिर के बल झुकना और 9. दोनों हाथों व पैरों एवं सिर से पृथ्वी पर औंधे लेटकर प्रणाम करना। इन सभी अभिवादनों का अभिप्राय

मात्र एक बार प्रणाम करना था। घुटने टेककर यश गाना सर्वोच्च अभिवादन था। दूर होने पर हाथ जोड़े सिर धरती से लगाए प्रणाम किया जाता था। समीप होने पर चरण चूमकर या छूकर प्रणाम किया जाता था। संदेश पहुंचाते या आज्ञा स्वीकार करते समय परिधान को ऊपर कर दोनों घुटनों के बल बैठना होता था। बड़े-बूढ़े एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति दूसरों का अभिवादन स्वीकार करने के बाद उसका स्नेहपूर्ण उत्तर अवश्य देते थे। वे अपना स्नेह व्यक्त करने हेतु उनके सिर पर हाथ फेरते अथवा उनकी पीठ थपथपाते हुए शुभकामनाएं करते थे। भिक्षु दूसरों का अभिवादन स्वीकार करते समय शुभकामनाएं करते थे तथा उन्हें झुककर प्रणाम करने से नहीं रोकते थे। अपने इष्ट व्यक्ति विशेष के प्रति आदर-भाव प्रगट करने हेतु बहुधा उसके एक या तीन फेरे लगाए जाते थे। यदि अभि-वादक को याचना करनी होती थी, वह अपने मनचाहे इष्ट व्यक्ति विशेष के फेरे लगा सकता था।

पन्द्रह. रोग एवं मृत्यु

रोगग्रस्त होने पर रोगी सप्ताह भर उपवास करता था। इस अन्तराल में वह बहुधा भला-चंगा हो जाता था। यदि वह स्वस्थ न हो पाता, तो औषधियां लेने लगता था। औषधियों के अनेक प्रकार और नाम थे और चिकित्सकों का स्तर एवं भविष्यवाणी करने की क्षमता भी अलग-अलग थी।

किसी संबंधी की मृत्यु होने पर शव-यात्रा की जाती थी। लोग शोकाकुल हो कपड़े फाड़ते, बाल नोचते, माथा पीटते और वक्ष पीटते हुए विलाप करते थे। शोकसूचक परिधान पहनने की प्रथा नहीं थी और न ही शोक मनाने के लिए कोई निश्चित समय था। अंत्येष्टि के तीन प्रकार थे: 1. दाह-संस्कार, जिसमें चिता सजाकर शव को जलाया जाता था; 2. जल-संस्कार, जिसमें शव को नदी आदि में प्रवाहित किया जाता था और 3. वन-संस्कार, जिसमें शव को पशुओं का आहार बनाने हेतु वन में छोड़ दिया जाता था। राजा का निधन होने के पश्चात युवराज राज्यारोहण कर अंत्येष्टि की व्यवस्था का निरीक्षण करता तथा वरिष्ठता का कर्म निश्चित करता था। जीवित व्यक्ति की आदरसूचक उपाधि होती थी किन्तु मृतक को सम्माननीय उपाधि प्रदत्त नहीं की जाती थी। कोई मृतक के घर में जा कर भोजन नहीं करता था। अंतिम संस्कार के उपरान्त ही मृतक के घर में सामान्य रूप से आना-जाना पुनः आरंभ होता था। जो शव-यात्रा में सम्मिलित होता था, वह अपवित्र समझा जाता था। वह नगर के बाहर स्नान करने के उपरान्त ही नगर में प्रवेश कर सकता था। यदि कोई वयोवृद्ध भरणीय हो जाता अथवा किसी असाध्य रोग से ग्रस्त होता तथा

उसकी जीवन-यात्रा की समाप्ति होने वाली होती, अथवा यदि वह इस लोक से ऊब जाता और मनुष्य लोक से चले जाने का इच्छुक होता तथा जीवन-मरण से निर्द्वंद्व हो संसार से दूर चला जाना चाहता, तब उसके संबंधी और मित्र संगीत के साथ भोज का आयोजन करते थे, फिर उसे एक नौका में बिठा देते और जब नौका गंगा की मझधार में पहुंचती, वह जल में डूबकर मर जाता था। कहते हैं कि उसका स्वर्ग में पुनर्जन्म होगा। दस वयोवृद्धों में से केवल एक ही ऐसा करने को तैयार होता था। पर मैंने ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा। भिक्षुओं को संघ के नियमानुसार विलाप करने की अनुमति न थी। मां-बाप की मृत्यु होने पर वे उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु जप करते थे, गंभीरतापूर्वक उनका अंतिम संस्कार करते और इस आशा से कि उनके मां-बाप मृत्यु लोक में सुखी होंगे, श्रद्धा से पूजा करते थे।

सोलह. कराधान

प्रशासन उदार था एवं सरकारी काम-काज सरल था। परिवारों का पंजीकरण नहीं था। किसी व्यक्ति को बेगार देने और कर चुकाने की आवश्यकता न थी। राजा-महाराजाओं की भूमि प्रायः चार भागों में विभाजित की जाती थी। पहला भाग सरकारी व्यय एवं यज्ञ के लिए निर्धारित था। दूसरा भाग प्रधान मंत्रियों एवं मंत्रीगण को स्थिर दान के रूप में दिया जाता था। तीसरा भाग धुरंधर विद्वानों को पुरस्कारस्वरूप प्रदान किया जाता था। और चौथा भाग पुण्य फल की प्राप्ति के लिए विभिन्न धार्मिक संगठनों को दान में दिया जाता था। इसलिए करों का भार हलका था और बेगार बहुत कम ली जाती थी। प्रत्येक परिवार के लोगों की संख्या के अनुसार भूमि दी जाती थी और वह पैतृक होती थी। राजा-महाराजाओं के आसामी अपनी उपज का षष्ठांश लगान के रूप में देते थे। लाभ कमाने हेतु वस्तुएं लाते-ले जाते समय व्यापारियों को घाटों और चुंगीघरों पर केवल थोड़ा सा कर चुकाना पड़ता था। प्रशासन किसी निर्माण कार्य के लिए श्रमिकों से योंही काम नहीं लेता था बल्कि उन्हें उनके काम के अनुसार पारिश्रमिक देता था। देश की सीमा की रक्षा और विदेशों पर चढ़ाई या राजप्रासाद की रक्षा के लिए स्थितियों के अनुसार आह्वान-पत्र दिए जाते थे तथा पुरस्कार की घोषणा के उपरान्त सैनिकों की भर्ती की जाती थी। विभिन्न स्थानों के सर्वोच्च अधिकारियों, मंत्रियों, साधारण अधिकारियों एवं सलाहकारों की अपनी-अपनी भूमि थी और वे स्थिरदान के रूप में मिले नगरों पर निर्भर रहकर अपना जीवन निर्वाह करते थे।

सत्रह. उपजें

यहां विभिन्न स्थानों में प्राकृतिक स्थितियां श्रौर भूमि भिन्न-भिन्न होने के कारण उपजें भी भिन्न-भिन्न होती थीं। फूलों, घास, फलों एवं वृक्षों की अनगिनत जातियां थीं श्रौर उनके नाम भी विविध थे। उदाहरणार्थ श्राम्र, श्राम्लू, मधुका, बदर, कपित्थ, श्रामलक, तिंदुक, उदुम्बर, मोचा, नारिकेल श्रौर पनस श्रादि फल होते थे। सभी फलों के नामों का यहां उल्लेख करना असंभव है। ऊपर जिन फलों के नाम बताए गए हैं, वे भारतीयों द्वारा महत्वपूर्ण माने जाते थे। चीनी बेर, शाहबलूत, हरा एवं लाल परसिमन इत्यादि फल भारत में नहीं थे। नाशपाती, श्रालूचा, श्राड़ू, खूबानी तथा अंगूर की खेती काश्मीर से श्रारंभ कर के यत्र-तत्र होती थी। अनार श्रौर संतरे तो सभी राज्यों में मिलते थे।

जहां तक कृषि-कार्य का संबंध था, समय पर बुवाई, कटाई, जुताई एवं निराई होती थी श्रौर श्रम व विश्राम का समय किसान स्वयं निर्धारित करते थे। धान एवं गेहूं का अधिक उत्पादन होता था।

साग में अदरक, सरसों, ककड़ी, कद्दू श्रौर कुंद श्रादि सम्मिलित थे। लहसुन श्रौर प्याज दुर्लभ थे श्रौर प्रायः नहीं खाये जाते थे। यदि कोई खाता था, तो उसे नगर से बाहर भगा दिया जाता था।

दूध, घी, परांठा, पूरी, चीनी, मिठाई, सरसों का तेल, रोटियां एवं मैदा सामान्य खाद्य-पदार्थ थे। मछली, बकरी, बारहसिंगे श्रौर हिरन का मांस कभी-कभी खाया जाता था। गाय, गधे, हाथी, घोड़े, सुश्रर, कुत्ते, लोमड़ी, भेड़िया, सिंह, बन्दर श्रौर वानर श्रादि बालों वाले पशुश्रों का मांस बिलकुल नहीं खाया जाता था। जो कोई खाता था, वह तिरस्कृत हो जाता था श्रौर उसे अपवित्र मान कर नगर से बाहर भगा दिया जाता था तथा उसे फिर कभी बस्ती में वापस लौटने की अनुमति नहीं दी जाती थी।

विभिन्न वर्णों द्वारा मदिरा तथा अन्य पेयों के सेवन में भेद होता था। अंगूर श्रौर गन्ने से खींचा गया मद्य क्षत्रिय पीते थे। सुरा एवं सोम का सेवन वैश्य करते थे। श्रमण एवं ब्राह्मण अंगूर श्रौर गन्ने का रस पीते थे। यह मद्य जाति का पेय नहीं था। अन्य नीच जातियों के लिए कोई निश्चित पेय नहीं था।

घरों में प्रयुक्त बर्तन अलग-अलग कामों श्रौर गुणों के थे तथा उनका अभाव न था। कड़ाही का उपयोग अवश्य होता था, लेकिन उन्हें कड़ाह में भाप देकर चावल पकाने का उपाय ज्ञात नहीं था। अधिकांश बर्तन मिट्टी के होते थे श्रौर कतिपय पीतल के बर्तन भी देखे जाते थे। लोग एक ही पात्र में भोजन करते थे श्रौर उसमें सभी खाद्यपदार्थ मिला कर रखे जाते थे। वे उंगलियों से खाना मुंह में डालते थे, चम्मच श्रौर चॉपस्टिकों का प्रयोग नहीं करते थे। केवल रोगी ही पीतल की चम्मच से खाना खाते थे।

इस देश में स्वर्ण, रजत, ताम्र, श्वेत जेड ग्रौर रक्त स्फटिक का उत्पादन होता था ग्रौर उनके प्रचुर भंडार थे। दुर्लभ रत्नों व मणियों की जातियां ग्रनेक थीं। वे समुद्रतट से लाए जाते थे ग्रौर इनसे ग्रन्य वस्तुग्रों का विनिमय किया जाता था। लेन-देन के समय स्वर्ण सिक्कों, रजत सिक्कों, कौड़ियों ग्रौर छोटे मोतियों का मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता था।

भारत की सीमा के संदर्भ में मैं बता चुका हूं। प्राकृतिक स्थितियों ग्रौर भूमि में प्राय: ऐसा ही ग्रन्तर था। जितने समान विषय थे, उन्हें मिला कर चर्चित किया गया है। इतना होने पर भी केवल एक रूपरेखा मात्र ही प्रस्तुत हो सकी है। विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाग्रों एवं प्रथाग्रों का मैं एक एक करके ग्रलग ग्रलग राज्यों के ग्रनुसार ग्रागे उल्लेख करूंगा।

लंपाक

लंपाक की परिधि एक हजार ली से ग्रधिक थी। उसके उत्तर में हिमगिरि था ग्रौर शेष तीनों ग्रोर श्यामल पर्वतमालाएं फैली हुई थीं। राजधानी की परिधि कोई दस ली थी। विगत सैकड़ों वर्षों में राजवंश की समाप्ति के कारण बड़े-बड़े कुटुम्ब राजसत्ता के लिए परस्पर संघर्ष करते रहे थे ग्रौर ग्रभी कुछ समय पहले यह राज्य कापिशी के ग्रधीनस्थ हो गया। भूमि पिछैती धान की खेती के लिए उपयुक्त थी। गन्ने बहुतायत से मिलते थे। वृक्ष बहुत ग्रधिक तो थे ही, पर फल कतिपय ही मिलते थे। जलवायु थोड़ी सी उष्ण थी। हलका पाला पड़ता था, हिमपात नहीं होता था। प्रजा संपन्न एवं प्रसन्न थी। सभी को गायन में रुचि थी। वे स्वभाव के कायर थे ग्रौर कपटी हो कर एक दूसरे को धोखा देते थे। वे कभी किसी दूसरे का ध्यान नहीं रखते थे।

वे क्षुद्र ग्रौर कुरूप थे ग्रौर दुराचारी भी थे। उनके वस्त्र मुख्य तौर पर श्वेत सूती कपड़े के थे ग्रौर सुन्दरता से सजाए हुए होते थे। दस से ग्रधिक संघाराम थे। भिक्षुग्रों की संख्या बहुत ग्रल्प थी ग्रौर वे भी ग्रधिकांशत: महायानी थे। दसियों देव-मंदिर थे ग्रौर तीर्थिकों की संख्या बहुत ग्रधिक थी।

यहां से दक्षिण-पूर्व में एक ऊंचे पर्वत ग्रौर बड़ी नदी पार कर सौ ली चलने के बाद मैंने नगरहार की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

नगरहार

नगरहार पूर्व से पश्चिम तक छ: सौ ली से ग्रधिक लम्बा ग्रौर दक्षिण से उत्तर तक कोई

ढाई सौ ली चौड़ा था। इसके चारों ओर पर्वत ही पर्वत थे और यह राज्य बाह्य जगत से कटा हुआ था। धरातल दुर्गम था। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। यहां कोई राजा नहीं था और यह कापिशी के अधीन एक प्रान्त था। यहां उपजों का उत्पादन बहुत होता था एवं फूल-फल भी बहुतायत से थे। जलवायु नम थी। लोग सच्चरित्र तथा साहसी थे, धन-संपत्ति की अवज्ञा करते थे और विद्याओं में बड़ी रुचि लेते थे। वे बुद्ध के भक्त थे। अल्पसंख्यक लोग परधर्म में विश्वास करते थे। संघाराम थे तो बहुत, पर उनमें भिक्षु अत्यंत कम थे। अनेक स्तूप ढह चुके थे। पांच देव-मंदिर थे और तीर्थिकों की संख्या सौ से कुछ अधिक थी।

एक. राजधानी के निकट के अवशेष

राजधानी से दो ली दूर पूर्व में एक लगभग तीन सौ छि ऊंचा स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। इस प्रस्तर स्तूप पर उत्कीर्णन के अनोखे काम थे। यहीं बोधिसत्व शाक्य ने दीपंकर बुद्ध के दर्शन किए थे। उन्होंने दीपंकर बुद्ध के लिए अपना मृगचर्म पृथ्वी पर बिछा दिया था और अपने बिखरे बालों से कीचड़ ढंक दी थी। इसलिए दीपंकर बुद्ध ने उनकी बुद्धत्व-प्राप्ति की भविष्यवाणी की थी। महाकल्प में विनाश होने पर भी यह स्तूप ध्वस्त नहीं हुआ। उपवास के दिनों में आकाश से फूलों की वर्षा होती थी। लोग बड़ी श्रद्धा से इस स्तूप की पूजा करते थे। स्तूप के पश्चिम में एक संघाराम था, जिसमें इने-गिने भिक्षु थे। इसके दक्षिण में उस स्थान पर एक छोटा स्तूप था, जहां कीचड़ को ढंकने हेतु बोधिसत्व शाक्य ने अपने बाल फैला दिए थे। सम्राट अशोक ने राजमार्ग से हटकर इस सुनसान स्थल पर यह स्तूप बनवाया था।

राजधानी में एक बड़े स्तूप की केवल नींव ही रह गई थी। स्थानीय लोगों का कहना था कि इस स्तूप में पहले कभी बुद्ध के दांत सुरक्षित थे और स्तूप ऊंचा और सुसज्जित था। बुद्ध के दांत विलुप्त होने पर केवल स्तूप की नींव रह गई थी। इसके निकट और एक कोई तीस छि ऊंचा स्तूप था। इस स्तूप के इतिहास के संबंध में किंवदंती थी कि वह आकाश से गिरकर इस स्थल पर खड़ा हो गया था। यह मानवनिर्मित नहीं था, बल्कि देवों ने बनाया था।

राजधानी से दसेक ली दूर दक्षिण-पश्चिम में उस स्थल पर एक स्तूप खड़ा था, जहां तथागत मध्यदेश से आकाश में चलते हुए अवतरित हुए थे। उनके प्रति श्रद्धा प्रकट कने हेतु लोगों ने यह स्तूप बनाया था। इससे कुछ दूर पूर्व में जिस स्थान पर एक स्तूप था, उसी स्थान पर दीपंकर बुद्ध के दर्शन के बाद बोधिसत्व शाक्य ने फूल खरीदकर उन्हें अर्पित किए थे।

दो. लघु शैल पर बुद्ध छाया-मूर्ति शैलगृह

राजधानी से बीस ली से अधिक दूर दक्षिण-पश्चिम में एक लघु शैल था। शैल पर पत्थरों से बने एक संघाराम में भवन उत्तुंग थे और अनेक कक्ष-पंक्तियां थीं। प्रांगण सुनसान था। उसमें एक भी भिक्षु नहीं मिला। संघाराम में एक दो सौ छि ऊचा स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था।

संघाराम के दक्षिण-पश्चिम में गहरी घाटी के दोनों ओर सीधी-खड़ी चट्टानें थीं, जो भत्ति की भांति लगती थीं। ऊपर से एक जल-प्रपात नीचे गिरता था। पूर्वी चट्टान में एक गुहा थी, जिसमें गोपाल नाग का वास था। गुहा का मुख संकीर्ण था और उसके भीतर अंधकार था। चट्टानों से जल की बूंदें टपकती रहती थीं और वे नीचे की पगडंडी पर जा गिरती थीं। अतीत में इस गुहा में बुद्ध की छाया-मूर्ति थी जो सजीव और तेजस्वी थी। उसमें द्वात्रिंश महापुरुषलक्षण एवं अशीत्यानुव्यंजानी उपलब्ध थे। अब तो इस छाया-मूर्ति को हर कोई देख नहीं पाता था। यदि वह दिखाई भी देती थी तो धुंधली-सी। केवल बड़ी भक्ति से प्रार्थना कर देवता को प्रभावित कर सकने वाला व्यक्ति कुछ क्षण के लिए इस छाया-मूर्ति को स्पष्ट रूप से देख पाता था। जब तथागत इस मनुष्य लोक में रहते थे, तब यह नाग एक गोपाल था। वह राजा को दूध और घी अर्पित करने का कार्यभार संभाले हुए था। बाद में नियमानुसार अपना कर्तव्य निभाने में असफल होने के कारण वह राजा की निन्दा का पात्र बना। उसके मन में द्वेष उत्पन्न हुआ। उसने फूल खरीद ला कर अपने पूजित स्तूप पर चढ़ाए तथा यह वर मांगा कि उसका एक नरभक्षी नाग के रूप में पुनर्जन्म हो, ताकि वह इस राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर राजा का प्राणान्त कर सके। फिर वह घाटी की ओर बढ़ा और उसने नीचे कूद कर आत्महत्या कर डाली। उसका नागराज के रूप में ही पुनर्जन्म हो गया और वह इसी गुहा में वास करने लगा। वह गुहा से निकल अपनी अनिष्ट कामना पूरी करना चाह ही रहा था कि तथागत ने उसका उद्देश्य भांप लिया। इस राज्य की प्रजा पर करुणा कर वे अपनी दिव्य शक्तियों से मध्यदेश से नाग के निवास-स्थान पर आए। उनके दर्शन मात्र से नाग के चित्त का द्वेष-भाव तुरन्त समाप्त हो गया। उसने अहिंसा का नियम स्वीकार कर सद्धर्म की रक्षा करने की इच्छा व्यक्त की और तथागत से अनुरोध किया: "आप इस गुहा में वास किया करें और आपके शिष्य मेरी सेवाएं ग्रहण किया करें।" तथागत ने उसे बताया: "मेरा निर्वाण होने को है। मैं अपनी छाया-मूर्ति तुम्हारे यहां छोड़ जाऊंगा और तुम्हारी सेवाएं ग्रहण करने हेतु पांच अर्हत भेज दूंगा। सद्धर्म की समाप्ति हो जाने पर भी ऐसा ही होता रहेगा। यदि तुम्हारे मन में द्वेष-भाव उत्पन्न होगा, तो मेरी छाया-मूर्ति को देखते ही करुणा से तुम्हारा द्वेष-भाव तुरन्त मिट जाएगा। इस भद्रकल्प

में भावी भगवान भी तुम पर करुणा करेंगे और यहां अपनी छाया-मूर्तियां छोड़ रखेंगे।" छाया-मूर्ति-शैलगृह के बाहर दो चौकोर शिलाएं थीं। शिला पर तथागत के पदचिह्न थे और चक्र का धुंधला-सा चित्र था, जो कभी-कभी प्रभा फेंकता था। छाया-मूर्ति-शैलगृह के इर्द-गिर्द बहुत से शैलगृह थे। उनमें तथागत के शिष्य समाधि लगाते थे। छाया-मूर्ति-शैलगृह के उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप उस स्थान पर था जहां तथागत चक्रमण करते थे। इसके निकट एक स्तूप में तथागत के बाल एवं नख सुरक्षित थे। इससे थोड़ी दूरी पर एक स्तूप उस स्थान पर खड़ा था, जहां तथागत ने पारमार्थिक धर्म पर प्रकाश डाला था एवं पांच स्कंध अष्टादश धातु एवं द्वादशायतन प्रतिपादित किए थे। छाया-मूर्ति-शैलगृह के पश्चिम में एक बृहद समतल शिला थी, जिस पर तथागत ने अपनी संघाटी धोयी थी। उस पर अब भी संघाटी की अस्पष्ट छाया दिखाई देती थी।

तीन. हिड्डु नगर

राजधानी के बाहर दक्षिण-पूर्व की दिशा में कोई तीस ली चलने पर हिड्डु नगर मिलता था। इसकी परिधि चार-पांच ली थी। नगर ऊंचे एवं दुर्गम स्थान पर स्थित था। इसका प्राचीर सुदृढ़ था। नगर में फूल के पौधे और उपवन थे। तालाबों में जल दर्पण की भांति स्वच्छ था। निवासी सच्चरित्र एवं बुद्ध के भक्त थे। यहां दो तल्लों वाला एक भवन था, जिसके धरनों पर रंगीन बेल-बूटे अंकित थे और जिनके स्तंभों का रंग लाल था। दूसरे तल्ले पर एक लघु सप्त रत्न स्तूप था। उसमें तथागत के उष्णीष की एक हड्डी रखी हुई थी। हड्डी की परिधि एक छि दो छुन थी। उस पर बालों के छिद्र स्पष्ट रूप से देखे जा सकते थे। हड्डी का रंग पीलापन लिए श्वेत था। उसे एक मंजूषा में डाल कर स्तूप में रखा गया था। यदि कोई शुभाशुभ फल जानना चाहता, तो धूप के चूर्ण और मिट्टी के मिश्रण से उस हड्डी की प्रतिच्छवि उतारता था। प्रतिच्छवि उस व्यक्ति के भाग्य के अनुरूप स्पष्ट या धुंधली होती थी। एक और सप्त रत्नों से बने लघु स्तूप में तथागत की खोपड़ी सुरक्षित थी, जो देखने में कमल के पत्ते जैसी लगती थी और जिसका रंग उष्णीष की हड्डी का सा था। वह भी एक मंजूषा में रखी हुई थी और मंजूषा को बाहर से बन्द कर दिया गया था। तीसरे सप्त रत्नों से बने लघु स्तूप में तथागत की एक आंख सुरक्षित थी, जो आलूचे के फल जितनी बड़ी थी और कांतिमान एवं निर्मल थी। वह भी एक मंजूषा में रखी हुई थी और मंजूषा को बाहर से बन्द कर दिया गया था। तथागत की संघाटी एक मंजूषा में सुरक्षित थी। वह महीन कपड़े से बनी थी। उसका रंग गेरुआ था। कालांतर में यह संघाटी कुछ विक्षत हुई थी। तथागत की यष्टि भी एक मंजूषा में रखी हुई थी। यष्टि चन्दन की थी और उस पर रांगे का बना छल्ला था। अभी कुछ समय पूर्व एक राजा ने जब

सुना कि ये वस्तुएं तथागत ने अपने जीवन काल में प्रयुक्त की थीं, तो उसने शस्त्र बल के सहारे ये वस्तुएं छीन लीं। स्वदेश लौटने पर उसने उन्हें अपने प्रासाद में रखा। किन्तु बारह दिन भी नहीं हुए कि वे ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलीं। राजा ने उन्हें खोज निकालने के लिए सैनिक भेजा। तब पता लगा कि वे अपने पुराने स्थान पर लौट चुकी थीं। ये पांच वस्तुएं बहुत से चमत्कार दिखातीं। उनकी देखभाल के लिए कापिशी के राजा ने पांच ब्राह्मण यहां भेजे थे। उनके दर्शन करने वालों का तांता लगा रहता था। ब्राह्मणों ने यह सोचकर कि धन का तो सभी ध्यान रखते हैं, शांति बनाए रखने हेतु कुछ नियम बनाए, ताकि कोलाहल और अव्यवस्था को रोका जा सके। नियमानुसार यदि कोई तथागत की उष्णीष की हड्डी के दर्शन करना चाहता था, तो उसे एक स्वर्ण सिक्का देना पड़ता था। यदि कोई तथागत की उष्णीष की हड्डी की प्रतिच्छवि उतारना चाहता, तो उसे पांच स्वर्ण सिक्के देने पड़ते थे। यह नियम अन्य पवित्र वस्तुओं पर भी लागू था। स्वर्ण सिक्के देने पर भी इन पवित्र वस्तुओं के दर्शन करने वालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जाती थी।

दो तल्लों वाले भवन के उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप था। वह अधिक ऊंचा तो नहीं था, पर उस पर चमत्कार देखा जा सकता था। किसी के द्वारा इस स्तूप को छूते ही स्तूप हिलने लगता था और उसकी नींव भी साथ-साथ हिलने लगती थी। इस बीच स्तूप पर की घंटियां भी बज उठती थीं।

यहां से दक्षिण-पूर्व की घाटियों में पांच सौ ली दूर चलने के उपरांत मैं गंधार जा पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में अवस्थित था।)

गंधार

गंधार की सीमा पूर्व से पश्चिम तक एक हजार ली से अधिक थी और दक्षिण से उत्तर तक आठ सौ ली। उसके पूर्व में सिंधु नदी बहती थी। राजधानी का नाम पुरुषपुर था। उसकी परिधि चालीस ली से अधिक थी। राजवंश की समाप्ति हो चुकी थी एवं राज्य कापिशी के अधीन हो गया था। नगर और गांव सूने थे। जनसंख्या कम थी। राजधानी के एक कोने में एक हजार परिवार बसे हुए थे। अनाज के लहलहाते खेत थे। फूल और फल बहुतायत से मिलते थे। गन्ने का उत्पादन बहुत होता था और मिठाई भी उत्पादित होती थी। जलवायु थोड़ी उष्ण थी। न पाला गिरता था न हिमपात होता था। लोग स्वभाव से कायर थे तथापि शास्त्र और कलाएं सीखने में उत्साही थे। उनमें से अधिकांश परधर्मों को मानते थे, केवल अल्पसंख्यक लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। प्राचीन काल से अब तक भारत में शास्त्र प्रतिपादित करने वाले आचार्य नारायण देव, बोधिसत्व असंग, बोधिसत्व

वसुबंधु, धर्मत्रात, मनोरथ एवं आयुष्मान पार्श्व आदि सभी का जन्म यहा हुआ था। एक हजार से अधिक संघाराम थे, जो उजड़ कर सुनसान पड़े थे। स्तूपों में से भी अनेक गिर चुके थे। सौ से अधिक देव-मंदिर थे और विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

राजधानी के उत्तर-पूर्व में चबूतरे का अवशिष्ट था। इसी चबूतरे पर प्राचीन काल में तथागत का भिक्षा-पात्र सुशोभित था। तथागत के परिनिर्वाण के उपरांत उनका भिक्षा-पात्र इस राज्य में ले आया गया था। गत कई शताब्दियों में उनके पात्र की श्रद्धा से पूजा की जाती रही थी। कालांतर में यह पात्र अनेक देशों में ले जाया गया और अब वह पारस में था।

एक. पीपल वृक्ष और कनिष्क स्तूप

राजधानी से आठ-नौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में एक सौ छि से भी अधिक ऊंचा एक पीपल का वृक्ष था और उसके नीचे विशाल छाया रहती थी। इसी वृक्ष के नीचे चार भूत बुद्धों ने आसन लगाए थे और अब भी उनकी आसीन प्रतिमाएं यहां स्थापित थीं। इस भद्र-कल्प में समस्त नौ सौ छियानवे बुद्ध यहां आसन जमाएंगे। इस वृक्ष की रक्षा देव करते थे और इसमें अलौकिक शक्ति गर्भित थी। शाक्य ने इस वृक्ष के नीचे दक्षिण की दिशा में मुंह किए बैठे आनन्द से कहा था : "मेरे देहावसान के चार सौ वर्ष बाद कनिष्क नाम का एक राजा शासन करेगा। यहां से थोड़ी दूर दक्षिण में वह एक स्तूप बनवाएगा और उसमें मेरी हड्डी और मांस के अधिकतर अवशिष्ट सुरक्षित रहेंगे।"

पीपल वृक्ष के दक्षिण में एक स्तूप था, जो सम्राट कनिष्क ने बनवाया था। तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात चार सौ वर्ष में कनिष्क जम्बूद्वीप पर शासन करने वाला सम्राट बन गया। वह कर्मफल में विश्वास नहीं करता था एवं बौद्ध धर्म का तिरस्कार करता था। जब वह वन में आखेट के लिए निकला, तब उसने एक श्वेत शशक देखा। कनिष्क उसका पीछा करते हुए यहां पहुंच गया। सहसा वह शशक अदृश्य हो गया। उसने एक ग्वाले को वन में एक तीन छि ऊंचा लघु स्तूप बनाते हुए देखा। उसने ग्वाले से पूछा : "स्तूप बनाकर इसका क्या करोगे?" ग्वाले ने उत्तर दिया : "भगवान बुद्ध ने यह भविष्यवाणी की थी : 'भविष्य में एक राजा यहां एक स्तूप बनवाएगा और मेरी अस्थियों का अधिकतर भाग उस स्तूप में सुरक्षित रखा जाएगा।' महाराज, आप पूर्वजन्म में सद्गुणी थे और भविष्यवाणी में आपका ही नाम उल्लिखित था। इस पवित्र स्थल में आज ही यह शुभकार्य पूरा होगा। अतएव मैं अब आप को चेता रहा हूं।" यह कह कर ग्वाला सहसा अन्तर्धान हो गया। ग्वाले की बात सुन कर कनिष्क को बड़ी प्रसन्नता हुई एवं गर्व भी हुआ कि उसके नाम की किसी महात्मा ने भविष्यवाणी की थी। उसके मन में बौद्ध धर्म के प्रति विश्वास और गहन आस्था उत्पन्न हो गई। वह उस लघु स्तूप के चारों ओर इस इच्छा से एक बृहद

प्रस्तर स्तूप बनवाने लगा कि उसकी शक्ति से उस लघु स्तूप को प्रच्छन्न किया जा सके। किन्तु ज्यों-ज्यों प्रस्तर स्तूप ऊपर उठता गया, लघु स्तूप सदा उससे तीन छि ऊंचा होता गया। इस प्रकार प्रस्तर स्तूप ऊपर उठाते हुए चार सौ छि की ऊंचाई तक पहुंचा दिया गया, तब कहीं जाकर लघु स्तूप प्रच्छन्न किया जा सका। प्रस्तर स्तूप के आधार की परिधि डेढ़ ली थी और वह पांच चरणों में साढ़े सौ छि ऊंचा था। सम्राट का चित्त प्रसन्न हुआ। उसने फिर स्तूप के शीर्ष भाग पर स्वर्ण का पानी चढ़ाए हुए पच्चीस ताम्र चक्के स्थापित करवा दिए। और स्तूप में तथागत की दस तउ अस्थियां सुरक्षित रख कर वह उनकी श्रद्धा से पूजा करने लगा। पर लघु स्तूप का आधा भाग प्रस्तर स्तूप के आधार के दक्षिण-पूर्वी कोने से निकल आया। सम्राट ने धैर्य छोड़कर उसे उखाड़ फेंक दिया। तब लघु स्तूप का शेष आधा भाग आधार के दूसरे चरण के नीचे निकल आया और पुराने स्थान में एक और लघु स्तूप दृष्टिगोचर हुआ। सम्राट ने निरुत्साहित हो आह भरी: "हाय! किसी बात पर मनुष्य आश्चर्यान्वित रह जाता है, जबकि दैवी शक्ति को रोका नहीं जा सकता है। जिस वस्तु का देव संरक्षण करते हैं, उस पर क्रोधित होना व्यर्थ है!" उसे लज्जा भी हुई और घबराहट भी। अपनी भूल स्वीकार कर वह अपने प्रासाद लौट गया। ये दो स्तूप अब भी सुरक्षित स्थिति में थे। जो रोगग्रस्त हो पुनः स्वस्थ होना चाहता था, वह इन दो स्तूपों पर धूप एवं फूल चढ़ा कर श्रद्धा से प्रार्थना करने पर भला-चंगा हो जाता था।

दो. बृहद स्तूप के निकट की बुद्ध-मूर्तियां

बृहद स्तूप के पूर्वी पक्ष के प्रस्तर सोपान के दक्षिण में दो तराशे हुए स्तूप थे। उनमें से एक की ऊंचाई तीन छि थी और दूसरे की पांच छि। उनका आकार बृहद स्तूप के तुल्य था और दो बुद्ध-प्रतिमाएं भी सुशोभित थीं। एक प्रतिमा चार छि ऊंची थी और अन्य छः छि ऊंची। वे पीपल वृक्ष के नीचे पालथी मारे आसन जमाए हुए बुद्ध की प्रतिमाएं थीं। सूर्य की प्रखर किरणों में प्रतिमाएं स्वर्णिम प्रभा से चकाचौंध उत्पन्न करती थीं। जैसे जैसे छाया हटती जाती थी, प्रस्तर की रेखाओं का रंग गहरा बैंगनी होता जाता था। स्थानीय वृद्धों ने बताया कि कई शताब्दियों पूर्व प्रस्तर आधार की दरारों में स्वर्णिम रंग की चिउंटियां देखी जा सकती थीं। बड़ी चिउंटियां उंगली जितनी बड़ी थीं एवं छोटी चिउंटियां गेहूं के दाने जितनी। छोटी-बड़ी चिउंटियां अलग-अलग दलों में बंद कर प्रस्तर-भित्ति को काटती थीं, जिससे जो रेखाएं बनती थीं वे तराशी हुई लगती थीं। फिर स्वर्ण रेणु मिला कर ये प्रतिमाएं बनाई गई थीं।

बृहद स्तूप के सोपान के दक्षिण में बुद्ध का एक चित्र था, जो एक चाङ छः छि ऊंचा था। चित्र में बुद्ध के वक्ष के ऊपर से दो शरीर दिखाई देते थे, जबकि वक्ष के नीचे मात्र एक शरीर

था। स्थानीय वृद्धों का कहना था कि अतीत में एक दरिद्र अपने शारीरिक श्रम से जीवन निर्वाह करता था। उसे एक स्वर्ण सिक्का मिला और उसे इच्छा हुई कि इसी सिक्के से बुद्ध का चित्र बनवाया जाए। उसने यहां आकर चित्रकार से कहा : "मैं तथागत का पवित्र चित्र बनवाना चाहता हूं। मेरे पास एक स्वर्ण सिक्का है। वह पारिश्रमिक के लिए अपर्याप्त तो है पर भगवान बुद्ध का चित्र बनवाना मेरी चिरपोषित अभिलाषा है। मैं अपनी दीनता के कारण विवश हूं।" चित्रकार ने उसकी परम भक्ति से प्रभावित हो कर उसके साथ मोल-तोल नहीं किया और बुद्ध का चित्र बना देने का आश्वासन दिया। एक अन्य व्यक्ति था, जिसकी स्थिति भी पहले वाले जैसी ही थी। वह भी एक स्वर्ण सिक्का लेकर वहां आया। और उसने भी बुद्ध का चित्र बनवाने का अनुरोध किया। चित्रकार ने तो दोनों व्यक्तियों से पैसा ले लिया। उसने एक मंजे हुए चित्रकार के साथ चित्र बनाया। फिर वे दोनों व्यक्ति एक ही दिन बुद्ध की पूजा हेतु यहां आए। चित्रकार ने एक चित्र की ओर इशारा करते हुए उनसे कहा : "यही वह बुद्ध का चित्र है, जिसे बनाने का तुम दोनों ने अनुरोध किया था।" दोनों ने एक दूसरे पर दृष्टि डाली। उनके मन में आशंका उत्पन्न हुई। उनकी मनःस्थिति ताड़ चित्रकार बोला : "तुम दोनों इतनी देर चुप क्यों रहे? मैंने जितना दान लिया है, उतना ही काम किया है। यदि मैं झूठ नहीं बोला, तो चित्र अवश्य परिवर्तित होगा।" उसकी बात पूरी ही नहीं हुई कि चमत्कार हुआ। चित्र में बुद्ध का तन दो भागों में बंट गया, पर उनकी छायाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं। और चित्र प्रकाशमय हो उठा। दोनों पूरी तरह आश्वस्त एवं प्रसन्न हुए। उनका विश्वास भी दृढ़ हो गया।

बृहद स्तूप से सौ कदमों से अधिक दूर दक्षिण-पश्चिम में एक चाङ आठ छि ऊंची बुद्ध की एक श्वेत प्रस्तर मूर्ति उत्तर की ओर मुंह किए खड़ी थी। यह बुद्ध-मूर्ति चमत्कार दिखाया करती थी और बहुधा दीप्तिमान हो जाती थी। एक बार किसी ने यह देखा कि मूर्ति ने रात में निकलकर बृहद स्तूप के फेरे लगाए। कुछ समय पूर्व चोरों के एक दल ने अन्दर जा कर चोरी करना चाहा। इतने में मूर्ति बढ़कर उनके सामने प्रगट हुई। चोर भयभीत हो कर नौ दो ग्यारह हो गए। मूर्ति फिर अपने स्थान में लौट कर पूर्ववत खड़ी हो गई और उन चोरों ने अपने को सुधार कर नगरों और गांवों में घूम-घूम कर लोगों को यह बात सुनाई।

बृहद स्तूप के इर्द-गिर्द सौ से अधिक छोटे-छोटे स्तूप थे। वे शल्कों की भांति एक दूसरे से सटे हुए दिखाई देते थे। बुद्ध-प्रतिमाएं सुन्दर ढंग से सजाई गई थीं और उन पर शिल्प के अनोखे काम थे। विलक्षण सुवास का अनुभव किया जा सकता था एवं विचित्र शब्द सुने जा सकते थे। कभी कभी ऋषि-मुनि स्तूप की प्रदक्षिणा करते हुए देखे जा सकते थे। तथागत की भविष्यवाणी के अनुसार यह स्तूप सात बार जल कर राख हो जाएगा और फिर सात बार पुनर्निर्मित हो जाएगा। तब कहीं जा कर बौद्ध धर्म की समाप्ति होगी। स्थानीय लोगों ने बताया कि यह स्तूप तीन बार जल कर राख हो चुका था और तीन बार

पुनर्निर्मित भी हो चुका है। जब मैं यहां पहुंचा, तो स्तूप में कुछ काल पूर्व ही आग लगी थी। अभी वह निर्माणाधीन था।

तीन. कनिष्क संघाराम एवं पूजनीय पार्श्व, वसुबंधु व मनोरथ संबंधी अवशेष

बृहद स्तूप के पश्चिम में एक प्राचीन संघाराम था, जो सम्राट कनिष्क ने स्थापित करवाया था। कई तल्लों वाले भवन और चबूतरों पर पंक्ति में खड़े कक्ष थे। प्रतिष्ठित भिक्षुओं को निमंत्रित करने और उनके पुण्य की प्रशस्ति करने के लिए चबूतरे पर चबतूरा एवं एक-एक गहन कक्ष बनाए गए थे। संघाराम ढह तो चुका था, फिर भी अनोखी वास्तुकला का परिचायक कहला सकता था। भिक्षु बहुत कम थे और वे सभी हीनयानी थे। संघाराम की स्थापना के बाद प्रायः असामान्य व्यक्ति प्रकाश में आ चुके थे। उनमें से कुछ ने शास्त्र प्रतिपादित किए, अन्य कुछ ने अर्हत फल प्राप्त किया। उनके सदाचार एवं सदगुणों का प्रभाव आज तक बना रहा था।

तीसरे तल्ले पर पूजनीय पार्श्व का कक्ष था। वह विध्वस्त हो चुका था, लेकिन फिर भी उस पर चिह्न लगाया गया था। आरंभ में पार्श्व एक ब्राह्मण आचार्य थे। अस्सी वर्ष की आयु में ही उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर काषाय वस्त्र पहना। नगर में युवकों ने उनकी हंसी उड़ाते हुए कहा : "यह मूर्ख और दुर्बल बूढ़ा कितना जड़बुद्धि है! प्रव्रज्या के लिए दो काम करने पड़ते हैं : एक, ध्यान लगाकर बैठना और दूसरा, सूत्रों का पाठ करना। पर अब तो यह जर्जर हो गया है। प्रगति करने में असमर्थ है। सच्चरित्र लोगों की पांत में सम्मिलित होना चाहता तो है, लेकिन केवल भरपेट खाना ही जानता है।" ये चुभती बातें पार्श्व ने जब सुनीं, तो उन्होंने लोगों से और साथ ही अपने से भी कहा : "जब तक मैं त्रिपिटक के सिद्धान्तों पर अधिकार नहीं कर लेता, त्रिलोकों की तृष्णाओं से मुक्ति नहीं पा लेता, षड्भिज्ञा और आठ विमोक्ष प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक मैं अपने पार्श्व को चटाई से लगने नहीं दूंगा।" इसके उपरान्त इस आशंका से कि कहीं समय पर्याप्त न हो, वे विहार करते, आसन जमाते अथवा खड़े रहते समय भी चिन्तन करते रहे। दिन में सद्धर्म के मतों का अध्ययन करते रहे और रात में ध्यान लगाकर बैठे रहे। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गए और अन्त में उन्होंने त्रिपिटक के सिद्धान्तों पर अधिकार कर लिया, त्रिलोक की तृष्णाओं से मुक्ति पा ली और त्रिविद्या प्राप्त कर ली। लोग उनका बड़ा आदर करने लगे। वे उन्हें पूजनीय पार्श्व कह कर पुकारते थे।

पूजनीय पार्श्व के कक्ष के पूर्व में एक पुराना कक्ष था, जिसमें बोधिसत्व बसुबंधु ने "अभि-

धर्म कोष शास्त्र" प्रतिपादित किया था। उन पर श्रद्धा व्यक्त करने के लिए परवर्तियों ने इस कक्ष को बाहर से बन्द कर उस पर चिह्न लगा दिया था।

वसुबंधु के कक्ष से पचास कदमों से अधिक दूर दक्षिण में दूसरे तल्ले पर ही शास्त्राचार्य मनोरथ ने "अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र" प्रतिपादित किया था। उनका जन्म बुद्ध के परिनिर्वाण से एक हजार वर्ष पश्चात हुआ था। बचपन से ही वे अध्ययनशील और तर्क-वितर्क में निपुण थे। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनका सभी भिक्षु एवं गृहस्थ समादर करते थे। उस काल में श्रावस्ती के सम्राट विक्रमादित्य ने अपना प्रभाव फैला कर भारत के छोटे-बड़े राज्यों पर आधिपत्य कर लिया था। वे प्रति दिन अनाथों और निराश्रितों को पांच कोटि स्वर्ण सिक्कों का दान देते थे। उनके वित्त मंत्री को चिन्ता हुई कि ऐसे कहीं राजकोष रिक्त न हो जाए। उसने सम्राट को परामर्श दिया : "महाराज, आपकी प्रसिद्धि विदेशों में भी फैल गई है और आपके उपकार से कीड़े-मकोड़े तक लाभान्वित हुए हैं। मेरी याचना है कि आप और भी पांच कोटि स्वर्ण सिक्कों का दूर व निकट के दीन दुखियों को दान करें। जब राजकोष रिक्त हो जाएगा, तब राजस्व में वृद्धि कर दी जाएगी। वृद्धि पर वृद्धि की जाने पर देश भर में हाहाकार मच जाएगा। महाराज, इस मुक्त दान से आप तो अपनी उदारता का परिचय दे देंगे, पर मैं तो कर्तव्यविमुख ठहराया जाऊंगा।" सम्राट बोले : "मैं अतिरिक्त धन एकत्र कर अभावग्रस्तों को दे देता हूं, स्वयं राज्य के धन से भोग-विलास थोड़े ही करता हूं।" उन्होंने फिर पांच कोटि अतिरिक्त स्वर्ण सिक्के निकाल कर दीन-दुखियों को दे दिए। इसके अनंतर सम्राट एक बार आखेट के लिए निकले। उन्होंने एक वन्य सूअर का पीछा किया। लेकिन सूअर सहसा लुप्त हो गया। किसी ने उसका पता लगाया। सम्राट ने उसे एक कोटि स्वर्ण सिक्के पुरस्कारस्वरूप दिए। उधर शास्त्राचार्य मनोरथ ने अपने केशों के मुंडन के लिए ही नापित को एक कोटि स्वर्ण सिक्के दे डाले थे। यह बात उनके देश के राजकीय इतिवृत लेखक ने लिपिबद्ध की। जब सम्राट को यह ज्ञात हुआ कि कोई एक अन्य व्यक्ति उनसे भी आगे निकल चुका है, तो वे लज्जित हो कर अप्रसन्न हो गए। उनकी इच्छा हुई कि भरी सभा में ही शास्त्राचार्य मनोरथ को अपमानित किया जाए। यह सोच कर उन्होंने एक सौ विधर्मी विद्वानों को बुलाया और आज्ञा दी : "मैं एकाग्रचित्त से सत्य के लोक में विचरण करना चाहता हूं। पर नाना जटिल सिद्धांत हैं, अंत में किस सिद्धान्त पर विश्वास करूं, यह मुझे ज्ञात नहीं। अब मैं उनकी परख लेना चाहता हूं, फिर उनमें से एक को चुन कर मैं उसका ध्यान से अध्ययन करूंगा।" जब तर्क-वितर्क के लिए सभा होने वाली थी, तब सम्राट ने एक और आज्ञा दी : "ये विधर्मी तर्क-शास्त्री सभी ज्ञानी हैं। श्रमणों और भिक्षुओं को बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में पारंगत होना चाहिए। यदि तुम लोग विजयी हुए, तो मैं बौद्ध धर्म स्वीकार करूंगा। यदि विफल हुए, तो मैं भिक्षुओं को मरवा दूंगा!" सभा आरंभ हुई। मनोरथ ने लगातार निन्यानवे

विधर्मी तर्क-शास्त्रियों को निरुत्तर कर दिया। केवल एक ही रह गया। मनोरथ ने तिरस्कार की दृष्टि से उसे देखा। अब भीषण वाद-विवाद छिड़ गया। मनोरथ ने अग्नि और धुएं की चर्चा की। सम्राट और वह विधर्मी एक साथ ऊंचे स्वर में चिल्ला उठे : "शास्त्राचार्य मनोरथ ने भूल की है। पहले धुआं उठता है, फिर अग्नि जलती है। यह तो सीधी सी बात है।" मनोरथ ने आगे व्याख्या करनी चाही, पर कौन सुनने वाला था। भरी सभा में ही अपमानित हो जाने पर उन्हें लज्जा आई। उन्होंने अपनी जिह्वा को दांतों से काट डाला और कुछ लिख कर अपने शिष्य वसुबंधु को सचेत किया : "विधर्मियों के साथ गूढ़ार्थ पर चर्चा करना असंभव है और मूर्खों के साथ सत्य-असत्य में भेद करना व्यर्थ है।" इतना लिख कर मनोरथ का देहावसान हो गया। कुछ समय पश्चात सम्राट विक्रमादित्य राज्यच्युत हुए। नया सम्राट ईश्वरीय इच्छानुसार ज्ञानियों का आदर करता था। बोधिसत्व वसुबंधु ने पूर्व अपमान का प्रतिकार करना चाहा। उन्होंने नए सम्राट से कहा : "महाराज, आपने अपने सदगुणों के बल पर राज्यारोहण किया है। आप सभी प्राणियों के लिए न्याय का पक्ष लेते हैं। मेरे स्वर्गीय आचार्य मनोरथ इतने ज्ञानी थे कि वे सभी गूढ़ार्थों पर अधिकार कर चुके थे। पर भूतपूर्व सम्राट उनसे घृणा करता था, इसलिए उसने भरी सभा में उनके नाम पर कलंक लगा दिया था। मैं अपने स्वर्गीय आचार्य की शिक्षा ग्रहण कर इस अपमान का प्रतिकार करना चाहता हूं।" नए सम्राट को ज्ञात था कि मनोरथ एक ऋषि थे। उन्होंने वसुबंधु के सदाचार की प्रशंसा की। फिर उन्होंने उन विधर्मी विद्वानों को बुलाया, जिन्होंने मनोरथ के साथ तर्क-वितर्क किया था। सभा में वसुबंधु ने अपने आचार्य के मत दुहराए। वे विधर्मी अपनी पराजय स्वीकार कर सभा से हट गए।

चार. पुष्करावती नगर एवं नाना अवशेष

कनिष्क संघाराम से पचासेक ली से अधिक दूर उत्तर-पूर्व में एक बड़ी नदी के उस पार पुष्करावती नगर अवस्थित था, जिसकी परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। जनसंख्या घनी थी। सड़कें एवं गलियां एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं। नगर के पश्चिमी द्वार के बाहर एक देवमंदिर था। देव की मूर्ति की मुद्रा गांभीर्यपूर्ण थी और बहुधा अलौकिक शक्तियां प्रदर्शित करती रहती थी।

नगर के पूर्व में उस स्थान पर एक अशोक स्तूप था, जहां चार भूत बुद्धों ने उपदेश दिए थे। प्राचीन युग में ऐसे अनेक बौद्ध संत थे, जिन्होंने दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर मध्यदेश से यहां आ कर उपदेश दिए थे। शास्त्राचार्य वसुमित्र ने यहीं "अभिधर्म प्रकरणपाद शास्त्र" प्रतिपादित किया था।

नगर से चार-पांच ली दूर उत्तर में एक पुराना संघाराम था। प्रांगण और भवन उजड़

चुके थे। भिक्षु इने-गिने थे। वे सभी हीनयानी थे। इसी संघाराम में शास्त्राचार्य धर्मत्रात ने "संयुक्ताभिधर्म हृदय शास्त्र" प्रतिपादित किया था।

संघाराम के निकट एक कई सौ छि ऊंचा स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। उत्कीर्ण काष्ठ एवं रंगीन बेल-बूटों वाले पत्थर मानव की कृतियां नहीं लगते थे। शाक्य मुनि जब बोधि-समाधि लगाते थे, तब राजा के रूप में वे सभी प्राणियों की अभिलाषा पूरी करने हेतु दान देते नहीं अघाते थे। वे किसी वस्तु की भांति अपने शरीर का भी दान कर देते थे। उन्होंने इस राज्य में राजा के रूप में एक हजार बार जन्म लिया और एक हजार बार अपनी आंखों का दान किया था।

चक्षु-दान-स्थान से थोड़ी दूर पूर्व में दो प्रस्तर स्तूप थे। उनमें से प्रत्येक की ऊंचाई सौ छि से अधिक थी। दायां स्तूप ब्रह्मा ने बनाया था और बायां स्तूप इन्द्र ने। दोनों स्तूपों पर अनोखे रत्न-मणियां जड़े हुए थे। तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात सभी रत्न और मणियां पत्थरों में परिवर्तित हो गए। यद्यपि स्तूप के आधार पृथ्वी के नीचे धंस चुके थे, तथापि स्तूप बहुत ऊंचे ही थे।

ब्रह्मा स्तूप और इन्द्र स्तूप से लगभग पचास ली दूर उत्तर-पश्चिम में उस स्थल पर एक स्तूप खड़ा था जहां तथागत ने हारिती को दीक्षा दी थी और उसे नरभक्षण करने से रोका था। इस राज्य में यहां आ कर संतानोत्पति के लिए उसकी पूजा करने की प्रथा थी।

हारिती-धर्म-परिवर्तन-स्थल से पचास ली से अधिक दूर उत्तर में एक स्तूप था। इसी स्थल पर बोधिसत्व श्यामक पुत्रधर्म निभाते हुए अपने नेत्रहीन माता-पिता के लिए फल तोड़ने आए थे। तब राजा आखेट कर रहे थे। उनका एक विषैला बाण भूल से श्यामक पर आ लगा। अपने माता-पिता के प्रति उनकी निष्ठा से भगवान प्रभावित हुए और इन्द्र ने उनका उपचार किया। उनके सदाचार से देवतागण द्रवित हुए और वे शीघ्र ही पुनर्जीवित हो गए।

पांच. वर्षपुर

श्यामक स्तूप से दो सौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में वर्षपुर अवस्थित था। उसके उत्तर में जिस स्थान पर एक स्तूप खड़ा था वहीं राजकुमार सुदत्त ने नगर के द्वार से बाहर निकलकर लोगों को तब विदा दी थी जब वे अपने पिता के हाथी को एक ब्राह्मण को दान दे देने पर निन्दा के पात्र बने थे और राज्य से निष्कासित कर दिए गए थे। स्तूप के समीप एक संघाराम था। उसमें पचास से अधिक भिक्षु थे। वे सभी हीनयानी थे। इसी संघाराम में शास्त्राचार्य ईश्वर ने "अभिधर्म दीप शास्त्र" प्रतिपादित किया था।

नगर के पूर्वी द्वार के बाहर एक संघाराम था। उसमें पचास के लगभग भिक्षु थे। वे सभी महायानी थे। एक स्तूप भी था, जिसे सम्राट अशोक ने खड़ा करवाया था। जब राजकुमार सुदत्त दंडलोक पर्वत में निष्कासित किए गए, तब एक ब्राह्मण ने उनसे उनकी बेटी और बेटा मांगकर यहां लाकर बेच डाला था।

छ:. दंडलोक पर्वत और अन्य अवशेष

वर्षपुर से बीस ली से अधिक दूर उत्तर-पूर्व में दंडलोक पर्वत स्थित था। उस पर जिस स्थान में एक अशोक स्तूप खड़ा था, उसी स्थान में राजकुमार सुदत्त ने एकांतवास किया था। वहां से कुछ दूर एक स्थल पर एक स्तूप था। यह वही स्थल था जहां राजकुमार ने अपने बेटे-बेटी को एक ब्राह्मण को दान किया था और ब्राह्मण ने उनके बेटे-बेटी को मार-पीटकर रक्त से लथपथ कर दिया था। उनके रक्त से पृथ्वी भी रंग गई थी। अब भी वहां वनस्पतियों का रंग रक्तिमा लिए हुए था। चट्टानों में एक शैलगृह था जिसमें राजकुमार एवं उनकी पत्नी समाधि लगाते थे। घाटी में जहां-जहां अतीत में राजकुमार ने विश्राम किया था वहां सभी वृक्षों की टहनियां पृथ्वी की ओर झुकी हुई थीं और वे पर्दे जैसी लगती थीं। यहां के निकट एक और शैलगृह था, जिसमें कभी ऋषि वास किया करते थे।

ऋषि के शैलकक्ष से सौ ली के लगभग दूर उत्तर-पश्चिम में छोटी पहाड़ी के पीछे एक बड़ा पर्वत था। पर्वत के दक्षिण में एक संघाराम स्थित था। उसमें कुछ भिक्षु थे। वे सभी महायानी थे। उसके समीप सम्राट अशोक ने उस स्थल पर एक स्तूप बनवाया था, जिसमें ऋषि एकश्रृंग वास करते थे। ऋषि की तपस्या को एक व्यभिचारिणी स्त्री ने भंग कर दिया। वे अपनी अलौकिक शक्तियां खो बैठे। अन्त में वह व्यभिचारिणी स्त्री उनके कंधों पर बैठ कर नगर लौटी थी।

वर्षपुर से पचासेक ली दूर उत्तर-पूर्व में एक ऊंचा पर्वत था। पर्वत पर शिवा अर्थात भीमा देवी की गहरे नीले रंग की प्रस्तर मूर्ति सुशोभित थी। स्थानीय लोगों के अनुसार यह मूर्ति स्वयं प्रकाश में आई थी। वह दिव्य शक्ति प्रदर्शित किया करती थी और उसकी बहुत से लोग पूजा करते थे। भारत के विभिन्न राज्यों के ऊंच-नीच, दूर या निकट से यहां आ कर वर मांगते थे। जो कोई देवी के दर्शन करने का मनोरथ रखता, ध्यान लगाकर सप्ताह भर उपवास करने पर वह संभवत: देवी के दर्शन कर सकता था और अपना मनोरथ पूरा कर लेता था। पर्वत की तलहटी में एक शिव मंदिर था, उसमें पाशुपत श्रद्धा से पूजा करते थे।

सात. उडखंद नगर

भीमा मंदिर से साढ़े सौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में उडखंद नगर था, जिसकी परिधि बीस ली से अधिक थी। उसके दक्षिण में सिंधु नदी बहती थी। निवासी संपन्न एवं सुखी थे। मूल्यवान एवं दुर्लभ वस्तुओं की भरमार थी, जो विभिन्न स्थानों से ला कर यहां एकत्रित की जाती थीं।

आठ. शलातुर नगर और ऋषि पाणिनी

उडखंद नगर से बीस ली से अधिक दूर उत्तर-पश्चिम में शलातुर नगर स्थित था। यह "शब्द-विद्या" के रचयिता ऋषि पाणिनी का जन्मस्थान था। सृष्टि के आरंभ में लिपि अत्यंत जटिल एवं दुर्बोध थी। कल्पों तक के विध्वंस के पश्चात जगत सुनसान हो गया था। दीर्घायु देवतागण ने मनुष्य लोक में अवतरित हो कर मानव को शिक्षा दी। यही कारण था कि लिपिबद्ध अभिलेख अस्तित्व में आ गए। तब से उनकी संख्या बढ़ती गई। ब्रह्मा और इन्द्र समयानुकूल मानक निर्धारित करते थे। विभिन्न संप्रदायों के ऋषियों ने अपनी-अपनी लिपियां बनाईं। ये लिपियां ग्रहण की गईं और उनका प्रचार-प्रसार हुआ। पर उन्हें सीखने वालों के प्रयास व्यर्थ हुए, क्योंकि वे सही अर्थों के विस्तृत अध्ययन में विफल रहे। जब मनुष्य की आयु सौ वर्ष की हो गई, तब ऋषि पाणिनी ने इस जगत में पदार्पण किया। वे जन्मसिद्ध ज्ञानी और बड़े तत्ववेता थे। अपने काल की अव्यवस्था पर करुणा कर उन्होंने उथलापन और पाखंड मिटाने तथा दुर्बोधता और जटिलता समाप्त करने की ठानी। वे प्रव्रज्या करने लगे। वे शिव से मिले। शिव को उन्होंने अपनी लिपि रचने की इच्छा बताई। शिव बोले : "बहुत अच्छा ! मैं तुम्हारी सहायता करूंगा।" शिव की शिक्षा पा कर ऋषि ने सोच-विचार कर शब्द संगृहीत किए और "शब्द-विद्या" रची। उसमें कुल एक हजार श्लोक थे और प्रत्येक श्लोक में बत्तीस मात्राएं थीं। उनमें प्राचीन एवं अर्वाचीन लिपियों एवं भाषाओं का विस्तृत अध्ययन कर उन्हें समाविष्ट किया गया था। ये सूत्र राजा के समक्ष प्रस्तुत किए गए। राजा ने उन पर विशेष महत्व दिया और समूचे राज्य की प्रजा को उन्हें सीखने का आदेश दिया तथा घोषित किया कि जो उन्हें कंठस्थ करेगा, उसे एक हजार स्वर्ण सिक्कों का पुरस्कार दिया जाएगा। ये सूत्र गुरुओं द्वारा शिष्यों को सिखाए जाते रहे थे और तत्काल प्रचलित हो गए। इसलिए इस नगर में सभी ब्राह्मण प्रतिभावान, धुरंधर विद्वान और तत्ववेता थे।

शलातुर नगर में उस स्थान में एक स्तूप खड़ा था जहां एक अर्हत ने अपने शिष्य ऋषि

पाणिनी को दीक्षित किया था। तथागत के देहावसान से लगभग पांच सौ वर्ष पश्चात एक महा अर्हंत काश्मीर से प्रव्रज्या करते हुए यहां आए। एक ब्राह्मण को डंडे से एक बच्चे को पीटते हुए देख कर अर्हंत ने पूछा: "तुम इस बच्चे को क्यों सता रहे हो?" ब्राह्मण ने उत्तर में कहा: "मैंने उसे शब्द-विद्या सीखने को कहा था। लेकिन उसने कोई प्रगति नहीं की।" यह सुन कर अर्हंत प्रसन्न हो कर हंस पड़े। उस बूढ़े ब्राह्मण ने कहा: "एक भिक्षु को दयालु होना चाहिए और सभी वस्तुओं के साथ सहानुभूति रखनी चाहिए। और तुम तो हंस रहे हो। मैं यह जानना चाहता हूं कि इसका क्या कारण है।" अर्हंत बोले: "कहानी बहुत लम्बी है, जिससे तुम कदाचित आशंकित हो जाओगे। क्या तुमने ऋषि पाणिनी की कथा सुनी है कि उन्होंने 'शब्द-विद्या' लिख कर परवर्तियों को शिक्षा दी थी?" ब्राह्मण ने कहा: "वे इसी नगर के रहने वाले थे। हम परवर्ती उनका आदर करते हैं और उनकी मूर्ति अब भी सुशोभित है।" अर्हंत ने बताया: "तुम्हारा बच्चा वही ऋषि है। उनकी स्मरण-शक्ति प्रबल थी। सांसारिक शास्त्रों में सत्य के बदले केवल असत्य का ही उल्लेख मिलता था। इसलिए उनकी प्रतिभा व्यर्थ हो गई और भवचक्र में उनका प्रव्रजन होता रहा। कुछ बचे-खुचे पुण्य-कर्म के कारण वे अब तुम्हारे पुत्र बने हैं। पर सांसारिक शास्त्र सीखना व्यर्थ है। उनसे कुछ भी नहीं मिल सकता। भला वे तथागत के उस सद्धर्म के सामने कैसे ठहर सकते हैं जो लोगों को मृत्यु लोक में सुख और प्रज्ञा प्रदान करता है? भूत काल में दक्षिण सागर के तट पर एक सूखा हुआ वृक्ष था और उसके कोटरों में पांच सौ चमगादड़ रहते थे। व्यापारियों के एक दल ने वृक्ष के नीचे पड़ाव डाला। तब वायु चल रही थी। तिस पर ठंडक भी थी। भूख एवं ठंड के मारे व्यापारीगण कुछ लकड़ियां बीन लाए और वृक्ष के नीचे अलाव लगाया। अग्नि धू-धू करने लगी जिससे सूखा वृक्ष भी जलने लगा। व्यापारियों में से एक ने आधी रात के उपरांत 'अभिधर्म सूत्रों' का पाठ करना आरंभ किया। वे चमगादड़ आग से घिरे हुए तो थे, किन्तु वे बौद्ध सूत्रों का पाठ सुनने में रुचि ले रहे थे और कोटरों से उड़ कर बाहर निकलना नहीं चाहते थे। परिणामस्वरूप वे सबके सब झुलस गए। अपने अर्जित पुण्य-कर्मों के कारण उन्होंने मनुष्यों का रूप धारण कर लिया। वे प्रव्राजक बने। सूत्रों का पाठ सुन लेने के फलस्वरूप वे बुद्धिमान और प्रतिभाशाली निकले। सबके सब अर्हंत बन गए और मनुष्य लोक में पुण्य-फल चाहने वालों के लिए आदर्श बने। कुछ समय पूर्व सम्राट कनिष्क और पूजनीय पार्श्व ने काश्मीर में पांच सौ अर्हंतों को बुलाकर 'अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र' प्रतिपादित किया। वे अर्हंत सूखे वृक्ष में रहने वाले पांच सौ चमगादड़ ही थे। मैं तो अयोग्य ठहरा, फिर भी उनमें से एक ही तो हूं। इससे उत्कृष्ट एवं निकृष्ट में भेद ज्ञात हो सकता है। कोई उड़ता है, कोई दुबक कर बैठा रहता है। इसमें भी भिन्नता है। तुम अपने सुपुत्र को प्रव्रज्या करने की अनुमति दो। प्रव्रज्या कर जो पुण्य कर्म किया जाएगा, उसे जिह्वा पर लाने की शक्ति नहीं है।" इतना कह कर अर्हंत

अलौकिक शक्ति प्रदर्शित कर अन्तर्धान हो गए। ब्राह्मण के मन में आस्था और श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह देर तक चमत्कृत बना रहा। फिर उसने सारी कहानी अपने पड़ोसियों को सुनाई और अपने पुत्र को सद्धर्म में दीक्षित होने दिया। स्वयं वह भी धर्म परिवर्तित कर बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों की पूजा करने लगा। पड़ोसी भी उससे प्रभावित हो सद्धर्म ग्रहण करने लगे। वे बुद्ध के बड़े भक्त बन गए।

उडखंद नगर से उत्तर में पर्वतों और नदियों को पार कर छः सौ ली दूर चलने के उपरांत मैंने उद्यान में प्रवेश किया। (यह राज्य उत्तरापथ में अवस्थित था)।

खण्ड तीन

उद्यान

उद्यान की परिधि पांच हजार ली से अधिक थी। इसमें ऊंचे-ऊंचे पर्वतों एवं गहरी घाटियों की शृंखलाएं फैली हुई थीं। नदी-नाले और दलदल परस्पर जुड़े हुए थे। अनाज की खेती अवश्य होती थी, पर भूमि उर्वर नहीं थी, इसलिए अनाज का उत्पादन अधिक नहीं था। अंगूर बहुतायत से मिलता था, जबकि गन्ने का क्वचित ही उत्पादन होता था। सोने और लोहे के भण्डार थे। केसर की खेती के लिए अनुकूल स्थितियां थीं। हरे-भरे वन-उपवन थे। फल-फूल प्रचुरता से मिलते थे। न उष्णता थी, न ठंड। जलवायु अनुकूल थी। लोग भीरु और कपटी थे। वे अध्ययनशील तो थे, किन्तु किसी विषय विशेष पर उनका अधिकार नहीं था। मंत्र फूंकना उनका धंधा था। उनके परिधान अधिकतर श्वेत सूती कपड़े से बने थे। बोलचाल की भाषा भारत से भिन्न थी, तथापि उससे प्रायः मिलती-जुलती थी। लिखित भाषा और शिष्ट रीति का भी भारत से घनिष्ठ संबंध था। लोग बड़ी श्रद्धा से बौद्ध धर्म को मानते थे और महायान में ही विश्वास करते थे। अतीत में शुभ-वस्तु नदी के दोनों तटों पर एक हजार चार सौ संघाराम थे। अब तो उनमें से अधिकतर उजड़ चुके थे। भूत काल में अठारह हजार भिक्षु थे। उनकी संख्या अब घटती चली गई थी। वे सभी महायानी थे एवं ध्यान लगाए बैठे रहते थे। वे सूत्रों का पाठ करने में निपुण थे, लेकिन उनका अर्थ जानने का प्रयास नहीं करते थे। वे अपने नियमों का कड़ाई से पालन करते थे और धारणियां जपने में विशेष कर पारंगत थे। कहते थे कि विनय के पांच निकाय थे अर्थात धर्मगुप्त, महाशासक, काश्यपीय, सर्वास्तिवाद एवं महासांघिक। दससे अधिक देव-मंदिर थे और तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। पूरे राज्य में चार-पांच सुरक्षित नगर थे। पर राजा बहुधा मिंगोरा नगर में ही वास करता था। इस नगर की परिधि सोलह-सत्रह ली थी। जनसंख्या अधिक थी।

एक. क्षांत ऋषि संबंधी अवशेष

मिंगोरा नगर से चार-पांच ली दूर पूर्व में एक बड़ा स्तूप था, जो बहुधा अलौकिक शक्ति

प्रदर्शित करता था। यह स्तूप जिस स्थल में खड़ा था, उसी स्थल में जब तथागत क्षांत ऋषि थे, तब उनका राजा कलि द्वारा अंग-भंग कर दिया गया था।

दो. अपलाल नाग स्रोत एवं बुद्ध संबंधी अवशेष

मिंगोरा नगर से लगभग दो सौ पचास ली दूर उत्तर-पूर्व में एक पर्वत पर अपलाल नाग स्रोत था। यह शुभवस्तु नदी का उद्गम था। इसकी जल-धारा दक्षिण-पश्चिम की दिशा में बह निकलती थी। वसंत एवं ग्रीष्म में जल ठंडा रहता था। सुबह एवं शाम इससे छिटकते जल-कण इन्द्रधनुष जैसे सतरंगी होते थे और चारों दिशाएं शोभायमान हो जाती थीं। यह नाग काश्यप बुद्ध के समय एक मनुष्य था। उसका नाम था गंगी। उसने अपने मंत्रों से नाग पर नियंत्रण कर लिया था तथा उसे मूसलाधार वृष्टि बरसाने से रोक दिया था। उसके इस योगदान के ही कारण जन-साधारण के घरों में अतिरिक्त अनाज के सुरक्षित भंडार बन सके थे। उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिए प्रत्येक परिवार 30 सेर अनाज उसे अर्पित करता था। कालांतर में कुछ व्यक्ति उसे अनाज देने के कर्तव्य से विमुख हो गए। क्रुद्ध हो कर गंगी ने अगले जन्म में एक उत्पाती नाग बन कर आंधी और मेह से फसलों को नष्ट करने की शपथ ली। मृत्यु के उपरान्त उसका यहीं पर नाग के रूप में पुनर्जन्म हुआ। स्रोत से श्वेत जल बह निकलने लगा और खेतों में उपजें नष्ट होने लगीं। शाक्य मुनि हृदय में करुणा भरे मनुष्य लोक पर शासन चलाते थे। उन्हें इस राज्य की प्रजा पर दया आई कि उसे अकेले ही ऐसी विपत्ति झेलनी पड़ रही थी। वे इस उत्पाती नाग को दीक्षित करने हेतु दिव्य शक्ति से यहां आए। वज्रपाणि ने पर्वत पर वज्र दे मारा, जिससे नाग भयभीत हो उठा तथा बाहर निकलकर सद्धर्म में दीक्षित हुआ। बुद्ध की देशना सुन कर उसका चित्त शुद्ध हो गया तथा सद्धर्म का परमार्थ उसकी समझ में आ गया। तथागत ने उससे उपजों का नाश न करने को कहा। नाग बोला : "मेरा आहार खेतों की उपजें ही हैं। आपकी दीक्षा पा कर मैं कृतज्ञ हूं। पर इस प्रकार मेरा जीवन कदाचित दूभर हो जायगा। आप आज्ञा दें कि मैं प्रत्येक बारह वर्षों में एक बार अनाज का भंडारण करूं।" तथागत ने उसकी बात का आशय समझ लिया तथा करुणापूर्वक उसे ऐसा करने की अनुमति दे दी। तब से प्रत्येक बारह वर्ष के उपरान्त एक बार श्वेत जल तटबंधों को तोड़ने लगा।

अपलाल नाग स्रोत से तीस ली से अधिक दूर दक्षिण-पश्चिम में नदी के उत्तर तट पर एक विशाल व समतल शिला पर तथागत के पदचिह्न दिखाई पड़ते थे। धर्म-निष्ठा में अन्तर के कारण ये पदचिह्न नापे जाने पर कभी लम्बे हो जाते थे तो कभी छोटे। ये पदचिह्न तथागत ने तब छोड़े थे जबकि उत्पाती नाग को वश में करने के उपरान्त उन्होंने

यहां से प्रस्थान किया था। परवर्तियों ने इन पदचिह्नों को सुरक्षित रखने हेतु उनके ऊपर प्रस्तर का एक कक्ष बनाया। दूर एवं निकट के लोग यहां ग्रा कर फूल ग्रौर धूप चढ़ाते थे। नदी के साथ-साथ नीचे तीस ली के लगभग दूर स्थल पर वह शिला पाई जाती थी, जिस पर तथागत ने संघाटी धोई थी। शिला पर संघाटी की रेखाएं जैसे खुदी हुई थीं ग्रौर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थीं।

तीन. हिड्डु पर्वत

मिंगोरा नगर से कोई चार सौ ली दूर दक्षिण में हिड्डु पर्वत स्थित था। घाटी में जल-धारा पश्चिम की दिशा में बह जाती थी। पूर्व ग्रर्थात जल-धारा के ऊपरी भाग की दिशा में बढ़ते हुए यह देखा जा सकता था कि नाना फूल एवं फल जल-धारा को ढके हुए थे ग्रौर ढालों पर चढ़े हुए थे। चोटियों की चट्टानों पर चढ़ना ग्रत्यन्त कठिन था। घाटी टेढ़ी-मेढ़ी थी। कभी शोरगुल एवं बातचीत के स्वर सुनाई पड़ते थे, तो कभी संगीत के शब्द। चौकोर शिलाएं पलंग जैसी लगती थीं, मानों खोदकर बनाई गई हों। ये शिलाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई घाटी में जहां-तहां फैली हुई थीं, यह वही स्थल था, जहां तथागत ने सद्धर्म की ग्राधी गाथा सुनने के लिए ग्रपने प्राण न्योछावर कर दिए थे।

चार. महावन संघाराम

मिंगोरा नगर से कोई दो सौ ली दूर दक्षिण में एक पर्वत की तलहटी में महावन संघाराम ग्रवस्थित था। जब तथागत बोधिसत्व बनने के लिए साधना कर रहे थे, तब वे सर्वदत्त नामक राजा थे। शत्रु से बचने हेतु वे प्रासाद के बदले चुपके से यहां ग्रा गए। एक दीन ब्राह्मण से उनका सामना हुग्रा। ब्राह्मण ने उनसे भिक्षा मांगी। राजच्युत हो उनके पास कोई ऐसी वस्तु न थी, जिसका वे दान कर सकते। तब उन्होंने ब्राह्मण से ग्रपने को रस्सी से बांध शत्रु राजा के यहां ले जाने को कहा। इसके लिए ब्राह्मण को पुरस्कार मिला। यही उनका दान था।

पांच. मयू संघाराम

महावन संघाराम की उत्तर-पश्चिम दिशा में पर्वत से नीचे तीस-चालीस ली दूर चलने पर मयू संघाराम पाया जाता था। उसमें एक सौ छि से ग्रधिक ऊंचा एक स्तूप था। उसके

निकट एक विशाल चौकोर शिला पर तथागत के पदचिह्न थे। तथागत ने इस शिला पर खड़े हो कोटि-कोटि किरणें फेंक कर महावन संघाराम को प्रकाशमान कर दिया था और मनुष्य एवं देवों को जातक कथाएं सुनाई थीं। स्तूप के आधार में एक पीलापन लिए श्वेत शिला थी जो बहुधा स्निग्ध रहती थी। तथागत जब यहां बोधिसत्व के रूप में साधना करते थे, तब सद्धर्म के मत सुनने हेतु उन्होंने अपनी एक हड्डी निकालकर उससे सूत्र लिखे थे।

छः. राजा शिविक की जातक कथा

मयू संघाराम से लगभग सत्तर ली दूर पश्चिम में एक स्तूप खड़ा था, जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था। जब तथागत बोधिसत्व के रूप में साधना करते थे, तब वे एक राजा थे और उनका नाम था शिविक। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने छुरी से अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर चील के चंगुल से एक कपोतक का उद्धार किया था।

सात. सर्पोषधि संघाराम एवं बुद्ध की जातक कथा

कपोतक-उद्धार-स्थल से कोई दो सौ ली दूर उत्तर-पश्चिम में सनिराजा नदी घाटी में सर्पोषधि संघाराम स्थित था। उसमें एक अस्सी छि ऊंचा स्तूप था। जब तथागत इन्द्र के रूप में अवतरित हुए थे, तब अकाल पड़ा था और महामारी फैल गई थी। उपचार से कोई लाभ न हो सका। मार्गों पर यत्र-तत्र शव पड़े हुए दिखाई देते थे। इन्द्र के हृदय में करुणा की भावना उमड़ आई। प्राणियों को इस विपत्ति से उबारने के उद्देश्य से उन्होंने एक भीमकाय सर्प का रूप धारण कर लिया। सर्प मृत बन घाटी में जा लेटा। शून्य से इस बात की घोषणा की गई। यह सुन कर प्राणी कृतज्ञ भी हुए एवं प्रसन्न भी। वे घाटी की ओर दौड़ पड़े। सर्प का मांस काटने पर फिर निकल आता था। फलस्वरूप प्राणियों की भूख मिट गई और उन्हें रोग से भी छुटकारा मिल गया। संघाराम के समीप वृहद सूम स्तूप था। भूत काल में जब तथागत इन्द्र के रूप में अवतरित हुए थे तब महामारी बढ़ती जा रही थी। प्राणियों पर तरस खा कर उन्होंने सूम नाग का रूप धारण कर लिया। सूम का मांस खा लेने पर हर व्यक्ति भला-चंगा एवं प्रसन्न हो जाता था। सनिराजा नदी के उत्तर में खड़ी चट्टानों के निकट एक स्तूप था। प्रार्थना करने पर रोगियों में से अधिकांश देव की कृपा से रोग से मुक्त हो जाते थे। जब तथागत एक मयूरराज के रूप में अवतरित हुए थे, तब वे अन्य मयूरों के संग यहां आए थे। उष्णता एवं प्यास असहनीय हो रही थी, परन्तु कहीं जल न मिल पाया। मयूरराज ने चोंच से चट्टान को फोड़ा और वहां एक सोता फूट निकला। अब यहां एक जलकुंड बन गया। इसका जल पी लेने अथवा इसमें स्नान

करने से रोगों का उपचार हो जाता था। चट्टान पर मयूर के चरणचिह्न अब भी दिखाई देते थे।

आठ. राजा उत्तरसेन स्तूप

मिंगोरा नगर से कोई सत्तर ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक बड़ी नदी के पूर्व में जो साठ छि ऊंचा स्तूप खड़ा था, वह राजा उत्तरसेन द्वारा खड़ा करवाया गया था। जब तथागत का परिनिर्वाण होने को था, तब उन्होंने शिष्यों से कहा : "मेरे परिनिर्वाण के उपरान्त मेरी अस्थियों का एक अंश उद्यान के राजा उत्तरसेन को दे देना।" बाद में जब विभिन्न राजा-महाराजाओं ने आपस में तथागत की अस्थियों का समान भागों में बंटवारा करना चाहा, तब राजा उत्तरसेन आया। अन्य राजाओं ने उसकी उपेक्षा की। इतने में देवों और मनुष्यों ने तथागत का अंतिम आदेश घोषित किया। तब कहीं राजा उत्तरसेन को भी अन्यों की भांति तथागत की अस्थियों का एक अंश प्राप्त हुआ। स्वदेश लौटने पर उन्होंने तथागत की अस्थियां सुरक्षित रखने हेतु यह स्तूप बनवाया था। स्तूप के निकट नदी के तट पर एक विशाल शिला थी, जो देखने में हाथी-सी लगती थी। जब राजा उत्तरसेन तथागत की अस्थियां एक हाथी पर लाद स्वदेश लौटते हुए यहां आया था, हाथी एकाएक क्रुद्ध हो कर पृथ्वी पर गिर कर मर गया और एक शिला बन गया। इसी शिला के निकट एक स्तूप था।

नौ. रोहितक स्तूप, अद्भुत स्तूप एवं बोधिसत्व अवलोकितेश्वर चैत्य-विहार

मिंगोरा नगर से कोई पचास ली दूर पश्चिम में एक बड़ी नदी के उस पार रोहितक स्तूप स्थित था, जो पचास छि से अधिक ऊंचा था। यह स्तूप सम्राट अशोक ने बनवाया था। जब तथागत बोधिसत्व के रूप में साधना करते थे, तब वे एक महाराजा बन गए। उनका नाम मैत्रीबल था। उन्होंने यहीं पर अपने शरीर पर घाव कर अपना रक्त पांच यक्षों को पिलाया था।

मिंगोरा नगर से तीस ली दूर उत्तर-पूर्व में अद्भुत स्तूप था। वह चालीस छि से अधिक ऊंचा था। यहीं तथागत ने मनुष्य एवं देवों को उपदेश दिए थे। उनके चले जाने के पश्चात यह प्रस्तर स्तूप भूमि के गर्भ से निकल आया। प्रजा बड़ी श्रद्धा से उस पर सुगंधित फूल चढ़ाती थी।

इस प्रस्तर स्तूप के पश्चिम में नदी के उस पार तीस-चालीस ली दूर स्थान पर एक चैत्य-विहार विद्यमान था। चैत्य-विहार में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति सुशोभित थी। उसकी दिव्य शक्ति का चमत्कारिक प्रदर्शन होता रहता था जिसे कोई भी देख सकता था। भिक्षुओं का तांता लगा रहता था और उसकी पूजा निरन्तर की जाती थी।

दस. लम्बौर[1] पर्वत पर नाग-तालाब एवं उद्यान के राजवंश की कथा

बोधिसत्व अवलोकितेश्वर प्रतिमा से कोई डेढ़ सौ ली दूर उत्तर-पश्चिम में लम्बौर पर्वत स्थित था। पर्वत के शिखर पर नाग-तालाब था, जिसकी परिधि तीस ली से अधिक थी। विशाल तालाब पर जैसे कुहरा सा छाया रहता था एवं इसका जल शीशे की भांति स्वच्छ था।

भूत काल में जब राजा विडुडभ ने शाक्यों पर चढ़ाई की, तब चार शाक्यों ने उसके सैनिकों का प्रतिरोध किया। इसी कारण उनके कुटुम्बों के लोगों को देशनिकाला दे दिया गया और वे विभिन्न दिशाओं में भाग गए। उनमें से एक शाक्य अपने देश की राजधानी से निकलने के बाद थकावट के कारण आधे रास्ते में ही रुक गया। इतने में एक हंस उड़ता हुआ उसके सामने उतर गया। हंस को अपने वश में कर वह उसकी पीठ पर बैठ गया। हंस ने उड़ान भरी और वह उड़ता हुआ इस तालाब के तट पर उतरा। वह शाक्य भी आकाश में यात्रा करते हुए दूर परदेश में आ गया। रास्ता भूल कर वह एक वृक्ष के नीचे कपड़े उतारे बिना ही सो गया। तालाब में नागराज की पुत्री क्रीड़ा कर रही थी। सहसा उसका ध्यान उस शाक्य पर गया। नाग के रूप से कहीं वह सहम न जाए, इसलिए उसने एक लड़की का रूप धारण कर आगे बढ़ शाक्य के शरीर को छुआ। शाक्य की नींद टूट गई। उसने लड़की से पूछा : "मैं असहाय हूं, मारा-मारा फिर रहा हूं। मुझसे तुम्हारा इतना अनुराग क्यों ?" उसने छेड़-छेड़ कर लड़की को मैथुन के लिए विवश कर दिया। लड़की बोली : "यदि मेरे मां-बाप आज्ञा दें तो मैं तुम्हारी मांग पूरी करूंगी। मुझ पर तुम्हारी कृपादृष्टि अवश्य पड़ी है, किन्तु मुझे मां-बाप से आज्ञा नहीं मिली।" शाक्य ने पूछा :" यह तो एक गहरी एवं अंधेरी घाटी है। तुम्हारा घर कहां है ?" लड़की ने उत्तर दिया : "मैं इस तालाब के नाग-राज की पुत्री हूं। मुझे यह संवाद मिला कि तुम्हारा वंश निष्कासित हुआ है। संयोग की बात है कि मैं क्रीड़ा के लिए निकली और मैंने तुम्हें ढाढ़स बंधाने की धृष्टता की। तुमने

1. इस पर्वत के संस्कृत नाम पर विद्वानों में मतभेद है। किसी का मानना है कि इसका नाम लंपोलु होना चाहिए। किसी ने इसका नाम रावोर बताया है।

मुझसे मैथुन करने को कहा, पर मैंने अपने मां-बाप से अनुमति नहीं ली। मैं तो पहले ही पिछले जन्म में किए पाप के कारण नाग का रूप धारण किए हुए हूं। मनुष्य और पशु भिन्न जातियों के हैं। मैं वैसा नहीं करूंगी।" शाक्य ने कहा : "मेरा मनोरथ तभी पूरा होगा जबकि तुम मेरी बात मान लोगी।" नागराज की पुत्री बोली : "मैं तुम्हारे आदेश का पालन करूंगी। जैसा तुम चाहोगे वैसा ही करूंगी।" शाक्य ने शपथ लेते हुए कहा : "अपने पुण्य-कर्म की समूची शक्ति से नागराज की इस पुत्री को मनुष्य में बदल दूंगा।" उसकी धर्म-निष्ठा से देव प्रभावित हुए और अन्ततः नाग-पुत्री का रूप बदल गया। मनुष्य रूप में परिणत हो जाने पर लड़की फूली न समाई। उसने शाक्य से कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा : "पिछले जन्म में अपने किए पाप के कारण मेरा नीच जीवों के रूप में पुनर्जन्म होता रहा था। यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने आपकी कृपा पाई और आपकी धर्मनिष्ठा का मुझ पर प्रभाव पड़ा, जिससे कल्पों से मेरा जर्जर शरीर तुरन्त बदल गया। मेरे टुकड़े टुकड़े कर दिए जाने पर भी तुम्हारे इतने बड़े उपकार का बदला चुकाया नहीं जा सकता। मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हारी जीवन-संगिनी बनूं। पर लोकापवाद से डरती हूं। मैं अपने मां-बाप की आज्ञा चाहती हूं, फिर हमारा विवाह हो सकेगा।" नाग-पुत्री ने तालाब में लौट कर अपने मां-बाप से कहा : "आज मैं क्रीड़ा के लिए निकली थी तभी सहसा एक शाक्य से मेरी भेंट हो गई। उसकी धर्मनिष्ठा से प्रभावित हो देवों ने मुझे मनुष्य रूप में परिणत कर दिया है। मेरी कामना उसके साथ विवाह के बंधन में बंधने की है। अब पूरी कहानी सुना कर आपकी अनुमति लेना चाहती हूं।" नागराज पुत्री के मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म पर प्रसन्न हुआ और फिर उसने पवित्र वंश को भी बड़ा महत्व दिया। इसलिए उसने पुत्री का अनुरोध पूरा किया। वह तालाब से बाहर निकलकर शाक्य से बोला : "तुम हम अमनुष्यों की उपेक्षा नहीं करते और अपनी ऊंची जाति का ध्यान न रख हम नीच जाति के साथ समानता का व्यवहार करते हो। आशा है कि तुम हमारे घर पधारोगे। मैं अपनी पुत्री झाड़ू लगाने के लिए तुम्हें दे दूंगा।" नागराज का आमंत्रण स्वीकार कर शाक्य उसके घर गया। नागराज के प्रासाद में ही विवाह संपन्न हुआ। शाक्य ने सुहागरात्रि मनायी। उसकी प्रसन्नता की सीमा न थी। नाग का रंगरूप देख कर शाक्य के मन में भय भी उत्पन्न हुआ और घृणा भी। उसने वहां से चला जाना चाहा। नागराज ने उसे रोकते हुए कहा : "हम से दूर मत जाओ। कहीं समीप ही बस जाओ। मैं तुम्हें एक राज्य दिला दूंगा। तुम राजा बनोगे, मंत्रियों एवं प्रजा को अपने अधिकार में करोगे और फिर तुम्हारा राजवंश दीर्घकालीन होगा।" शाक्य ने अस्वीकृति जताते हुए कहा : "मुझमें इतनी महत आशा रखने का साहस नहीं है।" नागराज ने एक खड्ग पिटारी में रखी और ऊपर से एक बढ़िया श्वेत कंबल डाल दिया। इतना करके उसने शाक्य से कहा : "तुम यह कंबल ले जा कर राजा को अर्पित करो। राजा तुम्हारे जैसे दूर परदेश से आने वाले का उपहार अवश्य स्वयं ग्रहण करेगा। तब तुम अवसर

से लाभ उठाकर इस खड्ग को उसके गले में घोंप देना। फिर उसके राज्य पर तुम्हारा ही अधिकार हो जाएगा। क्या यह अच्छा न होगा ?" नागराज की बात मान शाक्य राजा को भेंट अर्पित करने गया। उद्यान का राजा स्वयं श्वेत कंबल ग्रहण करने आगे बढ़ा। तभी शाक्य ने उसकी बांह पकड़ उसके शरीर में खड्ग घोंप दी। राजसभा में मंत्रियों और रक्षकों में भगदड़ मच गई। वायु में खड्ग लहराते हुए शाक्य बोला : "मेरे हाथ में जो खड्ग है, वह दैवी नाग ने दी है। उससे मैं उन सभी लोगों को मार डालूंगा जो मेरी अधीनता स्वीकार करने में विलम्ब करेंगे या मेरी अधीनता नहीं मानेंगे।" उसके तेवर से सभी भयभीत हो गए और उनसे समर्थन पा कर वह राजगद्दी पर बैठ गया। उसने पुरानी बुराइयों को ध्यान में रख नई नीतियां बनायीं, संतों की प्रशस्ति की और दीन-दुखियों को सहायता दी। फिर उसने सेना ले कर ठाट-बाट से नागराज के प्रासाद जा कर पूरी कहानी सुनाई और वह नागराज की पुत्री को अपनी राजधानी में लिवा लाया। नागराज की पुत्री के पिछले कर्म-फल पूरी तरह समाप्त नहीं हुए थे। अभी कुछ बचे थे। प्रत्येक बार संभोग के अनंतर उसके कपाल पर नाग के नौ सिर उग आते थे। यह देख कर शाक्य हतप्रभ रह जाता था एवं असमंजस में पड़ जाता था। अन्त में जब वह सो गई, शाक्य ने तीक्ष्ण तलवार से वे समस्त नौ सिर काट डाले। नागराज की पुत्री की निद्रा टूट गई। वह बोली : "तुमने अपनी संतानों के लिए अच्छा नहीं किया। इससे न केवल मेरे प्राण को थोड़ी क्षति पहुंची है, बल्कि तुम्हारे पुत्र एवं पौत्रों के सिर में भी पीड़ा होती रहेगी।" इसलिए इस राजकुल के वंशज बहुधा इस व्याधि से पीड़ित होते थे। सिर में पीड़ा निरन्तर तो नहीं होती थी, किन्तु समय-समय पर अवश्य होती थी। शाक्य के निधन के पश्चात उसके पुत्र का राज्याभिषेक हुआ। वह था राजा उत्तरसेन।

उत्तरसेन के राज्यारोहण के अनंतर उसकी माता की आंखों की ज्योति जाती रही। तथागत अपलाल नागराज को वश में कर कुशीनगर वापस लौटते हुए आकाश मार्ग से उत्तरसेन के प्रासाद में उतर आए। तब उत्तरसेन आखेट के लिए बाहर गए हुए थे। तथागत ने उसकी माता को संक्षेप में बौद्ध धर्म के तत्व बताए। यह सुनते ही उसकी आंखों की ज्योति वापस लौट आई। तथागत ने उससे पूछा : "तुम्हारा पुत्र मेरे वंश का है। वह कहां गया ?" उत्तरसेन की माता ने उत्तर दिया : "आखेट के लिए निकला है। शीघ्र ही वापस आ जाए-गा।" तथागत एवं भिक्षुगण जाने को उद्यत हुए। यह देख कर उत्तरसेन की माता बोली : "मेरा सौभाग्य है कि मेरी कोख से पवित्र वंश की संतान निकली है। तथागत, आपने मुझ पर दया की और स्वयं यहां पदार्पण किया। मेरा पुत्र शीघ्र ही आ जाएगा। आप थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिए।" भगवान ने कहा : "वह मेरे वंश का है। सद्धर्म के उपदेश सुनने पर ही उसमें बोध होगा। यह आवश्यक नहीं कि स्वयं मैं उसे देशना दूं। मैं चलता हूं। उसे बता देना : 'तथागत यहां से कुशीनगर जा रहे हैं। शालवृक्षों के मध्य उनका परि-

निर्वाण होने को है। तुम उनकी अस्थियां लेने जाओ और उनकी सेवा करो।'" तथागत और भिक्षुगण ऊपर उठ कर आकाश में चले गए। उस समय उत्तरसेन आखेट कर रहा था। दूर से राजप्रासाद में फैलती प्रभा को देख कर उसे आशंका हुई कि कदाचित आग लग गई है। आखेट के अनन्तर जब वह लौटा, तो उसने पाया कि उसकी माता की आंखों में ज्योति वापस लौट आई है। प्रसन्न मुद्रा में उसने अपनी माता से पूछा : "मुझे बाहर गए थोड़ी देर हुई कि ऐसी कौनसी मंगल बात हो गई जिससे मेरी पूज्य माता की आंखों में ज्योति वापस लौट आई है ?" उसकी माता ने उसे बताया : "तुम्हारे चले जाने के पश्चात तथागत यहां पधारे थे। उनके धर्मोपदेश सुन कर ही मेरी आंखों में ज्योति फिर लौट आई है। तथागत कुशीनगर के शालवृक्षों के मध्य गए हैं। उनका परिनिर्वाण होने को है। उन्होंने तुमसे उनकी अस्थियां लेने शीघ्र जाने को कहा है।" यह सुन कर उत्तरसेन बिलख उठा और पैर पटक-पटक कर मूर्च्छित हो गया। बड़ी देर बाद उसमें चैतन्य आया। उसने सारथी को तुरन्त शालवन जाने को कहा। जब वह शालवन पहुंचा, तब बुद्ध को परिनिर्वाण प्राप्त हो चुका था। वहां उपस्थित राजा-महाराजाओं ने सीमांत प्रदेश से आए उत्तरसेन को तिरस्कार की दृष्टि से देखा और बुद्ध की अस्थियों को रत्न कह कर उसे देना नहीं चाहा। तभी देवों और प्राणियों ने बुद्ध की आज्ञा सुनाई। यह सुन कर ही राजा-महाराजाओं ने उत्तरसेन को अस्थियों का एक अंश दिया।

ग्यारह. दरद नदी-घाटी

मिंगोरा नगर से उत्तर-पूर्व की दिशा में घाटियों को पार करते हुए सिंधु नदी के ऊपरी भाग की ओर बढ़ने में रास्ता दुर्गम था और घाटियों में अंधेरा छाया रहता था। कभी रस्सियों के पुल का सहारा लेना पड़ता था, कभी लोहे की सांकल का। पुल अधर में लटके हुए थे और भयजनक लगते थे। खूंटियों पर पैर रख आगे बढ़ा जा सकता था। इस तरह एक हजार ली लम्बी यात्रा के बाद ही दरद नदी घाटी सामने आई। उसी में उद्यान की पुरानी राजधानी थी। घाटी में सोना और केसर बहुतायत से मिलते थे। बृहद संघाराम के समीप बोधिसत्व मैत्रेय की एक स्वर्ण रंग की काष्ठ-मूर्ति सुशोभित थी। उसमें अलौकिक शक्ति थी। यह मूर्ति सौ छि से अधिक ऊंची थी और अर्हत मध्यांतिक द्वारा बनवाई गई थी। अर्हत अपनी दिव्य शक्ति से तीन बार शिल्पी को तुषित स्वर्ग में ले गए, जिससे शिल्पी को बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन करने के अवसर मिले। तब कहीं जा कर वह यह मूर्ति बनाने में सफल हुआ। इस मूर्ति की स्थापना के बाद ही सद्धर्म पूर्व की ओर प्रचारित होता गया था।

यहां से पूर्व में पर्वतों एवं घाटियों को पार करते हुए सिंधु नदी के ऊपरी भाग की ओर

बढ़ने पर मैंने झूलते पुलों और सेतुओं को पार किया और अनेक विपत्तियां झेलीं। इस प्रकार पांच सौ ली लम्बी यात्रा के अनन्तर मैंने बलूर की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

बलूर

बलूर की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। यह राज्य हिमगिरि में अवस्थित था। पूर्व से पश्चिम तक लम्बा था और दक्षिण से उत्तर तक संकीर्ण। गेहूं और दलहन का उत्पादन बहुत होता था। सोने और चांदी के भंडार थे, जिससे राज्य संपन्न हुआ। जलवायु ठंडी थी। लोग क्रूर स्वभाव के थे, नीति-दर्शन को महत्व नहीं देते थे और शिष्ट रीति से अज्ञान थे। वे कुरूप होते थे और ऊनी वस्त्र पहनते थे। लिपि भारत से मिलती-जुलती थी, किन्तु बोल-चाल की भाषा भिन्न थी। सैकड़ों संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या कई हजार थी। वे किसी विशिष्ट मत का अध्ययन नहीं करते थे और संघ के नियमों का पालन भी नहीं करते थे।

यहां से मैं फिर उडखंद नगर वापस लौट गया। दक्षिण की दिशा में मैंने सिंधु नदी पार की। नदी तीन-चार ली चौड़ी थी और दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती थी। जल शीशे की भांति स्वच्छ था। हलकी-हलकी तरंगें उमड़ती थीं। जल कल-कल शब्द करता रहता था। विषैले नागों और नरभक्षी पशुओं ने नदी में अपनी मांदें बनाई थीं। यदि कोई अपने मूल्यवान रत्न, अद्‌भुत पुष्पों एवं फलों के बीज और बुद्ध की अस्थियां लिए नदी के उस पार जाना चाहता था, तो उसकी नौका बहुधा डूब जाती थी। नदी पार करने पर मैंने तक्षशिला की सीमा में कदम रखा। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

तक्षशिला

तक्षशिला की परिधि कोई दो हजार ली थी। राजधानी की परिधि दस ली से अधिक। राज्य में युद्धवीर स्पर्द्धा में संलग्न थे और राजवंश की समाप्ति हो चुकी थी। पहले यह राज्य कापिशी के अधीनस्थ था। कुछ समय पूर्व इसने काश्मीर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। भूमि उर्वर कही जा सकती थी। उपजें, झरने और फल-फूल बहुतायत से मिलते थे। जलवायु सुहावनी थी। लोग साहसी थे और त्रिरत्नों की पूजा करते थे। संघारामों की संख्या अधिक तो थी, परन्तु अधिकतर जर्जर हो चुके थे। भिक्षु कुछ ही थे और वे सभी महायानी थे।

एक. एलापत्र नाग कुंड

राजधानी से लगभग सत्तर ली से दूर उत्तर-पश्चिम में एलापत्र नाग कुंड था, जिसकी परिधि कोई सौ कदम थी। इसका जल निर्मल था। कुंड में नाना रंगों के कमल चटके हुए थे, जिससे सुन्दर छवि बनती थी। यह एलापत्र नाग वह भिक्षु था, जिसने काश्यप बुद्ध के समय में एलावृक्ष को नष्ट कर दिया था। इसलिए स्थानीय लोग जब वर्षा या धूप के लिए प्रार्थना करने यहां आते थे, तब एक भिक्षु को अवश्य साथ लिए आते थे। वे चुटकी बजा कर नाग का अभिवादन करते थे और इस प्रकार उनका मनोरथ पूरा हो जाता था।

दो. चार निधियों में से एक

नाग कुंड से कोई तीस ली दूर दक्षिण-पूर्व में दो पर्वतों के मध्य एक सौ छि से अधिक ऊंचा स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। तथागत ने अपने जीवन-काल में यह भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में जब मैत्रेय भगवान मनुष्य लोक में अवतरित होंगे, तो स्वाभाविक रूप से चार निधियां प्रकाश में आएंगी। यह तीर्थ उनमें से एक ही था। स्थानीय लोगों का कहना था कि भूचाल के समय सभी पर्वत हिलते-डुलते थे, केवल इस स्तूप के ईर्द-गिर्द सौ कदमों की परिधि में पृथ्वी टस से मस नहीं होती थी। कुछ मूर्खों ने निधि को खोद निकालने की चेष्टाएं कीं, लेकिन ऐसे अवसरों पर सदैव भूचाल आ जाते और वे गिर पड़ते थे। स्तूप के समीप एक जर्जर संघाराम था। उसमें कब से कोई भिक्षु नहीं रहता था।

तीन. शीश-दान स्तूप

राजधानी से लगभग तेरह ली दूर उत्तर में एक अशोक स्तूप खड़ा था। उपवास के दिन वह बहुधा प्रकाशमान हो जाता था। कभी-कभी दैवी फूल देखे जा सकते थे और दैवी संगीत भी सुना जा सकता था। स्थानीय लोगों का कहना था कि अर्वाचीन काल में एक कुष्ठरोगिणी स्त्री ने दूसरों की दृष्टि बचा कर इस स्तूप के सामने आ कर अपने को धिक्कारा, फिर पूजा की एवं प्रायश्चित किया। उसने प्रांगण में पड़े मल को दूर किया; झाड़ू लगाई, सुगंधित लेप लगाया और फूल बिखेरे। वह उत्पल के फूल तोड़ लाई और उनसे पुनः पृथ्वी को ढक दिया। वह कुष्ठरोग से मुक्त हो गई और उसका रंग-रूप भी निखर आया। उसके शरीर से उत्पल की सी सुगंधि फैलने लगी। इसी रमणीक स्थल पर जब तथागत बोधिसत्व

के रूप में साधना करते थे, तब वे चन्द्रप्रभ नामक राजा थे। बोधि-प्राप्ति के लिए उन्होंने अपना सिर काट कर दूसरे को दान में दिया। वे एक हजार जन्मों तक ऐसा दान करते रहे थे।

चार. जहां शास्त्राचार्य कुमारलब्ध ने शास्त्र लिखे थे

शीश-दान-स्तूप के निकट एक संघाराम था। उसके प्रांगण और भवन सूने थे। भिक्षु बहुत कम थे। भूत काल में सौत्रांतिक शास्त्राचार्य कुमारलब्ध ने यहीं कुछ शास्त्र लिखे थे।

पांच. दक्षिण पर्वत स्तूप एवं राजकुमार कुणाल की कथा

राजधानी के दक्षिण-पूर्व स्थित दक्षिण पर्वत के उत्तर की ओर एक सौ छि से अधिक ऊंचा स्तूप उस स्थल पर स्थित था जहां सम्राट अशोक के पुत्र कुणाल ने विमाता के छल-कपट के कारण अपनी आंखें निकाली थीं। यह स्तूप सम्राट अशोक ने बनवाया था। जितने नेत्रहीनों ने यहां आ कर याचना की, उनमें से बहुतों की आंखों में ज्योति फिर से लौट आई।

राजकुमार कुणाल सम्राट अशोक की प्रथम रानी का पुत्र था। वह सुशील और सुन्दर था। अपनी दयालुता के लिए विख्यात था। प्रथम रानी के निधन के उपरांत भोग-विलास में रत द्वितीय रानी अर्थात राजकुमार की विमाता ने कामुक बन कर राजकुमार को अनुचित यौन संबंध के लिए विवश किया। राजकुमार ने रोते हुए अपने को धिक्कारा और यौन संबंध के लिए विमाता से क्षमा मांग ली। उसकी विमाता ने जब देखा कि उसका उद्देश्य पूरा नहीं हो पा रहा, तो वह कुपित हो उठी। अवसर पा कर उसने सम्राट से धैर्य-पूर्वक कहा : "तक्षशिला राज्य का एक महत्वपूर्ण प्रदेश है। क्या किसी पराये को प्रशासन के लिए वहां भेजा जा सकता है? राजकुमार दयालु भी हैं और आज्ञाकारी भी। उनका नाम देश-विदेश में प्रख्यात हो चुका है। प्रबुद्ध व्यक्तियों के संसर्ग में न आने के कारण आप चर्चा का विषय बन गए हैं।" सम्राट ने बिना सोचे-विचारे उसकी बात मान ली और उसकी चाल से प्रसन्न हो राजकुमार को बुलाया और कहा : "पूर्वजों के अधूरे कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से मैं राजसिंहासन पर बैठा हूं और मुझे यह आशंका बनी रहती है कि कहीं मेरी भूल-चूक से मेरे पूर्वजों का नाम धूल में न मिला दिया जाए। तक्षशिला राज्य का एक बहुत महत्वपूर्ण प्रदेश है। अब मैं तुम्हें प्रशासन के लिए वहां भेजता हूं। राजकीय काम-काज कोई खेल नहीं है, और लोग छल-कपट करते हैं। तुम मनचाहे निर्णय

ले राज्य को क्षति पहुंचाने का काम मत करना। जो भी आज्ञापत्र मिले, उस पर मेरे दांतों के चिह्नों को ध्यान से देख लेना। यह मुद्रा जो मेरे मुंह में है, वह क्या कभी मिथ्या हो सकती है?" राजकुमार सम्राट की आज्ञा पा कर तक्षशिला पर प्रशासन करने चला आया। समय व्यतीत होने के साथ-साथ उसकी विमाता का कोप भी बढ़ता गया। उसने सम्राट का एक जाली आज्ञापत्र बनाया और उसे सिंदूर से बन्द किया। जब सम्राट गहरी नींद में सो गए, तब उसने चोरी-छिपे उनके दांतों के चिह्न ले लिए और फिर एक पदाधिकारी से यह निंदाप्रद पत्र शीघ्र ही राजकुमार तक पहुंचाने को कहा। पदाधिकारी ने घुटनों के बल बैठ कर यह पत्र पढ़ कर सुनाया। सभी उपस्थित लोग एक दूसरे को ताकते हुए दंग रह गए। राजकुमार ने पूछा: "तुम लोग दुखी क्यों हो?" पदाधिकारी ने कहा: "राजकुमार, सम्राट ने अपने पत्र में आपकी निन्दा की है और यह आज्ञा दी है कि आपकी दोनों आंखें निकाल ली जाएं तथा आप और आपकी पत्नी को किसी घाटी में निष्कासित कर दिया जाए, चाहे आप जीवित रहें या मरें। यह सम्राट की आज्ञा तो है, किन्तु आपको उसका तुरन्त पालन नहीं करना चाहिए। आपको उनसे भेंट की याचना करनी चाहिए और स्वयं को रस्सी से बांध कर सम्राट के समक्ष उपस्थित करना चाहिए।" राजकुमार बोला: "जब सम्राट ने मुझे मरने की आज्ञा दी है तो भला मैं उससे कैसे विमुख हो सकता हूं? सिंदूर पर उनके दांतों के चिह्न अंकित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं रह गया है।" यह कह कर उसने एक चाण्डाल से अपनी दोनों आंखें निकलवा दीं। उसकी दृष्टि जाती रही। वह भिक्षा मांगता हुआ मारा-मारा फिरता रहा और अन्त में राजधानी जा पहुंचा। उसकी पत्नी ने उससे कहा: "हम राजधानी पहुंच गए हैं। हाय, भूख और ठंड के मारे मुझसे रहा नहीं जाता! एक समय तुम राजकुमार थे, और अब भिखारी बन गए हो। भगवान करे कि सम्राट हमारी याचना सुन सकें और फिर उनके दिए हुए दंड पर चर्चा हो सकें।" उन्हें एक युक्ति सूझी। वे सम्राट की अश्वशाला में घुस गए। आधी रात के उपरान्त राजकुमार जिस दिशा से पवन आता था उसी दिशा में खड़ा हो रोता हुआ वीणा की संगत पर दुःखमय स्वर में गाने लगा। सम्राट ने ऊंचे भवन में दुःख और व्यथा से भरे गीत के स्वर सुन लिए। चकित हो कर उन्होंने पूछा: "कदाचित वीणा के साथ सुनाई दे रहा यह गीत मेरा पुत्र गा रहा है। वह यहां कैसे आ पहुंचा है?" अश्वशाला के पालक से पूछा गया कि वहां कौन गाने की धृष्टता कर रहा है। तब नेत्रहीन राजकुमार को सम्राट के समक्ष उपस्थित किया गया। अपने पुत्र को देख कर सम्राट ने दुःखी मन से पूछा: "किसने तुम्हारी यह दर्दशा कर दी? मेरे प्यारे पुत्र की आंखें जाती रहीं, पर मुझे कुछ ज्ञात न हुआ। तो फिर प्रजा की दशा कैसे ज्ञात हो सकती है? हाय, हाय! क्या मैं इतना दुश्चरित्र हो गया हूं?" राजकुमार ने रोते हुए सम्राट से कहा: "अपना धर्म निभाने में मेरी विफलता से भगवान अप्रसन्न हुए थे। एक दिन मुझे आपका आज्ञापत्र मिला। मैं आपके

समक्ष अपनी निर्दोषता सिद्ध न कर सका और अपने उत्तरदायित्व से बचने का मुझे साहस न हुआ।" सम्राट जान गए कि यह उनकी द्वितीय रानी का कुकर्म है। उन्होंने बिना पूछ-ताछ किए उसे मार डाला। उस समय बोधिवृक्ष संघाराम में घोष नाम के एक महा अर्हत थे। वे निर्बाध रूप से धर्म और परमार्थ की व्याख्या करने, विभिन्न स्थानीय बोलियां समझने और इस प्रकार प्राणियों से सद्धर्म में विश्वास करवाने में समर्थ थे तथा त्रिविद्या प्राप्त थे। सम्राट ने राजकुमार को साथ ले कर उन्हें पूरी कहानी सुनाई और यह याचना की कि वे दया कर राजकुमार की आंखों में फिर से ज्योति वापस लौटा दें। अर्हत ने सम्राट की याचना स्वीकृत की तथा उसी दिन प्रजा के आगे यह घोषणा की : "मैं परसों सद्धर्म की व्याख्या करूंगा। प्रत्येक मनुष्य को एक पात्र ले कर यहां आना होगा ताकि आंसू पात्रों में भरे जा सकें।" यह सुन कर दूर एवं निकट से सभी स्त्री-पुरुष वहां आ कर एकत्रित हुए। अर्हत ने द्वादश निदानों की व्याख्या की। जो भी सभा में उपस्थित था, वह दुःखित हो कर रोए बिना नहीं रह सकता था। उन्होंने अपने पात्रों में दूसरों के आंसू भर लिए। अर्हत ने धर्मोपदेश देने के अनंतर सभी आंसुओं को एक स्वर्ण थाली में डाल कर यह प्रतिज्ञा की : "अभी मैंने जो कुछ कहा है, वह सब का सब बुद्धों द्वारा बताया गया परम सत्य है। यदि मेरी व्याख्या में असत्य या दोष पाया गया, तो मेरे कहने से कुछ भी नहीं होगा। अन्यथा मैं यह घोषणा करता हूं कि यदि सभी प्राणियों के आंसुओं से राजकुमार की आंखें धोई गईं, तो उनमें फिर से ज्योति वापस लौटेगी और राजकुमार पूर्ववत् सब कुछ देख सकेगा।" यह कह कर अर्हत ने राजकुमार को आंसुओं से आंखें धोने को कहा। देखते-देखते उसकी आंखों में ज्योति लौट आई। सम्राट ने मंत्रियों एवं अधिकारियों को फटकारा और उनकी पदावनति, निष्कासन या स्थानान्तरण किया और अनेक को मृत्यु दंड भी दिया। अनेक अभिजातों को हिमगिरि के उत्तर-पूर्व में मरुभूमि में निर्वासित किया गया।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में पर्वतों और घाटियों को पार कर सात सौ ली की पद-यात्रा के बाद मैं सिंहपुर पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

सिंहपुर

सिंहपुर की परिधि लगभग तीन हजार छः सौ ली थी। उसके पश्चिम में सिंधु नदी थी। राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। वह पर्वतों की तलहटी में स्थित एवं दुर्भेद्य थी। कृषक थोड़ा सा उद्यम कर बड़ी मात्रा में उपजों का उत्पादन कर सकते थे। जलवायु ठंडी थी। लोग क्रूर एव साहसी थे, तथापि कपटी भी थे। राजा नहीं था और

राज्य काश्मीर के अधीन था।

एक. राजधानी के निकट देव-मंदिर और स्तूप तथा जहां श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अंतिम तीर्थंकर ने अपने धर्म का प्रचार किया था

राजधानी से थोड़ी दूर दक्षिण में एक अशोक स्तूप था। उसकी सजावट का रंग उड़ चुका था, फिर भी यह स्तूप अलौकिक शक्ति प्रदर्शित करता रहता था। उसके समीप एक संघाराम था जो बिलकुल सूना था। वहां एक भी भिक्षु न था।

राजधानी से चालीस-पचास ली दूर दक्षिण-पूर्व में दो सौ छि से अधिक ऊंचा एक प्रस्तर स्तूप था, जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था। उसके दायें-बायें दस से अधिक जल-कुंड थे, जो धूप में चमकते रहते थे। घाट तराशे हुए पत्थरों से बने थे तथा उनके आकार-प्रकार में भिन्नता थी। कुंडों में जल स्वच्छ था। तरंगें उठती रहती थीं। प्रवाहित जल-धाराएं कल-कल शब्द करती रहती थीं। नाग, मछलियां एवं अन्य जल-जन्तु कंदराओं में वास करते थे और गहन जल में तैरते रहते थे। तालाबों में चार रंगों के कमल के फूल खिले हुए थे। प्रत्येक जाति के फल मिलते थे और फूलों के रंग अलग-अलग होते थे। वन और जल-कुंड एक दूसरे को शोभा देते हुए एक मनोहर छवि उपस्थित करते थे। समीप ही एक संघाराम था। वह कब का सुनसान हो चुका था।

प्रस्तर स्तूप के निकट जिस स्थान में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अंतिम तीर्थंकर ने सत्य ज्ञान प्राप्त किया था और उसका प्रचार किया था, वहां एक स्मारक खड़ा किया गया था और समीप ही एक देव-मंदिर स्थापित किया गया था। उनके अनुयायी तप करते, दिन-रात समाधि में बैठे रहते और उन्हें विश्राम के लिए कोई अवकाश न मिलता था। अंतिम तीर्थंकर ने जिस धर्म का प्रचार किया, उसका आधे से अधिक भाग बौद्ध सूत्रों से लिया गया था। उन्होंने विभिन्न श्रेणियों के लोगों को भिन्न-भिन्न उपदेश दिए और नियम बनाए थे। वरिष्ठ भिक्षु कहलाते थे एवं कनिष्ठ श्रामणेर। उनके आचार-संहिता और वस्त्र बौद्धों से मिलते-जुलते थे। लेकिन वे सिर पर थोड़े से बाल छोड़ रख निर्वस्त्र रहते थे। जो वस्त्र पहनने वाले थे वे केवल श्वेत वस्त्र पहनते थे। इन्हीं विशेषताओं को ध्यान रख कर मैं उनमें तथा बौद्ध भिक्षुओं में भेद कर सका था। उनके तीर्थंकर की मूर्ति भी तथागत की प्रतिमा की अनुकृति थी। केवल वस्त्रों में अन्तर था। द्वात्रिंश महापुरुषलक्षणों और अशीत्यानुव्यंजनानियों में तो कोई भेद ही न था।

दो. शैल घाटी एवं जहां राजकुमार ने अपना शरीर बाघ को खिलाया था

यहां से मैं फिर तक्षशिला की उत्तर सीमा पर लौट आया और सिंधु नदी पार कर दक्षिण-पूर्व की दिशा में लगभग दो सौ ली दूर चलने पर शैल घाटी में पहुंचा। यहां भूत काल में राजकुमार महासत्व ने अपना शरीर एक भूखे बाघ को खिलाया था। उसके दक्षिण में कोई डेढ़ सौ कदमों की दूरी पर एक प्रस्तर स्तूप खड़ा था। इसी स्थल पर महासत्व ने भूख के मारे अशक्त पड़े बाघ पर दया कर सूखा बांस अपने शरीर में घोंप दिया था। फिर उन्होंने अपना रक्त बाघ को पिलाया। इस प्रकार बाघ ने राजकुमार को खा डाला। यहां भूमि, घास एवं वृक्ष सभी का रंग गहरा लाल सा था, जैसे वे रक्त में रंगे हुए हों। भूमि पर पैर रखते ही किसी को भी चुभन अनुभव होती थी। चाहे विश्वासी हो या अविश्वासी, कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जिसे यहां आ कर दुःख न हुआ हो।

शरीर-त्याग-स्थल के उत्तर में दो सौ छि के लगभग ऊंचा एक प्रस्तर स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने खड़ा करवाया था। उस पर उत्कीर्णन का अनोखा काम था और वह दैवी प्रकाश फैलाता रहता था। इस समाधि के इर्द-गिर्द सौ की संख्या में छोटे स्तूप एवं शैल आले खड़े थे। इस समाधि का चक्कर लगाकर रोगी बहुधा भले-चंगे हो जाते थे।

तीन. पृथक पर्वत में संघाराम

प्रस्तर स्तूप के पूर्व में एक संघाराम था। उसमें कोई सौ भिक्षु थे। वे सबके सब महायानी थे। यहां से पचास ली से अधिक दूर पूर्व में एक पृथक पर्वत स्थित था। पर्वत पर एक संघाराम में लगभग दो सौ भिक्षु थे। वे भी महायानी थे। यहां फूल एवं फल बहुतायत से पाये जाते थे। झरने का जल शीशे की भांति निर्मल था। संघाराम के समीप दो सौ छि ऊंचा एक स्तूप था, जहां तथागत ने एक दुष्ट यक्ष को धर्म-परिवर्तित किया था तथा उसे मांस खाने से रोक दिया था।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में कोई पांच सौ ली लम्बी पद-यात्रा के उपरन्त मैं उरशा पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में अवस्थित था)।

उरशा

उरशा की परिधि दो हजार ली से अधिक है। पर्वत ही पर्वत फैले हुए थे और खेती

योग्य भूमि बहुत कम थी। राजधानी की परिधि कोई ग्राठ ली थी। राज्य में शासक नहीं था ग्रौर वह काश्मीर के ग्रधीनस्थ था। ग्रनाज के उत्पादन के लिए ग्रनुकूल स्थितियां थीं। फूल एवं फल ग्रल्पमात्रा में मिलते थे। जलवायु नम थी ग्रौर पाला एवं हिमपात विरल ही पड़ता था। लोग ग्रशिष्ट, क्रूर एवं कपटी थे। वे बौद्ध धर्म नहीं मानते थे। राजधानी से चार-पांच ली दूर दक्षिण-पश्चिम में दो सौ छि से ग्रधिक ऊंचा एक स्तूप था, जिसे सम्राट ग्रशोक द्वारा खड़ा करवाया गया था। उसके समीप एक संघाराम था। भिक्षु इने-गिने थे ग्रौर वे सभी महायानी थे। यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में पहाड़ों पर भयावह पगडंडियों पर चलते हुए ग्रौर लोहे के सेतुग्रों को पार करते हुए कोई एक हजार ली की यात्रा के उपरान्त मैं काश्मीर पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में ग्रवस्थित था)।

काश्मीर

काश्मीर की परिधि कोई सात हजार ली थी। यह चारों ग्रोर पर्वतों से घिरा हुग्रा था। पर्वत दुरारोह थे। यद्यपि पगडंडियां थीं, तथापि वे ग्रत्यंत संकीर्ण थीं। प्राचीन काल से ही पड़ोसी शत्रु राज्य इस पर चढ़ाई करने में ग्रसमर्थ रहे थे। इसकी राजधानी के पश्चिम में एक बड़ी नदी थी। उत्तर से दक्षिण तक राजधानी की लम्बाई कोई तेरह ली थी ग्रौर पश्चिम से पूर्व तक उसकी चौड़ाई प्राय: पांच ली। खेती के लिए ग्रनुकूल स्थितियां थीं। फूल एवं फल बहुतायत से मिलते थे। नाग जाति के घोड़े, केसर, लाल स्फटिक ग्रौर जड़ी-बूटियां भी पाए जाते थे। जलवायु ठंडी थी। हिमपात ग्रधिक होता था ग्रौर हवा कम चलती थी। लोग ऊनी एवं श्वेत महीन कपड़े पहनते थे। वे ग्रोछे एवं कायर थे। नाग के संरक्षण के कारण यह राज्य पड़ोसी राज्यों पर ग्राधिपत्य जमा सका था। लोग रूपवान थे, पर कपटी थे। वे ग्रध्ययनशील थे ग्रौर विधर्मों एवं बौद्ध धर्म दोनों को मानते थे। संघारामों की संख्या सौ से ग्रधिक थीं ग्रौर उनमें पांच हजार से ग्रधिक भिक्षु थे। चार ग्रशोक स्तूप थे ग्रौर उनमें से प्रत्येक में तथागत की एक शङ ग्रस्थियां सुरक्षित थीं।

एक. राज्य की उत्पत्ति की दंतकथा

"राज्याभिलेख" के ग्रनुसार काश्मीर पहलेपहल एक नाग-सरोवर था। जब भगवान बुद्ध उद्यान में उत्पाती नाग को वशीभूत करने के उपरान्त मध्यदेश वापस लौट रहे थे, तब वे ग्राकाश में उड़ते हुए इस राज्य के ऊपर पहुंचे। उन्होंने ग्रानन्द से कहा : "मेरे परि-निर्वाण के ग्रनन्तर मध्यांतिक ग्रर्हत यहां एक राज्य की स्थापना करेगा ग्रौर लोगों को

बसाएगा तथा बौद्ध धर्म का प्रचार करेगा।" तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात पचासवें वर्ष में आनन्द के शिष्य मध्यांतिक अर्हत को षड़भिज्ञा और आठ विमोक्ष प्राप्त हुए। बुद्ध की भविष्यवाणी ज्ञात होने पर वह प्रसन्न हुआ। यहां आ कर उसने पर्वत पर वन में आसन जमाए अपनी अलौकिक शक्ति प्रदर्शित की। यह देख कर नाग के मन में उसके प्रति आदर-भाव उत्पन्न हुआ। नाग ने अर्हत से उसकी अपनी इच्छा जताने को कहा। अर्हत बोला : "मैं चाहता हूं कि तुम अपने सरोवर में मुझे घुटने रखने का स्थान दे दो।" नाग ने कुछ जल समेट कर सूखी भूमि अर्हत को अर्पित की। इधर अर्हत अपनी ऋद्धि से अपना शरीर बढ़ाता गया, उधर नाग जल समेटता गया, जिससे पूरा सरोवर सूख गया। तब उल्टे नाग ने अर्हत से स्थान देने का अनुरोध किया। अर्हत ने उत्तर-पश्चिम में उसके लिए एक सरोवर रख छोड़ा, जिसकी परिधि लगभग सौ ली थी। नाग के संबंधियों और आश्रितों को वास के लिए एक अन्य तालाब दिया गया। नाग बोला : "मैंने अपने सरोवर की समूची भूमि का तुम्हें दान किया है। आशा है कि तुम मेरी सेवा ग्रहण करोगे।" इस पर मध्यांतिक ने कहा : "मैं शीघ्र ही परिनिर्वाण को प्राप्त होऊंगा। तुम्हारी सेवाएं ग्रहण करना तो चाहता हूं, किन्तु अब तो यह असंभव है न?" तब नाग ने फिर अनुरोध किया : "तो पांच सौ अर्हत तब तक मेरी सेवाएं ग्रहण करते रहें, जब तक बौद्ध धर्म की समाप्ति नहीं हो जाती और जब तक बौद्ध धर्म की समाप्ति के उपरान्त मैं इस राज्य को अपने निवास के लिए फिर से एक सरोवर में न बदल दूं।" मध्यांतिक ने नाग का अनुरोध स्वीकार किया। नाग की भूमि प्राप्त करने पर उसने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन कर पांच सौ संघाराम स्थापित किए और अन्य देशों से दासों को खरीद ला कर भिक्षुओं की सेवा में लगा दिया। मध्यांतिक के परिनिर्वाण के पश्चात इन दासों ने अपना राज्य स्थापित किया। पड़ोसी राज्यों ने उन्हें तुच्छ समझ कर उनके साथ संपर्क नहीं किया और उन्हें क्रीत कह कर पुकारा। अब सरोवर का जल अनेक स्थानों में उमड़ चुका है।

दो. पांच सौ अर्हतों की कथा

मगध के सम्राट अशोक तथागत के परिनिर्वाण से सौ वर्ष पश्चात सिंहासन पर बैठे और उन्होंने अन्य जातियों पर भी धाक जमाई। वे त्रिरत्नों में दृढ़ विश्वास करते थे और चतुर्योनियों को प्यार करते थे। तब पांच सौ अर्हत और पांच सौ साधारण भिक्षु ऐसे थे, जिनका सम्राट आदर करते थे। वे उनकी सेवा में कोई भेद न करते थे। महादेव नाम का एक भिक्षु विज्ञ और कुशाग्रबुद्धि था। उसने नाम एव सत्ता का विस्तृत अध्ययन किया और सोच-विचार कर एक ऐसा निबंध लिख दिया जिसका मत सद्धर्म के विरुद्ध था। जो उसे जानते थे, उन्होंने इस अपसिद्धान्त का समर्थन किया। सम्राट अशोक अर्हतों एव साधारण

भिक्षुओं में अन्तर न कर सके। वे अपनी रुचि के अनुसार उन लोगों के प्रति पक्षपात करते रहे, जिनसे उनका लगाव था। उन्होंने सभी भिक्षुओं को गंगा के तट पर बुला कर उन्हें मंझधार में डुबोना चाहा। अपने प्राणों को संकट में पड़े हुए देख कर सभी अर्हत अपनी-अपनी अलौकिक शक्ति से ऊपर उठ कर आकाश में चले गए और उड़ते हुए काश्मीर आ कर पर्वतों एवं घाटियों में एकांतवास करने लगे। यह संवाद पा कर सम्राट अशोक को पश्चात्ताप भी हुआ और भय भी। उन्होंने स्वयं आ कर अर्हतों से क्षमा मांगी और उनसे वापस लौटने का अनुरोध किया। पर अर्हतों ने किसी भी तरह नहीं माना। तब सम्राट अशोक ने उनके लिए पांच सौ संघाराम बनवाये और संघ को यह राज्य दानस्वरूप दे दिया।

तीन. सम्राट कनिष्क और चौथी संगीति

तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात चार सौवें वर्ष में गंधार में कनिष्क राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने अपना प्रभाव दूर-दूर तक बढ़ा लिया और विदेशों ने भी उनकी अधीनता स्वीकार की। राजकीय कामकाज निबटाने के अनन्तर अवकाश के समय वे बौद्ध सूत्रों का पाठ किया करते थे। प्रत्येक दिन वे एक भिक्षु को उपदेश देने अपने प्रासाद में बुला लेते थे। पर विभिन्न निकायों के मत अलग-अलग थे। कनिष्क असमंजस में अवश्य पड़ गए, किन्तु निरुपाय रह गए। तब पूजनीय पार्श्व ने कहा : "तथागत का देहावसान हुए बहुत समय बीत चुका है। उनके शिष्य विभिन्न निकायों में विभाजित हो गए हैं और शास्त्राचार्यों के मतों में भी भिन्नता आ गई है। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर जो मत प्रस्तुत किए हैं वे परस्पर विरुद्ध हैं।" यह सुन कर सम्राट का मन बहुत दुःखित हुआ। वे देर तक उसांसें लेते रहे। अन्त में उन्होंने पार्श्व से कहा : "यद्यपि भगवान के काल एवं वर्तमान के बीच बड़ा अन्तर है, तथापि अपने शेष पुण्य-फलों के बल पर पूर्ववर्तियों के उपदेशों का पालन करते हुए मैं सौभाग्यशाली कहला सकता हूं। मैं अक्षम एवं अयोग्य ठहरा, किन्तु बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान करना चाहता हूं, ताकि त्रिपिटकों की व्याख्या में विभिन्न निकायों के मत समाविष्ट हो सकें।" इस पर पार्श्व बोले, "महाराज, आपने अपने पूर्वजन्म में पुण्य-कर्म कर बहुत से पुण्य-फल अर्जित किए हैं। और फिर आप बौद्ध धर्म का समादर करते हैं। आपने अभी जो कुछ कहा है, वह मेरी भी अभिलाषा है।" सम्राट ने विद्वान भिक्षुओं को बुलाने हेतु आज्ञा दी। वे चारों ओर से आए। कई तो सात समुद्र पार कर पधारे। सुविज्ञ वरिष्ठ भिक्षु सभा में एकत्र हो गए। चार वस्तुओं से उनका सप्ताह भर परिचार किया जाता रहा। सद्धर्म पर विचार के लिए कोलाहल अवांछनीय था। अतएव सम्राट ने आदरपूर्वक भिक्षुओं से कहा : "जो आर्यफल प्राप्त हों, वे रुके रहें। और जो क्लेश से मुक्त न हों, वे चले जाए।" इस प्रकार जितने भिक्षु रह गए, उनकी संख्या फिर

भी बहुत अधिक थी। सम्राट ने फिर यह आदेश दिया : "जो चार फल प्राप्त हों, वे रुके रहें। और जिन्हें केवल पूर्व के तीन फल प्राप्त हों, वे चले जाएं।" तब भी भिक्षुओं की संख्या आवश्यकता से अधिक रही। सम्राट ने एक और आज्ञा दी : "त्रिविद्या और षड्-भिज्ञा प्राप्त भिक्षु रुके रहें और शेष वापस चले जाएं।" फिर भी अत्यधिक भिक्षु रह गए। सम्राट को फिर आदेश देना पड़ा : "जो त्रिपिटकों एवं पंचविद्याओं में पारंगत हों, वे ही रुके रहें, शेष वापस लौट जाएं।" फलस्वरूप चार सौ निन्यानवे अर्हत रह गए। सम्राट ने अपने राज्य में सभा बुलानी चाही, लेकिन उष्णता और आर्द्रता के कारण उन्हें यह स्थान उचित न लगा। फिर उन्होंने राजगृह में उस शैलगृह में सभा बुलानी चाही, जिसमें महा-काश्यप के तत्वावधान में संगीति हुई थी। पर पार्श्व ने कहा : "नहीं। वहां तीर्थिक बहुत अधिक हैं और नाना अपसिद्धान्त भी हैं। वहां जा कर उनके साथ तर्क-वितर्क में ही समय नष्ट होगा। फिर शास्त्र रचने की शक्ति कैसे बची रहेगी ? सबों का विचार है कि काश्मीर में ही सभा आयोजित की जाए। यह राज्य चारों ओर से दुर्गम पर्वतमालाओं से घिरा है और फिर यक्ष उसकी रक्षा करते हैं। यहां की भूमि उर्वर है और उपजें बहुतायत से मिलती हैं। मुनिगण दल के दल में वहां जाते हैं एवं देव यहां विश्राम करते हैं।" सबों ने पार्श्व के सुझाव का अनुमोदन करते हुए कहा : "सभा वहीं होगी।" तब सम्राट और अर्हत गंधार से यहां आए। उन्होंने संघाराम बनवाया। त्रिपिटक संगृहीत कर वे 'अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र' लिखने को ही थे कि द्वार के बाहर पूजनीय वसुमित्र भिक्षु का चीवर पहने खड़े दिखाई दिए। अर्हतों ने वसुमित्र से कहा : "तुम्हारा क्लेश समाप्त नहीं हुआ और तुम्हारा मत असंगत है। तुम्हें दूर रहना चाहिए, यहां नहीं रुकना चाहिए।" वसुमित्र बोले : "आप लोग निर्बाधित रूप से बौद्ध धर्म की व्याख्या करने में समर्थ हैं एवं भगवान बुद्ध की ओर से उपदेश देते हैं। इस समय आप त्रिपिटक का पाठ संगृहीत कर उन पर सही भाष्य लिखना चाहते हैं। मैं बुद्धिमान तो नहीं हूं, पर बौद्ध धर्म का परमार्थ कुछ-कुछ जानता हूं, त्रिपिटक के गूढ़ पाठों और पंचविद्याओं का भी अध्ययन कर चुका हूं। इससे मुझे आनन्द भी प्राप्त हुआ है।" अर्हतों ने कहा : "तुम बढ़-चढ़ कर बातें कर रहे हो। तुम्हें दूर ही रहना होगा और शीघ्रातिशीघ्र चार फल प्राप्त करने पड़ेंगे। चार फल प्राप्त हो जाने पर यहां आ जाना। तब भी देर न होगी!" वसुमित्र बोले : "मेरे विचार में चार फल प्राप्त करना थूकने के समान सुगम है। मैंने बुद्धत्व प्राप्त करने का संकल्प किया है, मैं छोटे पथ पर नहीं चलूंगा। मैं अभी रेशम के इस गोले को ऊपर उछालता हूं। उसके पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही मुझे अर्हत्व प्राप्त हो जाएगा।" अर्हतों ने उन्हें फटकारते हुए कहा : "तुम डींग मारना और अन्यों को नीचा दिखाना ही जानते हो। अर्हत्व की प्राप्ति की वृद्धों द्वारा प्रशंसा की जाती है। तुम शीघ्र अर्हत्व प्राप्त करो, जिससे हमारी शंका दूर हो जाए।" वसुमित्र ने रेशम के गोले को आकाश की ओर उछाला। देवों ने गोले को पकड़ कर कहा : "तुम तो इसी जन्म में

बुद्धत्व प्राप्त करोगे और फिर अगले जन्म में मैत्रेय के उत्तराधिकारी बनोगे। तब तीन लोकों में तुम्हारा आदर किया जाएगा और स्वयं तुम चतुर्योनियों के आश्रय बनोगे। भला यहां इतना क्षुद्र फल प्राप्त कर तुम कैसे संतुष्ट हो सकते हो?" यह देख कर अर्हतों ने अपनी भूल स्वीकार की और वसुमित्र को स्थविर बना लिया। जो भी शंका हुई, उसे दूर करने के लिए उनसे परामर्श लिया गया। इन पांच सौ अर्हतों ने सर्वप्रथम "सूत्रपिटक" की व्याख्या के लिए एक लाख श्लोकों वाला "उपदेश शास्त्र" प्रतिपादित किया, फिर "विनय-पिटक" की व्याख्या के लिए एक लाख श्लोकों में "विनय विभाषा शास्त्र" लिखा और अन्त में "अभिधर्म पिटक" की व्याख्या के लिए एक लाख श्लोकों के "अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र" की रचना की। कुल मिला कर तीन लाख श्लोकों में छियानवे लाख शब्दों में संपूर्ण रूप से त्रिपिटक की व्याख्या की गई और इस प्रकार आने वाले समय के लिए एक आदर्श स्थापित किया गया। इन शास्त्रों में बौद्ध धर्म के सिद्धान्त-पक्ष के मूल एवं शाखाओं का सर्वांगीण अध्ययन किया गया, उनके गूढ़ एवं सुबोध अर्थों पर भी चतुर्मुखी रूप से विचार किया गया, जिससे बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्त पुनः सुस्पष्ट किए गए तथा सूक्ष्म तत्व एक बार फिर विज्ञापित किए गए। उनका व्यापक प्रचार किया गया और उन पर परवर्ती आश्रित रहे। उस समय सम्राट कनिष्क ने ताम्र-पटों पर ये शास्त्र खुदवाये, फिर उन्हें प्रस्तर मंजूषाओं के अन्दर रखा और स्तूप बनवाकर उनमें ये प्रस्तर मंजूषाएं सुरक्षित रखी गईं। कनिष्क ने यक्षों को इस राज्य की रक्षा करने का आदेश दिया, ताकि तीर्थिक ये शास्त्र बाहर न ले जा सकें। जिसे भी सीखना हो, इस राज्य में रह कर ही सीखे। यह महान कार्य पूरा करने के उपरान्त सम्राट कनिष्क ने सेना ले कर अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान किया। जब वे इस राज्य के पश्चिम द्वार से बाहर आए, तब उन्होंने पूर्व की ओर मुंह कर घुटनों के बल बैठ कर इस राज्द को भिक्षुओं को दानस्वरूप दे दिया।

चार. राजा हिमतल के अभियान की कथा

कनिष्क के निधन के अनन्तर क्रीतों ने पुनः इस राज्य पर शासन जमा लिया। उन्होंने भिक्षुओं को निष्कासित कर बौद्ध धर्म का अन्त कर दिया। तुखार के राजा हिमतल शाक्य के वंशज थे। तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात छः सौवें वर्ष में वे अपने राज्य की रक्षा कर राजगद्दी पर बैठे। वे बुद्ध के अनुपम भक्त और धर्म-वत्सल थे। क्रीतों द्वारा बौद्ध धर्म की समाप्ति का समाचार पाने पर उन्होंने अपने राज्य में तीन हजार वीरों को एकत्रित किया। वे व्यापारी के छद्मवेश में अपने साथ बहुत सी मूल्यवान वस्तुएं लिए और शस्त्र छिपाए इस राज्य में आए। इस राज्य के राजा ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया। राजा हिमतल ने अपने वीरों में से फिर पांच सौ साहसी और चतुर व्यक्तियों को चुन लिया। वे

अपनी बांहों में तीक्ष्ण खड्ग छिपा कर मूल्यवान वस्तुएं लिए राजा से भेंट करने गए। भेंट के समय हिमतल अपनी टोपी उतार कर राजा के सिंहासन पर बैठ गए। यह देख कर क्रीत राजा के हाथ-पांव फूल गए। हिमतल ने उसका सिर गिरा दिया और राजसभा में उपस्थित मंत्रियों से कहा : "मैं तुखार का राजा हिमतल हूं। इस तुच्छ प्राणी के कुशासन पर क्रोधित हो मैंने इस पापी को मार डाला है। प्रजा निर्दोष है।" पर हिमतल ने इस राज्य के प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों को एक अन्य राज्य में विस्थापित कर दिया। इसके अनन्तर उन्होंने भिक्षुओं को वापस बुला लिया और श्रद्धा से संघाराम बनवा दिए। भिक्षु पूर्ववत् सुख-चैन से रहने लगे। हिमतल ने इस राज्य के पश्चिम द्वार के बाहर पूर्व की दिशा में उन्मुख हो घुटनों के बल बैठ इस सब का भिक्षुओं को दान दे दिया।

बार-बार भिक्षुओं से मुठभेड़ करने के कारण क्रीतों का वंश लगभग समाप्त हो गया था। सो उनके मन में द्वेष और बौद्ध धर्म के प्रति घृणा पीढ़ियों तक बनी रही। कालांतर में क्रीत फिर राज्य पर शासन चलाने लगे। इसलिए इस राज्य में बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं था, जबकि परधर्मों के मठों का विशेष ध्यान रखा जाता था।

पांच. बुद्ध-दंत-संघाराम एवं उसकी कथा

नई राजधानी से लगभग दस ली दूर दक्षिण-पूर्व में पुरानी राजधानी के उत्तर में पर्वत की दक्षिण तलहटी में एक संघाराम था। उसमें तीन सौ से अधिक भिक्षु थे। एक स्तूप में बुद्ध का एक दांत सुरक्षित था। दांत की लम्बाई लगभग आधा छुन थी। रंग पीलापन लिए श्वेत था। उपवास के दिन वह प्रकाशमान हुआ करता था। बौद्ध धर्म का अन्त करते समय क्रीतों ने इस संघाराम से भिक्षुओं को भगा दिया था। उनमें से एक भिक्षु ने भारत भर का भ्रमण किया और बौद्ध धर्म के तीर्थों के दर्शन कर अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की। बाद में जब सुना कि राज्य में शांति स्थापित हो गई है, तो वह स्वदेश लौटने लगा। रास्ते में उसे हाथियों का एक झुंड दलदल में भगदड़ मचाता और चिंघाड़ता हुआ मिला। वह भिक्षु तुरन्त एक वृक्ष पर चढ़ कर छिप गया। इतने में हाथी दौड़े-दौड़े इधर आए। उन्होंने सूंड़ से पानी ला-ला कर वृक्ष के नीचे डाला और फिर एक साथ मिल कर वृक्ष को हिलाने व उखाड़ने के प्रयास किए, जिससे वृक्ष गिर गया। भिक्षु हाथियों की पकड़ में आ गया। एक हाथी उसे अपनी पीठ पर बैठा कर वन में चला गया। वहां एक रोगग्रस्त हाथी असह्य पीड़ा से क्लान्त हो पृथ्वी पर लेटा था। हाथी भिक्षु का हाथ उस रोगग्रस्त हाथी के शरीर पर उस स्थान तक ले गया जहां पीड़ा हो रही थी। भिक्षु ने पाया कि एक सूखा बांस वहां चुभ गया था। उसने सूखा बांस निकाल दिया, औषधि के चूर्ण लगाए और फिर अपने वस्त्र को फाड़ कर हाथी के पैर को लपेटा। इस समय एक हाथी ने एक स्वर्ण मंजूषा रोगग्रस्त

हाथी को दे दी और रोगग्रस्त हाथी ने उसे भिक्षु को दे दिया। भिक्षु ने मंजूषा खोल कर पाया कि उसमें बुद्ध का एक दांत रखा हुआ है। हाथियों ने उसे घेर लिया, जिससे वह बाहर निकल नहीं पाया। अगले दिन भोजन के समय हाथियों ने अनेक फल तोड़ ला कर भिक्षु को खिलाए। जब भिक्षु ने मध्याह्न भोजन समाप्त किया, तब एक हाथी उसे अपनी पीठ पर बैठा कर वन से बाहर निकल आया और सैकड़ों ली दूर चलने के बाद ही भिक्षु को पृथ्वी पर उतारा। सभी हाथियों ने घुटनों के बल बैठ कर उसे प्रणाम किया। तब कहीं वे वन की ओर बढ़े। भिक्षु अपने देश की पश्चिम सीमा पर पहुंचा और नौका से एक उफनती नदी को पार करने लगा। जब नौका मंझधार में पहुंची, तब तरंगों के आघात से उलटने को हुई। नौका पर सवार अन्य लोगों ने कहा: "यह विपत्ति तो इस भिक्षु से उत्पन्न हो रही है। इस श्रमण के पास अवश्य तथागत का दांत है। नाग उसे छीनने के लिए आए हैं।" नौका के स्वामी ने खोज की और सचमुच बुद्ध का दांत पाया। ऐसे में भिक्षु ने बुद्ध का दांत उठा, सिर नीचा कर नाग से कहा: "मैं अभी तो तुम्हें दिए देता हूं, परन्तु कुछ समय पश्चात तुमसे वापस ले लूंगा!" उसने नदी के उस पार जाने का विचार छोड़ दिया और तट पर खड़ा हो नदी को देखता हुआ उसांस छोड़ी: "मुझे नाग को वश में करने का उपाय ज्ञात नहीं है, सो उसने इतना अत्याचार किया!" वह फिर भारत लौट कर नाग को वशीभूत करने का उपाय सीखने लगा। तीन वर्ष पश्चात वह फिर स्वदेश लौटते हुए इस नदी तक पहुंचा। जैसे ही वह मंच बनाने में जुटा, उस नाग ने बुद्ध के दांत वाली मंजूषा उसे लौटा दी। यहां आ कर भिक्षु ने बुद्ध के दांत की पूजा हेतु यह संघाराम बनवाया।

छः. लघु संघाराम एवं शास्त्राचार्य संघभद्र संबंधी अवशेष

बुद्ध-दन्त-संघाराम से प्रायः पन्द्रह ली दूर दक्षिण में एक लघु संघाराम था। उसमें बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की खड़ी हुई मूर्ति सुशोभित थी। यदि कोई बोधिसत्व के दर्शनार्थ आमरण उपवास करने को कृतसंकल्प होता था, तो उसे मूर्ति से बोधिसत्व का स्वर्ण शरीर दिखाई देता था।

लघु संघाराम से कोई तीस ली दूर दक्षिण-पूर्व में पर्वत पर एक पुराना संघाराम स्थित था। वह पहले कभी बहुत भव्य रहा था, पर वह कब का जीर्ण हो चुका था। अब केवल एक कोने में एक छोटे से दुतल्ले भवन में तीसेक भिक्षु वास करते थे। वे सभी महायानी थे। इसी संघाराम में शास्त्राचार्य संघभद्र ने "न्यायानुसार शास्त्र" लिखा था। संघाराम के दायें-बायें खड़े स्तूपों में इस महा अर्हत की अस्थियां सुरक्षित थीं। वन्य पशु एवं वानर निरन्तर फूल तोड़ कर उन पर चढ़ाते रहते थे, मानों उन्हें कोई निर्देश प्राप्त हो। इस

पर्वत पर अनेक चमत्कारिक वस्तुएं थीं। खड़ी चट्टान आर-पार टूटी हुई थी और चोटी पर घोड़ों के पदचिह्न दिखाई देते थे। उनके आकार अत्यंत विलक्षण थे। ये सब अर्हतों एवं श्रामणेरों द्वारा क्रीड़ा करते समय उंगलियों से चित्र खींचे जाने अथवा घुड़सवारी किए जाने से बने थे। ऐसे अवशेषों का विस्तृत विवरण देना असंभव है।

सात. शास्त्राचार्य स्कंधिल एवं हाथी जितना आहार करने वाले अर्हत संबंधी अवशेष

बुद्ध-दंत-संघाराम से दस ली से अधिक दूर पूर्व में उत्तर पर्वत की ढाल पर एक लघु संघाराम था। इसमें महान शास्त्राचार्य स्कंधिल ने "विभाषा प्रकरण पाद शास्त्र" की रचना की थी।

लघु संघाराम में प्राय: पचास छि ऊंचा एक प्रस्तर स्तूप था, उसमें एक प्राचीनकालीन अर्हत की अस्थियां रखी हुई थीं। यह भीमकाय अर्हत हाथी जितना आहार कर सकता था। उसकी हंसी उड़ाई जाती थी : "वह तो केवल पेट भरना जानता है, भला वह सत्य-असत्य में भेद कैसे कर सकता है ?" जब इस अर्हत का निर्वाण होने को था, तब उसने लोगों से कहा: "मैं शीघ्र ही अशेष निर्वाण को प्राप्त होऊंगा। मैं अब तुम लोगों को सद्धर्म के प्रति अपना बोध बताना चाहता हूं।" यह सुन कर लोग हंसी न रोक सके और यह देखने यहां आए कि अंत में क्या होगा। अर्हत उपस्थित लोगों से कहने लगा : "मैं तुम लोगों को अपना हेतुप्रत्यय बताता हूं। कर्म-फल के कारण इससे पहले पिछले जन्म में मैंने हाथी का रूप धारण किया था और पूर्वी भारत के एक राजा की गजशाला मेरा वास-स्थान था। इस राज्य के भिक्षु ने सद्धर्म के शास्त्रों की खोज में भारत का भ्रमण किया था। तब राजा ने उस भिक्षु को मुझे दान में दे दिया। मैं बौद्ध सूत्र लादे यहां आया। कुछ ही समय पश्चात मेरी मृत्यु हुई। बौद्ध सूत्र लादने से प्राप्त पुण्य-फल के चलते मेरा मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म हुआ और बचे-खुचे सौभाग्य से मैं काषाय चीवर पहन भिक्षु बन गया। मैंने भवचक्र से बाहर निकलने हेतु अविरल प्रयास किए और इस प्रकार षड़भिज्ञा प्राप्त की तथा त्रिलोक की तृष्णाओं से मुक्ति पाई। किन्तु मेरी पाचन-शक्ति फिर भी पूर्ववत् बनी रही। मैं बहुधा आत्मसंयम कर जितना भोजन आवश्यक था उसका एक तिहाई कर लेता था।" लेकिन लोगों को फिर भी उसकी बात में विश्वास न आया। यह देख कर अर्हत ने शून्य में उठ कर अग्नि-समाधि ली। उसके शरीर से धुंआ और आग की लौ उठीं। वह निर्वाण को प्राप्त हुआ। उसकी अस्थियां आकाश से पृथ्वी पर गिर गईं। उसकी अस्थियां सुरक्षित रखने हेतु स्तूप खड़ा किया गया।

आठ. शास्त्राचार्य पूर्ण और बोधिल संबंधी अवशेष

राजधानी से दो सौ ली से अधिक दूर उत्तर-पश्चिम में विक्रीतवन संघाराम स्थित था। इसी में शास्त्राचार्य पूर्ण ने "विभाषा भाष्य" लिखे थे।

राजधानी से कोई डेढ़ सौ ली दूर पश्चिम में एक बड़ी नदी के उत्तर तथा एक ऊंचे पर्वत के दक्षिण में स्थित महासांघिक संघाराम में लगभग सौ भिक्षु थे। शास्त्राचार्य बोधिल ने इसी संघाराम में महासांघिक का "तत्वसंचय शास्त्र" प्रतिपादित किया था।

यहां से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में एक दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र पार कर सात सौ ली लम्बी पद-यात्रा के अनन्तर मैं पर्णोत्स पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

पर्णोत्स

पर्णोत्स की परिधि दो हजार ली से अधिक थी। पर्वतों एवं नाले-नदियों की अधिकता के कारण खेत बहुत कम थे। खेती समय पर होती थी। फूल-फल बहुतायत से मिलते थे। गन्ने का अधिक उत्पादन होता था। अंगूर की खेती नहीं थी। प्रत्येक घर में आम, उदम्बर और मोचा के उपवन पाए जाते थे, क्योंकि ये फल स्वादिष्ट थे। जलवायु थोड़ी उष्ण थी। लोग साहसी थे। वे अधिकतर ऊनी कपड़े पहनते थे। वे स्वभाव के भोले-भाले थे एवं बौद्ध धर्म के प्रति आस्था रखते थे। यहां पांच संघाराम थे, किन्तु वे जीर्ण-शीर्ण स्थिति में थे। राज्य में राजा नहीं था और राज्य काश्मीर के अधीन था। राजधानी के उत्तर में एक संघाराम में कुछ भिक्षु थे। संघाराम के उत्तर में एक प्रस्तर स्तूप में बहुधा चमत्कार होता था।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में चार सौ ली दूर चलने पर मैंने राजपुर की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

राजपुर

राजपुर की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि कोई दस ली थी। भूस्थिति संकटपूर्ण थी। पर्वत ही पर्वत दिखाई देते थे। तराई के क्षेत्र संकीर्ण थे। उपजों का अधिक उत्पादन न होता था। भूमि एवं जलवायु पर्णोत्स के तुल्य थी। लोग उग्र एवं साहसी थे। राज्य में राजा न था और राज्य काश्मीर के अधीन था। यहां दस संघाराम थे। भिक्षुओं की संख्या बहुत अल्प थी। एक देव-मंदिर था और विधर्मियों की

संख्या अधिक थी। लंपाक से इस राज्य तक के निवासी अधिक कुरूप व क्रूर थे। बोल-चाल असभ्य थी। सदाचार की उपेक्षा की जाती थी। ये राज्य भारत की मूल भूमि में स्थित नहीं थे बल्कि असभ्य सीमांत क्षेत्र में थे।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में पर्वत का अवरोहण कर और एक नदी पार कर सात सौ ली की पद-यात्रा के अनंतर मैं टक्क में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

खण्ड चार

टक्क

टक्क की परिधि दस हजार ली से अधिक थी। इसके पूर्व में विपाशा नदी थी और पश्चिम में सिंधु नदी। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। पिछैती धान की खेती के लिए उपयुक्त स्थितियां थीं। दाल और गेहूं का विशेष उत्पादन होता था। सोना, चांदी, तांबा, कांसा और लोहा मिलते थे। जलवायु उष्ण थी और आंधी चलती रहती थी। लोग स्वभाव के उद्दंड और निष्ठुर थे। उनकी भाषा असभ्य और अश्लील थी। उनमें चमकीले श्वेत वस्त्र अर्थात कथित कौषेय वस्त्र, मखमल के वस्त्र पहनने की बड़ी रुचि रहती थी। बौद्ध अनुयायियों की संख्या बहुत कम थी। बहुसंख्यक लोग देवों की उपासना करते थे। दस संघाराम थे और कई सौ देव-मंदिर। अतीत में इस राज्य में अनेक धर्मशालाएं थीं, जिनमें दरिद्रों का भरण-पोषण होता रहता था। उन्हें औषधियों अथवा खाद्य-पदार्थों का दान किया जाता था और यात्रियों की असुविधाएं दूर करने हेतु उन्हें भी अनेक खाद्य-पदार्थ प्रदान किए जाते थे।

एक. पुराना शाकल नगर एवं राजा मिहिरकुल के उत्थान और पतन की कथा

टक्क की राजधानी से चौदह-पन्द्रह ली दूर दक्षिण-पश्चिम में पुराना शाकल नगर स्थित था। प्राचीर तो ढह कर गिर चुका था, फिर भी इसका आधार बहुत सुदृढ़ था। पुराने नगर की परिधि बीस ली से अधिक थी। नगर में एक और उपनगरी थी, जिसकी परिधि छः-सात ली थी। निवासी संपन्न थे। यही टक्क की पुरानी राजधानी थी।

सैकड़ों वर्ष पूर्व मिहिरकुल नाम का एक राजा इस नगर को अपनी राजधानी बना कर भारत के अन्य सभी राज्यों पर शासन चलाता था। राजा मिहिरकुल प्रतिभाशाली, पराक्रमी और प्रतापी थे। ऐसा कोई पड़ोसी राज्य नहीं था, जिसने उसका शासन स्वीकार न किया हो। राजकीय कामकाज निपटाने के पश्चात अवकाश के समय में राजा मिहिरकुल ने बौद्ध

धर्म का अध्ययन करना चाहा। उन्होंने आदेश दिया कि भिक्षु संघ में से कोई एक सद्गुणी और ज्ञानी चुनें, जो उन्हें बौद्ध मतों की व्याख्या देने में समर्थ हो। भिक्षु इस आदेश का पालन करने से कतराए, क्योंकि उनकी कोई तृष्णा नहीं थी, और न ही प्रसिद्धि के लिए उनकी चाह ही थी। फिर ज्ञानी भिक्षु राजा की धाक से भयभीत भी थे। प्रासाद का एक दास बहुत पहले ही परिव्राजक बन चुका था। वह सुभाषी और कुशाग्रबुद्धि था। सभी भिक्षुओं ने उसी को राजा के यहां भेजा। उसे आते देख कर राजा मिहिरकुल बोले: "मैं बौद्ध धर्म के प्रति आस्था रखता हूं और जहां-तहां प्रतिष्ठित आचार्यों को ढूंढ रहा हूं। किन्तु तुम लोगों ने तो बौद्ध-मतों की व्याख्या हेतु मेरे यहां एक ऐसे नीच दास को भेज दिया! कहते हैं कि भिक्षुओं में ज्ञानियों का अभाव नहीं है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। तो फिर उनका आदर करने की क्या आवश्यकता है?" राजा मिहिरकुल ने समूचे भारत के राज्यों को यह आज्ञा दी कि अब से बौद्ध धर्म को समाप्त करना होगा एवं सभी भिक्षुओं को भगा देना होगा। एक को भी रहने की अनुमति नहीं होगी। मगध के राजा बालादित्य बौद्ध धर्म के भक्त थे और अनुरक्त प्रकृति थे। राजा मिहिरकुल द्वारा अंधाधुंध यातनाएं दिए जाने और कुशासन चलाए जाने के कारण राजा बालादित्य ने अपने राज्य की सीमा पर कड़ी रक्षा-व्यवस्था की और राजा मिहिरकुल का आधिपत्य ठुकराकर उन्हें उपहार भेजना बन्द कर दिया। यह जानकर राजा मिहिरकुल ने बालादित्य के राज्य पर चढ़ाई के लिए अपनी सेनाओं को तैयार किया। यह संवाद पा कर राजा बालादित्य ने अपने मंत्रियों से कहा: "सुना है कि शत्रु सेनाएं आ रही हैं। मेरा मन नहीं करता कि उनके सैनिकों को मारा जाए। मेरी प्रार्थना है कि आप मंत्रीगण और प्रजा मेरे पाप को क्षमा कर मुझे जीवित रहने दें और किसी निर्जन स्थान में जा छिपने की अनुमति दे दें।" यह कह कर वे प्रासाद से निकल कर निर्जन स्थल की ओर चल पड़े। राज्य में सहस्रों लोगों ने उनका उपकार और प्रतिष्ठा मानकर उनका अनुसरण किया। उन सबने समुद्र में एक द्वीप पर शरण ली। राजा मिहिरकुल ने अपनी सेना अपने भाई के हाथों सौंप उस द्वीप पर चढ़ाई कराई। बालादित्य ने दुर्गम स्थानों पर सेना नियत की और फिर मिहिरकुल को ललकारने हेतु अश्वारोही सैनिक भेजे। ज्योंही दुंदुभि बजी, त्योंही घात में बैठे सैनिकों ने चारों दिशाओं से मिहिरकुल को घेरकर पकड़ लिया। उसके हाथों को पीठ के पीछे बांध दिया गया तथा उसे बालादित्य के सामने उपस्थित किया गया। मिहिरकुल ने अपने अन्याय पर लज्जित हो कर वस्त्र से अपने मुंह को ढांप लिया। बालादित्य सिंहासन पर बैठे हुए थे और मंत्रीगण उनकी रक्षा के लिए उनके चारों तरफ खड़े थे। उन्होंने एक अधिकारी के माध्यम से मिहिरकुल से कहलाया: "मुंह पर से वस्त्र हटा दो। मुझे तुमसे बात करनी है।" मिहिरकुल बोला: "मेरी राज्यच्युति हो गई है। अब तो हम शत्रु बन गए हैं। जब मित्रता ही नहीं रह गई, तो फिर आमने-सामने बात करने की क्या आवश्यकता है?" बालादित्य ने अपनी

बात कई बार दोहराई, पर उन्होंने नहीं माना। तब बालादित्य ने अपने एक आदेश में उनके अपराध घोषित करते हुए कहा : "त्रिरत्न की भूमि चार योनियों का सहारा है। यदि तुम्हें नरभक्षी पशुओं की भांति क्रूर हो मनमानियां करने की अनुमति दी गई, तो तुम पूर्वजों के पुनीत कृत्यों को शीघ्र ही नष्ट कर दोगे। भगवान तक भी तुम्हें माफ नहीं करेंगे। अब मैंने तुम्हें जीवित ही पकड़ लिया है। तुम्हारे अपराध ऐसे हैं, जिन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। तुम्हारा सिर काट दिया जाएगा।" बालादित्य की पूज्य माता विदुषी और मेधावी थीं। वे शकुन निकालने और हाथ की रेखाएं देख शुभाशुभ फल बताने में निपुण थीं। मिहिरकुल को मारने का समाचार सुनते ही उन्होंने बालादित्य से कहा : "मैंने सुना है कि मिहिरकुल का रूप सुन्दर है और बुद्धि असाधारण है। मैं उनसे मिलना चाहती हूं।" बालादित्य मिहिरकुल को अपनी पूज्य माताजी के यहां ले गए। बालादित्य की माता ने मिहिरकुल से कहा : "हाय ! मिहिरकुल, तुम लज्जा से सिर नीचा मत करो। मनुष्य लोक में अनित्यता है। गर्व और लज्जा बारी-बारी से एक दूसरे का स्थान लेते रहते हैं। मैं तुम्हारी माता के तुल्य हूं और तुम मेरे पुत्र जैसे। अपने चेहरे पर से वस्त्र हटा कर मुंह के सामने बात तो करो।" मिहिरकुल बोला : "पहले मैं बालादित्य से युद्ध करने वाला, शत्रु राज्य का राजा था और अब उनका बन्दी बन गया हूं। मैंने पूर्ववर्ती राजाओं के कृत्यों को बिगाड़ दिया तथा अपने वंश की समाप्ति कर डाली। अपने पूर्वजों की आत्माओं और अपनी प्रजा के सम्मुख मैं लज्जित हूं। मैंने अपना मुंह स्वयं ही काला कर लिया है। खेद है कि मुझे आत्महत्या का अवसर न मिला। अतएव मैंने अपने चेहरे को ढांप लिया है।" इस पर बालादित्य की माता ने कहा : "समय के बीतने के साथ-साथ किसी एक राज्य का उत्थान और पतन होता है। अस्तित्व एवं विनाश केवल भाग्य पर ही निर्भर होता है। यदि तुम अपने हृदय में सभी वस्तुओं और मान-अपमान को एक ही तुला पर रखो, तो अपनी लाभ-हानि भूल जाओगे। यदि तुम्हारा हृदय वस्तुओं के प्रभाव में आए, तो तुममें व्यक्तिगत गर्व-लज्जा एवं मान-अपमान भी क्रमशः उत्पन्न होगा। तुम्हें कर्म-फल में विश्वास करना चाहिए, जो समय के सरकने के साथ-साथ परिवर्तनशील है। यदि तुम मुख पर से वस्त्र हटा कर सामने बात करोगे, तो शायद मृत्यु से बच जाओगे।" मिहिरकुल बोला : "यदि मुझ जैसे निर्गुण तथा अयोग्य व्यक्ति को राज्यारोहण करने दिया गया, तो राज्य में अव्यवस्था होगी और राज्य का पतन होगा। अभी मैं बन्दी हूं, फिर भी अल्पकालीन जीवन के लिए तरस रहा हूं। आपने मुझे समझा-बुझा कर नया जीवन प्रदान करने की कृपा की है। मुझे मेरे प्राण बचाने के लिए आपके प्रति आभार प्रकट करना चाहिए।" यह कह कर उसने अपने मुख पर से वस्त्र हटा दिया। बालादित्य की माता ने कहा : "तुम्हें आत्मसम्मानित और आत्मसंयमित होना चाहिए। तुम्हें काल की मृत्यु मरना चाहिए।" फिर बालादित्य की माता ने अपने पुत्र से कहा : "पूर्वजों के विधि-संग्रह में यह उपदेश है

कि एक राजा को दूसरे के दोष को क्षमा कर देना चाहिए और उसके प्राणों को प्रिय समझना चाहिए। यद्यपि मिहिरकुल दीर्घकाल से अपराध करता आ रहा है, लेकिन उसके मरण का समय तो अभी नहीं आया। अब यदि उसे मारा गया, तो भावी बारह वर्षों के अन्दर प्रजा भूखी रह जाएगी। मिहिरकुल में अपने राज्य का पुनरुत्थान करने की इच्छा तो है, पर वह एक बड़े राज्य का राजा नहीं बन सकता। उसे उत्तर में जा कर एक छोटा राजा बनने दो!" अपनी पूज्य माता की बात सुन कर बालादित्य को इस राज्यच्युत राजा पर दया आ गई। उसने अपनी छोटी पुत्री से उसका विवाह कर दिया और उसके साथ विशेष सौजन्यपूर्ण व्यवहार किया। फिर बालादित्य ने मिहिरकुल के बचे-खुचे सैनिकों को एकत्रित कर उसकी रक्षा का प्रबंध किया और उसे द्वीप से चले जाने की अनुमति दे दी।

मिहिरकुल का भाई अपने राज्य वापस लौट कर राजगद्दी पर बैठ गया। राज्यच्युत हो कर मिहिरकुल वीरान पर्वतों में भटकते रहे। अन्त में वे उत्तर की ओर काश्मीर गए। काश्मीर के राजा ने उनका आदर-सत्कार किया एवं उनकी राज्यच्युति पर तरस खा कर उन्हें एक नगर भेंट किया। लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने अपने नगर के लोगों को साथ ले कर धूर्तता से काश्मीर के राजा की हत्या कर दी और स्वयं को राजा घोषित कर दिया। फिर उन्होंने युद्ध में अपनी विजय से लाभ उठा कर पश्चिम में गंधार पर चढ़ाई आरंभ की। उन्होंने चोरी-छिपे सैनिक भेजे एवं गंधार के राजा की हत्या कर डाली और गंधार के राजकुल के सभी व्यक्तियों और मंत्रियों को भी मार डाला। मिहिरकुल ने एक हजार छः सौ संघारामों और स्तूपों को नष्ट-भ्रष्ट किया। राज्य में युद्ध में मरे हुओं के अतिरिक्त नब्बे हजार व्यक्ति शेष रह गए थे। महिरकुल ने उन सभी को मार कर एक भी व्यक्ति को जीवित छोड़ना नहीं चाहा। उनके मंत्रियों ने उन्हें रोकते हुए कहा: "महाराज, आपके प्रभाव से शक्तिशाली शत्रु वशीभूत हुए हैं। अभी युद्ध हुआ नहीं कि उनके प्रमुख अपराधी की हत्या कर दी गई। लेकिन जन-साधारण का क्या दोष है? और हम उनके स्थान पर अपने क्षुद्र प्राण न्योछावर करने को तत्पर हैं।" मिहिरकुल ने डांटते हुए कहा: "तुम लोग बौद्ध धर्म में विश्वास कर मृत्यु लोक में पुण्य-फल अर्जित करने की बात पर बल लेते हो। तुम लोग बौद्ध बन कर जातक कथाओं का प्रचार कर मेरे पाप परवर्तियों को बताने पर तुले हुए हो? अपने-अपने कार्य पर जाओ और बकबक बन्द करो!" मिहिरकुल ने उच्च कुल के तीस हजार व्यक्तियों को सिंधु नदी के तट पर ले जा कर मरवा दिया, मध्यम कुल के तीस हजार व्यक्तियों को नदी में डुबा दिया और नीच कुल के तीस हजार व्यक्तियों को सैनिकों में बांट दिया। मिहिरकुल गंधार की संपत्ति लिए विजय के साथ वापस लौटे। इसके अनंतर एक वर्ष भी नहीं बीता कि मिहिरकुल की अकाल मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के समय मेघों और कोहरे से अंधेरा छा गया, भूचाल आया और बवंडर उठा। यह देख कर फल प्राप्त व्यक्तियों ने करुणा और दुःख से कहा: "निर्दोषों की हत्या

कर और बौद्ध धर्म समाप्त कर वह अंततः अवीचि नरक में गिर गया और भवचक्र में उसके प्रव्रजन का अन्त नहीं होगा।"

दो. जहां वसुबंधु ने शास्त्र का प्रतिपादन किया था एवं अन्य अवशेष

पुराने शाकल नगर में एक संघाराम था, जिसमें सौ से अधिक भिक्षु थे। वे सभी हीनयानी थे। बोधिसत्व वसुबंधु ने यहां "परमार्थ सत्य शास्त्र" का प्रतिपादन किया था। संघाराम के समीप एक स्तूप था जो दो सौ छि से ऊंचा था। यहीं पर चार भूत बुद्धों ने उपदेश दिए थे और उनके चंक्रमण के अवशेष भी थे। संघाराम से पांच-छै ली दूर उत्तर-पश्चिम में दो सौ छि ऊंचा एक स्तूप था। वह सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। यह भी वही स्थल था, जहां चार भूत बुद्धों ने देशना दी थी।

नई राजधानी से दसेक ली दूर उत्तर-पूर्व में दो सौ छि ऊंचा एक प्रस्तर स्तूप था। वह अशोक द्वारा खड़ा करवाया गया था। इस स्थल पर तथागत ने उत्तर में धर्म का प्रचार करने एवं लोगों को दीक्षित करने जाते हुए विश्राम किया था। "सिंधु कथा" में उल्लेख है कि इस स्तूप में बुद्ध की अनेक अस्थियां हैं और वे उपवास के दिन प्रभा फेंकती रहती हैं।

यहां से पूर्व में पांच सौ ली दूर चलने के बाद मैंने चीनभुक्ति की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

चीनभुक्ति

चीनभुक्ति की परिधि दो हजार ली थी। राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। फसलों के लहलहाते खेत थे। फलों के वृक्ष बहुत कम थे। कुटुम्ब पंजीकरण में नाम लिखाए हुए निवासी सुख-चैन से जीवन बिताते थे। राज्य के वित्तीय स्रोत प्रचुर थे। जलवायु थोड़ी उष्ण थी। लोग कायर थे। वे परमसत्य और लौकिक सत्य का साथ-साथ अध्ययन करते थे एवं बौद्ध धर्म और परधर्म दोनों मानते थे। दस संघाराम थे और देव-मंदिरों की संख्या आठ थी।

एक. राज्य के नाम की कथा

अपने शासन काल में राजा कनिष्क की धाक पड़ोसी राज्यों में भी जमी थी और उनकी

प्रतिष्ठा परदेशों तक फैल गई थी। तब चीन के हशी में रहने वाली एक जाति ने राजा कनिष्क की धाक से भयभीत हो कर अपना एक बंधक उनके यहां भेज दिया था। राजा कनिष्क ने बंधक के रूप में आए चीनी राजकुमार को ढेर-सारे उपहार दिए और उसका आतिथ्य-सत्कार किया : वर्ष में ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त तीन ऋतुओं के अनुसार उसका निवास बदलता रहता था और उसकी सुरक्षा के लिए पैदल, अश्वों, रथों और हाथियों की सेनाएं पहरा देती थीं। यहां हेमन्त ऋतु में बंधक राजकुमार का निवास था, इसलिए इस स्थान का नाम पड़ा चीनभुक्ति, और राज्य का नाम भी इसी नाम पर पड़ा। अतीत में इस स्थान और भारत के अन्य राज्यों में नाशपाती और आड़ू की खेती न थी। बंधक राजकुमार के आगमन के अनंतर ही इन दो फलों की खेती आरंभ हुई थी। स्थानीय लोग आड़ू को चीननी एवं नाशपाती को चीन राजपुत्र कहते थे। इस राज्य के लोग थाङ राजवंश का बड़ा आदर करते थे। मुझे देखते ही वे बोल उठते थे : "ये हमारे भूतपूर्व राजा के देश के ही निवासी हैं।"

दो. तमसावन संघाराम और शास्त्राचार्य कात्यायन संबंधी अवशेष

राजधानी से पांच सौ ली से अधिक दूर दक्षिण में तमसावन संघाराम स्थित था। उसमें तीन सौ से अधिक भिक्षु थे। वे सर्वास्तिवादी थे। सभी भिक्षु गंभीर एवं शीलवान थे। हीनयान के सिद्धान्तों पर उनका विशेष अधिकार था। इस कल्प के एक सहस्र बुद्धों ने यहां एकत्रित हो देवों और प्राणियों को धर्मोपदेश दिए थे। तथागत के परिनिर्वाण से तीन सौ वर्ष पश्चात कात्यायन नामक शास्त्राचार्य ने इस संघाराम में "ज्ञान प्रस्थान शास्त्र" प्रतिपादित किया था। तमसावन संघाराम में दो सौ छि से अधिक ऊंचा एक अशोक स्तूप था। स्तूप के निकट चार भूत बुद्धों के चंक्रमण और आसनों के अवशेष थे। छोटे-छोटे स्तूप एवं बड़े-बड़े शैलगृह एक दूसरे से सटे हुए दिखाई देते थे और उनकी गिनती न हो सकती थी। वे अर्हत्व प्राप्त संतों के देहावसान के पश्चात एक-एक कर बनवाए गए थे। उनकी कहानियां सुनाना असंभव है। पर उनके दांत और अस्थियां अभी भी सुरक्षित थे। संघाराम के चारों ओर पर्वतमालाएं बीस ली लम्बी थीं। बुद्ध की अस्थियां रखने के लिए सैकड़ों स्तूप थे। वे एक दूसरे से लगे हुए थे और उनकी छायाएं भी परस्पर जुड़ सकती थीं।

यहां से उत्तर-पूर्व दिशा में लगभग एक सौ पचास ली दूर चल कर मैं जालंधर पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

जालंधर

पूर्व से पश्चिम तक जालंधर की लम्बाई एक हजार ली से अधिक थी एवं दक्षिण से उत्तर तक उसकी चौड़ाई थी आठ सौ ली। राजधानी की परिधि बारह-तेरह ली थी। अनाजों की खेती के लिए अनुकूल स्थितियां उपलब्ध थीं। पिछैती धान का बहुत उत्पादन होता था। पनपते वृक्ष थे। फूल-फल बहुतायत से मिलते थे। जलवायु थोड़ी उष्ण थी। लोग साहसी और निष्ठुर थे। वे कुरूप थे, पर सभी संपन्न थे। पचासेक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या दो हजार से अधिक थी। वे हीनयानी और महायानी दोनों थे। तीन देव-मंदिर और पांच सौ तीर्थिक थे। वे सभी पाशुपत थे। इस राज्य का राजा पहले तीर्थिक संप्रदायों का सम्मान करता था। बाद में वे एक अर्हंत से मिले। उसके उपदेश सुन कर राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। इसलिए मध्यदेश के राजा शीलादित्य ने सद्धर्म में उनकी आस्था का पता लगा समूचे भारत का त्रिरत्न संबंधी कार्य उन्हें सौंप दिया। वे राज्यों की सीमाओं को तोड़ और लोगों में पुराने अनुराग व द्वेष के बंधनों से मुक्त हो भिक्षुओं पर कड़ी निगरानी रखते थे और उनके छोटे से छोटे सद्‌गुण या दोष का भी विस्तार से पता लगाते थे। इसलिए सद्‌गुणी और प्रतिष्ठित भिक्षुओं का श्रद्धापूर्वक सम्मान किया जाता था, जबकि शील और विनय को भंग करने वाले भिक्षुओं को कड़ा दण्ड दिया जाता था। जहां भी महापुरुषों संबंधी अवशेष थे, वहां स्मारक के रूप में स्तूप या संघाराम पाए जाते थे। ऐसे निर्माण समूचे भारत में उपलब्ध थे।

यहां से उत्तर में गगनचुंबी पर्वतों को पार करते हुए और संकीर्ण उपत्यकाओं से चलते हुए मैं सात सौ ली लम्बा भयावह रास्ता तय कर कुलूत की सीमा में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

कुलूत

कुलूत की परिधि तीन हजार ली से अधिक थी और वह चारों ओर पर्वतों से घिरा था। राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। भूमि उर्वर थी। फसलों की खेती समय पर होती थी। फूल और फल प्रचुर मात्रा में मिलते थे। पुष्प और वृक्षों के पौधे बहुतायत से थे। कुलूत हिमगिरि के निकट स्थित था, अतएव यहां मूल्यवान जड़ी-बूटियां विपुलता से मिलती थीं। सोने, चांदी, कांसे, रक्त स्फटिक एवं तांबे आदि का उत्पादन होता था। जलवायु में थोड़ी ठंड थी और कभी-कभी पाला भी पड़ता था एवं हिमपात होता था। लोगों के रूप भद्दे थे। बहुतेरे गलगंड से पीड़ित थे। वे दृढ़निश्चयी और कोपवान थे तथा

वीरता और बल के प्रशंसक थे। बीस से अधिक संघाराम थे। एक हजार से अधिक भिक्षु थे। उनमें से अधिकांश महायानी थे और शेष अन्य यानों के थे। पन्द्रह देव-मंदिर थे। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। पर्वतों पर एक के बाद एक शैलगृह दिखाई देते थे। किसी में अर्हत वास करते थे, तो किसी में ऋषि तप करते थे। राज्य में एक स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। तथागत ने इस राज्य में पदार्पण कर उपदेश दिए थे और गृहस्थों को उपसंपन्न किया था। इस संदर्भ में उल्लेख मिलते थे।

यहां से उत्तर में ऊंचे-ऊंचे पर्वतों तथा संकीर्ण घाटियों को पार करते हुए प्रायः एक हजार नौ सौ ली का दुर्गम रास्ता पूरा करने पर ल्होयुल मिलता था।

ल्होयुल से उत्तर में ठंडी वायु और हिमपात का सामना करते हुए लगभग दो हजार ली का कठिन और दुर्गम रास्ता पूरा करने के अनंतर मरयुल पहुंचा जाता था।

कुलूत से दक्षिण की दिशा में गगनचुम्बी पर्वतों और नदियों को पार कर सात सौ ली दूर चलने पर मैं शतद्रु में पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में अवस्थित था)।

शतद्रु

शतद्रु की परिधि दो हजार ली से अधिक थी। उसके पश्चिम में शतद्रु नदी थी। राजधानी की परिधि सत्रह-अठारह ली थी। अनाजों और फलों की उत्पादन-मात्रा बहुत अधिक थी। सोने, चांदी एवं मोतियों का उत्पादन होता था। लोगों के वस्त्र भड़कीले थे। जलवायु उष्ण थी। लोग भोले-भाले, नम्र और दयार्द्र थे। ऊंच-नीच में स्पष्ट अंतर था। वे बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से बौद्ध धर्म मानते थे।

राजधानी के भीतर और बाहर दस संघाराम थे। वे उजड़े हुए थे और भिक्षु बहुत कम थे।

राजधानी से तीन-चार ली दूर दक्षिण-पूर्व में दो सौ छि से अधिक ऊंचा एक स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने खड़ा करवा दिया था। उसके समीप चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

यहां से दक्षिण-पश्चिम में लगभग आठ सौ ली चल कर मैंने पारियात्र की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

पारियात्र

पारियात्र की परिधि तीन हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह

ली थी। कृषि के लिए अनुकूल स्थितियां थीं। शीतकालीन गेहूं का सबसे अधिक उत्पादन होता था। यहां धान की एक विशेष जाति उपलब्ध थी, जिसकी बोवाई से साठ दिन पश्चात कटाई हो सकती थी। गाय और बकरियां अधिक मात्रा में थीं, जबकि फल-फूल अल्पमात्रा में मिलते थे। जलवायु उष्ण थी। लोग साहसी और कठोर स्वभाव के थे। वे कलाएं सीखने में निरुत्साही थे और परधर्म मानते थे। राजा वैश्य जाति का था। वह पराक्रमी, कर्मठ और युद्ध-कला में पारंगत था। आठ संघाराम थे, लेकिन वे पूर्णत: जीर्ण-शीर्ण हो चुके थे। इने-गिने भिक्षु थे और वे भी हीनयानी। दसेक देव-मंदिर थे और विधर्मियों की संख्या एक हजार से अधिक थी।

यहां से पूर्व में बढ़ते हुए पांच सौ ली चलने पर मैं मथुरा पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

मथुरा

मथुरा की परिधि कोई पांच हजार ली थी, जबकि राजधानी की परिधि लगभग बीस ली थी। भूमि उर्वर थी। कृषि लोगों का प्रमुख धंधा था। प्रत्येक घर के आंगन में आम्र वृक्ष पाये जा सकते थे। आम्र की दो जातियां यहां उपलब्ध थीं। एक जाति के आम्र छोटे होते थे। पक जाने पर उनके फल हरे से पीले रंग में बदल जाते थे और दूसरी जाति के आम्र बड़े एवं सदा हरे रहते थे। यहां छींट के वस्त्रों और सोने का भी उत्पादन होता था। जलवायु उष्ण थी। लोग दयाशील एवं सभ्य थे। वे कर्म-फलों में विश्वास करते थे, नीति-दर्शन का पालन करते थे और कलाएं सीखने में उत्साही थे। बीस से अधिक संघारामों में दो हजार के लगभग भिक्षु थे। वे महायान और हीनयान दोनों मतों का अध्ययन करते थे। पांच देव-मंदिर थे और विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

एक. शाक्य के शिष्यों संबंधी अवशेष

यहां तीन स्तूप थे। वे सभी सम्राट अशोक द्वारा खड़े करवाए गए थे। चार भूत बुद्धों द्वारा छोड़े गए असंख्य चिह्न थे। तथागत के जिन अनेक शिष्यों की अस्थियां यहां के स्तूपों में सुरक्षित थीं, उनमें सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, पूर्णमैत्रायाणिपुत्र, उपाली, आनन्द, राहुल और मंजुश्री आदि बोधिसत्व भी सम्मिलित थे। प्रति वर्ष प्रथम, पांचवें एवं नवें उपवास महीनों में और प्रत्येक माह के छ: अनाहार दिवसों में भिक्षु अपने निकट मित्रों को साथ लिए, चढ़ावा और अमूल्य वस्तुएं ले जा कर अपने-अपने निकायों के अनुसार अपने-अपने

इष्ट बोधिसत्वों की प्रतिमाएं स्थापित कर पूजा करते थे। अभिधर्म मानने वाले भिक्षु सारिपुत्र की, समाधि लगाने वाले भिक्षु मौद्गल्यायन की, सूत्रों का पाठ करने वाले भिक्षु पूर्णमैत्रायाणिपुत्र की, विनय का अध्ययन करने वाले भिक्षु उपाली की, भिक्षुणियां आनन्द की तथा श्रामणेर राहुल की पूजा करते थे। महायानी विभिन्न बोधिसत्वों की पूजा करते थे। उन दिनों सभी स्तूपों में बुद्ध की पूजा में विभिन्न चढ़ावे जुटाने की होड़ सी लग जाती थी। मोतियों से सजी हुई झंडियां पंक्तियों में फहराई जाती थीं। रत्नों से जड़े हुए छत्रों के जोड़े यत्र-तत्र खड़े किए जाते थे। धूपबत्तियों से निकलने वाला सुगंधित धूम बादल का रूप धारण कर लेता था। फूलों की वर्षा की जाती थी। सूर्य एवं चन्द्रमा ढक जाते थे और घाटियां गूंज उठती थीं। राजा-महाराजा और उनके मंत्री पुण्य-कर्मों में संलग्न हो जाते थे।

दो. उपगुप्त संबंधी अवशेष

राजधानी से पांच-छः ली दूर पूर्व में एक शैल-संघाराम स्थित था। चट्टानों को खोद कर कक्ष बनाए गए थे और संघाराम का प्रवेश-द्वार एक संकीर्ण घाटी था। गृहपति उपगुप्त ने यह संघाराम बनवाया था। इसमें तथागत के नख सुरक्षित रखने वाला एक स्तूप भी था। संघाराम के उत्तर में चट्टान में एक शैलगृह था, जो कोई बीस छि ऊंचा और तीस छि चौड़ा था। उसमें चार छुन लम्बी खपच्चियों का ढेर लगा हुआ था। जब पूजनीय उपगुप्त प्राणियों को सद्धर्म में दीक्षित करते थे, तब जो दंपति अर्हत्व प्राप्त कर लेता था, वह एक खपच्ची इसमें डाल देता था। यदि दोनों के वंश या जाति अलग-अलग होते, तो अर्हत्व की प्राप्ति कर लेने पर भी खपच्ची नहीं डाली जाती थी।

तीन. जहां वानर ने तथागत को मधु अर्पित किया था एवं अन्य अवशेष

शैलकक्ष से लगभग पच्चीस ली दूर दक्षिण-पूर्व में एक बहुत बड़ा सूखा पड़ा तालाब था। उसके निकट एक स्तूप खड़ा था। भूत काल में जब तथागत इस स्थान से जा रहे थे, तब एक वानर ने उन्हें मधु अर्पित किया था। तथागत ने मधु में जल मिला कर अपने शिष्यों को पिला दिया था। वानर प्रसन्नता से बांसों उछल पड़ा, किन्तु तालाब में गिर कर मर गया। अपने पुण्य-कर्म के बल पर उसका मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म हुआ।

तालाब के निकट वन में चार भूत बुद्धों के चंक्रमण के अवशेष थे। उनके समीप उन

स्थलों में, जहां सारिपुत्र और मौद्गल्यायन इत्यादि एक हजार ढाई सौ महा अर्हत समाधि लगाते थे, स्मारक के रूप में स्तूप खड़े किए गए थे। अपने जीवन काल में तथागत ने अनेक बार इस राज्य का भ्रमण किया था। जहां-जहां उन्होंने धर्मोपदेश दिए थे, वहां समाधियां बनाई गईं एवं वृक्ष लगाए गए।

यहां से उत्तर-पूर्व में पांच सौ ली की पद-यात्रा करने के अनन्तर मैं स्थानेश्वर पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

स्थानेश्वर

स्थानेश्वर की परिधि सात हजार ली से अधिक थी और राजधानी की परिधि बीस ली से अधिक। भूमि उर्वर थी और खेत लहलहाते दिखाई देते थे। जलवायु कुछ उष्ण थी। लोग संकीर्ण हृदय किन्तु संपन्न थे। वे भोग-विलास में एक से एक बढ़ कर थे। वे मंत्र-तंत्र में प्रवीण तथा अनोखे कौशलों के महान प्रशंसक थे। व्यापार करने वाले अधिक थे, खेती करने वाले अल्प। विभिन्न स्थानों से अनमोल वस्तुएं इस राज्य में जमा होती रहती थीं। यहां तीन संघाराम थे जिनमें सात सौ से अधिक भिक्षु थे। वे सबके सब हीनयानी थे। देव-मंदिरों की संख्या प्राय: एक सौ थी और विधर्मी अधिमात्र थे।

एक. धर्मक्षेत्र

राजधानी के इर्द-गिर्द दो सौ ली के घेरे में आने वाले क्षेत्र को स्थानीय निवासी 'धर्मक्षेत्र' कहते थे। अनेक प्रतिष्ठित वृद्धों ने मुझे यह कथा सुनाई थी : भूत काल में भारत के पांच भागों पर दो राजा अपना-अपना शासन चलाते थे। दोनों राज्य बहुधा एक दूसरे की सीमा का उल्लंघन करते हुए अविराम युद्ध करते रहते थे। अन्तत: दोनों राजा इस बात पर सहमत हुए कि हार-जीत के निश्चय के लिए एक निर्णायक युद्ध हो, जिससे प्रजा को शांत किया जा सके। किन्तु प्रजा अत्यंत असंतुष्ट थी। उन्होंने अपने-अप राजाओं के आदेशों का पालन करने से अस्वीकार कर दिया। इस राज्य के राजा ने सोचा कि नए कार्य पर प्रजा के साथ विचार-विनिमय करना व्यर्थ है। केवल देवता ही प्रजा को प्रभावित कर सकते हैं तथा सत्ताधिकार से सफलता प्राप्त हो सकती है। तब एक ऐसा ब्राह्मण था, जिसकी प्रतिभा के संबंध में राजा को जानकारी थी। उन्होंने गुप्त रूप से उस ब्राह्मण को बहुत से कपड़े दिए और उसे प्रासाद के एक एकांत कक्ष में धर्म-सूत्र लिखने की आज्ञा दी। जब धर्म-सूत्र लिखे जा चुके, तब वे एक गुहा में छिपा कर रख दिए गए। समय व्यतीत

होता गया और पौधे बढ़ कर इतने मोटे हो गए कि दो व्यक्ति हाथ में हाथ बांध कर ही उन्हें घेर सकते थे। एक दिन राजा ने राजसभा में मंत्रियों से कहा : "मैं अयोग्य होकर भी सिंहासन रूढ़ होने पर लज्जित हूं। इन्द्र की कृपा है कि उन्होंने सपने में मुझे एक दैवी पुस्तक दी। अब यह पुस्तक अमुक पर्वत पर एक गुहा में सुरक्षित रखी हुई है।" फिर राजा ने यह पुस्तक खोज निकालने का आदेश दिया। सचमुच, एक गुहा में यह दैवी पुस्तक पाई गई। इस पर मंत्रियों ने राजा को बधाइयां दीं और प्रजा प्रसन्न हुए। उन्होंने एक दूसरे को यह संवाद दिया, जिससे सब को यह बात ज्ञात हो गई। दैवी पुस्तक का सारांश यह था : "जीवन-मरण एक अपार दुःख-सागर है और भवचक्र अनंत है। सभी प्राणी इस दुःख-सागर में डूबते जा रहे हैं और अपनी शक्ति के सहारे सागर के उस पार जाने में असमर्थ हैं। मैं तुम लोगों को दुःख-सागर से उबरने का एक उत्तम उपाय बताता हूं। इस राजधानी के इर्द-गिर्द दो सौ ली का क्षेत्र पूववर्ती राजाओं का एक वंशगत धर्मक्षेत्र रहा है। किन्तु कालांतर में इस प्रकार के समस्त अभिलेख लुप्त हो गए थे। सभी प्राणी अचैतन्य हो अंततः दुःख-सागर में डूब गए। वे निस्सहाय हैं। तो क्या किया जाए? युद्ध में निहत होने पर प्राणियों का मनुष्य रूप में पुनर्जन्म होगा। अनेक प्राणियों का वध कर देने पर भी वे निर्दोष गिने जाएंगे। उन्हें देवताओं से वरदान एवं सुख मिलेगा। जो आज्ञाकारी संतान अपने अभिभावकों की सेवा-शुश्रुषा करेंगी उन्हें इस क्षेत्र से गुजरने पर ही अनन्त सुख मिल जाएगा। जब अल्प योगदान करके ही बहुत कुछ मिलने वाला है तो इस सुअवसर को व्यर्थ ही क्यों गंवाया जाए? जब एक बार मनुष्य अपना पार्थिव शरीर त्यागेगा, तो वह नरक, प्रेत और पशु के अंधकारपूर्ण भवचक्र में प्रव्रजन करता रहेगा। अतएव सभी प्राणियों को अपने-अपने कार्य पूरे करने हेतु भरपूर प्रयास करने चाहिएं।" इसके पश्चात इस राज्य के सभी लोगों ने युद्ध-कौशल सीखने में बड़ा उत्साह दिखाया और वे प्रत्येक क्षण मृत्यु के गले लगने को उद्यत हो गए। राजा ने युद्ध के लिए वीरों को सेना में भर्ती किया। दोनों राज्यों के मध्य घमासान युद्ध हुआ और शवों के ढेर लग गए। आज भी इस क्षेत्र में जहां-तहां उनकी अस्थियां पाई जा सकती थीं। वे विशालकाय भी थीं। अतएव परंपरा से इस स्थान को धर्मक्षेत्र कहा जाता था।

दो. बुद्ध-अस्थि-स्तूप एवं गोन्विद संघाराम

राजधानी से चार-पांच ली दूर उत्तर-पश्चिम में लगभग दो सौ छि ऊंचा एक स्तूप था, जो सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। स्तूप के निर्माण में प्रयुक्त ईंटों का रंग नारंगी था और वे अत्यंत चमकीली थीं। स्तूप में तथागत की एक शङ अस्थियां सुरक्षित थीं, जो समय-समय पर प्रकाश फेंकती थीं और अलौकिक शक्ति प्रदर्शित करती थीं।

राजधानी से कोई सौ ली दूर दक्षिण में गोविन्द संघाराम स्थित था। संघाराम में ऊंचे-ऊंचे भवनों के छज्जे एक दूसरे से जुड़े हुए थे और बीच-बीच में कई तल्लों वाले मंडप थे। भिक्षु विनयशील एवं शिष्टाचारी थे।

यहां से उत्तर-पूर्व में चार सौ से अधिक ली दूर चलने पर मैं स्रुघ्न की सीमा में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

स्रुघ्न

स्रुघ्न की परिधि छः हजार ली से अधिक थी। इसके पूर्व में गंगा थी और उत्तर में ऊंची-ऊंची पर्वतश्रृंखलाएं। बीच में यमुना आर-पार बहती थी। राजधानी की परिधि प्रायः बीस ली थी। नगर यमुना के पश्चिम तट पर स्थित था। यद्यपि वह उजड़ चुका था, किन्तु प्राचीर का आधार फिर भी अच्छी स्थिति में था। उपजें, जलवायु और प्रथाएं स्थानेश्वर के समान थीं। लोग सच्चरित्र थे और परधर्मों को मानते थे। वे कलाओं एवं देवताओं के वरदान को प्रचुर महत्व देते थे। यहां पांच संघाराम थे और एक हजार से अधिक भिक्षु। उनमें से अधिकांश हीनयानी थे और शेष अन्य निकायों के। वे बौद्ध धर्म के सूक्ष्म तत्वों पर विचार-विमर्श करने में संलग्न रहते थे और उसके गूढ़ सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में प्रवीण थे। विभिन्न स्थानों से विज्ञ भिक्षु सत्य की खोज में अपनी शंकाएं दूर करने यहां आते रहते थे। देव-मंदिरों की संख्या कोई सौ थी और विधर्मी बहुत अधिक थे।

एक. तथागत एवं अर्हतों के केश व नख सुरक्षित रखने वाले स्तूप

राजधानी के दक्षिण-पूर्व में यमुना के पश्चिम तट पर एक बृहद संघाराम के पूर्वी द्वार के बाहर एक स्तूप था, जिसे सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। उस काल में तथागत ने यहां धर्मोपदेश दे प्राणियों को सद्धर्म में दीक्षित किया था। इस स्तूप के निकट एक अन्य स्तूप में तथागत के केश व नख सुरक्षित थे। इसके इर्द-गिर्द ऐसे दसियों स्तूप खड़े थे, जिनमें सारिपुत्र, मौद्गल्यायन एवं अन्य अर्हतों के केश व नख सुरक्षित थे। तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात इस राज्य के लोग तीर्थिकों के झांसे में आ कर परधर्म मानने लगे और सत्य विश्वास से विमुख हुए। जिन स्थानों में अन्य राज्यों के शास्त्राचार्यों ने तर्क-वितर्क में तीर्थिकों एवं ब्राह्मणों को निरुत्तर कर दिया था, उन स्थानों में स्मारक के रूप में पांच संघाराम निर्मित किए गए थे।

दो. गंगा के उद्‌गम और देव द्वारा उपदेश दिए जाने की कथा

यमुना से प्रायः आठ सौ ली दूर पूर्व में गंगा थी। गंगा का पाट तीन-चार ली चौड़ा था। दक्षिण-पूर्व में बहती हुई गंगा सागर में जा गिरती थी। उसका मुहाना दस ली से भी अधिक चौड़ा था। गहरे नीले जल की गंगा में तरंगें बनती-बिखरती रहती थीं। उसमें विचित्र जीव बहुत थे, पर वे किसी को हानि नहीं पहुंचाते थे। जल मीठा था और जल-प्रवाह के साथ-साथ बालुका भी बह जाती थी। लोक-साहित्य के अनुसार गंगा पुण्योदका कहलाती थी। घोर पाप करने वाले गंगा में नहा कर पाप से मुक्त हो जाते थे। नदी में डूब कर आत्महत्या करने वालों का स्वर्ग में पुनर्जन्म होता था। जिसकी मृत देह गंगा में विसर्जित की जाती, उसका नीच जीव के रूप में पुनर्जन्म नहीं होता था। नदी के जल को उत्तेजित एवं प्रवाहित करने से मृतक की आत्मा को शांति मिल सकती थी। उस काल में सिंहल के बोधिसत्व देव धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे। प्राणियों की जड़ता पर करुणा कर वे उन्हें प्रबुद्ध करने हेतु यहां आए। जिस समय वे यहां पहुंचे, उस समय स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे तट पर एकत्रित थे। वे जल को उत्तेजित एवं प्रवाहित कर रहे थे। बोधिसत्व देव संसारियों की भांति नदी में कूद पड़े। पर वे सिर नीचा किए उल्टी धारा का सामना करते हुए आगे बढ़ते गए। उनकी विधि दूसरों से अलग थी। एक तीर्थिक ने उनसे पूछा : "श्रीमान, आप दूसरों से भिन्न व्यवहार क्यों कर रहे हैं?" बोधिसत्व देव बोले : "मेरे माता-पिता एवं संबंधी सभी सिंहल में हैं। मुझे आशंका है कि वे भूख और विपत्तियों से पीड़ित होंगे। मैं चाहता हूं कि यह जल-धारा वहां पहुंच जाए और वे बच सकें।" उन तीर्थिकों ने कहा : "आपसे भूल हुई है। आप बिना सोचे-समझे व्यर्थ ही ऐसा क्यों करने लगे हैं? आप का देश इतनी दूर है और बीच में पर्वतमालाएं एवं नदी-नाले भी तो हैं। आप जल को उत्तेजित कर अपने सुदूर स्थित परिजनों को भुखमरी से उबारना चाहते हैं। आप तो उस व्यक्ति के समान हैं, जो रास्ते में उल्टे पांव चल कर आगे चलने वालों को पकड़ना चाहता हो। ऐसा भी कभी सुना है?" इस पर बोधिसत्व देव बोले : "जब मृत्यु लोक में भी जघन्य पाप करने वाले इस जल से लाभ उठा सकते हैं, तब यह जल मेरे परिजनों को सहायता क्यों नहीं दे सकता? भले ही बीच में पर्वतमालाएं व नदी-नाले पड़ें।" यह सुन कर विधर्मियों की समझ में बात आ गई। उन्होंने देव से क्षमा मांगी और अपने विश्वास त्याग दिए। वे सद्धर्म मानने लगे और बोधिसत्व से दीक्षा लेने के इच्छुक हुए।

मैं यमुना पार कर पूर्वी तट पर स्थित मटिपुर आया। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

मटिपुर

मटिपुर की परिधि छः हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि कोई बीस ली थी। बाजरे एवं गेहूं की खेती के लिए अनुकूल स्थितियां थीं। फल-फूल बहुतायत से मिलते थे। जलवायु सुहावनी थी। लोग सच्चे थे, विद्याओं एवं कलाओं को महत्व देते थे तथा यंत्र-तंत्र में प्रवीण थे। आधे लोग बौद्ध धर्म और शेष आधे परधर्म को मानते थे। राजा एक शूद्र था। वह बौद्ध धर्म के बदले देवों की उपासना करता था। दस से अधिक संघाराम थे और भिक्षु आठ सौ से अधिक। उनमें से अधिकतर हीनयान के सर्वास्तिवादी थे। देव-मंदिरों की संख्या कोई पचास थी और विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

एक. गुणप्रभ संघाराम एवं उसकी कथा

राजधानी से चार-पांच ली दूर दक्षिण में एक लघु संघाराम था। उसमें लगभग पचास भिक्षु थे। भूत काल में शास्त्राचार्य गुणप्रभ ने यहीं "तत्व सत्य शास्त्र "आदि सौ से अधिक शास्त्र प्रतिपादित किए थे। शास्त्राचार्य बचपन से ही प्रतिभावान थे। आयु प्राप्त होने पर वे महत्वाकांक्षी हुए। वे कुशाग्रबुद्धि, मेधावी, नाना विद्याओं में पारंगत एवं सर्वज्ञ थे। आरंभ में वे महायानी थे। पर वे महायान के गूढ़ार्थ को अभी समझ भी न पाए थे कि "अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र" पढ़ने लगे। इस प्रकार महायान से विमुख हो वे हीनयानी बन गए। दसियों शास्त्रों की रचना कर महायान के मुख्य मतों का खंडन कर वे कट्टर हीनयानी बन गए। दसियों लौकिक साहित्य रच कर उन्होंने पूर्ववर्तियों के प्रामाणिक शास्त्रों को नकार दिया। वे माथा-पच्ची करने एवं दसियों बार पढ़ने पर भी बौद्ध सूत्रों के अर्थ समझ न सके और देर तक सोचने-समझने पर भी अपनी शंकाएं दूर करने में विफल रहे। उस समय देवसेन नामक एक अर्हत तुषित स्वर्ग जाया करता था। गुणप्रभ ने उसके द्वारा बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन कर अपनी शंकाएं दूर करना और शिक्षा लेना चाहा। देवसेन ने अपनी दिव्य शक्ति से उन्हें स्वर्ग में पहुंचा दिया। गुणप्रभ ने बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन करते समय केवल हाथ जोड़े, प्रणाम नहीं किया। देवसेन ने उन्हें डांटा : "बोधिसत्व मैत्रेय क्रमानुसार बुद्ध बनेंगे और तुम इतने अहंकारी हो कि तुमने उन्हें प्रणाम भी नहीं किया। तुम बोधिसत्व की देशना सुनना चाहते हो, तो फिर उनके सामने अभिभूत न होने की धृष्टता क्यों?" गुणप्रभ ने उत्तर दिया : "आपने यह उपदेश दे कर सचमुच मुझे शिक्षा दी है। किन्तु मैं एक उपसंपन्न भिक्षु और प्रव्राजक हूं, जबकि बोधिसत्व मैत्रेय स्वर्ग में सुख-सुविधाएं भोग रहे हैं और प्रव्रज्या करने वाले भिक्षु नहीं हैं। क्या यह संभवतः

अनुचित नहीं होगा कि मैं उन्हें प्रणाम करूं।" बोधिसत्व को ज्ञात था कि वे अहंकारी और हठी हैं, अतएव धर्मोपदेश सुनने की योग्यता नहीं रखते। गुणप्रभ तीन बार तुषित स्वर्ग गए, किन्तु उनकी शंकाएं दूर न हो पाईं। तब उन्होंने एक बार फिर देवसेन से याचना की और बोधिसत्व को पुनः प्रणाम करने की इच्छा व्यक्त की। देवसेन को उनका अहंकार घृणित लगा और तिरस्कार कर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। अपनी इच्छा को पूरी न होते देख कर गुणप्रभ के मन में द्वेष उत्पन्न हुआ। वे वन में छिप कर अलौकिक शक्ति प्राप्ति हेतु साधना करने लगे। पर अहंकार की समाप्ति न हो सकने के कारण वे अर्हत्व प्राप्त करने में विफल हुए।

दो. बृहद् संघाराम और संघभद्र एवं वसुबंधु की कथा

गुणप्रभ संघाराम से तीन-चार ली दूर उत्तर में एक बृहद् संघाराम में कोई दो सौ भिक्षु थे। वे सभी हीनयानी थे। इस संघाराम में शास्त्राचार्य संघभद्र का निधन हुआ था। शास्त्राचार्य संघभद्र काश्मीर के रहने वाले थे। वे प्रतिभावान, मेधावी और सर्वज्ञ थे। छुटपन में ही उनकी प्रशंसा के पुल बंध गए थे। उन्होंने सर्वास्तिवादी निकाय के "अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र" पर विशेष रूप से अधिकार किया था। उनके काल में बोधिसत्व वसुबंधु गूढ़ार्थों का अध्ययन करने और शास्त्रों में निहित अर्थों का पता लगाने में लीन थे। उन्होंने "अभिधर्म कोष शास्त्र" प्रतिपादित कर वैभाषिक शास्त्राचार्यों के मतों का खंडन किया। इस शास्त्र में युक्तियां, शब्दसौष्ठव एवं सुरुचि वर्तमान थे। यह शास्त्र पढ़ लेने के अनन्तर शास्त्राचार्य संघभद्र ने सैद्धांतिक अध्ययन में जुटने का संकल्प किया। बारह वर्षों तक एकाग्र मन से अध्ययन करने के पश्चात उन्होंने पच्चीस हजार श्लोकों में आठ लाख शब्दों वाला "कोष करका शास्त्र" लिखा। इस शास्त्र की भाषा गंभीर थी और अर्थ दूरगामी थे। इसमें गूढ़ से गूढ़ एवं सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया था। शास्त्राचार्य संघभद्र ने अपने शिष्यों से कहा : "मैं अपनी असाधारण योग्यता और सही विचारों से बोधिसत्व वसुबंधु को पूरी तरह निरुत्तर कर सकता हूं तथा उनकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला सकता हूं। मैं उस बूढ़े को अकेले ही प्रसिद्धि पाने नहीं दूंगा।" तीन-चार ज्ञाता शिष्य उनकी कृति लिए वसुबंधु से मिलने गए। उस समय बोधिसत्व वसुबंधु टक्क के शाकल नगर में थे। यह संवाद पा कर कि शास्त्राचार्य संघभद्र दूर से यहां आ रहे हैं, बोधिसत्व वसुबंधु तुरन्त अपना सामान बांधने लगे। उनके शिष्यों की समझ में यह बात नहीं आई। उन्होंने बोधिसत्व को रोकते हुए कहा : "आपके सद्गुण पूर्ववर्ती मुनियों से भी बढ़ कर हैं। आपकी जग-प्रसिद्धि भी है; दूर एवं निकट में कोई ऐसा विद्वान नहीं है जो आपका आदर कर स्वयं को क्षुद्र न मानता हो। शास्त्राचार्य संघभद्र के आगमन

का समाचार पा कर भय पाने की क्या ग्रावश्यकता है। यदि ग्रापके लिए कोई ग्रशोभनीय बात हुई, तो हम उनसे निबटेंगे।" बोधिसत्व वसुबंधु ने समझाते हुए कहा : "मैं इसलिए नहीं जा रहा हूं कि कहीं संघभद्र से मेरी मुठभेड़ न हो जाय। लगता है कि इस राज्य में किसी की बात पर निर्णय नहीं हो सकता। संघभद्र युवा हैं, वाचाल हैं, जबकि मैं वृद्ध हूं ग्रौर देर तक तर्क-वितर्क करने में ग्रसमर्थ हूं। मैं एक ही वाक्य से उनके ग्रसत्य का खंडन करना चाहता हूं। ग्रौर यही चाहता हूं कि उन्हें मध्यदेश में ले जाऊं, ताकि वहां के युवा विद्वान सत्य-ग्रसत्य एवं सिद्धि-ग्रसिद्धि पर विचार कर सकें।" यह कह कर बोधिसत्व ग्रपने सहचर पर पुस्तकों का पिटारा लदवा कर दूर यात्रा के लिए चल पड़े। ग्रगले ही दिन शास्त्राचार्य संघभद्र इस संघाराम में ग्रा पहुंचे। सहसा उन्हें भयंकर दुर्बलता की ग्रनुभूति हुई। उन्होंने एक पत्र लिख कर बोधिसत्व बसुबंधु से क्षमा मांगते हुए कहा : "तथागत के परिनिर्वाण के उपरान्त उनके शिष्य कई निकायों में विभाजित हो गए हैं ग्रौर ग्रपने-ग्रपने मतों का प्रचार करते रहे हैं। समान मत वाले ग्रापस में घुल-मिल कर रहते हैं ग्रौर ग्रन्य मतों वालों से घृणा करते हैं। मैं ग्रनभिज्ञ ग्रौर बुद्धिहीन हूं। सौभाग्य की बात है कि ग्रापने ग्रपने मतों को स्पष्ट किया है। मैंने ग्रापका 'ग्रभिधर्म कोष शास्त्र' पढ़ा है। ग्रापने वैभाषिक शास्त्राचार्यों के सिद्धान्तों का खंडन किया है। पर ग्रपनी योग्यता का सही ग्रनुमान न लगा कर मैंने वर्षों तक ग्रध्ययन के पश्चात 'कोष करका शास्त्र' लिख मारा ग्रौर उसे मूल सिद्धान्त बनाना भी चाहा। मैं बुद्धिहीन हो कर भी महत्वाकांक्षी हूं। ग्रब मैं मरणासन्न ग्रवस्था में हूं। बोधिसत्व, ग्राप सूक्ष्म तत्वों का प्रचार करते रहे हैं एवं परमसत्य पर विचार करते रहे हैं। यदि ग्राप मेरी कृति को नष्ट न कर उसे रहने दें, तो यह मेरे लिए सबसे बड़ा सौभाग्य होगा ग्रौर मरने पर कोई पछतावा न होगा।" संघभद्र ने ग्रपने शिष्यों में से सबसे वाक्पटु शिष्यों को चुन उनसे कहा : "मैं एक परवर्ती हूं। पूर्ववर्ती ग्राचार्य का ग्रनादर कर मेरा ग्रन्त क्या हुग्रा ? मैं ग्रंतिम सांसें ले रहा हूं। तुम लोग यह पत्र ग्रौर मेरी कृति लेकर बोधिसत्व के यहां जाग्रो, मेरी ग्रोर से उनसे क्षमा मांगो ग्रौर प्रायश्चित करो!" उनकी बात ग्रभी पूरी ही हुई थी कि उनका प्राणान्त हो गया। उनके शिष्य पत्र ग्रौर कृति लिए बोधिसत्व वसुबंधु के यहां गए। उन्होंने ग्रादरपूर्वक कहा : "हमारे ग्राचार्य संघभद्र स्वर्गवासी हो गए हैं। ग्रंतिम श्वास लेते समय उन्होंने यह पत्र लिखा था ग्रौर ग्रपने दोष के लिए ग्रापसे क्षमा मांगी थी। हमें यह ग्राशा करने का साहस नहीं कि उनकी ग्रपकीर्ति न होगी।" संघभद्र का पत्र एवं कृति पढ़ लेने पर बोधिसत्व वसुबंधु देर तक चुप रहे। फिर उन्होंने ग्रपने शिष्यों से कहा :" शास्त्राचार्य संघभद्र एक प्रतिभावान एवं कुशाग्रबुद्धि युवक थे। यद्यपि उन्होंने ग्रपने मत को पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया, तथापि उसमें शब्दचातुर्य है। उनके मत का खंडन करना मेरे लिए बायें हाथ का खेल है। किन्तु उसके द्वारा मरणासन्न ग्रवस्था

में व्यक्त की गई इच्छा और कठिन समस्य के सम्मुखीन होने पर कही गई बातों को ध्यान में रख कर मैं समग्र हितों की दृष्टि से प्रस्थान कर उनकी इच्छा को पूरा कर दूंगा। फिर उनकी यह कृति हमारे निकाय के मतों को भी तो स्पष्ट कर सकती है।" यह कह कर उन्होंने शास्त्र का नाम बदल कर "न्यायानुसार शास्त्र" रखा। उनके शिष्यों ने विरोध प्रकट करते हुए कहा : "जब संघभद्र मरे नहीं थे, तब तो आपने दूर जा कर भ्रमण किया और अब जब आपको उनकी कृति मात्र मिली, आपने उसका नाम बदलने का कष्ट भी उठाया। आपके शिष्यों में से कौन अपना मुंह दिखा सकेगा ?" उनकी आशंका को दूर करने हेतु बोधिसत्व वसुबंधु ने यह श्लोक सुनाया : "सिंह को देखो, शूकर की दृष्टि बचाता है वह। किसकी विजय होगी, यह बुद्धिमान को जानना ही चाहिए।" संघभद्र के शिष्यों ने अपने आचार्य के शव का दाह-संस्कार किया और संघाराम से कोई दो सौ कदम दूर आम्रवन में एक स्तूप खड़ा कर उसमें अपने आचार्य की अस्थियां सुरक्षित रखीं। यह स्तूप अब भी विद्यमान था।

तीन. विमलमित्र की कथा

आम्रवन के निकट एक स्तूप में शास्त्राचार्य विमलमित्र की अस्थियां सुरक्षित थीं। वे काश्मीर के रहने वाले थे। उन्होंने सर्वास्तिवादी निकाय की दीक्षा ग्रहण कर प्रव्रज्या प्राप्त की। उन्होंने सभी बौद्ध सूत्रों और विभिन्न निकायों के मतों पर व्यापक रूप से विचार किया तथा भारत के अन्य राज्यों का भ्रमण कर सूत्र, विनय और अभिधर्म पिटकों के गुह्य अर्थों का अध्ययन किया। उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। जब वे स्वदेश लौट रहे थे, तब रास्ते में शास्त्राचार्य संघभद्र स्तूप के निकट से गुजरे। उन्होंने ढूह पर हाथ फेरते हुए प्रभावित हो कर कहा : "केवल शास्त्राचार्य विशालहृदय थे। उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार करते हुए अन्य निकायों के मतों का खंडन अपने निकाय का प्रभुत्व स्थापित करना चाहा था। वे चिरजीवी क्यों न हो सके ? मैं विमलमित्र अवश्य ही छिछले ज्ञान वाला हूं। यद्यपि युग बदल गया है, तथापि आचार्य, मैं आपके मतों का प्रशंसक हूं और आपका उपकार सदा स्मरण रखूंगा। वसुबंधु की मृत्यु तो हुई है, पर उनके सिद्धान्त अब भी प्रचलित हैं। मैं अपने सीखे हुए ज्ञान से कुछ शास्त्र प्रतिपादित करूंगा, जिससे कि जम्बूद्वीप के सभी विद्वान महायान का अंत कर सकें और वसुबंधु का नाम धूल धूसरित कर सकें। यह एक अमर कार्य होगा। मैं इस कार्य को पूरा करने में पूरा मन लगाऊंगा।" उसकी बात अभी समाप्त हुई थी कि उसका जी घबराने लगा, मुंह से पांच जिह्वाएं निकल आईं एवं रक्तोपदंश हुआ। वह जान गया कि उसकी मृत्यु आसन्न है। तब उसने अपने अंतिम पत्र में पश्चाताप करते हुए लिखा : "महायान के मत बौद्ध धर्म के सबसे गूढ़ सिद्धान्त हैं। नाम का अंत किया

गया है और सिद्धान्त परिशुद्ध और गुह्य हैं। मैंने मूर्खतापूर्वक पूर्ववर्तियों के सिद्धान्तों पर जहर उगला। अब मुझे कर्म-फल मिल रहा है। मैं अपने किए का फल भोग रहा हूं ! मैं विनीत रूप से अपने साथियों को सचेत करना चाहता हूं कि मेरे उदाहरण से सतर्क रहें और संकल्प करते समय सावधानी बरतें। इस संबंध में उन्हें शंकित नहीं रहना चाहिए !" इतने में भूचाल आया और शास्त्राचार्य के प्राण-पखेरू उड़ गए। जिस स्थल में उसकी मृत्यु हुई, उसी स्थल में एक गड्ढा बन गया। उसके साथियों ने उसका दाह-संस्कार किया और अस्थियां एक स्तूप में रख दीं। उस समय एक अर्हत ने यह दृश्य देख कर भावविभोर हो कहा : "यह कितनी खेदजनक एवं दुःखदायी बात है! यह शास्त्राचार्य बहुत हठी था। उसने महायान पर जहर उगला। अंत में वह अवीचि नरक में चला गया।"

चार. मयूर नगर

मटिपुर के उत्तर-पश्चिम में गंगा के पूर्वी तट पर मयूर नगर स्थित था। नगर की परिधि कोई बीस ली थी। जनसंख्या घनी थी। निर्मल जल वाले नाले एक दूसरे को काटते बहते थे। ताम्र, स्फटिक एवं रत्नों से बनी वस्तुओं का उत्पादन होता था। नगर के निकट गंगा के समीप एक बृहद देव-मंदिर था, जिसमें बहुधा चमत्कार हुआ करते थे। मंदिर में एक ताल था। उसका तट पत्थरों से निर्मित हुआ था। एक नहर से गंगा का जल लाया जाता था। भारतीय इस ताल को गंगाद्वार कहते थे। यह पुण्य-फल प्राप्त करने एवं पाप से मुक्ति पाने का स्थान था। यहां दूर से आने वाले सैकड़ों व्यक्ति सदैव एकत्रित होते रहते थे और ताल में स्नान करते थे। दानी राजा-महाराजा यहां धर्मशालाएं स्थापित कर विधवाओं, विधुरों एवं अनाथों में स्वादिष्ट भोजन एवं औषधियां वितरित करते थे।

यहां से उत्तर में कोई तीन सौ ली दूर चलने पर मैं ब्राह्मपुर की सीमा में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य उत्तरापथ में अवस्थित है)।

ब्राह्मपुर

ब्राह्मपुर की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। चारों ओर पर्वत ही पर्वत फैले हुए थे। राजधानी की परिधि प्रायः बीस ली थी। जनसंख्या अधिक थी। लोग संपन्न थे। भूमि उर्वर थी एवं अनाज की बोवाई समय पर होती थी। ताम्र एवं स्फटिक का उत्पादन होता था। जलवायु थोड़ी ठंडी थी। लोग स्वभाव के कठोर और साहसी थे। कलाएं सीखने वालों की संख्या अल्प थी, जबकि अधिकतर लोग लाभ के पीछे पड़े रहते

थे। वे परधर्म एवं बौद्ध धर्म दोनों मानते थे। पांच संघाराम थे, पर भिक्षु इने-गिने थे। दस से अधिक देव-मंदिर थे। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

इस राज्य के उत्तर में हिमगिरि में सुवर्णगोत्र अवस्थित था। वहां उत्तम स्वर्ण का उत्पादन होता था, इसलिए इस राज्य का यह नाम पड़ा। इसका भूभाग पश्चिम से पूर्व तक लम्बा था एवं उत्तर से दक्षिण तक संकीर्ण। यही तथाकथित पूर्व स्त्री राज्य था। स्त्रियों द्वारा शासन चलाए जाने की परम्परा थी, सो राज्य के नाम में 'स्त्री' शब्द जोड़ा गया। रानी का पति राजा तो होता था, पर राजकीय काम-काज नहीं देखता था, केवल युद्ध तथा खेती करने का कार्य संभालता था। भूमि शीतकालीन गेहूं की खेती के लिए उपयुक्त थी। बड़ी संख्या में बकरियां एवं घोड़े पाले जाते थे। जलवायु बहुत ठंडी थी। लोग उग्र स्वभाव के थे। सुवर्णगोत्र पूर्व में तिब्बत की सीमा से, उत्तर में खोतान की सीमा से तथा पश्चिम में मायुल की सीमा से लगा था।

मटिपुर से दक्षिण-पूर्व की दिशा में चार सौ ली लम्बी यात्रा करने पर मैं गोविसन पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

गोविसन[1]

गोविसन की परिधि कोई दो हजार ली थी, जबकि राजधानी की चौदह-पन्द्रह ली। यह पर्वतीय राज्य दुर्गम था। जनसंख्या सघन थी। चारों ओर फूल, वन एवं ताल दिखाई देते थे। जलवायु एवं भूमि मटिपुर के समान थी। लोग सदाचारी और अध्ययनशील थे और पुण्य-फल प्राप्त करने में उत्साही थे। परधर्म मानने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। वे तात्कालिक भोग-विलास में रत रहते थे। दो संघाराम थे और कोई सौ भिक्षु थे, जो सभी हीनयानी थे। देव-मंदिरों की संख्या तीस से अधिक थी। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

राजधानी के निकट एक पुराने संघाराम में दो सौ छि के लगभग ऊंचा एक अशोक स्तूप था। यहीं पर तथागत ने पूरे माह सद्धर्म के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाला था। स्तूप के निकट चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे। उनके समीप तथागत के केश व नख सुरक्षित रखने वाले दो स्तूप थे। दोनों स्तूप कोई एक चाङ ऊंचे थे।

यहां से चार सौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में अहिच्छत्र स्थित था। (यह राज्य मध्यदेश में था)।

---

1. इस राज्य के संस्कृत नाम पर विद्वानों में मतभेद है।

अहिच्छत्र

अहिच्छत्र की परिधि कोई तीन हजार ली थी, जबकि राजधानी की सत्रह-अठारह ली। राजधानी एक दुर्गम स्थान पर निर्मित थी और दुर्भेद्य थी। बाजरे एवं गेहूं की खेती के लिए अनुकूल स्थितियां थीं। वन और सोते जहां-तहां पाए जाते थे। जलवायु नम थी। लोग शिष्टाचारी, नीतिनिपुण, अध्ययनशील, सुयोग्य व सुविज्ञ थे। दस से अधिक संघाराम थे और भिक्षु तीन हजार थे। वे सभी हीनयान के सम्मतीय थे। नौ देव-मंदिर थे। तीन सौ विधर्मी थे। वे शिव के भक्त और पाशुपत थे।

राजधानी के बाहर नाग ताल के निकट एक अशोक स्तूप उस स्थल पर खड़ा था, जहां तथागत ने एक सप्ताह नागराज को उपदेश दिया था। इस स्तूप के समीप चार और लघु स्तूप थे तथा चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे।

यहां से दक्षिण में कोई दो सौ सत्तर ली की पद-यात्रा के बाद गंगा पार कर फिर दक्षिण-पश्चिम में बढ़ते हुए मैं विरसन पहुंच आया। (यह राज्य मध्यदेश में अवस्थित था)।

विरसन[1]

विरसन की परिधि कोई दो हजार ली थी एवं राजधानी की परिधि दस ली से अधिक। जलवायु व भूमि अहिच्छत्र के समान थी। लोग कठोर एवं उग्र स्वभाव के थे तथा कलाएं सीखने में रुचि लेते थे। उनमें से अधिकांश परधर्म मानते थे और शेष अल्पसंख्यक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। यहां दो संघाराम थे और तीन सौ भिक्षु। वे सभी महायानी थे। पांच देव-मंदिर थे। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

राजधानी में एक पुराने संघाराम में एक स्तूप था। उसका आधार विध्वस्त हो चुका था, पर ढूह फिर भी कोई सौ छि ऊंचा था। यह स्तूप सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। इसी स्थल पर तथागत ने सप्ताह भर "स्कंधधातुस्थान सूत्र" सुनाए थे। उसके समीप चार भूत बुद्धों के आसनों व चंक्रमण के अवशेष थे।

यहां से दक्षिण-पूर्व में दो सौ ली दूर चलने के उपरान्त मैं कपिथ पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

---

1. इस राज्य के संस्कृत नाम पर विद्वानों में मतभेद है।

कपिथ

कपिथ की परिधि लगभग दो हजार ली थी, जबकि राजधानी की कोई बीस ली। जलवायु व भूमि विरसन के सदृश थी। लोग शिष्टाचारी थे। उनमें से बहुतेरे कलाएं सीखने में उत्साही थे। चार संघाराम थे और उनमें कोई एक हजार भिक्षु थे। वे सभी हीन-यान के सम्मतीय थे। दस देव-मंदिर थे। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। वे सब के सब शिव के भक्त थे।

एक. बृहद संघाराम का त्रिविध सोपान व उसकी कथा

राजधानी से कोई बीस ली दूर पूर्व में एक बृहद् संघाराम था। इसके निर्माण अत्यंत सुन्दर थे। उत्कीर्णन सूक्ष्म था। बुद्ध की मूर्ति अत्यन्त विशद रूप से सजाई गई थी। कई सौ भिक्षु थे और वे सम्मतीय थे। उनकी सेवा में दसियों हजार गृहस्थ थे, जो संघाराम के निकट ही रहते थे।

संघाराम के प्राचीर के अन्दर त्रिविध सोपान थे, जो उत्तर से दक्षिण में पंक्तियों में बने हुए थे और पूर्व की ओर क्रमशः नीचे होते जाते थे। इन्हीं सोपानों से तथागत त्रायस्त्रिंश से मनुष्य लोक में वापस आए थे। उस समय तथागत जेतवन से प्रस्थान कर देवपुर में गए। उन्होंने सद्धर्म भवन में वास कर अपनी पूज्य माता को उपदेश दिए। तीन माह पश्चात उन्होंने मनुष्य लोक में वापस जाना चाहा। इन्द्र ने अपनी दैवी शक्ति से ये त्रिविध सोपान बनाए। मध्य सोपान स्वर्ण से, बायें सोपान स्फटिक से एवं दायें सोपान रजत से बने थे। सद्धर्म भवन से बाहर निकल कर तथागत देवतागण को ले कर मध्य सोपानों से नीचे उतरे ; ब्रह्मा एक श्वेत चामर लिए उनकी दायीं ओर रजत सोपानों से उतरे और इन्द्र एक रत्नों से जड़ा छत्र उठाए उनकी बायीं ओर स्फटिक सोपानों से उतरे। देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा करते हुए तथागत का गुणगान किया। सैकड़ों वर्ष पूर्व भी ये त्रिविध सोपान विद्यमान थे। कालांतर में ये विध्वस्त हो गए। अपनी आंखों से इन सोपानों को न देख पाने पर अनेक राजा-महाराजाओं का मन दुःखित हुआ। तब विध्वस्त आधार पर त्रिविध सोपानों के प्रतिरूपस्वरूप ईंटों एवं पत्थरों से सोपान बनवाए गए और उन पर रत्न जड़ दिए गए। वर्तमान सोपान सत्तर छि के लगभग ऊंचे थे। उन पर एक विहार भी खड़ा करवाया गया। विहार में एक-प्रस्तर बुद्ध प्रतिमा सुशोभित थी। उसके दायें और बायें सोपानों पर ब्रह्मा एवं इन्द्र की प्रतिमाएं थीं, जो नीचे उतरने की तात्कालिक शैली पर बनाई गई थीं। उनके समीप प्रायः सत्तर छि ऊंचा एक प्रस्तर स्तंभ था जिसे सम्राट अशोक

द्वारा खड़ा करवाया गया था। बैंगनी रंग का यह स्तंभ चमकीला, चिकना एवं कड़ा था। स्तंभ के शीर्ष पर सिंह की प्रस्तर मूर्ति थी जो सोपानों की ओर उन्मुख बैठी हुई दिखाई देती थी। स्तंभ पर अद्भुत आकृतियां खुदी हुई थीं। वे किसी के पाप या पुण्य के अनुसार दिखाई देती थीं।

सोपानों के निकट उस स्थल में एक स्तूप था जिस स्थल में चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे। उसके समीप एक स्तूप वहां खड़ा था जहां तथागत ने स्नान किया था। स्तूप के पास एक चैत्य में तथागत ने समाधि लगाई थी। चैत्य के समीप पचास कदम लम्बी और सात छि ऊंची एक शिला थी, जिस पर तथागत ने चंक्रमण किया था। उस पर जहां-जहां उनके पदचिह्न पड़े थे, वहां-वहां कमल जैसी रेखाएं अंकित थीं। शिला के दायें-बायें एक-एक लघु स्तूप थे, जिन्हें क्रमशः इन्द्र एवं ब्रह्मा ने बनवाया था।

दो. जहां उत्पल भिक्षुणी ने बुद्ध के दर्शन किए तथा इस संदर्भ में कथा

इन्द्र एवं ब्रह्मा के स्तूपों के आगे ही उत्पल भिक्षुणी ने तथागत के दर्शन से पूर्व एक चक्रवर्ती राजा का रूप धारण किया था। जब तथागत देवपुर से जम्बूद्वीप वापस लौट आए, तब सुभूति शैलकक्ष में भोज में बैठे सोच रहे थे : "अब बुद्ध मनुष्य लोक वापस आ गए हैं। उनके साथ मनुष्य और देवतागण भी थे। ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए? मैंने बुद्ध से सुना था कि शून्यताओं का बोध होने और धर्मधातुओं का ज्ञान होने के लिए दिव्य चक्षुओं से बुद्ध के धर्म-कार्य को देख लेना है।" चूंकि उत्पल भिक्षुणी प्रथम बार बुद्ध के दर्शन करने जा रही थी, इसलिए उसने चक्रवर्ती राजा का रूप धारण कर लिया। उसके आगे-पीछे सात रत्न थे और दायें-बायें चतुरंगिणी सेना थी। जब वह भगवान के निवास तक पहुंची, तब भिक्षुणी अपने पुराने रूप में प्रकट हुई। तथागत ने उससे कहा : "ऐसा नहीं कि तुमने मुझे पहली बार ही देखा हो। सुभूति शून्यताओं का ज्ञान होने पर ही बुद्ध के धर्म-कार्य के दर्शन कर सका है।"

तीर्थ के प्राचीर के अन्दर नाना चमत्कार लगातार देखे जा सकते थे। एक बृहद स्तूप के दक्षिण-पूर्व में एक ताल में नागराज इस तीर्थ की रक्षा करता था। ऐसी स्थिति में तीर्थ को क्षत-विक्षत करना असंभव था। पर कालांतर में तीर्थ स्वाभाविक रूप से ध्वस्त होता चला गया, मानवीय कारणों से नहीं।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में दो सौ ली से कम दूरी पर कान्यकुब्ज स्थित था। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

खण्ड पांच

कान्यकुब्ज

कान्यकुब्ज की परिधि कोई चार हजार ली थी। राजधानी के पश्चिम में गंगा थी। राजधानी बीस ली से अधिक लम्बी एवं चार-पांच ली चौड़ी थी। प्राचीर दृढ़ व दुर्भेद्य था। नगर में दुतल्ला भवन, मंडप एवं कोठियां जहां-कहीं देखे जा सकते थे। सुन्दर-सुन्दर फूल और वन-उपवन थे। तालों में जल दर्पण जैसा निर्मल था। परदेशों से लाई गई दुर्लभ वस्तुएं जमा थीं। स्थानीय निवासी सुखी एवं संपन्न थे। फल और फूल बहुतायत से मिलते थे और समय पर खेती होती थी। जलवायु समशीतोष्ण थी। लोग सदाचारी और भोले थे। वे सुरूप व सुशील थे और उनके वस्त्र चटकीले होते थे। वे कलाएं सीखने में संलग्न रहते थे। उनकी बोलचाल सुस्पष्ट और विचारोत्पादक थी। आधी जनसंख्या बौद्ध धर्म मानती थी और शेष आधी परधर्म। सौ से अधिक संघाराम थे और भिक्षु दस हजार से अधिक। वे महायानी भी थे और हीनयानी भी। दो सौ से अधिक देव-मंदिर थे। कई हजार परधर्मी थे।

एक. राज्य के नाम की कथा

जब मनुष्य दीर्घायु था, तब कान्यकुब्ज की पुरानी राजधानी का नाम था कुसुमपुर और राजा का नाम ब्रह्मदत्त था। वह अपने पिछले जन्म के पुण्य-कर्मों के कारण विवेकशील, प्रतिष्ठित और विद्याओं व युद्धकलाओं दोनों में प्रवीण था। उसका प्रभाव समूचे जम्बूद्वीप पर पड़ा था और पड़ोसी राज्यों पर उसकी धाक थी। उसके एक हजार पुत्र थे। वे सभी चतुर, साहसी, महत्वाकांक्षी एवं कृतसंकल्प थे। उसके एक सौ पुत्रियां भी थीं, जिनमें से प्रत्येक सुन्दर और सुशील थी।

उस समय एक ऋषि गंगा के तट पर वास करता था। वह दसियों हजार वर्षों से ध्यान लगा कर बैठा रहा था। चूंकि वह देखने में एक सूखे वृक्ष सा लगता था, इसलिए पक्षी चारों दिशाओं से आ कर उसके शरीर पर बैठे रात बिताते थे। पक्षी मल के साथ-साथ न्यग्रोध के बहुत से बीज भी ऋषि के कंधों पर छोड़ जाते थे। समय बीतता गया और ऋषि

के कंधों पर न्यग्रोध का एक वृक्ष इतना बढ़ता गया कि दो बांहें मिला कर ही उसे घेरा जा सकता था। फिर न जाने कितने वर्ष व्यतीत हो गए। तब ऋषि की समाधि टूटी। उसने इस न्यग्रोध वृक्ष को काट गिराना चाहा, किन्तु उसे ग्राशंका हुई कि इससे कहीं घोंसले उलट न जाएं। लोगों ने ऋषि के सद्गुण की प्रशंसा करते हुए श्रद्धा से उसे "वृक्ष ऋषि" कह कर पुकारा। एक दिन ऋषि घने जंगलों की सुन्दर छवि निहार रहा था। उसने नदी की ग्रोर दृष्टि डाली। उसने देखा कि राजा की पुत्रियां प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे का पीछा करती हुई खेल रही हैं। तब ऋषि के मन में कामाग्नि धधक उठी ग्रौर सारे शरीर में फैल गई। वह राजा की एक पुत्री से विवाह का प्रस्ताव ले कर कुसुमपुर गया। उसके ग्रागमन का संवाद पा कर राजा ने स्वयं जा कर उसका स्वागत ग्रौर ग्रभिवादन किया: "ऋषिवर, ग्राप हम सांसारिक जीवों से परे रहते हैं। ग्राज ग्रापने यहां पदार्पण करने का कष्ट कैसे उठाया है?" ऋषि ने उत्तर में कहा: "मुझे वनों में वास करते हुए बहुत से वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ग्राज समाधि से उठ कर मैं विहार के लिए निकला। ग्रापकी प्यारी पुत्रियों को क्रीड़ा करते हुए देख कर मेरे मन में ग्रनुरक्ति उत्पन्न हुई। मैं विशेष कर विवाह का प्रस्ताव ले कर दूर से ग्राया हूं।" यह सुन कर राजा ग्रसमंजस में पड़ गया। ग्रन्त में उसने कहा: "ऋषि, ग्राप ग्राज तो ग्रपने निवास-स्थान लौटें। किसी शुभ मुहूर्त पर मैं ग्रपनी पुत्री के हाथ पीले कर ग्रापके यहां भेजूंगा।" राजा का यह उत्तर पा कर ऋषि वापस चला गया। राजा ने ग्रपनी सभी पुत्रियों से पूछा, पर ऋषि के साथ विवाह करने पर एक भी सहमत न हुई। ऋषि के प्रभाव से भयभीत हो कर राजा दिन भर खिन्नचित्त रहा ग्रौर उसका मुखमंडल म्लान हो गया। एक दिन राजा की सबसे छोटी पुत्री ने ग्रवसर पा कर ग्रपने पिता से पूछा: "पिताजी, ग्रापके एक हजार पुत्र हैं ग्रौर इतने ग्रधिक राजा ग्रापको मानते हैं। फिर ग्राप इतने खिन्नचित्त क्यों रहते हैं? क्या कोई चिंताजनक बात हो गई है?" राजा बोला: "यह मेरा ग्रहोभाग्य है कि वृक्ष ऋषि तुम्हारा सम्मान कर विवाह का प्रस्ताव ले कर ग्राया। पर तुममें से कोई भी सहमत न हुई। ऋषि ऋद्धि शक्ति से संपन्न है ग्रौर विपत्ति या सुख लाने में सक्षम है। यदि उसका मनोरथ पूरा न हो पाया, तो वह ग्रवश्य क्रुद्ध हो जाएगा। तब राज्य नष्ट होगा, राजवंश समाप्त होगा ग्रौर पूर्वजों का ग्रपमान होगा। इस संभावित विपत्ति से मैं ग्राशंकित हूं। मैं सचमुच भयभीत हूं।" पुत्री ने व्यथाकुल हो कहा: "यह हम संतानों का ही दोष है कि हमने ग्रापको इतना चिन्तातुर कर दिया है। मैं ग्रपना क्षुद्र शरीर ऋषि को समर्पित करने पर सहमत हूं, जिससे राज्य ग्रौर राजवंश बने रह सकें।" उसकी बात सुन राजा बहुत प्रसन्न हुए। उसने ग्रपनी छोटी पुत्री को भेजने के लिए तुरन्त रथ तैयार करने की ग्राज्ञा दी। ऋषि के वास में जा कर राजा ने उससे क्षमा मांगते हुए कहा: "मैं ग्रापका ग्राभारी हूं कि ग्रापने हम संसारियों का स्मरण किया ग्रौर मनुष्य लोक की भावनाग्रों का सम्मान किया। ग्राज ग्रापकी सेवा में ग्रपनी

छोटी पुत्री समर्पित करने की धृष्टता करता हूं।" छोटी राजकुमारी को देख ऋषि रुष्ट हुआ और राजा से बोला : "तुम मुझ जैसे बूढ़े का इतना अनादर कर रहे हो कि तुमने मेरे साथ विवाह हेतु एक ऐसी कुरूप बच्ची भेजी है ! " राजा ने कहा : "मैंने अपनी सभी पुत्रियों से पूछा था। केवल मेरी यह छोटी पुत्री आपकी सेवा करने पर सहमत हुई, शेष पुत्रियों ने अस्वीकार किया।" इस पर ऋषि की त्योरियां चढ़ गईं और उसने क्रोध में आ कर शाप दिया : "उन सभी निन्यानवे लड़कियों की कमर तुरन्त झुक जाए और पीठ ढेढ़ी हो जाए, उनका रूप भद्दा हो जाए और आजीवन उनका विवाह न हो सके।" यह सुनते ही राजा ने छानबीन के लिए तुरन्त एक अधिकारी राजप्रासाद भेज दिया। पाया गया कि उनकी पुत्रियां सब की सब कुब्जा बन गई हैं। इसके अनन्तर राजधानी का नाम कान्यकुब्ज पड़ा।

दो. सम्राट शीलादित्य का वंशक्रम और उनका सुशासन

कान्यकुब्ज का वर्तमान सम्राट एक वैश्य था। उनका नाम हर्षवर्द्धन था। उनके वंश में दो पीढ़ियों के तीन राजा हुए थे। उनके पिता का नाम प्रभाकरवर्द्धन था और बड़े भाई का नाम राज्यवर्द्धन। अपने पिता के निधन के पश्चात राज्यवर्द्धन ज्येष्ठ होने के नाते गद्दी पर बैठ गए और उत्तम ढंग से राज्य का शासन चलाने लगे। उस समय प्राच्य के कर्णसुवर्ण के राजा शशांक अपने मंत्रियों से कहा करते थे : "पड़ोसी राज्य में एक विवेक-शील राजा है। यह हमारे लिए एक बड़ी विपत्ति है।" उसने राज्यवर्द्धन को आमंत्रण दे कर भुलावे में डाला और भेंट के समय उसकी क्रूर हत्या कर डाली। कान्यकुब्ज की प्रजा अपना शासक खो बैठी। समूचे राज्य में घबराहट फैल गई। तब भंडी नाम के प्रतिष्ठित मंत्री ने अन्य मंत्रियों से कहा : "राज्यारोहण की बात आज ही निश्चित करनी होगी। मेरे विचार में स्वर्गीय राजा का दूसरा पुत्र और मृत राजा का भाई दयालु है, श्रद्धाभाव से पुत्रधर्म निभाता है, बड़े-बूढ़ों का आदर करता है, सुयोग्य व्यक्तियों को सम्मानित करता है और अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ न्याय करता है। मैं उसे राजगद्दी पर बैठाना चाहता हूं। आप लोगों को यह विचार कैसा लगा? अपना-अपना विचार व्यक्त करें।" सभी राजकुमार हर्षवर्द्धन का आदर करते थे। किसी ने आपत्ति नहीं की। सभी मंत्री और अधिकारी हर्षवर्द्धन को राज्यारोहण के लिए समझाने-मनाने गए। उन्होंने हर्षवर्द्धन से कहा : "राजकुमार, आप हमारी बात तो सुनें। स्वर्गीय राजा ने पुण्य कर्म कर राज्य को गौरवशाली और समृद्धिशाली बनाया था। जब राज्यवर्द्धन गद्दी पर बैठे थे, तब हमने सोचा था कि वे सहज मृत्यु से ही मरेंगे। किन्तु हमारी भूल के कारण राज्यवर्द्धन शत्रु के झांसे में आ गए और उनकी निर्मम हत्या कर दी गई। यह राज्य के लिए एक बड़ा अपमान है और साथ ही इसमें हम मंत्रियों व अधिकारियों का भी दोष है। अब प्रजा में

यह चर्चा हो रही है कि विवेकशील राजकुमार को स्वाभाविक रूप से राज्यारोहण करना चाहिए। इस संदर्भ में गीत भी प्रचलित हो गए हैं। यदि आप राज्य का शासन चला कर शत्रु से अपने राज्य के अपमान का बदला चुकाएं और अपने स्वर्गीय पिता का नाम चमकाएं, तो इससे अधिक बड़ा पुण्य कर्म क्या हो सकता है? हमारी आशा है कि आप अस्वीकार नहीं करेंगे।" राजकुमार ने उत्तर में कहा: "राज्यारोहण प्राचीन काल से ही एक कठिन कार्य रहा है। किसी को राजगद्दी पर बैठाने में अति सावधानी बरतनी चाहिए। सच कहूं, तो मैं सुसंस्कृत नहीं हूं। मेरे पिता और भाई का अकाल निधन हुआ और अब आप लोग मुझे राजसिंहासन पर बैठने का परामर्श दे रहे हैं। पर यह महत्वपूर्ण भार संभालने के लिए मेरी योग्यता कहां? आप लोग मुझे योग्य समझते हैं, पर मैं अपनी अयोग्यता को अस्वीकार करने की धृष्टता कैसे कर सकता हूं? गंगा के तट पर बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की एक मूर्ति खड़ी है, जो बहुधा दिव्य शक्तियां प्रदर्शित करती है। मैं वहां जा कर बोधिसत्व का मत जानना चाहता हूं।" यह कह कर वे बोधिसत्व की मूर्ति के सामने बिना अन्न-जल लिए पूजा करते रहे। उसकी भक्ति से बोधिसत्व प्रभावित हुए और अपने सच्चे रूप में प्रकट हो उससे पूछा: "तुम इतनी श्रद्धा से पूजा कर रहे हो, क्या वर मांगना चाहते हो?" राजकुमार ने उत्तर दिया: "मुझ पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा है। पहले मेरे पिता का देहावसान हुआ। फिर मेरे भाई की निर्मम हत्या की गई। मुझ पर एक के बाद एक निर्दयतापूर्ण चोट लगती गई। मैं जानता हूं कि मुझमें योग्यता एवं सद्गुणों का अभाव है, पर प्रजा मुझे राजगद्दी पर बैठाना चाहती है, जिससे मेरे पिता का नाम पुन: प्रकाशमान हो सके। मैं अज्ञानी हूं। अंततः मैंने आपसे परामर्श लेने आने की धृष्टता की है।" बोधिसत्व ने उसे बताया: "तुम पूर्वजन्म में इसी वन में वास करने वाले एक भिक्षु थे और वीर्य से साधना करते रहे थे। इस पुण्य के कारण तुम्हारा राजकुमार के रूप में पुनर्जन्म हो सका है। अब कर्णसुवर्ण के राजा ने बौद्ध धर्म का अन्त कर डाला है। अपने राज्यारोहण के पश्चात तुम्हें बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान अवश्य करना चाहिए और प्रजा पर करुणा और दया करते रहना चाहिए। इस प्रकार तुम शीघ्र ही समूचे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकोगे। यदि तुम राजगद्दी पर बने रहना चाहते हो, तो मेरी बात मान लेनी चाहिए, जिससे देवता के वरदान से तुम अपराजित बने रहो। पर तुम्हें राजगद्दी पर बैठने और अपने आपको सम्राट घोषित करने की आवश्यकता नहीं है।" बोधिसत्व का उपदेश ग्रहण कर राजकुमार ने राज्यारोहण किया, फिर भी वे स्वयं को राजकुमार ही मानते थे। उनकी उपाधि थी शीलादित्य। उन्होंने मंत्रियों से कहा: "अभी मेरे भाई का बदला लेना शेष है और पड़ोसी राज्यों ने मेरी अधीनता अभी स्वीकार नहीं की है। ऐसे में मेरे लिए सामान्य और स्थिर जीवन बिताना असंभव है। आशा है कि आप सभी एक हो कर सम्मिलित रूप से प्रयास करेंगे।" राजकुमार स्वयं सेना का नेतृत्व कर सैनिकों को प्रशिक्षण

देने में जुट गए। उस समय उनके अधीन पांच हजार हाथी, बीस हजार अश्वारोही और पचास हजार पदातिक सैनिक थे। उन्होंने सेना लेकर पश्चिम से पूर्व तक उन राज्यों पर चढ़ाई की, जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। उन्होंने निरन्तर छ: वर्ष लड़ कर समूचे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। उन छ: वर्षों में हाथियों के हौदे कभी खोले नहीं गए और न ही सैनिकों ने अपने कवच उतारे। फलस्वरूप उनकी प्रादेशिक भूमि और सेना दोनों का विस्तार हुआ। हाथियों की संख्या बढ़ कर साठ हजार हो गई और अश्वारोही सैनिकों की संख्या एक लाख तक पहुंच गई। इसके पश्चात लगातार तीस वर्षों तक समूचे भारत में शांति और राजनीतिक स्थिरता बनी रही। राजकुमार मितव्यय करते थे और प्रजा के कल्याण के लिए खाना-पीना तक भूल जाते थे। उन्होंने भारत के सभी राज्यों को यह आदेश दिया कि प्रजा को मांस का आहार करने की अनुमति नहीं है। जो जीव की हत्या करेगा, उसे मार दिया जाएगा। उन्होंने गंगा के तट पर हजारों स्तूप खड़े करवा दिए, जो सभी सौ छि से भी ऊंचे थे। समूचे भारत के नगरों, ग्रामों, मार्गों एवं चतुष्पथों पर सुन्दर भवन बनवा कर उनमें खाद्यान्नों एवं औषधियों का भण्डारण करवाया। इन वस्तुओं को परदेशियों व दीन-दु:खियों को दान में किया जाता था और यह क्रम कभी नहीं टूटा। बौद्ध धर्म के सभी तीर्थों में संघाराम स्थापित किए गए। प्रति पांच वर्षों में एक बार पंचवार्षिक परिषद आयोजित की जाती थी। शस्त्रास्त्रों के अतिरिक्त भण्डारों में सुरक्षित सभी धन-संपत्ति का सभी प्राणियों को दान दे दिया जाता था। प्रति वर्ष एक बार विभिन्न राज्यों के श्रमणों की धर्म महासभा भी बुलाई जाती थी और तीसरी व सातवीं तिथियों को चीवर, बिछौने, खाद्य और औषधि इन चार वस्तुओं से उनका परिचार किया जाता था। उनके आसनों को सजाया जाता था। भिक्षुओं के सम्मान में भोज दिए जाते थे। उनके मध्य तर्क-वितर्क कराया जाता था जिससे योग्य-अयोग्य और भले-बुरे में भेद किया जा सके। विशुद्धात्माओं को पुरस्कृत और दुष्टात्माओं को दंडित किया जाता था। जो भिक्षु विनय का कड़ाई से पालन करता था, बौद्ध धर्म में दृढ़ विश्वास करता था, बौद्ध मतों में पारंगत होता था और सदाचारी रहता था, उसे सिंहासन पर बिठाया जाता था और शीलादित्य उससे धर्मोपदेश ग्रहण कर लेते थे। जो भिक्षु विनय का पालन तो करता था, किन्तु जिसका ज्ञान उथला था, उसके साथ भी आदरपूर्वक व्यवहार किया जाता था। जो भिक्षु बौद्ध धर्म के नियमों का उल्लंघन कर दुराचारी और कुख्यात हो जाता था, उसे देश से बाहर निकाल दिया जाता था। न कोई उसकी बात सुनता, न उसका मुंह देखता। पड़ोस के छोटे राज्यों के जो राजा और उनके मंत्री प्रजा के हित में अनवरत रूप से काम करते थे, शीलादित्य उनके साथ बैठ जाते थे और उनसे मित्रता कर लेते थे। अन्यथा, वे उनसे प्रत्यक्ष बातें करना भी अस्वीकार कर केवल दूतों के माध्यम से विचार-विमर्श करते थे। राजकुमार विभिन्न स्थानों के निरीक्षण एवं प्रजा के जीवन को समीप से देखने के लिए

निकला करते थे और कभी किसी एक स्थान में स्थाई रूप से वास नहीं करते थे। निरीक्षण के समय वे जहां जाते वहां अपने रहने के लिए कुटीर ही बनवाते थे। वर्ष में केवल वर्षा ऋतु के तीन मासों में वे बाहर नहीं निकलते थे। उस काल में वे अपने वास-स्थान में विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों के सम्मान में भोज का आयोजन कर उन्हें स्वादिष्ट भोजन परोसे जाने की व्यवस्था करते थे। निमंत्रण पाने वालों में एक हजार भिक्षु और पांच सौ ब्राह्मण होते थे। वे एक दिन के समय को तीन भागों में विभाजित करते थे: एक भाग राजकीय काम-काज निपटाने में लगाते थे और शेष समय पुण्य कर्म करने में। वे अश्रांत रहते थे एवं एक दिन का समय उन्हें अपर्याप्त लगता था!

तीन. श्वेन त्साङ की सम्राट शीलादित्य से भेंट

तब मैं राजकुमार का आमंत्रण पा कर मगध से कामरूप जा रहा था। उसी समय सम्राट शीलादित्य कजंगल का निरीक्षण कर रहे थे। उन्होंने राजकुमार को आज्ञा दी: "आप और नालंदा गए हुए परदेशी श्रमण धर्म महासभा में भाग लेने शीघ्र ही मेरे यहां आएं।" राजकुमार और मैं दोनों शीलादित्य से मिलने गए। भेंट के समय सम्राट शीलादित्य ने पहले मुझसे कुशल-क्षेम पूछा, फिर प्रश्न किया: "आप किस देश से आए हैं? यहां आ कर क्या करना चाहते हैं?" मैंने उत्तर दिया: "मैं महा थाङ देश से बौद्ध धर्म का अध्ययन करने आया हूं।" शीलादित्य ने पूछा: "महा थाङ देश कहां स्थित है? मार्ग में कौन-कौन से स्थान पड़े हैं? आपका देश यहां से कितनी दूर है?" मैं बोला: "वह उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है और यहां से दसियों हजार ली दूर है। मेरा देश भारत में महाचीनस्थान कहलाता है।" शीलादित्य ने फिर प्रश्न किया: "सुना है कि महाचीनस्थान में एक छिनवाङ सम्राट हैं। किशोरावस्था से ही वे बड़े चतुर निकले और वयस्क होने पर पराक्रमी बन गए हैं। विगत राजवंश काल में देश में उथल-पुथल मच गयी थी और देश छिन्न-भिन्न हो गया था। युद्धाग्नि धधकती रही थी और प्रजा विपत्तियों से ग्रस्त रहती थी। छिनवाङ सम्राट दूरदर्शी थे। उन्होंने करुणा से द्रवित हो प्रजा को विपत्तियों से उबार दिया और देश में शांति स्थापित की। उनका प्रभाव दूर दूर तक फैल गया तथा उनके सद्गुणों व उपकार से सभी स्थानों को हित मिला है। विभिन्न देशों ने उनके पराक्रम से वशीभूत हो कर अधीनता स्वीकार कर ली। प्रजा उनसे अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु 'छिनवाङ की विजय का संगीत' गाती नहीं अघाती है। हमें उनकी गौरव-गाथा ज्ञात हुए अनेक वर्ष हो चुके हैं। क्या यह सत्य है कि वे इतने प्रतिष्ठित और सम्माननीय हैं? कथित महाचीनस्थान ही क्या वह देश है?" मैं उत्तर देते हुए बोला: "जी हां। तथाकथित चीन वास्तव में गत राजवंश का नाम था। महा थाङ हमारे देश का वर्तमान नाम है। हमारे वर्तमान सम्राट के राज्यारोहण से

पूर्व स्वर्गीय सम्राट ने उन्हें छिनवाङ की उपाधि से विभूषित किया था। गत राजवंश काल में हमारा देश दुर्बल हो चला था। कोई सम्राट नहीं था। अतएव युद्ध अविराम चलते रहे, जिससे प्रजा विपत्तियों की चपेट में पिसती रही थी। छिनवाङ जन्मसिद्ध महत्वाकांक्षी थे। वे दयालु और पराक्रमी थे। उन्होंने सभी क्रूर शत्रुओं का नाश कर दिया। फलस्वरूप आठों दिशाओं में शांति स्थापित हुई और असंख्य देश उपहार ले कर हमारे सम्राट के प्रति आदरभाव प्रगट करने आए। वे चतुर्योनियों से प्यार करते हैं, त्रिरत्न की पूजा करते हैं, अल्प कराधान करते हैं, दंड को हल्का करते हैं। परिणामस्वरूप राजस्व में वृद्धि हुई, कोई भी अपराध या उपद्रव नहीं करता और सभी ने बुद्ध के उपदेश ग्रहण कर लिए हैं। उनके कार्यों का सम्पूर्ण विवरण देना असंभव है।" यह सुन कर सम्राट शीलादित्य ने कहा : "यह सचमुच एक महान योगदान है! आपके देश की प्रजा सौभाग्यशाली है! इसका श्रेय इस महान विवेकशील सम्राट को है!"

चार. कान्यकुब्ज में धर्म महासभा

जब सम्राट शीलादित्य धर्म महासभा के आयोजन के लिए कान्यकुब्ज लौटने लगे, तब लाखों लोग गंगा के दक्षिण तट पर उनके पीछे-पीछे चल निकले। गंगा के उत्तर तट पर हजारों लोग राजकुमार के साथ साथ जा रहे थे। वे गंगा की मंझधार को सीमा मानकर दो दलों में बंटकर स्थल व जल मार्गों से कान्यकुब्ज की ओर बढ़े। दोनों राजा आगे-आगे चल रहे थे और उनकी सुरक्षा के लिए चतुरंगिणी सेना साथ-साथ चल रही थी। कोई नौका पर, तो कोई हाथी पर सवार हो ढोल, शंख, वीणा एवं बांसुरी बजाते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे। नब्बे दिन के उपरान्त वे कान्यकुब्ज पहुंचे और गंगा के पश्चिम तट पर वन में डेरा डाला। उस समय तक बीस से अधिक राजा सम्राट शीलादित्य का आदेश पा कर अपने-अपने राज्यों के असाधारण भिक्षुओं, ब्राह्मणों, मंत्रियों और सैनिकों को ले कर वहां पहुंच चुके थे। शीलादित्य पहले से ही गंगा के पश्चिम तट पर एक बृहद संघाराम बनवा चुका था। संघाराम के पूर्व में एक प्रायः सौ छि ऊंचा मंच स्थापित किया गया था। उसके मध्य एक स्वर्ण बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी, जो शीलादित्य के समान ऊंची थी। इस मंच के दक्षिण में एक और मंच था, जो विशेषकर बुद्ध-प्रतिमा के स्नान के लिए बनाया गया था। दूसरे मंच से चौदह-पन्द्रह ली दूर उत्तर-पूर्व में सम्राट के लिए एक वास-स्थान निर्मित किया गया था। दूसरे माह का समय था। पहली तिथि से इक्कीसवीं तिथि तक भिक्षुओं व ब्राह्मणों के सम्मान में भोज दिए जाते रहे थे। सम्राट के वास-स्थान से संघाराम तक मार्ग के दोनों ओर दुतल्ला भवन खड़े किए गए थे और उन पर अनगिनत मणियां जड़ित थीं। वादक पंक्तियों में खड़े निरन्तर सुमधुर धुनें बजा रहे थे। सम्राट शीलादित्य ने

अपने वास-स्थान से श्रद्धापूर्वक एक स्वर्ण बुद्ध-प्रतिमा निकाली। प्रतिमा पर महीन रेशमी कपड़ा ढंका हुआ था और प्रतिमा अस्पष्ट दिखाई दे रही थी। प्रतिमा तीन छि से अधिक ऊंची थी। उसे एक हाथी की पीठ पर स्थापित किया गया और चारों ओर रत्नों से जड़ित पट लटकाए हुए थे। शीलादित्य इन्द्र का वस्त्र पहने रत्नों से सज्जित छत्र उठाए बुद्ध-प्रतिमा की बायीं ओर खड़े हुए और राजकुमार ब्रह्मा के परिधान में श्वेत चंवर लिए बुद्ध-प्रतिमा की दायीं ओर खड़े हुए। दोनों ओर पांच सौ-पांच सौ हाथी थे। सैनिक कवच पहने शस्त्रास्त्र लिए सतर्क खड़े थे। बुद्ध-प्रतिमा के आगे-पीछे सौ-सौ हाथी थे। उन पर वादक सवार हो कर संगीत बजाते चल रहे थे। सम्राट आगे बढ़ते हुए स्वर्ण, रजत, रत्न, फूल बिखेरते रहे और त्रिरत्न की पूजा करते रहे। लोगों का दल मंच तक पहुंचा। तब सुगंधित जल से स्वर्ण बुद्ध-प्रतिमा को स्नान कराया गया। इसके पश्चात सम्राट शीलादित्य ने स्वयं बुद्ध-प्रतिमा पीठ पर लाद कर उसे पश्चिमी मंच पर स्थापित कर दिया। फिर प्रतिमा के सामने अनेक विरल रत्न व मणियां और सैकड़ों कौषेय चढ़ाए गए। उस समय शीलादित्य के साथ केवल बीसेक श्रमण थे। अनेक राजा-महाराजा रक्षक का काम कर रहे थे। भोजन के अनन्तर बौद्ध धर्म के सूक्ष्म तत्वों एवं परमार्थों पर विचार के लिए विभिन्न शाखाओं के श्रमणों को बुलाया गया। जब दिन ढलने लगा, तब शीलादित्य रथ पर सवार हो अपने वास-स्थान वापस चले गए। यह क्रम धर्म महासभा की समाप्ति तक होता रहा। प्रति दिन स्वर्ण बुद्ध-प्रतिमा निकाली जाती और उसके आगे-पीछे पहले दिन जितने ही लोग एवं हाथी चलते थे।

एकाएक पश्चिमी मंच पर आग लग गई। संघाराम से काला धुआं उठने लगा और अग्नि धू-धू करती रही। यह देख कर सम्राट शीलादित्य ने उसांस भरी: "मैंने स्वर्गीय राजा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु अपना सर्वस्व अर्पित कर और राज्य के समूचे रत्न निकाल कर यह संघाराम बनवाया है। मैंने चाहा था कि इससे स्वर्गीय राजा के पुण्य-कर्मों का प्रचार हो जाए। पर मैं दुराचारी हूं। अतः मुझे बुद्ध का वरदान नहीं मिला। इसलिए यह आकस्मिक विपत्ति पड़ी है। जब मेरा पाप इतना जघन्य है, तब मेरे जीने से क्या लाभ?" उन्होंने धूप जला कर दंडवत करते हुए यह वर मांगा: "अपने पूर्वजन्म में किए पुण्य-कर्मों से ही मैं जैसे-तैसे सम्राट बन सका हूं। मैं अपनी धर्मनिष्ठा की शक्ति से इस अग्नि को बुझाना चाहता हूं। यदि मैं देवताओं को प्रभावित न कर सका, तो यहीं पर मेरे जीवन का अंत होगा!" यह कह कर वे उछले और उनके पैरों के देहली पर पड़ते ही धुआं और अग्नि एक साथ दृष्टि से ओझल हो गए, जैसे बुझाए गए हों। राजा-महाराजाओं ने अपनी आंखों से यह अद्भुत दृश्य देखा और उनके मन में शीलादित्य के प्रति और अधिक आदर-भाव उत्पन्न हो गया। वे फिर शीलादित्य की ओर मुड़े। उन्होंने पाया कि उनके भाव और बोलचाल में तनिक भी अन्तर नहीं आया था। उन्होंने राजा-महाराजाओं

से पूछा : "यदि इस आकस्मिक अग्नि ने सचमुच इस संघाराम को राख कर डाला, तो आप लोग क्या करेंगे ?" राजा-महाराजाओं ने दोनों हाथों और घुटनों के बल बैठ रोते हुए कहा : "हम तो यही चाहते थे कि बुद्ध की पूजा के लिए यह संघाराम परवर्ती पीढ़ियों तक भी बना रहे। यदि यह जल कर राख हो गया, तो कौन सी वस्तु स्मरणीय रहेगी ? फिर विधर्मों के अनुयायी अवश्य प्रसन्न होंगे और एक दूसरे का अभिनन्दन करेंगे।" सम्राट शीलादित्य बोले : "इससे यह सिद्ध होता है कि तथागत ने जो कहा है, वह नितांत सत्य है। परधर्म नित्यता का पक्ष लेते हैं, केवल तथागत ने अनित्यता का उपदेश दिया है। मैंने सर्वदान दिया है और मेरा मनोरथ पूरा हो गया है। यह विपत्ति उत्पन्न होते ही मिट गई, जिससे तथागत के मतों का परमार्थ पुनः ज्ञात हो सका है। यह एक अत्यंत अच्छी बात है। आप लोगों को इसके लिए अधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है।"

फिर शीलादित्य ने राजा-महाराजाओं के साथ पूर्व में खड़े बृहद स्तूप का आरोहण कर चारों ओर का दृश्य देखा। जैसे ही वे सोपानों से उतरने को हुए, एक तीर्थिक हाथ में खड्ग लिए उन पर झपटा। शीलादित्य संकट में पड़ गए। वे कुछ कदम पीछे हटे और हत्यारे को पकड़ लिया, फिर उसे अधिकारी के हाथों सौंप दिया। उस समय मंत्रियों एवं अधिकारियों के हाथ-पांव फूल गए और वे शीलादित्य का बचाव करना भूल बैठे। राजा-महाराजाओं ने हत्यारे को मृत्यु दंड देने का परामर्श दिया। पर शीलादित्य क्रुद्ध नहीं हुआ और उसे न मारने की आज्ञा दी। शीलादित्य ने स्वयं उससे पूछताछ की : "मैंने तुम्हारे प्रति कौन सा अन्याय किया है? तुम इतने हिंसक क्यों हो ?" हत्यारे ने उत्तर दिया : "महाराज, आप निस्स्वार्थ हो सभी प्राणियों का हित करते रहते हैं। सभी प्राणी आपके उपकार के भार से दबे हैं। पर मैं मूर्ख और अस्थिर मन हूं। तीर्थिकों के उकसावे में आ कर मैंने बिना सोचे-समझे हत्यारा बन यह अधर्म कर डाला है।" सम्राट ने फिर पूछा: "तो तीर्थिकों के मन में ऐसी द्वेषाग्नि क्यों भड़क उठी ?" हत्यारा बोला : "महाराज, आपने राजा-महाराजाओं को बुला कर और अपना समूचा राजकोष निकाल कर भिक्षुओं का परिचार किया और बुद्ध-प्रतिमा बनवाई। तीर्थिक दूर से बुला तो लिए गए हैं, पर उन्हें पूछने वाला कोई भी नहीं है। इस पर वे लज्जित और अपमानित हुए हैं। अतएव उन्होंने मुझ जैसे अस्थिरचित्त और मूर्ख को आपकी हत्या के लिए उकसाया है।" तब तीर्थिकों के संबंध में जांच-पड़ताल की गई और ज्ञात हुआ कि पांच सौ ब्राह्मण और कुछ सुयोग्य व्यक्ति सम्राट की आज्ञा पा कर धर्म महासभा में सम्मिलित हुए थे। सम्राट द्वारा भिक्षुओं का आतिथ्य-सत्कार और आदर किया जाने पर उन्हें बड़ी ईर्ष्या हुई। उन्होंने अग्नि-बाण छोड़ कर मंच को जला कर राख करना चाहा और यह भी चाहा कि आग बुझाते समय लोगों में मचने वाली भगदड़ से लाभ उठा कर सम्राट की हत्या कर दी जाए। जब उन्होंने देखा कि उन्हें ऐसा अवसर नहीं मिला तो भाड़े पर इस मनचले को रखा और

उससे संकटपूर्ण स्थान में सम्राट की हत्या करने को कहा। राजा-महाराजाओं और मंत्रियों ने इन सभी तीर्थिकों को प्राणदण्ड देने का अनुरोध किया, किन्तु सम्राट शीलादित्य ने उनमें से केवल प्रमुख अपराधियों को ही दण्ड दिया और सहअपराधियों को मुक्त कर दिया तथा उन पांच ब्राह्मणों को भारत से बाहर निष्कासित कर दिया। यह सब कुछ करने के उपरान्त सम्राट अपनी राजधानी लौट गए।

पांच. कान्यकुब्ज के निकट बुद्ध संबंधी अवशेष

नगर के उत्तर-पश्चिम में जो स्तूप खड़ा था, वह सम्राट अशोक ने बनवाया था। इस स्थल में तथागत ने सप्ताह भर अनूठे सिद्धान्तों पर प्रवचन दिए थे। स्तूप के समीप चार भूत बुद्धों के आसनों व चंक्रमण के अवशेष थे। और एक लघु स्तूप भी था, जिसमें तथागत के केश व नख सुरक्षित थे।

बुद्ध-प्रवचन-स्तूप के दक्षिण में गंगा के निकट तीन संघाराम थे। वे एक ही प्राचीर से घिरे हुए थे, पर उनके द्वार अलग-अलग थे। संघारामों में बुद्ध-प्रतिमाएं बड़े सुन्दर ढंग से सजाई हुई थीं। भिक्षु गांभीर्यपूर्ण एवं विनयशील थे। उनकी सेवा में कई हजार गृहस्थ लगे रहते थे।

चैत्य की एक सूक्ष्म मंजूषा में बुद्ध का एक प्राय: डेढ़ छुन लम्बा दांत सुरक्षित था। वह एक प्रकार का अदभुत प्रकाश फेंकता था, जिसका रंग दिन और रात में भिन्न होता था। दूर और निकट से बुद्धिजीवी और अन्य लोग बुद्ध के दांत के दर्शन करने आते थे। एक दिन में सैकड़ों लोग आ जाते थे। बुद्ध के दांत की देख-रेख करने वाले भिक्षु भीड़-भाड़ व कोलाहल से ऊब गए। अतएव उन्होंने पैसा उगाहने का निर्णय ले सार्वजनिक रूप से घोषित कर दिया कि बुद्ध के दांत के दर्शन के लिए भारी धन-राशि देनी होगी। उधर तीर्थयात्री भी इन भिक्षुओं से घृणा करने लगे। उनका विचार था कि पैसा उगाहने का निर्णय इसीलिए किया गया है क्योंकि ये भिक्षु धनलोलुप हैं। उपवास के दिन वह मंजूषा एक ऊंचे आसन पर रखी जाती थी। सैकड़ों लोग धूप जला एवं फूल चढ़ा कर उसकी पूजा करते थे। यद्यपि फूलों का ढेर लग जाता था, तथापि मंजूषा कभी भी फूलों से ढक नहीं पाती थी।

संघारामों के आगे दायें-बायें एक-एक चैत्य थे, जो कोई सौ छि ऊंचे थे। वे दोनों पत्थर के आधार पर पक्की ईंटों से बने थे। उनमें रखी बुद्ध-मूर्तियां नाना रत्नों व मणियों से सज्जित थीं। कोई मूर्ति स्वर्ण की थी, कोई रजत की, तो कोई ताम्र की। प्रत्येक चैत्य के समक्ष एक लघु संघाराम था। संघारामों से कुछ दूर दक्षिण-पूर्व में एक बृहद चैत्य था।

वह भी पत्थर के ग्राधार पर पक्की ईंटों से बना हुग्रा था ग्रौर लगभग दो सौ छि ऊंचा था। चैत्य के मध्य खड़ी मुद्रा में तथागत की मूर्ति सुशोभित थी। वह तीस छि से भी ग्रधिक ऊंची थी ग्रौर ताम्र को गला कर ढाली गई थी। बुद्ध-मूर्ति पर ग्रमूल्य रत्न जड़ित थे। चैत्य के प्रस्तर प्राचीर पर ग्रनेक उभरवां चित्र ग्रंकित थे। उनमें तथागत की बोधिसत्व चर्या चित्रित थी।

प्रस्तर चैत्य से कुछ दूर दक्षिण में एक सूर्य मंदिर स्थित था। उसके निकट दक्षिण में शिव मंदिर था। दोनों मंदिरों में बड़ी सूक्ष्मता से गहरे नीले रंग के पत्थर से खोदी गई मूर्तियां सुशोभित थीं। मंदिरों का ग्राकार-प्रकार ऊपर बताए गए चैत्य जैसा था। यहां भी एक-एक हजार गृहस्थ मंदिर बुहारने के लिए रखे गए थे। संगीत एवं गीतों के स्वर दिन-रात गूंजते रहते थे।

राजधानी से छः-सात ली दूर दक्षिण-पूर्व में गंगा के दक्षिण तट पर कोई दो सौ छि ऊंचा एक ग्रशोक स्तूप उस स्थल में खड़ा था, जहां तथागत ने छः मासों तक ग्रनित्यता, दुःख, ग्रभाव एवं ग्रशुद्धि के सिद्धान्त प्रस्तुत किए थे। स्तूप के समीप चार भूत बुद्धों के ग्रासनों एवं चंक्रमण के ग्रवशेष थे। एक लघु स्तूप भी था, जिसमें तथागत के केश व नख सुरक्षित थे। रोगग्रस्त होने पर यदि कोई श्रद्धा से इस लघु स्तूप की प्रदक्षिणा करता, तो वह ग्रवश्य पुनः स्वस्थ हो जाता था एवं उसे लाभ मिलता था।

छः. नवदेवकुल नगर

राजधानी से दक्षिण-पूर्व की दिशा में प्रायः सौ ली दूर चलने पर नवदेवकुल नगर पहुंचा जाता था। यह नगर गंगा के दक्षिण तट पर बसा हुग्रा था ग्रौर इसकी परिधि लगभग बीस ली थी। नगर में फूलों की क्यारियां व उपवन ग्रौर निर्मल जल वाले ताल एक दूसरे को शोभा देते दिखाई देते थे।

नवदेवकुल नगर के उत्तर-पश्चिम में ग्रौर गंगा के पूर्व में एक देव-मंदिर था। उसके दुतल्ला भवन संरचना एवं शिल्पकला की दृष्टि से ग्रनोखे थे।

नगर से पांच ली दूर पूर्व में ऐसे तीन संघाराम थे, जो एक ही प्राचीर से घिरे हुए थे, लेकिन जिनके द्वार ग्रलग-ग्रलग थे। सभी पांच सौ भिक्षु सर्वास्तिवादी थे। संघारामों के सामने कोई दो सौ कदमों की दूरी पर एक ग्रशोक स्तूप खड़ा था। यद्यपि उसका ग्राधार तो ढह चुका था, तथापि उसकी ऊंचाई सौ छि से ग्रधिक थी। यहीं तथागत ने सप्ताह भर धर्मोपदेश दिए थे। स्तूप में तथागत की ग्रस्थियां रखी हुई थीं जो प्रकाशमान हुग्रा करती थीं। स्तूप के समीप चार भूत बुद्धों के ग्रासनों एवं चंक्रमण के ग्रवशेष थे।

संघारामों से तीन-चार ली दूर उत्तर में गंगा के तट के निकट दो सौ छि से अधिक ऊंचा एक अशोक स्तूप उस स्थान में खड़ा था, जहां तथागत ने सप्ताह भर प्रवचन दिए थे। पांच सौ प्रेतों ने यहां आ कर बुद्ध के उपदेश ग्रहण कर अपने प्रेत रूप त्याग कर स्वर्ग में पुनर्जन्म लिया था। तथागत-प्रवचन-स्तूप के निकट चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे। उनके समीप तथागत के केश व नख सुरक्षित रखने वाला स्तूप था।

यहां से दक्षिण-पूर्व की दिशा में कोई छै सौ ली की पद-यात्रा के बाद गंगा पार कर मैं दक्षिण की ओर बढ़ते हुए अयोध्या पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

अयोध्या

अयोध्या की परिधि कोई पांच हजार ली थी एवं राजधानी की परिधि बीस ली के लगभग। अनाजों का अत्यधिक उत्पादन होता था। फूल-फल प्रचुरता से पाए जाते थे। जलवायु शीतोष्ण व सुहावनी थी। लोग दयालु व सुशील थे, पुण्य-कर्म करने में उत्साही थे और लगन से कलाएं सीखते थे। यहां सौ से अधिक संघाराम थे और तीन हजार भिक्षु थे। वे हीनयान व महायान दोनों मतों का एकाग्रचित्त से अध्ययन करते थे। दस देव-मंदिर थे और विधर्मियों की संख्या बहुत अल्प थी।

एक. वसुबंधु, श्रीलब्ध एवं बुद्ध संबंधी अवशेष

राजधानी में एक पुराना संघाराम था जिसमें बोधिसत्व वसुबंधु ने दसियों वर्षों तक महायान एवं हीनयान पर अनेक शास्त्र प्रतिपादित किए थे। संघाराम के निकट उस भवन का खंडहर भी पाया जाता था जहां बोधिसत्व वसुबंधु राजाओं और विभिन्न स्थानों के मेधावियों, भिक्षुओं एवं ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देते थे।

राजधानी से चार-पांच ली दूर उत्तर में गंगा के तट पर एक बृहद संघाराम में दो सौ छि से अधिक ऊंचा स्तूप था जिसे सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। जिस स्थल में यह स्तूप खड़ा था उसी में तथागत ने तीन मास तक देवों एवं मनुष्यों को धर्मोपदेश दिए थे। उसके समीप खड़ा एक स्तूप उन स्थलों का स्मारक था, जहां चार भूत बुद्धों ने आसन लगाए थे और चंक्रमण किया था।

इस बृहद संघाराम से चार-पांच ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक स्तूप था जिसमें तथागत के केश एवं नख सुरक्षित थे। स्तूप के उत्तर में उस संघाराम का अवशेष था जहां शास्त्राचार्य श्रीलब्ध ने "सौत्रांतिक विभाषा शास्त्र" की रचना की थी।

दो. असंग एवं वसुबंधु की कथा

राजधानी से पांच-छः ली दूर दक्षिण-पश्चिम में आम्रवन में एक पुराना संघाराम था। यह वही संघाराम था जिसमें बोधिसत्व असंग स्वयं दीक्षा देते थे और प्राणियों को प्रबुद्ध करते थे। वे रात में देवपुर में जा कर बोधिसत्व मैत्रेय से "योगाचार्य भूमि शास्त्र", "महायान सूत्रालंकार" व "मध्यांत विभाग शास्त्र" ग्रहण करते थे और दिन में ससारियों को इन सूत्रों के गूढ़ार्थ समझाते थे। आम्रवन से सौ कदम दूर उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप में तथागत के केश व नख सुरक्षित थे। स्तूप के निकट एक स्थल पर बोधिसत्व वसुबंधु तुषित स्वर्ग से अवतरित हो बोधिसत्व असंग से मिले थे। बोधिसत्व असंग गंधार के निवासी थे। उन्हें तथागत के परिनिर्वाण से एक हजार वर्ष पश्चात मनुष्य लोक में जन्म लेने का सौभाग्य मिला। पूर्ववर्तियों का अनुकरण करते हुए उन्हें बोधि प्राप्त हुई। वे पहले महाशासक बने, फिर महायानी। उनके छोटे भाई बोधिसत्व वसुबंधु हीनयान के सर्वास्तिवादी निकाय में उपसंपन्न हुए थे। बोधिसत्व वसुबंधु सर्वज्ञ थे और उनकी स्मरणशक्ति अनुपम थी। वे जो कुछ सीखते थे उसमें पारंगत हो जाते थे और फिर उसके महत्वपूर्ण तत्वों पर भी अधिकार कर लेते थे। बोधिसत्व असंग के बुद्धसिंह नाम के एक शिष्य थे। बुद्धसिंह का आचरण रहस्यपूर्ण था, किन्तु वे कुशाग्रबुद्धि थे और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। ये तीनों मुनि परस्पर कहा करते थे : "जो भी आध्यामिक साधना करता है, वह बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन अवश्य करना चाहता है। हममें से जो भी पहले स्वर्गवासी हो जाए और अपनी चिरपोषित अभिलाषा को मूर्त रूप दे दे तो वह दूसरों को अवश्य बताए, ताकि यह ज्ञात हो सके कि वह कहां गया है।" कालान्तर में बुद्धसिंह सर्वप्रथम चल बसे और तीन वर्षों तक किसी को उनका पता न चला। कुछ समय पश्चात ही बोधिसत्व वसुबंधु भी स्वर्गवासी हुए। छः मास बीत गए और किसी को उनका भी कोई संवाद न मिला। तब अन्य संप्रदायों ने इस बात का उपहास करते हुए कहा कि बोधिसत्व वसुबंधु एवं बुद्धसिंह नीच जीवों के भवचक्र में प्रव्रजन कर रहे हैं, अतएव वे कोई अलौकिक शक्ति प्रदर्शित न कर सके। एक दिन जब रात की काली चादर अभी फैली ही थी और बोधिसत्व असंग अपने शिष्यों को अभी समाधि के उपाय बताने ही लगे थे, तभी एकाएक दीप की ज्योति क्षीण हो उठी और आकाश प्रकाशमान हो गया। एक देवता आकाश से पृथ्वी पर आया। प्रांगण में प्रवेश कर उसने बोधिसत्व असंग को प्रणाम किया। असंग ने पूछा : "तुम इतनी देर से क्यों आए? क्या कोई काम है?" देवता ने उत्तर देते हुए कहा : "यहां मृत्यु होने के उपरान्त मैंने तुषित स्वर्ग में मैत्रेय के कमल के फूलों में पुनर्जन्म लिया। फूल अभी खिले ही थे कि बोधिसत्व मैत्रेय ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा : 'स्वागतम्! स्वागतम्!' फूलों का अभी केवल एक ही फेरा लगाकर मैं आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं।" बोधिसत्व

असंग ने फिर प्रश्न किया : "बुद्धसिंह अब कहां हैं ?" देवता बोला : "कमल के फूलों का फेरा लगाते समय मैंने देखा था कि संसारियों के मध्य बुद्धसिंह पर सुख-भोग की धुन सवार है। उन्हें मुझे आंख उठा कर देखने का अवकाश भी नहीं मिला, तो फिर वे आपके समक्ष कैसे उपस्थित हो सकते हैं ?" बोधिसत्व असंग ने कहा : "तो इस बात को जाने दो ! बोधिसत्व मैत्रेय के रूपरंग का वर्णन कर सकते हो ? उन्होंने कौन से सूत्र सुनाए ?" देवता ने कहा : "बोधिसत्व मैत्रेय का रूपरंग इतना सुन्दर है कि उसका शब्दों में वर्णन करना असंभव है। उन्होंने सद्धर्म के जो अर्थ समझाए हैं, वे आपके द्वारा समझाए गए अर्थों से कदापि भिन्न नहीं हैं। पर बोधिसत्व मैत्रेय का स्वर कर्णप्रिय, धाराप्रवाह तथा सुमधुर है। सभी श्रोता थकान भूल जाते हैं और दीक्षा लेने वालों में से कोई भी नहीं ऊबता।"

बोधिसत्व असंग के भवन के खंडहर से कोई चालीस ली दूर उत्तर-पश्चिम में एक पुराना संघाराम था, जिसके उत्तर में गंगा बहती थी। उसमें जिस स्थल पर एक सौ छि से अधिक ऊंचा ईंटों का स्तूप खड़ा था वहां बोधिसत्व वसुबंधु के मन में महायान का अध्ययन करने का विचार उत्पन्न हुआ था। वे जब उत्तरापथ से यहां पधारे, तब बोधिसत्व असंग ने उनके स्वागतार्थ अपने शिष्य भेजे थे और इसी संघाराम में उन दो बोधिसत्वों की भेंट हुई थी। असंग का एक शिष्य रात गए खिड़की के बाहर खड़े-खड़े "दशभूमिक सूत्र" का पाठ करने लगा। उसका पाठ सुनने के उपरान्त वसुबंधु की आंखें खुल गईं और उन्हें अपने अतीत के कर्मों पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा : इतने गूढ़ अर्थ मैंने इससे पूर्व कभी नहीं सुने थे। मैंने महायान पर कलंक लगाने का अपराध कर डाला है। यह सब कुछ मेरी जिह्वा के कारण ही हुआ है। मेरी जिह्वा ही सारे अपराधों की जड़ है। आज ही मुझे उसे काट देना चाहिए। यह विचार आते ही उन्होंने अपनी जिह्वा काटने हेतु एक तीक्ष्ण खडग उठाया। इतने में बोधिसत्व असंग उनके सामने प्रगट हुए और बोले : "महायान बौद्ध धर्म का परम सत्य है। सभी बुद्ध उसकी प्रशंसा करते हैं और मुनि भी उसे प्रामाणिक मानते हैं। मैंने तो तुम्हें चेताना चाहा था। अब तुममें स्वयं चैतन्य आ गया है। इससे अधिक उत्तम और क्या हो सकता है ? बुद्धों और सद्धर्म की दृष्टि में जिह्वा काटना कोई प्रायश्चित नहीं है। जिस जीभ से पहले महायान पर कलंक लगाते थे, उसी जीभ से आज महायान की स्तुति करो और इस प्रकार अपनी भूल सुधारो। यही उचित होगा। मुंह सी कर चुप्पी साधने से क्या लाभ ?" यह कह कर बोधिसत्व असंग सहसा अन्तर्धान हो गए। उनका उपदेश ग्रहण कर वसुबंधु ने जीभ नहीं काटी। अगले दिन वे महायान की शिक्षा पाने के लिए असंग के निवास पर गए। इसके उपरान्त बसुबंधु ने एकाग्र मन से अध्ययन कर और गहन रूप से सोच-विचार कर महायान के संदर्भ में सौ से अधिक रचनाएं प्रतिपादित कीं, जिनका व्यापक रूप से प्रचार हुआ।

यहां से पूर्व की दिशा में कोई तीन सौ ली चलने पर मैंने गंगा पार की और उत्तर की

दिशा में बढ़ते हुए अयोमुखी की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

अयोमुखी[1]

अयोमुखी राज्य की परिधि लगभग दो हजार पांच सौ ली थी। उसकी राजधानी गंगा के निकट अवस्थित थी। उसकी परिधि बीसेक ली थी। जलवायु और उपजें अयोध्या के समान थीं। लोग सीधे-सादे और सदाचारी थे। वे अध्ययनशील थे तथा पुण्य कर्म करते थे। वहां पांच संघाराम थे जिनमें भिक्षुओं की संख्या एक हजार से अधिक थी। वे सम्मतीय निकाय के भिक्षु थे। दसेक देव-मंदिर भी थे। अन्य विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

राजधानी से कुछ दूर दक्षिण-पूर्व में गंगा के निकट एक स्तूप था। वह सम्राट अशोक ने बनवाया था और दो सौ छि ऊंचा था। तथागत ने यहीं पर तीन महीनों तक उपदेश दिए थे। स्तूप के पास चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष सुरक्षित थे। यहां एक और कालापन लिए नीले रंग के पत्थरों से बना स्तूप भी था जिसमें तथागत के केश और नख रखे गए थे। पास के एक संघाराम में कोई दो सौ भिक्षु थे। बुद्ध-प्रतिमा की मुद्रा तेजस्वी और गंभीर थी और सजीव लगती थी। संघाराम में ऊंचे और भव्य भवन थे जिनका अद्भुत शिल्प स्थान-स्थान पर देखा जा सकता था। इसी संघाराम में पहले आचार्य बुद्ध दास ने सर्वास्तिवाद का "अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र" प्रतिपादित किया था।

यहां से दक्षिण-पूर्व में सात सौ ली दूर चल कर गंगा पार कर दक्षिण की ओर जाते हुए मैं यमुना के उत्तर में प्रयाग में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

प्रयाग

प्रयाग राज्य की परिधि पांच हजार ली थी। राजधानी गंगा और यमुना के संगम पर अवस्थित थी, जिसकी परिधि बीसेक ली थी। फसलों के लहलहाते खेत और फल के वृक्ष बहुतायत से मिलते थे। जलवायु नम और सुहावनी थी। प्रजा सुशील और दयार्द्र थी। प्रजा विद्याएं सीखने में रुचि लेती थी और दूसरे धर्मों का आदर करती थी। यहां दो संघाराम थे। भिक्षु बहुत कम थे। वे सभी हीनयानी थे। कई सौ देव-मंदिर थे और अधिकांश निवासी विधर्मी थे।

1. इस राज्य का संस्कृत नाम अभी निश्चित नहीं हो पाया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस राज्य का संस्कृत नाम अयमुख या अयामुख होना चाहिए।

एक. तथागत के अवशेष और देव की कहानी

राजधानी के दक्षिण-पश्चिम में चम्पकों के झुरमुटों में एक स्तूप था जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। स्तूप की नींव यद्यपि कुछ तिरछी हो धंस गई थी, तथापि स्तूप सौ छि से अधिक ऊंचा था। तथागत ने यहां विधर्मियों को अभिभूत किया था। स्तूप के समीप एक और भी स्तूप था जिसमें बुद्ध के केश और नख सुरक्षित रखे गए थे तथा बुद्ध के चंक्रमण के अवशेष थे।

बुद्ध के केश और नख सुरक्षित रखने वाले स्तूप के निकट ही एक पुराना संघाराम था, जहां बोधिसत्व देव ने "शतशास्त्र वैपुल्य" की रचना कर हीनयानियों के मत का खंडन किया था और तीर्थिकों को अभिभूत किया था। जब बोधिसत्व देव दक्षिणपथ से इस संघाराम में पधारे, तब नगर में एक ऐसा ब्राह्मण रहता था, जो अपनी भाषण-पटुता के लिए विख्यात था और तर्क-वितर्क में निपुण था। वह नाम तद्नुरूप सार खोजता था और तर्क-वितर्क में विपक्ष को निरुत्तर कर देता था। वह पहले से ही जानता था कि बोधिसत्व देव विद्वत्तम और ज्ञानी हैं। उसने देव का गर्व तोड़ना चाहा, इसलिए उसने नाम को लेकर देव से प्रश्नों की झड़ी लगा दी : "आपका क्या नाम है ?" देव ने उत्तर दिया : "मेरा नाम देव है।" ब्राह्मण ने पूछा : "देव कौन है ?" देव ने उत्तर दिया : "मैं हूं।" ब्राह्मण ने प्रश्न किया : "मैं कौन हूं ?" देव बोला : "कुत्ते हो।" ब्राह्मण ने पूछा : "कुत्ता कौन है ?" देव ने जवाब दिया : "तुम हो।" ब्राह्मण ने पूछा : " 'तुम' कौन हो ?" देव ने कहा : "देव हूं।" ब्राह्मण ने सवाल किया : "देव कौन है ?" देव ने जवाब दिया : "मैं हूं।" ब्राह्मण ने पूछा : " 'मैं' कौन हूं ?" देव बोला : "कुत्ते हो।" ब्राह्मण ने प्रश्न किया : "कुत्ता कौन है ?" देव ने उत्तर दिया : "तुम हो।" ब्राह्मण ने पूछा : " 'तुम' कौन हो ?" देव ने जवाब दिया : "देव हूं।" इसी प्रकार प्रश्नोत्तर की पुनरावृत्ति होती रही, जिससे ब्राह्मण की समझ में बात आ गयी। तब से ब्राह्मण बोधिसत्व देव की विनोदशीलता और वाग्विदग्धता का प्रशंसक बन गया।

दो. देव-मंदिर और दंतकथा

राजधानी में एक ऊंचा, आलीशान और भव्य देव-मंदिर था। उसमें अनेक चमत्कार हुआ करते थे। इसके एक अभिलेख के अनुसार यह लोगों के लिए पुण्य कर्म का एक सर्वोत्तम स्थान था। यहां दान में यदि एक पैसा भी दिया जाता था तो अन्य स्थानों में सैकड़ों के दान से भी अधिक पुण्य फल मिल सकता था। लोगों का विश्वास था कि यदि कोई इस मंदिर में अपने प्राणों की बलि चढ़ा दे, तो उसे अनन्त रूप से देवता द्वारा दिया जाने वाला

वरदान मिल सकेगा। मंदिर के समक्ष एक ऊंचा वृक्ष था। उसका छत्र इतना घना था कि उससे धूप भी छन कर नहीं आ सकती थी। वृक्ष पर एक नरभक्षी प्रेत रहता था, इसलिए वृक्ष के इर्द-गिर्द बहुत से कंकाल पड़े रहते थे। जो भी इस मंदिर में आता, वह अपने प्राण न्योछावर करने से नहीं हिचकिचाता था क्योंकि आगंतुक जहां एक ओर उन असंगत कथाओं से भय खाता था, वहां दूसरी ओर देवता के प्रभाव से भी बचा नहीं रह पाता था। प्राचीन काल से ही लोग ऐसे असंगत आचरण के आदी हो चुके थे और उसे बदलने का उन्हें ध्यान ही नहीं आता था। हाल में एक युवा ब्राह्मण कुलपुत्र इस मंदिर में आया। वह समझदार, विवेकशील, चतुर और सुयोग्य था। उसने लोगों से कहा: "पुरानी आदत समाप्त करने के लिए समझाना-बुझाना बहुत कठिन है। उनके साथ रहने पर ही मैं उनका उद्धार कर सकूंगा।" इतना कह कर वह वृक्ष पर चढ़ गया और झुक कर अपने सगे-संबंधियों से बोला: "मैं अपने प्राण दे दूंगा! पहले मैंने यहां की किंवदंती को भ्रामक बताया था, लेकिन आज यह सत्य सिद्ध हुआ है। देवता नाचते-गाते आकाश में मेरा स्वागत कर रहे हैं, मैं इसी सिद्धिप्रद स्थान में अपना यह पार्थिव शरीर त्याग दूंगा।" यह कह कर वह आत्महत्या के लिए नीचे कूदने को तैयार हुआ। सगे-संबंधियों ने उसे समझाया-मनाया, पर उसने नहीं माना। तब लोगों ने वृक्ष के इर्द-गिर्द कपड़ों के ढेर रख दिए, जिसके फलस्वरूप वृक्ष से नीचे कूद जाने पर भी उसके प्राणों की रक्षा हो सकी। ब्राह्मण काफी देर बाद होश में आया, बोला: "मैंने जिसे आकाश में देवताओं की पुकार समझा था वह तो केवल दुष्ट आत्माओं का मोह था, वह स्वर्ग के देवताओं का आह्वान नहीं था!"

तीन. महादान भूमि और तपस्वी

राजधानी के पूर्व में गंगा और यमुना के संगम पर दस ली से अधिक एक चौड़ी, ऊंची और सूखी पट्टी थी। उस पर बालू ही बालू फैली हुई थी। प्राचीन काल से ही राजा-महाराजाओं और अभिजातों में से जिस किसी को दान करना होता था वह यहां अवश्य आता था। दरिद्रों को अनगिनत वस्तुएं दान में दी जाती थीं। इसलिए इस स्थान का नाम "महादान भूमि" पड़ गया था। सम्राट हर्षवर्द्धन पूर्वजों का अधूरा कार्य पूरा करने हेतु दान की परंपरा का निर्वाह करते हुए प्रत्येक पांच वर्ष बाद अपनी संचित संपदा का यहीं सम्पूर्ण दान देते थे। इस दान-भूमि में असंख्य मूल्यवान वस्तुएं एकत्र होती थीं। पहले दिन सर्वप्रथम रत्न जड़ित विशालकाय बुद्ध-प्रतिमा स्थापित की जाती थी और भगवान बुद्ध के आसन पर हर प्रकार के अनोखे रत्न और मणियां चढ़ाए जाते थे। फिर उन्हें दान-भूमि में निवास

करने वाले भिक्षुओं को दान में दे दिया जाता था। तत्पश्चात सामने खड़े लोगों, धुरंधर विद्वानों, दूसरे धर्मों के शिष्यों और सन्यासियों को और अन्त में निराश्रित दरिद्र भिखारियों को दान दिया जाता था। दान में जो वस्तुएं दी जाती थीं, उनमें कीमती पत्थर और स्वादिष्ट भोजन आदि सब कुछ रहता था। सम्राट हर्षवर्द्धन उपर्युक्त क्रम के अनुसार सभी वर्गों के लोगों को दान देते थे। जब भंडार में सुरक्षित सारी धन-संपदा, वस्त्रों और क्रीड़ा-द्रव्यों का दान कर दिया जाता था, तो वे अपने मुकुट के मोती और वस्त्र पर की सजावट की वस्तुएं भी निकाल कर दान में दे देते थे। दान-कर्म पूरा हो जाने पर वे आनन्दपूर्वक कहते थे : "कितनी प्रसन्नता की बात है कि जो कुछ भी मेरे पास था, वह सब का सब वज्र जैसे मजबूत भंडार में रखा जा चुका है!" इसके उपरांत राजा-महाराजा फिर सम्राट हर्षवर्द्धन को रत्न-मणियां और वस्त्र आदि अर्पित करने लगते थे और दस दिन से भी कम समय में उनका भंडार फिर भर जाता था।

महादान भूमि के पूर्व में गंगा-यमुना के संगम पर प्रत्येक दिन सैकड़ों व्यक्ति नदी में डूब कर प्राण न्योछावर कर देते थे। वहां की मान्यता थी कि अगर कोई स्वर्गवास चाहता है, तो इसी स्थान पर उपवास कर डूब मरना चाहिए और मंझधार में स्नान कर अपने पाप धोना चाहिए। अतएव दूसरे राज्यों और दूरस्थ स्थानों के लोग क्रमशः यहां आते थे। वे पहले सात दिन तक उपवास करते थे और फिर नदी में डूब कर मर जाते थे। यहां तक कि वानर और हिरन आदि पशु भी झुंड के झुंड में यहां आते थे। उनमें से कुछ स्नान कर वापस चले जाते थे तो अन्य कुछ यहीं पर उपवास कर मृत्यु वरण कर लेते थे। जब सम्राट हर्षवर्द्धन दान दे रहे थे, तब एक वानर नदी के पास एक वृक्ष के नीचे छिप कर न खाता था, न पीता था। कुछ दिनों के उपरांत वह भूख से मर गया। कुछ तपस्वी नदी में ऊंचे-ऊंचे खूंटे खड़े कर देते थे। प्रति दिन पौ फटने से पूर्व वे खूंटों पर चढ़ जाते थे। एक हाथ से वे खूंटों का शीर्ष भाग पकड़ लेते, एक पैर को खूंटों के पास लगे छोटे खूंटों पर रखते और दूसरा हाथ व पैर बाहर की ओर बढ़ा देते थे। पैर तन जाते थे। गरदन सीधी कर और आंखें फाड़ कर वे सूर्य को दायें हाथ की ओर जाता हुआ देखते रहते थे। सूर्यास्त होने पर गोधूलि के समय वे खूंटों से नीचे उतर आते थे। ऐसे तपस्वियों की संख्या दसियों थी। वे ऐसी घोर तपस्य द्वारा मोक्ष-प्राप्ति की कामना करते थे। उनमें से कोई-कोई दसियों वर्षों से ऐसी ही तपस्या करता चला आ रहा था।

यहां से दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ने पर एक घना वन दिखाई देता था। नरभक्षी पशुओं और हाथियों के दल यात्रियों पर प्रहार करते थे। यदि यात्री दल बांध कर न जाते, तो इस वन को पार करना उनके लिए दुष्कर हो जाता था। पांच सौ ली चलने के बाद मैं कौशांबी जा पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में अवस्थित था)।

कौशांबी

कौशांबी राज्य की परिधि छः हजार ली से अधिक थी और स्वयं राजधानी की परिधि तीस ली से अधिक। इस राज्य की भूमि उपजाऊ और खेती के अनुकूल थी। धान की खेती बहुत होती थी और गन्नों के खेत लहलहाते रहते थे। जलवायु उष्ण थी। लोग साहसी थे तथा शास्त्रों का अध्ययन करने और शिल्प एवं कलाएं सीखने में तत्परता प्रदर्शित करते रहते थे। वे पुण्य कर्म करते नहीं अघाते थे। यहां दस से अधिक संघाराम थे। उनमें से अधिकांश जर्जर हो चुके थे। प्रायः तीन सौ भिक्षु थे। सभी हीनयानी थे। पचास से अधिक देव-मंदिर थे। विधर्मियों की संख्या बहुत अधिक थी।

एक. चन्दन की बुद्ध-प्रतिमा

राजधानी के पुराने प्रासाद में एक बड़ा चैत्य था, जिसकी ऊंचाई साठ छि से अधिक थी। चैत्य में एक चन्दन की बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। उसके ऊपर एक प्रस्तर छत्र लटकता रहता था। यह प्रतिमा राजा उदयन ने बनवाई थी। बुद्ध-प्रतिमा चमत्कारिक शक्ति प्रदर्शित किया करती थी और समय-समय पर दैवी प्रभा प्रसारित करती रहती थी। अन्य राजा-महाराजाओं ने अपनी शक्ति के भरोसे इस चन्दन की बुद्ध-प्रतिमा को उठा ले जाना चाहा। अनेक लोग मिल कर भी इसे उठाने में असफल रहे। इसलिए विभिन्न राज्यों को इसकी पूजा के लिए इसके चित्र बनवाने पड़े। सभी का दावा था कि उनके चित्र ही मौलिक हैं। वास्तव में वे चित्र इसी चन्दन की बुद्ध-प्रतिमा की प्रतिकृति थे। गत काल में संबोधि-प्राप्ति के बाद तथागत स्वर्ग लोक में अपनी माता को उपदेश देने गए। तीन महीनों तक वे नहीं लौटे। तथागत का स्मरण और सम्मान करने के कारण राजा ने तथागत का चित्र बनवाने का निश्चय किया। उन्होंने पूज्य मौद्गल्यायन से दैवी शक्ति द्वारा एक शिल्पी को त्रयस्त्रिंश स्वर्ग लोक में ले जाने की प्रार्थना की। शिल्पी ने बुद्ध के दर्शन करने के पश्चात चन्दन की यह प्रतिमा बनाई। जब तथागत स्वर्ग लोक से वापस आए, तो इस प्रतिमा ने उठ कर उनका स्वागत किया। तथागत ने उसका अभिवादन करते हुए कहा: "उपदेश देने में बहुत से कष्ट झेले हैं न? अंतिम कल्प का उद्धार करना ही तो हमारी एकमात्र साध है!"

चैत्य से सौ कदम दूर पूर्व में चार भूत बुद्धों के आसनों तथा चंक्रमण के अवशेष थे। उनसे थोड़ी दूरी पर तथागत द्वारा प्रयुक्त कुआं और स्नानघर थे। कुएं से अभी भी पानी भरा जा सकता था, जबकि स्नानघर ढह चुका था।

दो. घोषिल, वसुबंधु, असंग और अवशेष

नगर के दक्षिण-पूर्व कोने में एक प्राचीन गृह का अवशेष था, जो गृहपति घोषिल का निवासस्थान था। वहां एक विहार था और बुद्ध के केश तथा नख सुरक्षित रखने वाला एक स्तूप था। एक खंडहर भी था जो तथागत के स्नानघर का था।

नगर से थोड़ी दूरी पर दक्षिण-पूर्व में एक पुराना संघाराम था जो अतीत में गृहपति घोषिल का उद्यान था। संघाराम में दो सौ छि से अधिक ऊंचा एक स्तूप था जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था। तथागत ने यहां भी कई वर्षों तक उपदेश दिए थे। स्तूप के निकट चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे और तथागत के केश व नख सुरक्षित रखने वाला स्तूप था। संघाराम के दक्षिण-पूर्व में स्थित भवन में पक्की ईंटों से बनी एक कोठरी थी जहां बोधिसत्व वसुबंधु ने "विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि" लिख कर हीनयानी मतों का खंडन और परधर्मों का निराकरण किया था। संघाराम के पूर्व में आम्रवन में एक गृह का खंडहर था, जहां बोधिसत्व असंग ने "आर्यवाचा प्रकरण शास्त्र" प्रतिपादित किया था।

नगर से आठ-नौ ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक विषैले नाग की गुहा थी। तथागत ने विषैले नाग को वश में कर गुहा में अपनी छाया छोड़ रखी थी। यद्यपि यह बात प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित है, तथापि अब छाया दृष्टिगोचर नहीं होती थी। पास में एक स्तूप था जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। स्तूप की ऊंचाई दो सौ छि से अधिक थी। स्तूप के समीप तथागत के चंक्रमण के अवशेष थे और उनके केश व नख सुरक्षित रखने वाला स्तूप था। रोगी यहां आ कर वर मांगते थे और उनमें से अधिकांश नीरोग हो जाते थे।

शाक्य धर्म की समाप्ति इस राज्य में सबसे बाद में होगी। इसलिए चाहे राजा-महाराजा, चाहे प्रजा, सभी इस राज्य की सीमा में कदम रखते ही शोकाकुल हो जाते थे तथा निःश्वास भरते हुए वापस लौटते थे।

तीन. काशपुर और धर्मपाल द्वारा परधर्म पर विजय-प्राप्ति के स्थल का अवशेष

नागगुहा के उत्तर-पूर्व स्थित घने वन में सात सौ ली से अधिक लम्बा रास्ता चलने के बाद गंगा के उस पार उत्तर में काशपुर आता था। इस नगर की परिधि दसेक ली थी। जन-साधारण सुख-चैन से रहते थे। नगर के समीप पहले एक संघाराम था। अब उसका केवल खंडहर रह गया था। इसी स्थल पर बोधिसत्व धर्मपाल ने परधर्म पर विजय प्राप्त

की थी। उस समय तात्कालिक राजा ने परधर्म से भय-विह्वल हो कर बौद्ध धर्म का खंडन कर परधर्म को प्रतिष्ठित करना चाहा था। उन्होंने अधिसंख्य विधर्मियों में से एक ऐसा वाग्ऋषभ चुन लिया जो कुशाग्रबुद्धि और सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। वह गूढ़ार्थ का ज्ञाता था। उसने एक विडंबनापूर्ण ग्रंथ लिखा जिसके एक हजार श्लोकों में बत्तीस हजार शब्द थे। ग्रंथ में बौद्ध धर्म को कलुषित किया गया था और उसके अपने धर्म को ही परमसत्य बताया गया था। राजा ने भिक्षुओं को बुला कर उनसे सभा में तर्क-वितर्क करने को कहा और यह भी कह दिया कि यदि विधर्मी विजयी हुआ, तो बौद्ध धर्म का नाश कर दिया जाएगा और यदि भिक्षु पराजित नहीं हुए तो उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिए विधर्मी की जीभ काट दी जाएगी। भिक्षुओं को तर्क-वितर्क में विफल होने की आशंका थी। उन्होंने मिल कर सलाह की : "प्रज्ञा का सूर्य डूब गया है। बौद्ध धर्म का सेतु नष्ट हो जाएगा। राजा ने विधर्मियों के साथ मिलीभगत की है। उनके आगे हम कैसे टिक सकेंगे? जब घटना इतनी गम्भीर स्थिति तक आ पहुंची है तो हमारे पास और क्या उपाय हो सकता है?" सभी भिक्षु मौन हो रहे और किसी ने भी आपत्ति नहीं उठाई। उस समय धर्मपाल अल्पायु थे, परन्तु वे बुद्धिमान थे और तर्क-वितर्क करने में निपुण थे। वे विद्वान और शालीन थे। उन्होंने भिक्षुओं से कहा : "मैं प्रतिभावान तो नहीं हूं, तथापि मुझे अपनी योजना बताने का अवसर दीजिए। मुझे शीघ्र ही राजा का आदेश स्वीकार कर लेने दीजिए। यदि हमने अपने मतों के सहारे विजय पा ली, तो यह भगवान बुद्ध की कृपा होगी। यदि तर्क-वितर्क में मैं विफल होता हूं, तो इसका कारण मेरी अल्पायु और अज्ञान ठहराया जा सकता है। इस प्रकार आगे-पीछे के लिए निमित्त रहेंगे। और फिर, इससे धर्म तथा भिक्षुओं, दोनों को कोई भी क्षति नहीं पहुंचेगी।" सभी ने उनकी बात मान ली तथा उनकी योजना के अनुरूप प्रबंध किए। राजा के आदेशानुसार तर्क-वितर्क प्रारम्भ हुआ। बोधिसत्व धर्मपाल सभा में बैठ गए। विधर्मी ने सुव्यवस्थित रूप से और ऊंचे स्वर में अपने मत प्रस्तुत किए। फिर वह प्रतीक्षा करने लगा कि विपक्ष वितर्क उपस्थित करे। धर्मपाल उसकी बात सुन कर हंसते हुए बोले : "मुझे विजय प्राप्त हुई है। आपके तर्क पीछे से आरंभ कर कंठस्थ करूं? या फिर शब्दों के क्रम को योंही उलट-पलट कर कंठस्थ करूं?" विधर्मी ने उदास हो कर कहा : "तुम अपने मुंह अपनी बड़ाई मत करो। यदि तुम मेरी बातों का अर्थ समझ सकोगे, तो माना जाएगा कि विजय तुम्हारी होगी। तुम पहले क्रमानुसार यह लेख कंठस्थ करो, फिर इसका अर्थ समझाओ।" धर्मपाल ने उसी के स्वर में लेख की व्याख्या की। शब्दालंकार और शब्दयोजना में कोई दोष नहीं था और न ही रस और भावभूमि का अभाव था। सुन कर विधर्मी ने अपनी जीभ काट कर क्षमा मांगनी चाही। बोधिसत्व धर्मपाल ने उसे रोकते हुए कहा : "जीभ काटने का अभिप्राय सच्चे हृदय से क्षमा मांगना नहीं है। सच्चा प्रायश्चित तभी होगा जब आप अपने मत को त्याग देंगे।" धर्मपाल ने उसे बुद्ध

के उपदेश समझाये, जिससे उसका अज्ञान दूर हो गया और राजा भी परधर्म से विमुख हो बौद्ध धर्म मानने लगे।

जिस विहार में बोधिसत्व धर्मपाल ने परधर्म पर विजय पाई थी, उसके अवशेषों के समीप एक अशोक स्तूप था। धरती में धंस जाने पर भी यह स्तूप दो सौ छि ऊंचा था। तथागत ने कभी यहां छः महीनों तक उपदेश दिए थे। इसके निकट तथागत के चंक्रमण के अवशेष अभी तक थे और उनके केश एवं नख सुरक्षित रखने वाला स्तूप था।

यहां से उत्तर में लगभग एक सौ सत्तर ली चलने के बाद मैं विशोक पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में अवस्थित था)।

विशोक

विशोक राज्य की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि सोलह ली थी। इस राज्य में अनाज की भरपूर फसल होती थी और फलों एवं फूलों की प्रचुरता थी। जलवायु नम और सुहावनी थी। लोग सदाचारी और अध्ययनशील थे। वे बढ़-चढ़ कर पुण्य कर्म करते तथा बौद्ध धर्म में दृढ़ विश्वास रखते थे। यहां बीस से अधिक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या तीन हजार थी। वे सभी सम्मतीय संप्रदाय के भिक्षु थे। देव-मंदिरों की संख्या लगभग पचास थी और विधर्मी अनेक थे।

एक. राजधानी के समीप अवशेषों का विवरण

राजधानी के दक्षिण में रास्ते की बायीं ओर एक बृहद संघाराम था। यहां अर्हत देवशर्मण ने "अभिधर्म विज्ञान कायपाद शास्त्र" लिख कर अहं और अहं के अभाव का खंडन किया था। यहीं पर अर्हत गोप ने "अभिधर्म सारत्व शास्त्र" लिख कर आत्म तथा अनात्म के अस्तित्व का प्रतिपादन किया था। वे दोनों अपने अपने मतों पर डटे रह कर तीक्ष्ण वाद-विवाद करते रहे थे। इसी संघाराम में धर्मपाल ने सप्ताह भर चले शास्त्रार्थ में सौ हीनयानी शास्त्राचार्यों को पराजित किया था। संघाराम के पास दो सौ छि ऊंचा एक स्तूप था, जिसे सम्राट अशोक ने निर्मित करवाया था। तथागत ने छः वर्षों तक यहां भिक्षुओं और गृहस्थियों को उपदेश दिए थे। जहां बुद्ध ने आसन लगा कर उपदेश दिए थे उसके समीप एक विलक्षण वृक्ष था जो छः-सात छि ऊंचा था। यद्यपि यह वृक्ष न जाने कितने वर्षों से उगा हुआ था, तथापि यह न कभी बढ़ा था न घटा था। तथागत ने दातुन कर एक टहनी योंही धरती

पर फेंक दी थी जिससे यह वृक्ष उग आया था और अब भी पनप रहा था। अनेक भिन्न मतावलंबी और तीर्थिक होड़ सी लगा कर इस वृक्ष को काटने की कोशिश करते रहे, पर कुछ ही समय बाद यह वृक्ष उग कर फिर पहले की भांति हरा-भरा हो जाता था। इससे कुछ दूरी पर चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे एवं तथागत के केश व नख सुरक्षित रखने वाला एक स्तूप भी था। बौद्ध धर्म से संबंधित अवशेष एक के बाद एक दिखाई पड़ते रहते थे। वन-उपवन तथा तालाब-कुंड एक दूसरे को शोभा देते रहते थे।

इस राज्य से उत्तर-पूर्व में पांच सौ ली चलने के बाद मैं श्रावस्ती पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

खण्ड छह

श्रावस्ती

श्रावस्ती राज्य की परिधि छः हजार ली से ग्रधिक थी। राजधानी ग्रौर ग्रन्य नगर उजड़ चके थे तथा उनकी सीमा का ग्रंकन करने वाली कोई वस्तु नहीं बची थी। राजधानी के खंडहर की परिधि बीस ली थी। ग्रधिकांश निर्माण ढह जाने पर भी लोग यहां ग्रावास करते थे। यहां फसलों की बाढ़ होती थी ग्रौर चारों मौसमों में एकरसता रहती थी। निवासी सच्चरित्र ग्रौर ग्रध्ययनशील थे तथा पुण्य कर्म करते रहते थे। कई सौ संघाराम थे जिनमें से ग्रधिकांश ढह चुके थे। भिक्षु बहुत कम थे। वे सब सम्मतीय थे। सौ देव-मंदिर थे ग्रौर विधर्मी बहुत ग्रधिक थे।

एक. राजा प्रसेनजित के प्रासाद के ग्रवशेष ग्रौर स्तूप

बुद्ध के जीवन-काल में यह नगर राजा प्रसेनजित की राजधानी थी। नगर में प्रसेनजित के प्रासाद के ग्रवशेष ग्रभी भी थे। इसके कुछ दूर पूर्व में एक ग्रौर पुराना ग्राधार था जिस पर एक छोटा स्तूप था। यह उस बृहद प्रवचन भवन का ग्राधार था जो राजा प्रसेनजित द्वारा तथागत के लिए स्थापित किया गया था।

बृहद प्रवचन भवन के समीप पुराने ग्राधार पर एक ग्रौर स्तूप था। यह राजा प्रसेनजित के द्वारा बुद्ध की मौसी ग्रौर विमाता प्रजापति के निमित्त बनवाया गया भिक्षुणी विहार था। इसके पूर्व में उस स्थल पर एक स्तूप था जहा सुदत्त का पुराना निवास कभी खड़ा था।

दो. जहां ग्रंगुलीमाल ग्रपाचरण से विमुख हुग्रा था

कोटिपति सुदत्त के पुराने निवास के निकट एक बड़ा स्तूप उस स्थल पर खड़ा था, जहां ग्रंगुलीमाल ग्रपाचरण से विमुख हुग्रा था। ग्रंगुलीमाल श्रावस्ती का एक दुष्टात्मा

व्यक्ति था। वह प्राणियों की निर्मम हत्या कर सारे राज्य में आतंक फैलाता रहता था। वह जिसकी भी हत्या करता उसकी एक उंगली काट कर अपनी माला में पिरो लेता था और यह माला धारण किए घूमता फिरता था। यहां तक कि उसने अपनी मां की भी हत्या कर देनी चाही, ताकि उंगलियों की संख्या पूरी हो जाए। करुणानिधान भगवान बुद्ध उसे कुमार्ग त्यागने के लिए समझाने आए। अंगुलीमाल ने उन्हें दूर से आते हुए देखा, तो वह प्रसन्न हो कर मन ही मन बोला: "अब मेरा स्वर्ग में पुनर्जन्म हो कर ही रहेगा। मेरे ब्राह्मण गुरु ने कहा था कि बुद्ध और अपनी मां की हत्या कर देने से मेरा स्वर्ग में पुनर्जन्म होगा।" उसने अपनी मां से कहा: "तुम प्रतीक्षा करो। पहले मैं उस महाभिक्षु को मार डालूं।" वह तलवार ले कर भगवान बुद्ध की ओर लपका। भगवान बुद्ध धीरे-धीरे पीछे हटते गए और अंगुलीमाल उनका पीछा करता रहा, लेकिन उनके निकट पहुंचने में सदा विफल रहा। भगवान बुद्ध ने उससे कहा: "तुम ऐसा दुर्भाव ले कर पुण्य कर्म के बदले अपाचरण क्यों करते हो?" भगवान बुद्ध का उपदेश सुन कर अंगुलीमाल को अपने अपाचरण का बोध हुआ और उसने तुरन्त भगवान बुद्ध से दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। अपने सतत अध्ययन से उसे अर्हंत-फल प्राप्त हुआ।

तीन. जेतवनानाथपिंडकाराम

नगर से पांच-छः ली दूर दक्षिण में जेतवन अर्थात अनाथपिंडकाराम स्थित था। यह विहार राजा प्रसेनजित के मंत्री सुदत्त ने बुद्ध के लिए बनवाया था। पहले कभी यह एक संघाराम रहा था, परन्तु अब उजड़ गया था। इसके पूर्व द्वार पर दोनों ओर एक-एक प्रस्तर स्तंभ थे, जो सत्तर छि ऊंचे थे। बायें हाथ के स्तंभ के शीर्ष पर चक्र खुदा हुआ था और दायें हाथ के स्तंभ के शीर्ष पर एक गाय की मूर्ति। दोनों स्तंभ सम्राट अशोक ने बनवाए थे। यहां मकान ढह चुके थे, केवल उनके आधार दिखाई देते थे। एक ईंटों वाली कोठी अकेले खड़ी थी, जिसमें बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। जब तथागत अपनी माता को धर्मोपदेश देने के लिए त्रयस्त्रिंश लोक में गए, तब प्रसेनजित ने उदयन द्वारा चन्दन की बुद्ध-प्रतिमा बनवाए जाने का समाचार पा कर यही प्रतिमा बनवायी थी।

कोटिपति सुदत्त दयार्द्र और प्रतिभाशाली थे। वे धनधान्य संचित करते थे और अभावग्रस्तों, दरिद्रों, अनाथों और निराश्रितों की भरपूर सहायता करते थे। उस काल में उनके सदगुणों की प्रशंसा करते हुए उन्हें अनाथपिंडक कहा जाता था। बुद्ध के पुण्य कर्म के बारे में सुनकर सुदत्त के मन में बुद्ध के प्रति असीमित आदरभाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने बुद्ध के निवास के लिए एक विहार बनवाना चाहा। बुद्ध ने स्थल के सर्वेक्षण के लिए सारिपुत्र को उनके साथ भेजा। उन दोनों ने पाया कि केवल राजकुमार जेत का उद्यान

ही इस कार्य के लिए उपयुक्त है। उन्होंने राजकुमार के यहां जा कर सारी बात कह सुनाई। राजकुमार ने विनोद से कहा : "मैं यह स्थल तभी बेचूंगा जब सारा मैदान स्वर्ण सिक्कों से ढक दिया जाए।" यह सुन कर सुदत्त तनिक भी संकुचित नहीं हुए। वे अपने कोष से स्वर्ण सिक्के निकाल कर राजकुमार के कथनानुसार मैदान को ढकने लगे। जब मैदान का केवल एक छोटा सा टुकड़ा स्वर्ण सिक्कों से ढकने से रह गया, तब राजकुमार ने सुदत्त को रोकते हुए कहा : "रुको, बुद्ध सचमुच मंगल की धरती है। हमें भी पुण्य के बीज बोने चाहिएं।" इस प्रकार मैदान पर एक विहार खड़ा किया गया। यहां आ कर बुद्ध ने आनन्द से कहा : "मैदान सुदत्त ने खरीदा है और वन का राजकुमार ने दान किया है। दोनों ने मिल कर यह पुण्य कर्म किया है। अब से इसका नाम जेतवनानाथपिंडकाराम रखा जाएगा!"

चार. जहां तथागत ने रोगी भिक्षु को स्नान कराया था

अनाथपिंडकाराम के उत्तर-पूर्व में एक स्तूप था, जहां तथागत ने एक रोगी भिक्षु को स्नान कराया था। जब तथागत जीवित थे, तब उन्होंने एक रोगी भिक्षु को पीड़ा सहते और एकांतवास करते हुए पाया। उन्होंने उससे पूछा : "तुम्हें क्या पीड़ा है? तुम एकांतवास क्यों करते हो?" रोगी भिक्षु ने उत्तर दिया : "मैं स्वभाव से आलसी हूं, फिर मुझमें उपचार के लिए धैर्य भी नहीं है। अतएव अब मैं रोगग्रस्त हो गया हूं और कोई भी मुझे पूछने नहीं आता।" तथागत के हृदय में करुणा भर गई। उन्होंने कहा : "भले मानस, अब से मैं तुम्हारी सेवा-सुश्रुषा करूंगा।" उन्होंने उसके शरीर पर हाथ फेर कर उसकी पीड़ा समाप्त कर दी, फिर उसे उठा कर कोठी के बाहर ला, उसका बिछौना बदल दिया, उसे स्नान कराया और साफ-सुथरे कपड़े पहनाए। बुद्ध ने उस भिक्षु से कहा : "अब से तुम्हें उद्यमी और कर्मठ होना चाहिए।" यह उपदेश सुन कर भिक्षु कृतज्ञ हुआ और उसके मन में प्रसन्नता भर गई एवं शरीर में सुख।

पांच. जहां सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बीच दैवी शक्ति की परीक्षा हुई थी और बुद्ध संबंधी अवशेष

अनाथपिंडकाराम के उत्तर-पश्चिम में एक छोटा सा स्तूप था जहां मौद्गल्यायन अपनी दैवी शक्ति का प्रयोग करने पर भी सारिपुत्र की कमरपेटी नहीं उठा पाए थे। जब बुद्ध अनवतप्त झील पर निवास कर रहे थे, तब अनेक मनुष्य और देवतागण वहां एकत्र

हुए। केवल सारिपुत्र वहां समय पर उपस्थित नहीं हुए। बुद्ध ने मौद्गल्यायन को उन्हें बुलाने भेजा। जब मौद्गल्यायन गए, तो उन्होंने देखा कि सारिपुत्र अपने चीवर पर टांके लगा रहे हैं। मौद्गल्यायन बोले : "भगवान बुद्ध अब अनवतप्त झील पर सभा में बैठे हैं। उन्होंने मुझे तुम्हें बुलाने भेजा है।" सारिपुत्र ने कहा : "थोड़ी देर प्रतीक्षा करो। चीवर पर टांके लगा कर ही तुम्हारे साथ जाऊंगा।" मौद्गल्यायन ने कहा : "यदि तुम अभी नहीं चलोगे, तो मैं अपनी दैवी शक्ति से तुम्हारी कोठी उठा कर सभास्थल तक ले जाऊंगा।" सारिपुत्र ने अपनी कमरपेटी खोल कर धरती पर रख दी और मौद्गल्यायन से कहा : "यदि तुम इस कमरपेटी को उठाने में समर्थ हुए, तो मैं तुरन्त चला जाऊंगा।" मौद्गल्यायन अपनी दैवी शक्ति का प्रयोग करने लगे। लेकिन कमरपेटी टस से मस नहीं हुई, बल्कि धरती कंपित होने लगी। निराश हो कर मौद्गल्यायन को बुद्ध के पास लौटना पड़ा। जब वह वहां पहुंचे, तो सारिपुत्र सभा में बैठे हुए दिखाई पड़े। मौद्गल्यायन ने भावविभोर हो कर कहा : "अब मैं जान गया हूं कि ऋषि की शक्ति प्रज्ञा की शक्ति के सामने नहीं टिक सकती।"

कमरपेटी-उठावनी-स्तूप से कुछ दूर एक कुआं था। इसी कुएं से बुद्ध के लिए पानी भर कर लाया जाता था। इसके समीप एक अशोक स्तूप था। उसमें बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित रखी गई थीं। जिन स्थलों पर बुद्ध चंक्रमण करते थे या उपदेश देते थे, उन सभी पर चिह्न लगाए गए थे और स्तूप भी खड़े किए गए थे। इन स्थलों की देवतागण गुप्त रूप से रक्षा करते रहते थे। कभी-कभी वहां अलौकिक चमत्कार भी होते थे यथा, आकाश से संगीत का स्वर सुनाई देता था या सुगंधि से वातावरण महक उठता था। इन शून्य लक्षणों का एक-एक करके वर्णन करना असंभव है।

छः. संघाराम के समीप तीन गड्ढों की कहानी

इस संघाराम के पीछे थोड़ी दूरी पर एक ऐसा स्थल था, जहां कुछ विधर्मी ब्रह्मचारियों ने एक गणिका की हत्या करके बुद्ध को कलंकित करने का प्रयास किया था। बुद्ध के पास दशबल और चार वैशारद्य थे और वे प्रज्ञासंपन्न थे। सभी मानव, देवता और ऋषि-मुनि उनका सम्मान करते थे। तीर्थिकों ने मिल कर बुद्ध को सभा में कलुषित करने का षड़यंत्र रचा। उन्होंने भाड़े पर एक गणिका रखी और उसे बुद्ध की सभा में भेज दिया ताकि सब लोग उसे देख सकें। फिर उन्होंने गुप्त रूप से गणिका की हत्या कर उसका शव एक वृक्ष के नीचे गाड़ दिया। ऐसा कर चुकने के उपरांत उन्होंने राजा के समक्ष जा कर न्याय की याचना की। राजा ने जांच का आदेश दिया। गणिका का शव जेतवन में पाया गया। इतने में समस्त तीर्थिक चिल्ला उठे : "महाश्रमण गौतम शील और क्षांति की बात किया करते हैं। किन्तु उन्होंने न केवल इस सुन्दरी के साथ बलात्कार किया, बल्कि उसका मुंह बन्द

करने हेतु उसे मार भी डाला है। क्या यही शील है, क्या यही उनकी क्षांति है?" उसी क्षण देवतागण ने आकाश में ऊंचे स्वर में घोषित किया: "यह बुद्ध पर दुष्ट तीर्थिकों की लांछना है।"

संघाराम से सौ पद दूर पूर्व में एक गहरा गड्ढा था, जहां विष से बुद्ध की हत्या का प्रयास करने पर देवदत्त स्वयं सप्राण, सदेह, नरक में चले गए थे। देवदत्त राजा द्रोणोदन का पुत्र था। बारह वर्ष तक लगन से सीखने के उपरांत उन्होंने अभिधर्म पिटक के अस्सी हजार श्लोक कंठस्थ कर लिए थे। बाद में यश प्राप्त करने की धुन में वे अलौकिक शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने लगे और कुछ अधर्मियों की संगत में आ गए। उनसे देवदत्त बोले: "मैंने दो के अतिरिक्त बुद्ध के शेष सभी तीस महापुरुषलक्षण प्राप्त कर लिए हैं। और फिर सारी सभा भी तो मेरा समर्थन करती है। मेरे और तथागत के बीच क्या कोई अन्तर है?" ऐसा विचार उत्पन्न होने पर उन्होंने भिक्षुओं को पथभ्रष्ट किया। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बुद्ध के आदेशानुसार बुद्ध की प्रतिष्ठा के भरोसे पथभ्रष्ट भिक्षुओं को समझा-बुझा कर उन्हें फिर से संघ में ले आए। लेकिन देवदत्त ने अपने दुष्ट विचार का परित्याग नहीं किया और विष को नख में रख कर प्रणाम करते समय बुद्ध की हत्या की कुचेष्टा की। जब वे अपने षड़यंत्र को मूर्त रूप देने हेतु दूर से यहां आ रहे थे, तब धरती फट गई और वे सप्राण नरक में धंस गए।

यहां के दक्षिण में एक और गहरा गड्ढा था, जहां से भिक्षु कोकालिक तथागत पर लांछन लगाने के कारण सप्राण नरक में धंस गया था।

इस गड्ढे से आठ सौ कदम दूर दक्षिण में और एक गहरा गड्ढा था, जहां से ब्राह्मणी चिंचा तथागत की अपकीर्ति करने हेतु सप्राण नरक में धंस गई थी। जब बुद्ध मनुष्य और देवतागण को उपदेश दे रहे थे, तब दूर से यह देख कर कि बुद्ध का पूरी सभा सम्मान करती है, इस ब्राह्मणी ने मन ही मन सोचा: "आज ही मैं गौतम पर विष उगलकर उनकी अपकीर्ति करूंगी, ताकि मेरे गुरुजी मंच पर प्रभुत्व जमा सकें और प्रसिद्धि प्राप्त कर सकें।" वह पेट पर कठौता बांध ऊपर से कपड़ा लपेट जेतवन में आई। उसने सभा में यह घोषणा की: "इस उपदेश देने वाले ने मेरे साथ व्यभिचार किया है। मेरी कोख में जो बच्चा है, वह अवैध शाक्य है।" पूर्वाग्रहियों को उसकी बात पर विश्वास आ गया, किन्तु धर्मनिष्ठ व्यक्ति जानते थे कि यह एक लांछना मात्र है। तब इन्द्र ने लोगों की शंका को दूर करने के लिए एक श्वेत चूहे का रूप धारण कर लिया और बांधने की रस्सी को काट दिया। फलस्वरूप कठौते के धरती पर गिरने के शब्द ने सब को झकझोर दिया। जिन्होंने यह देखा, सुना, वे सभी प्रसन्न हुए। उनमें से एक ने कठौता उठा कर ब्राह्मणी से प्रश्न किया: "क्या यही तुम्हारा बच्चा है?" इतने में धरती स्वतः फट गई। देखते-देखते ब्राह्मणी उसमें धंसती गई और अवीचि नरक में चली गई। इस प्रकार उसे समुचित दंड मिला।

ये तीनों गड्ढे अथाह थे। शरद और ग्रीष्म में वर्षा से नालों और तालाबों में पानी छलकने लगता था, लेकिन इन गहरे गड्ढों में एक भी बूंद पानी शेष नहीं रह जाता था।

सात. छाया डालने वाला विहार

जेतवन से साठ-सत्तर पद दूर पूर्व में एक विहार था, जो साठ छि से अधिक ऊंचा था। उसमें एक बुद्ध-प्रतिमा थी जो पूर्व की ओर उन्मुख थी। तथागत ने यहां तीर्थिकों के साथ शास्त्रार्थ किया था। इस विहार के पूर्व में एक देव-मंदिर स्थित था, जिसका क्षेत्रफल विहार के बराबर था। दिन में जब धूप पड़ती थी, तब देव-मंदिर की छाया विहार पर नहीं पड़ती थी। पर सूर्यास्त के समय विहार की छाया देव-मंदिर को पूरी तरह ढक लेती थी।

इस विहार से तीन-चार ली दूर पूर्व में एक स्तूप था, जहां सारिपुत्र ने तीर्थिकों के साथ शास्त्रार्थ किया था। जब सुदत्त ने राजकुमार जेत का वन खरीद कर तथागत के लिए एक विहार का निर्माण करना चाहा और सारिपुत्र सुदत्त के साथ स्थान के चुनाव के लिए गए, तब छः तीर्थिक आचार्यों ने सारिपुत्र को अलौकिक शक्ति की प्रतियोगिता के लिए ललकारा। सारिपुत्र ने अपनी अलौकिक शक्ति प्रदर्शित कर उन्हें वशीभूत कर लिया।

इस स्तूप के समीप स्थित विहार के आगे एक और स्तूप था, जहां बुद्ध ने शास्त्रार्थ कर विधर्मियों को परास्त किया था और विशाखा माता का आमंत्रण स्वीकार किया था।

आठ. राजा विरूढक की कहानी

आमंत्रण-स्वीकृति-स्तूप के दक्षिण में वह स्थान था, जहां राजा विरूढक ने शाक्यों के विनाश हेतु जाते समय बुद्ध के दर्शन किए थे और फिर अपनी सेना वापस बुला ली थी। विरूढक ने राज्याभिषेक के उपरांत शाक्यों से अपने पुराने अपमान का बदला लेने के लिए दल-बल सहित सेना भेजने के लिए प्रबंध किए और अभियान का आदेश दिया। एक भिक्षु ने यह बात बुद्ध को बताई। तब बुद्ध रास्ते के किनारे एक सूखे वृक्ष के नीचे आसन जमा कर बैठ गए। राजा विरूढक दूर से बुद्ध को देख कर घोड़े पर से उतरे और बड़ी श्रद्धा के साथ उनसे पूछा : "आप एक छायादार वृक्ष के बजाए इस सूखे वृक्ष के नीचे क्यों बैठे हैं ?" बुद्ध ने कहा : "कुल भी वृक्ष की टहनियों और पत्तियों जैसा होता है। जब स्वयं टहनियां और पत्तियां खतरे में हों, तो वे किस को छत्र-छाया दे सकती हैं ?" यह सुन कर राजा ने कहा : "जब भगवान अपने सगे-संबंधियों के पक्ष में बातें कर रहे हैं, तो हम वापस ही लौट जाएं !" इस प्रकार बुद्ध से प्रभावित हो कर राजा अपनी सेना ले कर अपने राज्य वापस लौट गए।

इस स्थान के समीप एक स्तूप था, जहां पांच सौ शाक्य कन्याओं का वध किया गया

था। जब राजा विरूढक ने शाक्यों पर विजय पा ली तो उन्होंने पांच सौ शाक्य कन्याओं को चुन कर अपने अंतःपुर की दासियां बनाया। इन कन्याओं के मन में द्वेष भड़क उठा और उन्होंने राजा को गाली देते हुए कहा कि वे दास के पुत्र हैं। यह जान कर राजा क्रोधित हो उठे और उन्होंने कन्याओं का वध करने का आदेश दिया। तब वधिकों ने शाक्य कन्याओं के हाथ-पांव काट डाले और फिर उन्हें एक गड्ढे में फेंक दिया। मरणासन्न अवस्था में शाक्य कन्याओं ने भगवान बुद्ध का स्मरण किया। जब बुद्ध ने अपनी दिव्य चक्षुओं से उन्हें कष्ट झेलते हुए देखा तो वे भिक्षुओं से चीवर लेने को कह कर द्रुतगति से इन शाक्य कन्याओं के यहां गए और उन्हें अपने धर्म के गूढ़ तत्व अर्थात "पंचतन्मात्र के बंधन, प्रव्रजन के तीन पथ, विरह, जन्म एवं मरण की दीर्घ प्रक्रिया" समझाए। बुद्ध के उपदेशों से कन्याओं को मनुष्य लोक से मोक्ष पा कर संबोधि प्राप्त हुई। वे एक ही समय में चल बसीं और स्वर्ग में उनका पुनर्जन्म हुआ। इंद्र ने एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हो कर उनके कंकाल एकत्र किए और उनका दाह-संस्कार किया। परवर्तियों ने यह कहानी लिपिबद्ध की।

शाक्य-कन्या-वध-स्तूप से कुछ ही दूरी पर एक सूखा हुआ बड़ा तालाब था, जहां से राजा विरूढक नरक में चले गए थे। शाक्य कन्याओं को देखने के बाद भगवान बुद्ध अनाथ-पिंडकाराम वापस लौटे और भिक्षुओं से बोले: "विरूढक एक सप्ताह के उपरांत अग्नि में जल कर मरेंगे।" बुद्ध की भविष्यवाणी सुन कर राजा के मन में भय उत्पन्न हुआ। सातवें दिन जब राजा ने देखा कि कुछ भी नहीं हुआ, तो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दासियों से अपने साथ तालाब के तट पर क्रीड़ा और मदिरापान के लिए जाने को कहा। पर फिर भी उनके मन में यह आशंका थी कि कहीं आग न लग जाए। अतएव वे एक नौका पर चढ़ कर वहां गए। तालाब के स्वच्छ जल में उनकी नौका तरंगों से खेलती रही। इतने में सहसा हवा के एक प्रचंड झोंके से भीषण आग लग गई और नौका जल कर राख हो गई। राजा अवीचि नरक में चले गए जहां उन्हें अनेक अकथनीय कष्ट झेलने पड़े।

नौ. आप्तनेत्रवन

संघाराम से तीन-चार ली दूर उत्तर-पश्चिम में आप्तनेत्रवन स्थित था। यहां तथागत के चंक्रमण और अर्हतों की समाधि के स्थलों के अवशेष थे। उन सभी पर स्मारक स्तूप खड़े थे। अतीत में इस राज्य में पांच सौ डाकुओं ने हाहाकार मचा रखा था। राजा प्रसेन-जित ने उन्हें पकड़ने के बाद उनके नेत्र निकलवा दिए और फिर उन्हें वन में छोड़ दिया। डाकुओं ने निरुपाय हो कर बुद्ध का नाम लेते हुए प्रार्थनाएं कीं। तथागत ने जेतवन में उनकी दुःखमय चीख-पुकार सुनी और वे करुणार्द्र हो गए। उन्होंने मंद समीर चला कर हिमगिरि की दैवी औषधि डाकुओं के नेत्रों में डाल दी। थोड़ी देर बाद उनके नेत्रों की ज्योति लौट

आई। जब उन्होंने देखा कि भगवान बुद्ध उनके आगे-आगे चल रहे थे, तब उन्होंने बोधि-प्राप्ति का संकल्प किया और प्रसन्न हो कर बड़ी श्रद्धा से बुद्ध को प्रणाम किया। वे अपनी छड़ियां भूमि पर फेंक कर चले गए। कालान्तर में इन छड़ियों ने जड़ें पकड़ लीं।

दस. पुराना नगर

राजधानी से साठ ली से अधिक दूर उत्तर-पश्चिम में एक पुराना नगर था जिसमें भद्रकल्प में मनुष्य की आयु बीस सहस्र वर्ष हो जाने पर काश्यप बुद्ध का जन्म हुआ था। नगर के दक्षिण में एक स्तूप था जहां संबोधि-प्राप्ति के बाद उन्होंने प्रथम बार अपने पिता से भेंट की थी। नगर के उत्तर में खड़े स्तूप में काश्यप बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित थीं। ये दो स्तूप सम्राट अशोक ने बनवाए थे।

यहां से दक्षिण-पूर्व की ओर पांच सौ ली चलने के उपरान्त मैं कपिलवस्तु पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में अवस्थित था)।

कपिलवस्तु

कपिलवस्तु राज्य की परिधि चार हजार ली के लगभग थी जिसमें दस से अधिक परित्यक्त उजड़े नगर समाहित थे। राजधानी के प्राचीर गिर कर ढह चुके थे और उसकी परिधि का अनुमान नहीं लगाया जा सका। प्रासाद की परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। यह सुदृढ़ आधार पर पक्की ईंटों से बना था। यहां लम्बी अवधि से वीरानी छाई रही थी और इसकी जनसंख्या बहुत ही कम थी। यहां कोई एक राजा नहीं था। अलग-अलग नगरों के अपने-अपने शासक थे। भूमि उपजाऊ थी। खेती नियमित रूप से होती थी। जलवायु शीतोष्ण थी। प्रजा स्वभाव से शीलवान थी। संघारामों के खंडहरों की संख्या एक हजार से अधिक थी। प्रासाद के समीप एक संघाराम में प्रायः तीस भिक्षु थे। वे सभी हीनयान के सम्मतीय थे। इसके अतिरिक्त दो देव-मंदिर भी थे। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

एक. राजकुमार शाक्य की कहानी

प्रासाद में राजा शुद्धोदन के प्रमुख भवन के अवशेष पर एक चैत्य निर्मित था, जिसमें शुद्धोदन की मूर्ति सुशोभित थी। इसके निकट महामायादेवी के शयनकक्ष का अवशेष

था, जहां एक चैत्य खड़ा था और चैत्य में महामायादेवी की प्रतिमा सुशोभित थी। इसके समीप एक अन्य चैत्य था। उसी में शाक्य महामायादेवी की कोख से उत्पन्न हुए थे और उसमें बुद्ध के जन्म का एक चित्र टंगा हुआ था। स्थविरवादियों की मान्यता थी कि बुद्ध का जन्म उत्तर आषाढ़ की पूर्णिमा को अर्थात चीनी पंचांग के अनुसार पांचवें महीने की पन्द्रहवीं तिथि को हुआ था, जबकि अन्य संप्रदायों का मानना था कि बुद्ध का जन्म उत्तर आषाढ़ की अष्टमी को अर्थात चीनी पंचांग के अनुसार पांचवें महीने की आठवीं तिथि को हुआ था।

बुद्ध के जन्म-स्थान के उत्तरपूर्व में एक स्तूप खड़ा था, जहां असित ऋषि ने राजकुमार के लिए शकुन देखा था। जिस दिन बुद्ध का जन्म हुआ, उसी दिन अनेक मंगल लक्षण दृष्टिगोचर हुए थे। राजा शुद्धोदन ने ज्योतिषियों को बुला कर कहा : "आप लोग इस बच्चे के जन्म के शुभाशुभ पर चिन्तन करें और स्पष्ट रूप से मुझे बताएं।" सभी ज्योतिषियों ने कहा : "पूर्वगामी ऋषि-मुनियों के आलेखों और शुभ लक्षणों के अनुसार राजकुमार गृहस्थी होने पर चक्रवर्ती राजा बनेंगे और परिव्राजक होने पर उन्हें संबोधि प्राप्त होगी।" इतने में वहां असीत ऋषि दूर से आए और राजा से मिलने की प्रार्थना की। राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं द्वार तक जा कर ऋषि का स्वागत किया और उन्हें सिंहासन पर बैठाया। राजा बोले : "मैंने सोचा तक नहीं था कि आप आज पधारेंगे।" ऋषि ने कहा : "मैं स्वर्ग में निश्चिंत हो कर बैठा था कि सहसा देखा कि देवतागण नाच उठे हैं। मैंने उनसे प्रश्न किया, 'आप इतने प्रफुल्लित क्यों हो रहे हैं?' उन्होंने बताया, 'ऋषि आप जानते होंगे कि जम्बूद्वीप में शाक्यों के राजा शुद्धोदन की प्रथम रानी ने आज राजकुमार को जन्म दिया है। उन्हें भविष्य में संबोधि और सर्वज्ञता प्राप्त होगी।' यह सुन कर मैं उनके दर्शनार्थ आया हूं। खेद की बात यह है कि मैं जर्जर हो चुका हूं और उनका बुद्धत्व नहीं देख पाऊंगा।"

नगर के दक्षिणी द्वार पर एक स्तूप खड़ा था, जहां राजकुमार ने अन्य शाक्यों के साथ शक्ति-परीक्षण किया था और एक हाथी को नगर के प्राचीर के बाहर खाई के उस पार फेंक दिया था। राजकुमार नाना विद्याओं और कलाओं में सहजनिष्णात थे और उनका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था। राजा शुद्धोदन खुशी से नगर वापस आने वाले थे। दास उनकी अगवानी हेतु एक हाथी ले कर नगर से बाहर जा रहे थे। देवदत्त को अपने बाहुबल पर गर्व तो था ही। वे बाहर से आए और महावत से पूछ बैठे : "यह हाथी किसकी सवारी के लिए इतना सजाया-संवारा गया है?" महावत ने कहा : "राजकुमार आ रहे हैं, इसलिए हम आदेशानुसार उनका स्वागत करने जा रहे हैं।" देवदत्त ने क्रोध में आ कर हाथी को अपनी ओर खींचा, उसके सिर पर मुक्का मारा और फिर उसकी छाती पर लात मारी। हाथी गिर कर मर गया। उसकी लाश से मार्ग अवरुद्ध हो गया। कोई भी उसे एक ओर हटा न सका। उसके इर्द-गिर्द लोगों की भीड़ जम गई। तब आनंद आ गए। उन्होंने पूछा :

"किसने हाथी को मार डाला ?" उत्तर मिला : "देवदत्त ने।" आनन्द हाथी की लाश खींच कर एक छोटी गली में ले गए। फिर राजकुमार आए। उन्होंने प्रश्न किया : "किसने इतनी निर्ममता से हाथी को मार डाला ?" उत्तर मिला : "देवदत्त ने। हाथी की लाश से नगर का द्वार बन्द हो गया था। आनन्द ने ही उसे एक ओर हटाया है।" राजकुमार ने मृत हाथी को उठा कर नगर के बाहर खाई के उस पार फेंक दिया। मृत हाथी के गिरने से धरती में एक गहरा गड्ढा बन गया। यह वही गड्ढा था जो "हाथी गिराव गड्ढा" कहलाता था। गड्ढे के समीप अवस्थित चैत्य में राजकुमार की मूर्ति सुशोभित थी। इस चैत्य के निकट एक और चैत्य था, जो अतीत में राजकुमार की पत्नी यशोधरा का शयन-कक्ष था। उसमें यशोधरा और राहुल की मूर्तियां थीं। पास में एक और चैत्य था जो राजकुमार के अध्ययन-कक्ष का अवशेष था। उसमें अध्ययन में मग्न राजकुमार की एक प्रतिमा स्थापित थी।

दो. जहां राजकुमार ने नगर के प्राचीर को लांघा था

नगर के दक्षिण-पूर्व में एक चैत्य था। उसमें एक चित्र था जिसमें राजकुमार श्वेत घोड़े पर सवार उड़ान भरते दिखाई देते थे। यहीं से राजकुमार नगर के प्राचीर को लांघ गए थे। नगर के चार द्वारों पर एक-एक चैत्य थे, उनमें जरा-जीर्ण, व्याधिग्रस्त, मृत और परिव्राजक के चित्र थे। राजकुमार को उद्यान यात्रा में जरा, व्याधि, मरण और परिव्राजक के दर्शन हुए। उनके मन में संवेग आया और सांसारिक जीवन से उकताहट उत्पन्न हुई। उनमें चैतन्य आया। अन्त में वे दासों को ले कर वापस चले गए।

तीन. भद्रकल्प के दो बुद्धों के जन्मस्थान

नगर से पचास ली दूर दक्षिण में एक पुराना नगर था, उसमें एक स्तूप था। यही भद्रकल्प में मनुष्य आयु के साठ हजार वर्ष होने के समय ऋकच्छुण्ड बुद्ध का जन्मस्थान था। नगर से कुछ दूर दक्षिण में एक स्तूप खड़ा था, जहां उन्होंने बोधि-प्राप्ति के उपरांत अपने पिता के दर्शन किए थे। नगर के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक स्तूप में इस बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित थीं। स्तूप के समक्ष एक तीस छि ऊंचा प्रस्तर स्तंभ था, जिस पर सिंह का चित्र खुदा था और इस बुद्ध के परिनिर्वाण का विवरण अंकित था। यह स्तंभ सम्राट अशोक ने बनवाया था।

ऋकच्छुण्ड बुद्ध नगर से तीस ली दूर उत्तर-पूर्व में एक पुराना बड़ा नगर था। नगर में

स्तूप था। यह वही स्थान था जहां भद्रकल्प में मनुष्य ग्रायु के चालीस हजार वर्ष होने पर कनकमुनि बुद्ध का जन्म हुग्रा था। उससे कुछ दूर उत्तर-पूर्व में एक स्तूप था, जहां उन्होंने बोधि-प्राप्ति के पश्चात ग्रपने पिता को सद्धर्म में दीक्षित किया था। उसके उत्तर में स्थित एक ग्रौर स्तूप में इस बुद्ध की ग्रस्थियां सुरक्षित थीं। स्तूप के समक्ष एक बीस छि ऊंचा प्रस्तर स्तूप था, जिस पर सिंह का चित्र ग्रौर इस बुद्ध के परिनिर्वाण का विवरण ग्रंकित था। यह भी सम्राट ग्रशोक ने बनवाया था।

चार. जहां राजकुमार वृक्ष की छाया में बैठे थे

राजधानी से चालीस ली दूर उत्तर-पूर्व में एक स्तूप था, जहां राजकुमार ने वृक्ष की छाया में बैठे कृषकों को भूमि जोतते हुए देखा था। इसी स्थान पर उन्होंने समाधि लगाई थी ग्रौर मोक्ष प्राप्त किया था। जब वे समाधि में बैठे थे, तब राजा शुद्धोदन ने पाया कि धूप में वृक्ष की छाया इधर-उधर न जाती थी। वे समझ गए कि यह उनके पुत्र के ग्रलौकिक देवत्व की ग्रभिव्यंजना है। तब ग्रपने पुत्र के प्रति उनके ग्रादरभाव में वृद्धि हुई।

पांच. जहां शाक्यों का वध किया गया था

राजधानी के उत्तर-पश्चिम में सैकड़ों स्तूप थे, जहां शाक्यों का वध किया गया था। राजा विरूढक ने शाक्यों पर विजय पाने के बाद नौ करोड़ निन्यानवे लाख शाक्यों को बन्दी बनाया ग्रौर उन सबों का वध किया। लाशों का ढेर लग गया ग्रौर रक्त की नदियां बह गईं। देवताग्रों ने मनुष्य को सचेत करने के उद्देश्य से उनके कंकाल इकट्ठा कर भूमि में गाड़ दिए।

इन स्तूपों के दक्षिण-पश्चिम में चार छोटे-छोटे स्तूप खड़े थे, जहां चार शाक्यों ने शत्रु-सेना का प्रतिरोध किया था। प्रसेनजित ने राज्यारूढ हो जाने पर शाक्यों से परिणय-बंधन के लिए निवेदन किया था। शाक्य उनकी उपेक्षा करते थे, क्योंकि वे शाक्य वंश के नहीं थे। शाक्यों ने धोखा दे कर उनका एक दासी की पुत्री के साथ धूमधाम से परिणय संपन्न करा दिया। राजा प्रसेनजित ने इस कन्या को ग्रपनी प्रधान रानी बनाया। उससे एक पुत्र हुग्रा जो विरूढक ही था। विरूढक विद्याएं सीखने ननिहाल गए। कपिलवस्तु की राजधानी पहुंचने पर जब उन्होंने नगर के दक्षिण में एक नया शिक्षालय देखा, वे उसमें प्रवेश कर विश्राम करने लगे। शाक्यों ने उन्हें बाहर निकाल कर भगा दिया ग्रौर फटकारा : "तुम एक नीच दासी के पुत्र हो। तुमने इस कोठी के ग्रन्दर ग्राने की धृष्टता कैसे

की ! यह कोठी हमने बुद्ध के निवास के लिए बनाई है !" राज्याभिषेक के बाद विरूढक ने अपने अपमान का स्मरण कर सेना ले बदला लेने का निश्चय किया। जब उनकी सेना यहीं पर डेरे डालने लगी तब चार शाक्य कृषक खेत जोत रहे थे। उन्होंने तुरन्त उठ खड़े हो कर शत्रु-सेना का प्रतिरोध किया। बाद में शत्रु-सेना खदेड़ दी गई। शाक्य वंश के लोग नगर में वापस लौटे। उनका मानना था कि वे चक्रवर्ती राजा और धर्मराज की संतान हैं, दूसरों का वध कैसे सहन कर सकते हैं। इन चार शाक्यों के कर्म से वंश के नाम पर कलंक लग गया है। इसलिए उन्हें वंश से निकालकर निष्कासित किया गया। वे चार शाक्य उत्तर में हिमगिरि पहुंच गए। एक उद्यान का राजा बन गया, दूसरा बामियां का, तीसरा हिमतल का और चौथा शांमी का राजा बना। उनकी वंश-परम्परा बनी रही और वंश-वृद्धि होती रही।

छ: जहां शाक्य मुनि बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपने पिता से मिले थे

नगर से तीन-चार ली दूर दक्षिण में न्यग्रोध वन में सम्राट अशोक द्वारा निर्मित एक स्तूप था जहां शाक्य मुनि बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपने पिता से मिले थे और जहां उन्होंने अपने पिता को उपदेश दिया था। शुद्धोदन को जब यह ज्ञात हुआ कि तथागत मार सेना पर विजय पा कर सद्धर्म का प्रचार कर रहे हैं, तो उनका स्मरण करके उन्होंने चाहा कि तथागत वापस आ जाएं ताकि वे उनके प्रति श्रद्धा अर्पित कर सकें। शुद्धोदन ने अपने एक दूत के माध्यम से तथागत को बुलावा भेजा : "पहले आपने बुद्धत्व-प्राप्ति के उपरान्त अपने जन्मस्थान वापस लौटने का वचन दिया था। अब आपको अपने वचन का पालन कर जन्म-स्थान में पदार्पण करना चाहिए।" तथागत ने राजा के दूत से कहा : "मैं सात दिनों के उपरान्त अपने जन्मस्थान लौट आऊंगा।" दूत ने वापस लौट कर यह बात राजा को बताई। शुद्धोदन ने प्रजा को मार्गों को स्वच्छ करने और सुगंधित पुष्प एकत्रित करने का आदेश दिया। स्वयं उन्होंने मंत्रियों के साथ नगर से चालीस ली दूर स्थान में जा कर तथागत का आदरपूर्वक स्वागत किया। तथागत अपने भिक्षुओं के साथ आए। उनकी रक्षा के लिए चारों ओर आठ वज्रधर थे तथा देवराज आगे-आगे चल रहे थे। तथागत की बायीं ओर इंद्र और कामधातु के देवता थे एवं दायीं ओर ब्रह्मा और रूपधातु के देवता। उनके पीछे भिक्षु थे। बुद्ध उनके बीचोंबीच थे, जैसे चमकते तारों के मध्य चन्द्रमा सुशोभित होता है। उनकी महत्ता ने तीनों लोकों को चमत्कृत किया और उनकी दीप्ति ने सात ग्रहों को कांतिहीन कर दिया। वे आकाश मार्ग से अपने जन्मस्थान गए थे। राजा और मंत्रीगण उनको प्रणाम करने के उपरांत उनके साथ नगर में गए। तथागत ने न्यग्रोध संघाराम में निवास किया।

उससे कुछ दूर एक स्तूप था जहां तथागत ने एक वृक्ष के नीचे पूर्व की ग्रोर मुंह किए ग्रपनी मौसी व विमाता से स्वर्ण धागों से काढ़ा गया काषाय चीवर स्वीकार किया था। उसके समीप एक ग्रौर स्तूप था, जहां तथागत ने ग्राठ राजकुमारों ग्रौर पांच सौ शाक्यों को उपसंपन्न किया था।

सात. शिव मंदिर ग्रौर बाण-स्रोत

नगर के पूर्वी द्वार के ग्रन्दर मार्ग की बायीं ग्रोर एक स्तूप था, जहां राजकुमार सर्वार्थ-सिद्ध ने नाना शिल्प ग्रौर कलाएं सीखी थीं। इस द्वार के बाहर एक शिव मंदिर था। मंदिर में शिव की प्रस्तर प्रतिमा सुशोभित थी, जो उठ कर प्रणाम में झुकने की मुद्रा में थी। इस मंदिर में राजकुमार ने ग्रपने शैशव में प्रथम पदार्पण किया था। राजा शुद्धोदन जब लुंबिनी से राजकुमार को ले कर लौटते हुए मार्ग में इस मंदिर के सामने से गुजरे थे तो उन्होंने कहा था: "यह एक चमत्कारयुक्त मंदिर है। जो भी शाक्य बालक देवता से वर मांगता है, उसका मनोरथ ग्रवश्य पूर्ण हो जाता है। इसलिए राजकुमार को ग्रन्दर ले जा कर देवता के दर्शन कराने चाहिएं।" जैसे ही धाय राजकुमार को गोद में उठाए मंदिर के ग्रन्दर गई, शिव की प्रस्तर प्रतिमा राजकुमार के स्वागत में उठ खड़ी हुई। जब राजकुमार मंदिर के बाहर ले जाए गए, तभी प्रतिमा पुन: बैठ गई।

नगर के दक्षिणी द्वार के बाहर मार्ग की बायीं ग्रोर एक स्तूप विद्यमान था जहां राजकुमार ने ग्रन्य शाक्यों के साथ शस्त्रविद्या की प्रतियोगिता में लोहे के ढोल पर बाण मारा था। यहां से तीस ली दूर दक्षिण में एक छोटा स्तूप था जिसके समीप एक सोता था। सोते का जल दर्पण के समान स्वच्छ था। इस स्थान पर राजकुमार ने ग्रन्य शाक्यों से बाणविद्या की प्रतियोगिता की थी। जब उन्होंने एक ग्रनमनीय धनुष तान कर बाण छोड़ा, तो वह बाण लोहे के ढोल को पार कर इसी स्थल पर धरती के नीचे चला गया था ग्रौर फिर सोता फूट निकला था। कालांतर में यह बाण-स्रोत कहलाने लगा। व्याधिग्रस्त होने पर इस सोते का जल पीने या इसमें स्नान करने के ग्रनंतर रोगी प्राय: स्वस्थ हो जाता था। दूर से ग्राने वाले लोग यहां की मिट्टी ले कर वापस जाते थे। चाहे शरीर के किसी भी ग्रंग में पीड़ा हो, जल के साथ यह मिट्टी माथे पर लगाई जाने पर देवता की कृपा से पीड़ा प्राय: समाप्त हो जाती थी।

ग्राठ. लुंबिनी वन ग्रौर शाक्य मुनि के जन्म की कथा

बाण-स्रोत से उत्तर-पूर्व में ग्रस्सी-नब्बे ली दूर चलने पर लुंबिनी वन ग्राता है। यहां

शाक्यों का एक स्नान कुंड था। कुंड का जल शीशे की भांति स्वच्छ था और चारों दिशाओं में नाना प्रकार के फूल खिले रहते थे। इस कुंड से चौबीस-पच्चीस कदम दूर उत्तर में एक अशोक वृक्ष था, जो सूख चुका था। यहीं बुद्ध ने मनुष्य लोक में पदार्पण किया था। बुद्ध की जन्मतिथि उत्तर वैशाख की अष्टमी अर्थात चीनी पंचांग के अनुसार तीसरे महीने का आठवां दिन थी। स्थविरवादियों की मान्यता थी कि बुद्ध की जन्मतिथि उत्तर वैशाख की पूर्णिमा अर्थात चीनी पंचांग के अनुसार तीसरे महीने का पन्द्रहवां दिन थी।

इस वृक्ष के पूर्व में एक अशोक स्तूप था, जहां दो नागों ने नवजात राजकुमार को प्रथम स्नान कराया था। अपने जन्म के पश्चात ही बुद्ध किसी के सहारे के बिना स्वयं चल-फिर सकते थे। उन्होंने क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, चारों दिशाओं में सात-सात कदम चल कर कहा : "आकाश में और धरती पर मैं ही सर्वात्मा हूं। अब से मेरा पुनर्जन्म कभी नहीं होगा।" जिन-जिन स्थलों में उन्होंने अपने पदचिह्न छोड़े थे उन स्थलों में कमल के फूल उग आए थे। फिर दो नाग धरती से उड़ कर आकाश में गए। एक नाग ने नीचे उष्ण जल और दूसरे ने शीतल जल छिड़क कर राजकुमार को स्नान कराया। राजकुमार-स्नान-स्तूप के पूर्व में दो निर्मल जल वाले सोते थे और प्रत्येक सोते के समीप एक-एक स्तूप खड़ा था। इन्हीं दो स्थलों से दो नाग उड़ कर आकाश में गए थे। बुद्ध के जन्मोपरान्त परिजनों और सगे-संबंधियों ने दौड़े-दौड़े आ कर स्नान करना चाहा था। तभी मायादेवी के समक्ष दो सोते फूट निकले। एक का जल उष्ण था और दूसरे का शीतल। सबों ने स्नान किया। सोतों के दक्षिण में एक स्तूप था जहां इन्द्र ने नवजात बुद्ध का स्वागत किया था। जब बुद्ध की उत्पत्ति हुई ही थी, इन्द्र ने घुटने टेक कर दैवी वस्त्र द्वारा उनका स्वागत किया था। उसके समीप चार स्तूप थे, जहां चार देवराजों ने बुद्ध को गोद में उठा लिया था। जब बुद्ध दायीं कांख से उत्पन्न हुए, तो चार देवराजों ने बुद्ध को स्वर्ण कंबल ओढ़ा कर स्वर्ण चौकी पर रखा और मायादेवी से कहा : "आपने एक सौभाग्यशाली पुत्र को जन्म दिया है। यह कितनी प्रसन्नता की बात है। जब समस्त देवतागण भी प्रफुल्लित हो उठे हैं, तो संसारियों का तो कहना ही क्या?"

इन चार स्तूपों से कुछ ही दूरी पर एक बड़ा प्रस्तर स्तंभ था जिस पर एक अश्व की प्रतिमा बनी थी। यह स्तंभ सम्राट अशोक ने बनवाया था। बाद में एक द्वेषी नाग द्वारा गिराई गई बिजली से यह स्तंभ बीच से टूट कर धरती पर गिर पड़ा था। इसके निकट एक सरिता थी, जो दक्षिण-पूर्व की ओर बहती थी। स्थानीय लोगों में यह "स्निग्ध सरिता" कहलाती थी। जब मायादेवी ने पुत्र को जन्म दिया, तब देवों ने एक स्निग्ध कुंड उत्पन्न किया था ताकि मायादेवी इस में नहा कर स्वच्छता प्राप्त कर सकें। यह कुंड अब एक सरिता में बदल गया था। फिर भी इसका जल तैलाक्त था।

यहां से पूर्व दिशा में वीरान जगलों में दो सौ ली चलने के बाद मैं ग्राम पहुचा। (यह

राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

ग्राम

यह राज्य वर्षों से उजाड़ पड़ा था। इसकी सीमा का कोई चिह्न बाकी नहीं बचा था। नगर खण्डहरों के ढेर बन चुके थे और जनसंख्या बहुत अल्प थी।

एक. बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित रखने वाला स्तूप

पुरानी राजधानी के दक्षिण-पूर्व में एक ईंटों से बना स्तूप था जिसकी ऊंचाई सौ छि के लगभग थी। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद इस राज्य के राजा को बुद्ध की अस्थियों का एक भाग प्राप्त हुआ था। उन्हें साथ ला कर राजा ने यह स्तूप बनवाया था। इस स्तूप पर चमत्कार हुआ करते थे और दैवी दीप्ति प्रसारित रहती थी।

स्तूप के समीप एक कुंड था। इस कुंड का नाग जब भी बाहर निकलता तो सर्प के रूप में प्रकट होता था और स्तूप की प्रदक्षिणा करता था। झुंड के झुंड वन्य हाथी आते और स्तूप पर फूलों की वर्षा करते रहते। दैवी शक्ति के कारण ही ऐसा निरन्तर होता रहता था। सम्राट अशोक ने बुद्ध की अस्थियां बांट कर सात देशों में स्तूपों का निर्माण आरंभ करवाने के उपरान्त इस राज्य में भी पदार्पण कर स्तूप बनाने का काम आरंभ करवाना चाहा। तब कुंड के नाग ने अपना निवास-स्थान छीन लिए जाने के डर से ब्राह्मण का रूप धारण किया और सम्राट के हाथी के समक्ष प्रणाम करके कहा : "महाराज, आप सभी बौद्धों पर कृपा करते हैं और व्यापक रूप से पुण्य कर्म करते रहते हैं। अब महाराज, मैं आपसे मेरे आवास में पदार्पण की प्रार्थना करने की धृष्टता करता हूं।" सम्राट अशोक ने पूछा : "तुम्हारा घर कहां है? दूर है कि निकट?" ब्राह्मण ने कहा : "मैं इस कुंड का नागनाथ हूं। महाराज, आपने यहां एक स्तूप बनाना चाहा है, इसलिए आपके दर्शन करने आया हूं।" सम्राट अशोक आमन्त्रण स्वीकार कर नागनाथ के प्रासाद में गए। जब दोनों बैठ गए, तो कुछ क्षणों के उपरांत नाग बोला : "पिछले जन्म में मैंने पाप किए थे, सो इस जन्म में एक नाग बना हूं। यहीं पर बुद्ध की अस्थियों की पूजा कर पाप से मुक्ति पाना चाहता हूं। कृपया, मैंने जो पात्र जुटाए हैं, उन्हें आप देख लें।" सम्राट अशोक ने पात्रों को देख कर कहा : "ये सभी पात्र अलौकिक हैं।" नाग ने कहा : "यदि ऐसा है, तो आप इन्हें नष्ट न करवाए।" यह सोच कर कि उनकी सामर्थ्य नाग के समकक्ष नहीं है, सम्राट

अशोक ने इस स्थल पर स्तूप बनवाने का विचार त्याग दिया। जिस स्थान से सम्राट अशोक कुंड से बाहर निकले थे, उसी स्थान पर एक स्मारक खड़ा था।

दो. श्रामणेर संघाराम

स्तूप के निकट एक संघाराम था। उसमें भिक्षु बहुत कम थे। संघाराम का वातावरण नीरव और प्रशांत था और उसमें भिक्षु-जीवन और संगठन के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता था। संघाराम के कार्यों की देखभाल एक श्रामणेर करता था। जब कोई भिक्षु दूर से आता था, तो उसका आतिथ्य-सत्कार किया जाता था। उससे संघाराम में तीन दिन अवश्य ठहरने का आग्रह किया जाता था और उसे वस्त्र, भोजन, चटाई और औषधि प्रदान किए जाते थे। एक प्राचीन ग्रंथ में यह उल्लेख था कि भिक्षुओं का एक दल किसी दूरस्थ स्थान से इस स्तूप के दर्शनार्थ यहां आया। उन्होंने आ कर देखा कि अनेक हाथी इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई दांत से निराई कर रहा था, तो कोई सूंड़ से जल छिड़का रहा था और सभी हाथी नाना प्रकार के फूल ला कर इस स्तूप पर चढ़ा रहे थे। यह देख कर सभी भिक्षु भावविभोर हो उठे। उनमें से एक श्रामणेर ने उपसंपदा का अवसर त्याग कर यहीं रह कर परिचारक का काम करने की इच्छा व्यक्त की तथा अपने साथियों से कहा : "यह मेरा अहोभाग्य है कि संघ में आया हूं। लेकिन वास्तत्व में मैं अयोग्य हूं और इतने वर्ष बीतने पर भी कोई उपयुक्त कर्म न कर सका। इस स्तूप में बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित हैं। बुद्ध की महत्ता से प्रभावित हो कर हाथी भी यहां निराई और जल-छिड़काव के लिए आते हैं। मैं यहीं रह कर हाथियों के साथ अपना शेष जीवन बिताना चाहता हूं। यही मेरा सौभाग्य होगा!" सबों ने कहा : "यह तो एक पुण्य कार्य है। हम तो सांसारिक विचारों से बंधे हुए हैं और हमने ऐसा करने का सोचा तक नहीं था। तुम्हें सचेत रह कर इस पुण्य कार्य में कोई कमी कभी न आने देनी चाहिए।" साथियों को विदा दे कर वह प्रसन्नता से यहां एकांतवास करने लगा और उसने यहीं पर अपना पूरा जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लिया। उसने एक कुटी खड़ी की, नाले से पानी ला कर एक कुंड बनाया, फूल तोड़ लाया और झाड़ू लगा कर सफाई की। कई वर्ष बीत गए, पर वह कभी ढीला नहीं पड़ा। समीप के राजाओं ने जब उसकी कहानी सुनी, तो उन्होंने एक स्वर में उसके सदाचार की प्रशंसा की और धन का दान कर एक संघाराम स्थापित किया। उन्होंने उसे संघाराम का कामकाज देखने के लिए आमंत्रित किया। तब से संघाराम के संस्थापक की स्मृति में सभी महंत श्रामणेर के नाम से संघाराम के कार्य की देखभाल करते आ रहे थे।

तीन. जहां राजकुमार ने राजसी वस्त्र त्यागे थे और केश मुंड़वा लिए थे

श्रामणेर संघाराम के पूर्व में घने वन में छ: सौ ली चलने पर एक बृहद अशोक स्तूप दिखाई पड़ता था। राजकुमार ने नगर का प्राचीर लांघने के अनंतर यहीं आ कर राजसी वस्त्र और आभूषण त्याग दिए थे और सेवक को वापस भेज दिया था। राजकुमार मध्य रात्रि में नगर का प्राचीर लांघ कर जब यहां पहुंचे, तब पौ फटने को थी। उनका मनोरथ पूरा हुआ। उन्होंने प्रफुल्लित हो कर कहा : "इसी स्थल पर मैं माया-जाल और बंधनों से मुक्त हो कर अंतिम रूप से सवारी त्याग दूंगा।" उन्होंने अपने मुकुट से मणि निकाल कर सेवक को देते हुए कहा : "यह मणि राजा को दे देना और कह देना कि मैं आज से कहीं दूर चला जाऊंगा। यह कोई साधारण वियोग नहीं है, बल्कि सभी सांसारिक अनित्यताओं और क्लेशों से मुक्ति है।" सेवक चंडक बोला : "आप क्या कह रहे हैं ? मुझे अकेला वापस भेज रहे हैं ?" राजकुमार ने उसे समझाया-बुझाया और सेवक कुछ समझ कर वापस गया। इस स्तूप के पूर्व में एक जम्बू वृक्ष था। उसके तमाम पत्ते झड़ चुके थे। केवल सूखा हुआ तना खड़ा था।

मृत जम्बू वृक्ष के समीप एक छोटा स्तूप था, जहां राजकुमार ने अपने राजसी वस्त्र के बदले में मृगचर्म का बना वस्त्र ग्रहण किया था। यद्यपि राजकुमार ने अपने बाल काटे और वस्त्र बदले थे तथा आभूषण भी उतार दिए थे, तथापि उनके शरीर पर एक राजसी वस्त्र रह गया था। उन्होंने मन ही मन कहा : "यह वस्त्र अत्यंत भड़कीला है। इसके बदले में दूसरा वस्त्र कैसे मिल सकेगा ?" तब शुद्धावास का एक देव शिकारी के रूप में प्रगट हुआ। वह मृगचर्म से बना वस्त्र पहने था। उसके हाथ में धनुष था और पीठ पर बाण लदे थे। उसे देख कर राजकुमार ने अपना वस्त्र उठा कर कहा : "मैं तुमसे वस्त्र बदलना चाहता हूं। क्या तुम सहमत होगे ?" शिकारी ने कहा : "मैं सहमत हूं।" राजकुमार ने वस्त्र उतार कर उसके हाथ में थमा दिया। वस्त्र प्राप्त करने पर शिकारी देव के रूप में प्रगट हुआ और राजकुमार का वस्त्र लिए आकाश में चला गया।

इस स्थान के निकट एक अशोक स्तूप था, जहां राजकुमार ने अपने केश मुंड़वा लिए थे। राजकुमार ने चंडक के हाथ से उस्तरा ले कर अपने बाल काट दिए। इन कटे हुए बालों की पूजा के लिए इंद्र स्वर्ग में ले गए। इतने में शुद्धावास के एक देव नापित का वेश धारण कर उस्तरा लिए प्रकट हुए। राजकुमार ने उनसे पूछा : "तुम सिर मूंड़ सकते हो ? मेरा सिर मूंड़ दो !" उनके आदेशानुसार नापित का रूप धारण करने वाले देव ने उनका सिर मूंड़ दिया।

प्रव्रज्या के समय बुद्ध की आयु के संदर्भ में मतभेद था। किसी की मान्यता थी कि तब बुद्ध की आयु उन्नीस वर्ष की थी, तो किसी का कहना था कि तब बुद्ध उनतीस वर्ष के थे। प्रव्रज्या की तिथि भी निश्चित न की जा सकी : उत्तर वैशाख की अष्टमी अथवा पूर्णिमा।

चार. भस्म स्तूप

मुंडन स्तूप के दक्षिण-पूर्व से वीरान मैदान में एक सौ अस्सी ली चलने के बाद एक न्यग्रोध वन आया। उस वन में एक तीस छि ऊंचा स्तूप था। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियां बांटी जा चुकी थीं और ब्राह्मणों को नहीं मिल पाई थीं। उन्होंने निष्टपन के स्थान में बची-खुची भस्म इकट्ठी की और अपने देश ला कर भस्म की पूजा के लिए यह स्तूप खड़ा किया था। तब से इस स्थान में चमत्कार होते रहे थे और बहुत से रोगी प्रार्थनाएं कर पुन: स्वस्थ हो जाते थे। भस्म स्तूप के समीप एक पुराने संघाराम में चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे। विहार के इर्द-गिर्द सैकड़ों स्तूप थे। उनमें से एक सम्राट अशोक ने बनवाया था। यद्यपि यह स्तूप ध्वस्त हो चुका था, तथापि आधार पर से इसकी ऊंचाई सौ छि से भी अधिक थी।

यहां से उत्तर-पूर्व में घने जंगलों में मार्ग दुर्गम थे और संकटों से मुक्त नहीं थे। जंगली बैल और हाथी, डाकू और शिकारी यात्रियों को मार डालने की ताक में रहते थे। इस वन से निकल कर मैं कुशीनगर पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

कुशीनगर

कुशीनगर के प्राचीर ध्वस्त हो चुके थे। नीरवता व्याप्त थी। राजधानी की परिधि दस ली से अधिक थी। निवासी कम थे और गलियों में वीरानी छाई हुई थी।

एक. चुंद का पुराना निवास

राजधानी के उत्तर-पूर्व कोने में एक अशोक स्तूप था, जहां अतीत में चुंद का पुराना निवास था। पुराने निवास में एक कुआं था, जो बुद्ध की सेवा के लिए खोदा गया था। इतने अधिक वर्ष बीत जाने पर भी इस कुएं का जल स्वच्छ और मीठा था।

दो. शाल वन और शाक्य का निर्वाण स्थल

नगर से तीन-चार ली दूर उत्तर-पश्चिम में अजितवती नदी के उस पार पश्चिमी तट से कुछ ही दूरी पर एक शाल वन था। शाल वृक्ष चीनी बलूत वृक्ष के सदृश थे, किन्तु उनकी छाल हरापन लिए श्वेत थी और पत्तियां चिकनी थीं। वन में चार वृक्ष अत्यधिक ऊंचे थे। वहीं तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। ईंटों से बने एक बृहद चैत्य में सिर उत्तर की ओर किए हुए सुप्त बुद्ध की प्रतिमा सुशोभित थी। चैत्य के पास एक स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। स्तूप की नींव ढह चुकी थी, लेकिन स्तूप फिर भी दो सौ छि ऊंचा था। स्तूप के समक्ष एक प्रस्तर स्तंभ था, जिस पर तथागत के परिनिर्वाण का विवरण अंकित था। अभिलेख तो था, किन्तु उसमें तिथि और मास अंकित नहीं थे। पुराने अभिलेखों के अनुसार बुद्ध का परिनिर्वाण अस्सी वर्ष की आयु में उत्तर बैशाख की पूर्णिमा अर्थात वर्तमान पंचांग के अनुसार तीसरे महीने की पन्द्रहवीं तिथि को हुआ था। सर्वास्तिवादियों का मानना था कि बुद्ध का परिनिर्वाण उत्तर कार्तिक की अष्टमी को अर्थात वर्तमान पंचांग के अनुसार नवें महीने की आठवीं तिथि को हुआ था। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद से कितना समय बीत चुका है, इस संबंध में भी विभिन्न संप्रदायों और निकायों की मान्यताएं अलग-अलग हैं। किसी का कहना है कि एक हजार दो सौ वर्ष गुजर चुके हैं, किसी की मान्यता है कि एक हजार तीन सौ वर्ष बीत चुके हैं, किसी का मानना है कि एक हजार पांच सौ वर्ष हो चुके हैं, तो किसी का मत है कि नौ सौ वर्ष से अधिक, किन्तु एक हजार वर्ष से कम समय गुजर चुका है।

1. चकोर राजा की जातक कथा

चैत्य के समीप एक स्तूप था, जहां तथागत द्वारा बोधिसत्व की प्राप्ति के लिए समाधि लगाए जाने के समय चकोरों के राजा ने आग बुझाई थी। अतीत में यहां एक घना वन था जिसमें असंख्य पशु-पक्षी वास करते थे। एक दिन सहसा आंधी चली तथा वन में भीषण आग धधक उठी। एक चकोर ने करुणार्द्र हो कर नदी में गोता लगा कर अपने परों को भिगो लिया और फिर वन के ऊपर आ कर परों का जल छिड़काया। इतने में इंद्र ने झुक कर चकोर से पूछा : "तुम इतने मूर्ख क्यों हो और व्यर्थ ही पर क्यों फड़ाफड़ा रहे हो ? इतनी प्रचंड आग है जो सारे वन को अपनी चपेट में लेती जा रही है। तुम इतने क्षुद्र प्राणी हो। फिर तुम उसे बुझाने में कैसे समर्थ हो सकते हो ?" उत्तर में चकोर ने प्रश्न किया : "कौन बोल रहा है ?" "मैं हूं, इंद्र।" चकोर ने कहा : "इंद्र तो शक्तिमान हैं, जो चाहे कर सकते हैं। प्राणियों को विपत्तियों से उबारना उनके बायें हाथ का खेल है। फिर आप

ग्राग बुझाने में हाथ बंटाने के बदले मेरी हंसी क्यों उड़ा रहे हैं ? ग्राप ग्रपना दायित्व कैसे निभाते हैं ? ग्राग इतनी भभक रही है। व्यर्थ ग्रधिक बकवक मत कीजिए, ग्राग बुझाइए !" यह कह कर चकोर फिर द्रुत गति से नदी की ग्रोर उड़ गया। इंद्र ने चुल्लुग्रों में पानी भर कर वन की ग्रोर छिड़का। क्षण भर में ग्राग बुझ गई ग्रौर जीवों की रक्षा हुई। इसीलिए यह ग्रग्नि-शमन-स्तूप कहा जाने लगा।

2. हिरन की जातक कथा

ग्रग्नि-शमन-स्तूप से कुछ दूरी पर एक स्तूप था, जहां बुद्ध द्वारा बोधिसत्व की प्राप्ति के लिए समाधि लगाए जाने के समय एक हिरन ने जीवों को बचाया था। पहले इस वन में प्रचंड ग्राग लगी। पशु-पक्षी नि:सहाय हो गए। ग्रागे उफनती नदी थी ग्रौर पीछे भभकती ग्राग। वे क्रमश: नदी में डूब मरे। वह दयार्द्र हिरन उफनती धारा में चमड़ा छिल जाने तथा हड्डी टूट जाने पर भी कष्ट झेलते हुए डूबते हुग्रों का बचाव करता रहा। ग्रन्त में एक खरगोश लंगड़ाता हुग्रा वहां ग्राया। हिरन ने थकान ग्रौर पीड़ा सहन कर उसे भी नदी के उस पार उतार दिया ग्रौर स्वयं शक्ति क्षीण हो जाने के कारण नदी में डूब कर मर गया। देवताग्रों ने उसकी ग्रस्थियां एकत्रित कीं ग्रौर उसकी स्मृति में यह स्तूप खड़ा किया।

3. जहां सुभद्र ने ग्रर्हत्व प्राप्त किया था

जीव उद्धारक हरिण स्तूप के पश्चिम से कुछ दूर एक स्तूप था, जहां सुभद्र का निर्वाण हुग्रा था। सुभद्र एक सौ बीस वर्षीय पंडित थे। वे ग्रपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। जब उन्होंने सुना कि बुद्ध का परिनिर्वाण होगा, तो उन्होंने शाल वन जा कर ग्रानन्द से कहा : "बुद्ध का परिनिर्वाण होने को है। मैं शंका-समाधान हेतु उनके प्रवचन सुनना चाहता हूं।" ग्रानन्द बोले : "बुद्ध का परिनिर्वाण होने को है। उन्हें कष्ट न दें तो ग्रच्छा हो।" सुभद्र ने कहा : "मैंने सुना है कि बुद्ध के दर्शन सुलभ नहीं हैं ग्रौर सद्धर्म के प्रवचन सुन पाना भी कठिन है। मेरी जो शंकाएं हैं, उनका समाधान करना बहुत दुष्कर है। ग्रब उनका निराकरण करने वाला कदाचित ग्रौर कोई नहीं होगा।" सुभद्र को ग्रन्दर जाने की ग्रनुमति मिली। उन्होंने बुद्ध से पूछा : "ग्रलग-ग्रलग शाखाग्रों के भिन्न-भिन्न मत हैं, उनके ग्रपने-ग्रपने ग्राचार्य हैं ग्रौर गृहस्थों को शिक्षा देने के उनके उपाय भी एक दूसरे से भिन्न हैं। गौतम, क्या ग्राप विभिन्न मत जानते हैं ?" बुद्ध ने कहा : "मैंने उनका विस्तृत ग्रध्ययन किया

है।" फिर बुद्ध ने विभिन्न मतों पर प्रकाश डाला। सुभद्र सुन कर बुद्ध की विद्वत्ता पर मंत्र-मुग्ध हो गए तथा संघ में आकर उपसंपदा की प्रार्थना की। बुद्ध ने उनसे कहा : "तुम उप-सम्पदा कैसे ले सकते हो? जो कोई विधर्मी संघ में आना चाहता है, उसकी चार वर्षों तक परीक्षा की जाती है। उसके आचरण और मनोवृत्ति का निरीक्षण करना पड़ता है। यदि उसका आचरण सही और उसके वचनों में सत्य पाया जाय, तभी वह भिक्षु बन सकता है। लेकिन यह भी किसी मनुष्य के आचरण पर ही निर्भर है, तुम्हें उपसम्पदा देने में कोई कठिनाई नहीं है।" सुभद्र ने कहा : "भगवान, आप दयाशील हैं और निष्पक्ष मुक्तिदाता हैं। चार वर्षों की परख ही सही, मेरे तीन अंग (मुख, शरीर तथा मस्तिष्क) धर्मानुरूप होंगे।" इस पर बुद्ध ने कहा : "अभी मैंने कहा है कि यह तो किसी मनुष्य के आचरण पर निर्भर है।" फलस्वरूप सुभद्र सद्धर्म में दीक्षित हुए और एक उपसंपन्न भिक्षु बन गए। उन्होंने तत्परता से आध्यात्मिक साधना की, तन-मन से व्यायाम किया और कुछ समय के अनंतर धर्म के प्रति पक्का विश्वास स्थापित किया तथा अर्हत्व-प्राप्ति के लिए पूरी शक्ति लगा दी। अभी अर्धरात्रि ही व्यतीत हुई थी कि उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। उनके सभी क्लेशों की समाप्ति हुई और समाधि में पूर्णता प्राप्त हुई। उनके लिए यह असहनीय था कि बुद्ध का परिनिर्वाण देखा जाए। इसलिए उन्होंने संघ के सामने ही आत्मदाह किया और अलौकिक शक्ति प्रदर्शित कर बुद्ध से पूर्व ही निर्वाण प्राप्त कर लिया। वे तथागत के अंतिम शिष्य थे, किन्तु उनसे पूर्व ही उनका निर्वाण हो गया। वे भूत काल का वही लंगड़ाता हुआ खरगोश थे जिसने सब से बाद में नदी के उस पार जाना चाहा था।

4. जहां वज्रपाणि धरती पर गिर पड़े थे

सुभद्र निर्वाण स्तूप के समीप उस स्थल पर एक स्तूप था जहां वज्रपाणि धरती पर मूर्छित हो कर गिर पड़े थे। करुणानिधान भगवान ने जब प्राणियों को उनकी स्थितियों के अनु-रूप उपदेश देने का कार्य समाप्त कर लिया, तब वे परिनिर्वाण के परम सुख में दो शाल वृक्षों के बीच सिर को उत्तर की ओर कर लेट गए। वज्रपाणि देव गुह्यपदी मल्ल बुद्ध के परि-निर्वाण को देख कर दुःख के सागर में डूब कर चीख उठे : "हमें छोड़ कर बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, हम निराश्रित और अरक्षित हो गए हैं। हम पर मानों विषैले बाण लग गए हैं, हम मानों दुःख की प्रचंड आग में तप रहे हैं।" वे वज्र त्याग कर मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद सुधि आने पर उन्होंने शोकाकुल हो कर दूसरों से कहा: "अब जीवन-मरण के सागर में हमें पार उतारने के लिए कौन नाव बनाएगा? अंधियारी रात में कौन दीपक जला कर हमें प्रकाशित करेगा?"

5. शाक्य के परिनिर्वाण और देवों की कथा

वज्रपाणि-शोकाकुलता-स्तूप के निकट एक स्तूप था जहां परिनिर्वाण के उपरांत बुद्ध की सप्ताह भर पूजा की गई थी। बुद्ध के परिनिर्वाण के समय चारों ओर प्रभा फैल गई तथा मनुष्य एवं देवतागण उपस्थित हुए। उन्होंने लोकसंतप्त हो कर एक दूसरे से कहा : "बोध के महात्मा का परिनिर्वाण हो रहा है। अब प्राणियों का धर्म-प्राप्ति का साधन समाप्त हो जाएगा और मनुष्य लोक निराश्रित बन जाएगा।" शय्या पर दायीं ओर लेटे तथागत ने उनसे कहा : "यह मत समझना कि तथागत का परिनिर्वाण हो रहा है। तथागत का धर्मकाय नाना परिवर्तनों से मुक्त हो कर अस्तित्व में बना ही रहेगा। तुम लोगों को म्लान नहीं होना चाहिए और शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने चाहिए।" भिक्षु शोक से विलाप करने लगे। तब अनिरुद्ध ने उन्हें रोकते हुए कहा : "रोओ मत, रोओ मत ! दुःखी न हो। अन्यथा देवतागण हमारी भर्त्सना करेंगे।" इतने में मल्लगण श्रद्धांजलियां अर्पित कर स्वर्ण शवपेटिका उठा कर निष्टपन स्थल की ओर ले जाने को उद्यत हुए। अनिरुद्ध ने उन्हें रोक दिया : "रुको ! देवतागण स्वर्ण शवपेटिका सुरक्षित रख कर सप्ताह भर पूजा करना चाहते हैं।" समस्त देवताओं ने हाथों में दिव्य पुष्प लिए आकाश में आते-जाते बुद्ध का यशगान किया और भक्ति से बुद्ध की पूजा की।

जिस स्थान पर स्वर्ण शवपेटिका रखी गई थी, उस स्थान के समीप एक स्तूप था, जहां महामायादेवी ने बुद्ध के परिनिर्वाण पर क्रंदन किया था। जब तथागत का पार्थिव शरीर शवपेटिका में रखा जा चुका था, तब अनिरुद्ध ने स्वर्ग में जा कर महामायादेवी को बताया : "महात्मा धर्मराज का परिनिर्वाण हो चुका है।" यह सुन कर महामायादेवी रो-रो कर मूर्च्छित हो गईं। वे देवतागण के साथ द्विशाल वृक्षों के बीच आईं। जब उन्होंने तथागत का कमंडलु, वस्त्र और लाठी देखी, तो वे उन पर हाथ फेरती हुई बिलख पड़ीं और बोलीं : "मनुष्य और देवों का सुख समाप्त हो गया है और इह लोक की ज्योति बुझ गई है। अब इन वस्तुओं का स्वामी नहीं रहेगा।" इस समय तथागत की दैविक शक्ति से स्वर्ण शवपेटिका का ढक्कन स्वयं ऊपर उठ गया और प्रभा फैल उठी। तथागत ने बैठ कर अपनी माता को हाथ जोड़े और उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए कहा : "आप बहुत दूर से यहां आई हैं। संस्कारों का ऐसा ही नियम है ! आशा है कि आप अब से दुःखी न होंगी !" आनन्द ने दुःखित मन से बुद्ध से प्रश्न किया : "यदि परवर्ती मुझसे इस संदर्भ में पूछेंगे, तो मैं उन्हें क्या बताऊंगा ?" बुद्ध ने कहा : "यह कह देना कि बुद्ध का परिनिर्वाण हो चुका था। उनकी दयालु माता महामायादेवी स्वर्ग से नीचे उतर कर द्विशाल वृक्षों के बीच आई थीं। तथागत स्वर्ण शवपेटिका से उठ बैठे और उन्होंने हाथ जोड़ कर सभी अयोग्य जीवों के लिए प्रवचन दिए थे।"

नगर के उत्तर में नदी के उस पार से तीन सौ कदम की दूरी पर एक स्तूप था जहां तथागत का दाह-संस्कार किया गया था। यहां की भूमि पीलापन लिए श्याम रंग की थी। मिट्टी में राख और अंगारों का मिश्रण था। श्रद्धा से पूजा करने पर संभवतः लोगों को बुद्ध की अस्थियां मिल सकती थीं। बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात मनुष्य और देवतागण बहुत दुःखी हुए थे। उन्होंने शवपेटिका को सप्त रत्नों से सजा दिया और बुद्ध के शव को कपड़ों की एक हजार परतों में लपेट दिया। धूपबत्तियां जलाई गईं और फूल बिखेरे गए। झंडियां फहराई गईं तथा मंडप लगाए गए। मल्लों ने शवपेटिका उठाए उत्तर में स्वर्ण नदी पार की। उनके पीछे अन्य लोगों का दल था। उन्होंने प्रचुर मात्रा में तिल का तेल उंड़ेल कर और चन्दन की लकड़ी का ढेर लगा कर आग लगा दी। कपड़ों की दो परतें नहीं जलीं: सबसे अन्दर की एक परत और सबसे बाहर की। अस्थियां बांटी गईं। केवल केश और नख अक्षत बने रहे।

निष्टपन स्थल के निकट एक स्तूप था जहां तथागत ने महाकाश्यप को अपने दोनों चरण दिखाए थे। तथागत की स्वर्ण शवपेटिका उतारी जा चुकी थी और चन्दन की लकड़ी का ढेर लगाया जा चुका था, पर आग लगाने पर भी नहीं लगी। सभी आश्चर्यचकित रह गए। अनिरुद्ध ने समझाया: "काश्यप के आने तक दाह-संस्कार नहीं हो सकता।" महाकाश्यप अपने पांच सौ शिष्यों सहित वन से कुशीनगर आए और उन्होंने आनन्द से पूछा: "क्या मैं भगवान के पार्थिव शरीर के दर्शन कर सकता हूं?" आनन्द बोले: "भगवान के शरीर को कपड़ों की एक हजार परतों से लपेट दिया जा चुका है और शवपेटिका में रखा भी जा चुका है। चन्दन की लकड़ी का ढेर लगा दिया गया है। अब शीघ्र ही निष्टपन होगा।" इसी क्षण बुद्ध ने शवपेटिका से अपने दोनों चरण निकाल दिए। चरणों पर एक विचित्र रंग दिखाई दिया। काश्यप ने आनन्द से प्रश्न किया: "यह रंग कैसे आया?" उत्तर मिला: "बुद्ध के परिनिर्वाण के समय मनुष्य और देवतागण ने शोकसंतप्त हो कर आंसू बहाए थे जिससे चरण इस विचित्र रंग से रंग गए थे।" काश्यप ने प्रणाम किए और स्वर्ण शवपेटिका की प्रदक्षिणा कर श्रद्धांजलि अर्पित की। तब चन्दन की लकड़ी स्वतः सुलग गई और आग भभकने लगी। अपने परिनिर्वाण के उपरांत तथागत ने तीन बार शवपेटिका में से दर्शन दिए। प्रथम बार उन्होंने हाथ बढ़ा कर आनन्द को मार्ग दिखाया। दूसरी बार उन्होंने बैठ कर अपनी माता को उपदेश दिए, और तीसरी बार महाकाश्यप को अपने दोनों चरण प्रदर्शित किए।

6. आठ राजाओं द्वारा बुद्ध की अस्थियों के विभाजन की कहानी

चरण-प्रदर्शन-स्थल के समीप उस स्थल पर एक अशोक स्तूप खड़ा था जहां आठ

राजाओं ने बुद्ध की अस्थियों का बंटवारा किया था। स्तूप के समक्ष खड़े एक स्तंभ पर इसका विवरण अंकित था। बुद्ध के परिनिर्वाण और दाह-संस्कार के उपरांत आठ राज्यों के राजा सेनाएं ले कर वहां आए। उनके द्वारा भेजे गए ब्राह्मण द्रोण ने कुशीनगर के मल्लों से कहा: "देवों और मनुष्य के आचार्य आप लोगों के राज्य में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं। सो हम दूर से यहां आ कर आप लोगों से उनकी अस्थियों का एक भाग देने का अनुरोध करते हैं।" मल्लों ने कहा: "तथागत ने हमारे यहां पदार्पण किया। अब मनुष्य लोक के आचार्य परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए हैं एवं सभी प्राणियों के करुणादायी पिता खो गए हैं। तथागत की अस्थियां हमें सुरक्षित रखनी चाहिएं। आप लोगों ने व्यर्थ ही दौड़-धूप की। आप लोगों को कुछ भी नहीं मिलेगा।" राजाओं ने जब देखा कि विनम्रता से प्रार्थना करने पर कुछ भी नहीं होगा, तो वे बोले: "यदि हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई, तो हम शस्त्र-बल का प्रयोग करेंगे।" ब्राह्मण द्रोण ने ऊंचे स्वर में कहा: "आप लोग तनिक विचार लें तो अच्छा हो। करुणानिधान भगवान दयाशील और सहनशील थे। उन्होंने पुण्य कर्म किए हैं और नाना विपत्तियां झेली हैं। यह सब आप जानते ही होंगे। शस्त्र-बल का प्रयोग करने की धमकी देना अनुचित है। अब बुद्ध की अस्थियां यहां विद्यमान हैं, तो उन्हें आठ समान भागों में बांट ही देना चाहिए। सभी राज्यों को उनकी पूजा करनी है। शस्त्र-बल का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता है?" उनकी बात मान कर मल्लों ने बुद्ध की अस्थियों को आठ भागों में बांटना चाहा। तब इंद्र ने राजाओं से कहा: "देवतागण को भी एक भाग प्राप्त होना चाहिए। शस्त्र-बल का सहारा नहीं लेना चाहिए।" अनवतप्त नागराज, मुचलिन्द नागराज और एलापत्र नागराज ने आपत्ति उठाई: "हमें नहीं भूलना चाहिए। यदि शस्त्र-बल से काम लेना है, तो हमारे सामने कोई टिक नहीं सकता!" ब्राह्मण द्रोण बोले: "झगड़ा बन्द करो। सब को एक-एक भाग मिलेगा!" इस प्रकार बुद्ध की अस्थियों को तीन भागों में बांटा गया। एक भाग देवतागण को मिला, दूसरा भाग नागराजों को प्राप्त हुआ और तीसरा भाग आठ राज्यों को आठ अंशों में विभाजित करने के लिए दे दिया गया। देवतागण, नागराज और राजा सभी गहरे प्रभावित हुए।

तीन. एक बड़े नगर में राहुल की कथा

बुद्ध की अस्थियां-विभाजन-स्तूप के दक्षिण से दो सौ ली की दूरी पर एक बड़ा नगर बसा हुआ था। वहां एक धनी ब्राह्मण रहते थे, लेकिन वे अन्य धनियों से स्पष्ट रूप से भिन्न थे। वे लगन से पंचविद्या का अध्ययन करते थे और त्रिरत्नों के प्रति श्रद्धा रखते थे। उन्होंने अपने निवास के समीप एक धर्मशाला स्थापित की। धर्मशाला शोभायमान और नाना रत्नों से सुसज्जित थी। जब भी कोई पथिक भिक्षु रास्ते में यहां

से गुजरता, तो उसे अवश्य एक रात या एक सप्ताह तक ठहरने के लिए विनीत भाव से आमंत्रण दिया जाता था और तन-मन से उसकी सेवा-सुश्रुषा की जाती थी। कालांतर में राजा शशांक द्वारा बौद्ध धर्म पर प्रतिबंध लगाए जाने के कारण आने-जाने वाले भिक्षु नहीं मिल पाते थे। ऐसे ही अनेक वर्ष व्यतीत हो गए। ये ब्राह्मण भिक्षुओं का प्रायः स्मरण करते रहते थे। एक बार जब वे टहल रहे थे, तो एक घनी भौंहों तथा श्वेत केशों वाला भिक्षु लाठी टेकते हुए इधर आता हुआ दिखाई दिया। ब्राह्मण ने तुरन्त आगे बढ़ कर उसका अभिवादन किया और पूछा कि वह किधर से आ रहा है और किधर जा रहा है। ब्राह्मण ने उसे धर्मशाला में ठहराया और उसके लिए नाना प्रकार के खाद्य-पदार्थ बनवाए। नाश्ते के समय ब्राह्मण ने ताजा दूध से खीर बना कर परोसी। उस भिक्षु ने एक ग्रास लेने के बाद ही कटोरा रख दिया और उसांस ली। यह देख कर पास ही खड़े ब्राह्मण ने तुरंत उनके पैरों पर पड़ कर पूछा : "महाभिक्षु, आप दयाशील हैं। आपने यहां आने का कष्ट उठाया है। क्या आपको रात में अच्छी तरह नींद नहीं आई ? या फिर खीर स्वादिष्ट नहीं बनी ?" भिक्षु ने दुःखित स्वर में कहा : "मैं प्राणियों के भाग्य-परिवर्तन पर खिन्न हूं। लेकिन छोड़ो इस बात को, पहले खीर समाप्त कर लूं फिर बात करूंगा।" खाने के बाद भिक्षु अपना चीवर उठा कर चलने को उद्यत हुए। ब्राह्मण ने कहा : "अभी आपने कुछ कहने का आश्वासन दिया था, अब उसे क्यों नहीं कहना चाहते ?" भिक्षु ने उनसे कहा : "मैं अपना आश्वासन भूल गया हूं ऐसी बात नहीं, किन्तु उसका स्पष्टीकरण अत्यन्त दुष्कर है, जरा सी चूक होने पर शंकाएं उत्पन्न होंगी। यदि आप जानना चाहते हैं, तो मैं संक्षेप में कहूंगा। मैंने अभी उसांस इसलिए नहीं ली थी कि मुझे आपकी खीर अच्छी नहीं लगी थी, बल्कि इसलिए कि गत सैकड़ों वर्षों से मैंने इसका स्वाद नहीं लिया था। जब तथागत जीवित थे, तब मैं बहुधा उनके साथ राजगृह में वेणुवन विहार में बहते हुए निर्मल जल में बर्तन धोता था, अथवा हाथ-मुंह धोता या स्नान करता था। उंह, अब तो बढ़िया से बढ़िया दूध भी पुराने युग के पानी की अपेक्षा घटिया है। इसका कारण यह है कि देवों और मनुष्यों का भाग्य उलटता जा रहा है।" ब्राह्मण ने पूछा : "तो आपने अपनी आंखों से बुद्ध के दर्शन किए थे ?" भिक्षु ने उत्तर दिया : "हां। आपने बुद्ध के पुत्र राहुल का नाम कभी सुना होगा ? मैं ही राहुल हूं। सद्धर्म की रक्षा के लिए ही मेरा निर्वाण नहीं हुआ है।" यह कह कर भिक्षु सहसा अदृश्य हो गए। ब्राह्मण ने जिस कोठी में वे ठहरे थे, उसे लेप लगा कर परिष्कृत रखा, श्रद्धा से उनका चित्र लटकाया एवं उनकी उसी प्रकार पूजा करते रहे, जिस प्रकार वे यहां थे तब की थी।

यहां से वन में पांच सौ ली दूर यात्रा करने पर मैं वाराणसी में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

खण्ड सात

वाराणसी

वाराणसी राज्य की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। राजधानी गंगा के पश्चिमी तट पर स्थित थी। इसकी लम्बाई अट्ठारह-उन्नीस ली और चौड़ाई पांच-छः ली थी। मुहल्लों में भवन एक दूसरे से सटे हुए थे। निवासी संपन्न थे। उनके घरों में बहुमूल्य वस्तुओं के भंडार थे। वे सुशील और शिष्ट थे एवं शिल्प एवं कलाएं सीखने में उत्साही थे। अधिकांश लोग विधर्मी थे, केवल अल्पसंख्यक लोग ही बौद्ध धर्म मानते थे। जलवायु समशीतोष्ण थी। फसलों की भरपूर पैदावार होती थी। नाना प्रकार के फलों के वृक्ष उपलब्ध थे और चारों ओर वृक्ष ही वृक्ष दिखाई पड़ते थे। यहां तीसेक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या तीन हजार से अधिक थी। वे सभी सम्मतीय थे। देव-मंदिरों की संख्या सौ से अधिक थी और उनके अनुयायियों की संख्या दस हजार। उनमें से अधिकतर शिव-भक्त थे। किसी का सिर मुंड़ा हुआ था तो कोई जटा रखता था। वे निर्वस्त्र रहते थे और शरीर पर राख पुती रहती थी। वे तपस्या में लीन रहते थे, ताकि मोक्ष प्राप्त किया जा सके।

राजधानी में बीसेक देव-मंदिर थे। वे सभी चबूतरों पर तराशे गए पत्थरों तथा अलंकृत लकड़ियों से बने थे। वृक्षों के झुरमुटों में छाया रहती थी और स्वच्छ जलधाराएं एक दूसरे को काटती देखी जा सकती थीं। एक ताम्र देव-प्रतिमा लगभग सौ छि ऊंची थी। गंभीर और तेजस्वी मुद्रा में यह देव-प्रतिमा सजीव सी लगती थी।

राजधानी के उत्तर-पूर्व में वरणा नदी के पश्चिम की ओर सौ छि ऊंचा एक अशोक स्तूप था। स्तूप के समक्ष एक शीशे की भांति चमकदार और चिकना प्रस्तर स्तंभ था, उसमें तथागत की आकृति दृष्टिगोचर होती रहती थी।

एक. मृग-दाव

वरणा नदी से दसेक ली दूर उत्तर-पूर्व में मृग-दाव था, जो आठ भागों में विभाजित था और जिसके चारों ओर प्राचीर निर्मित था। सुनियोजित रूप से पंक्तियों में निर्मित मंडप

ग्रौर भवन ग्रत्यंत भव्य प्रतीत होते थे। यहां डेढ़ हजार भिक्षु थे। वे सभी सम्मतीय शाखा के थे। प्राचीर के ग्रंदर दो सौ छि ऊंचा एक चैत्य था। उसके शिखर पर ग्राम्र की उभरी हुई स्वर्ण ग्राकृति सुशोभित थी। चबूतरा ग्रौर सीढ़ियां पत्थर के थे। चैत्य के बाह्य भाग पर चारों ग्रोर पक्की ईंटों से बने ग्राले थे ग्रौर उनकी एक सौ पंक्तियां थीं। प्रत्येक ग्राले में बुद्ध की एक उभरवां स्वर्ण ग्राकृति थी। चैत्य के भीतर एक ग्रादमकद ताम्र बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। वह धर्मचक्र प्रवर्तन की मुद्रा में थी।

चैत्य के दक्षिण-पश्चिम में एक प्रस्तर स्तूप था, जो ग्रशोक ने बनवाया था। उसकी नींव तो ढह चुकी थी, फिर भी उसकी ऊंचाई सौ छि थी। स्तूप के सामने एक सत्तर छि ऊंचा प्रस्तर स्तंभ था, जो श्वेत वज्रमणि की भांति चिकना एवं चमकीला था। श्रद्धा से प्रार्थना करने पर उसमें विभिन्न प्राणियों के चित्र ग्रौर कभी-कभी शुभाशुभ के लक्षण भी देखे जा सकते थे। यहीं पर बुद्ध ने संबोधि-प्राप्ति के ग्रनंतर प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

उससे कुछ दूरी पर एक स्तूप था। वह ऐसे स्थल पर बनाया गया था, जहां ग्रज्ञातकौंडिन्य ग्रादि पंचवर्गीय परिव्राजकों ने तपस्या की थी। यह देख कर कि बुद्ध ने तपस्या का परित्याग कर दिया है, वे उन्हें छोड़ कर यहां चले ग्राए थे।

इस स्तूप के समीप एक ग्रौर स्तूप था, जहां पांच सौ प्रत्येक बुद्धों का एक साथ निर्वाण हुग्रा था। वहां ग्रौर तीन स्तूप भी थे, जहां तीन भूत बुद्धों के ग्रासनों ग्रौर चंक्रमण के ग्रवशेष थे।

1. मैत्रेय तथा प्रभापाल-सिद्ध-ग्रादेश-प्राप्ति-स्तूप

तीन भूत बुद्धों के चंक्रमण के ग्रवशेषों के निकट एक स्तूप था, जहां मैत्रेय को बुद्ध का सिद्ध ग्रादेश पा कर बुद्धत्व प्राप्त हुग्रा था। एक बार तथागत ने राजगृह के गृध्रकूट पर भिक्षुग्रों से कहा : "भविष्य में जब मनुष्य की ग्रायु ग्रस्सी हजार वर्ष की होगी, तब जम्बूद्वीप की समतल भूमि पर एक ब्राह्मण को मैत्रेय नामक सुपुत्र उत्पन्न होगा। उसका तन स्वर्णिम होगा ग्रौर प्रकाशमय भी। उसे प्रव्रज्या कर संबोधि प्राप्त होगी। वह प्राणियों के लिए तीन सभाग्रों में प्रवचन देगा। जिनका वह उद्धार करेगा, उनके मन में मेरा धर्म घर कर गया होगा। त्रिरत्न की ध्यान से पूजा करने वालों को, चाहे वे गृहस्थ हों या प्रव्राजक, चाहे वे शील का पालन करें ग्रथवा उसका उल्लघन करें, सभी को उपदेश मिलेंगे, ग्रर्हत्व ग्रौर मोक्ष प्राप्त होगा। तीन सभाग्रों में वह सर्वप्रथम मेरे धर्म के ग्रनुयायियों को उपसंपन्न करेगा, फिर उन मित्रों को, जिनके भाग्य में यह लिखा होगा।" बुद्ध का यह प्रवचन सुन कर मैत्रेय

ने अपने आसन से उठ कर बुद्ध से कहा : "मैं वही भगवत मैत्रेय बनना चाहता हूं।" तथागत बोले : "यदि तुम यही कहते हो तो तुम अवश्य बुद्धत्व प्राप्त करोगे। अभी मैंने जो कुछ कहा है, वही तुम करोगे।"

मैत्रेय-सिद्ध-आदेश-प्राप्ति-स्तूप के पश्चिम में उस स्थल पर एक स्तूप था जहां बोधिसत्व शाक्य को सिद्ध आदेश प्राप्त हुआ था। भद्रकल्प में जब मनुष्य की आयु बीस हजार वर्ष की थी, तब काश्यप बुद्ध मनुष्य लोक में प्रकट हुए। उन्होंने धर्मचक्र प्रवर्तन किया और सभी प्राणियों को उपदेश दिया। उन्होंने प्रभापाल बोधिसत्व के समक्ष यह सिद्ध आदेश दिया : "भविष्य में जब सभी प्राणियों की आयु सौ वर्ष की होगी, तब इस बोधिसत्व को अवश्य बुद्धत्व प्राप्त होगा और इसका नाम होगा शाक्य मुनि।"

शाक्य-बोधिसत्व-सिद्ध-आदेश-प्राप्ति-स्तूप से कुछ दूर दक्षिण में चार भूत बुद्धों के चंक्रमण के अवशेष थे। वह एक पचास कदम लम्बा और सात छि ऊंचा चबूतरा था जो कालापन लिए नीले पत्थरों से बनाया गया था। उस पर चंक्रमण करते हुए तथागत की प्रतिमा स्थापित थी। उनका रूप अद्‌भुत था और मुद्रा गांभीर्यपूर्ण तथा तेजस्वी थी। उष्णीष के नीचे से छोटे-छोटे बाल निकले हुए दिखाई देते थे। यह विस्मयकारी आकृति और उसके चमत्कार के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे। प्राचीर के भीतर अनेक तीर्थस्थान थे। विहारों एवं स्तूपों की संख्या कई सौ थी। मैंने केवल दो-तीन स्थलों का उल्लेख किया है। विस्तृत रूप से बताना असंभव है।

2. तीन नाग कुंड और शाक्य संबंधी अवशेष

संघाराम के प्राचीर के पश्चिम में एक कुंड था जिसकी परिधि दो सौ कदम थी। इस कुंड में तथागत स्नान करते थे। इस कुंड के पश्चिम में एक ऐसा कुंड भी था, जिसकी परिधि एक सौ अस्सी कदम थी। इस कुंड में तथागत अपना पात्र मांजते थे। इसके उत्तर में एक और कुंड था। उसकी परिधि डेढ़ सौ कदम थी। उसमें तथागत चीवर धोते थे। इन तीनों कुंडों में नाग निवास करते थे। कुंडों का जल गहरा, मीठा और निर्मल था, जो न बढ़ता था न घटता था। यदि कोई अनादर से इन कुंडों में बर्तन धोने लगता, तो कुंभीर उस पर झपट पड़ता था। यदि कोई आदर-भाव से धोने आता, तो उसे भय की आवश्यकता नहीं होती थी। चीवर-कुंड के तट पर एक चौकोर पत्थर पर तथागत के चीवर की आकृति बनी थी। चीवर की रेखाएं इतनी स्पष्ट दिखाई देती थीं मानों खोदी गई हों। बहुत से भक्त यहां आ कर इसकी पूजा करते थे। यदि कोई दुष्ट विधर्मी इस पत्थर को पैरों तले रौंद देता, तो कुंडों में रहने वाले नागराज प्रकट हो कर अंधड़ उठा देते थे।

3. हस्तिराज, पक्षी-राज तथा मृगराज की जातक कथाएं

इन तीन कुंडों के समीप एक स्तूप था, जहां तथागत ने बोधिसत्व-प्राप्ति हेतु साधना करते समय एक षडदंत हस्तिराज का रूप धारण किया था। तब एक शिकारी हाथी के दांत प्राप्त करने के लिए भिक्षु के छद्मवेश में धनुष ताने हाथी का शिकार करने की ताक में बैठ गया। हस्तिराज ने उसके चीवर का समादर करने के विचार से अपने दांत स्वयं उखाड़कर उस शिकारी को दे दिए।

दंत-उच्छेदन-स्तूप के निकट ऐसे स्थल पर एक स्तूप था, जहां बोधिसत्व-प्राप्ति हेतु साधना करते समय तथागत ने संसारियों के अशिष्टाचार पर तरस खा कर एक पक्षी का रूप धारण किया था और एक वानर एवं श्वेत हाथी के साथ परस्पर यह आश्वासन दिया था कि जो भी पहले न्यग्रोध वृक्ष देखेगा, वही पहले अपनी कहानी सुनाएगा। तीनों ने बारी-बारी से अपनी कहानियां सुनाईं और फिर कहानियों को वरीयता के अनुसार वर्गीकृत किया गया। इस प्रकार दूर और निकट के लोगों को ऊंच-नीच एवं छोटे-बड़े के संदर्भ में शिक्षा दी गई और उन्हें सद्धर्म में दीक्षित होने के लिए प्रेरित किया गया।

इस स्थल से कुछ दूरी पर एक वन में एक स्तूप खड़ा था, जहां तथागत और देवदत्त दोनों ने मृग-राजाओं के रूप में काम किया था। भूत काल में इस विराट वन में मृगों के दो झुंड थे। प्रत्येक झुंड में पांच सौ मृग थे। राजा आखेट के लिए निकले। तथागत मृग-राज ने राजा के सामने आ कर प्रार्थना की : "आप वन में आखेट के लिए आए हैं और आपने अपने सैनिकों को बाण चलाने का आदेश दिया है। इस प्रकार मेरी सम्पूर्ण मृग-प्रजा आज ही मारी जाएगी! कुछ ही दिनों बाद उनकी लाशें सड़ जाएंगी और तब आप को खाने को कुछ नहीं मिलेगा। मैंने प्रत्येक दिन आप के हाथ एक मृग सौंपने का निश्चय कर लिया है जिससे आप अच्छा मांस खा सकेंगे और हम भी अपना जीवन लम्बा खींच सकेंगे।" राजा उनकी बात मान कर अपने सैनिकों सहित वापस चले गए। मृगों के दो झुंड प्रत्येक दिन बारी-बारी से एक मृग देने लगे। देवदत्त के मृगों के झुंड में एक गर्भवती मृगी थी, जिसकी अब मरने की बारी आई। उसने मृगराज देवदत्त से कहा : "यद्यपि मुझे तो मरना है ही, तथापि मेरे बच्चे को तो नहीं मरना चाहिए।" मृगराज ने क्रोधित हो कर फटकारा : "कौन अपने प्राणों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं समझता?" मृगी आह भर कर बोली : "हमारे मृगराज दयाशील नहीं हैं। हम सबके सब शीघ्र ही अकाल मर जाएंगे!" तब वह मृगराज तथागत के सम्मुख जा कर गिड़गिड़ाई। तथागत मृगराज ने कहा : "कितनी त्रासद है यह बात! एक मां की ममता अभी रूप भी धारण न कर पाए बच्चे पर भी पड़ती है! तुम्हारी जगह मैं जाऊंगा!" यह कह कर वे राजा के प्रासाद की ओर बढ़े। रास्ते में लोग आपस में बतियाते रहे : "आज ये मृगराज नगर में आए हैं!" सारे नगर के लोग उनके

दर्शनार्थ बाहर निकले। यह संवाद पा कर राजा को पहले तो विश्वास नहीं आया। बाद में जब द्वारपाल ने अन्दर आ कर सारी बात बताई, तब उन्हें विश्वास आया। उन्होंने पूछा: "मृगराज, आप स्वयं क्यों चले आए?" मृगराज बोले: "आज एक मृगी के मरने की बारी आई है। पर उसकी कोख में एक बच्चा है। मुझे उस पर तरस आ गया, सो उसकी जगह मैं आपके सामने उपस्थित हूं।" यह सुन कर राजा भावविभोर हो उठे: "मैं मनुष्य हूं, लेकिन मृग की भांति व्यवहार करता हूं। तुम मृग हो, पर मनुष्य जैसा व्यवहार करते हो।" उन्होंने सभी मृगों को मुक्त कर बारी-बारी से मृग दिए जाने की बात रद्द कर दी एवं इस वन को मृगों के निवास के लिए दे दिया। इसलिए इस वन का नाम पड़ा मृग-दान-वन। मृग-दाव का नाम इसी प्रकार पड़ा।

4. जहां अज्ञातकौंडिन्य आदि पंचवर्गीय परिव्राजकों ने बुद्ध का स्वागत किया था

संघाराम से दो-तीन ली दूर दक्षिण-पश्चिम में तीन सौ छि ऊंचा एक स्तूप था। स्तूप का आधार ऊंचा भी था और बड़ा भी। वह नाना प्रकार के अमूल्य रत्नों एवं मणियों से सज्जित था। ढूह पर आलों की पंक्तियां नहीं थीं। ढूह का आकार उल्टे हुए कटोरे का था। कलश तो था, पर चक्र और घंटियां नहीं थे। उसके समीप एक और छोटा स्तूप था, जहां अज्ञातकौंडिन्य ने अपना वचन तोड़ कर बुद्ध का स्वागत किया था। उस समय राजकुमार सर्वार्थसिद्ध ने नगर का प्राचीर लांघ कर एक घाटी में प्रव्रज्या ली और सद्धर्म के लिए सब कुछ त्याग दिया। राजा शुद्धोदन ने अपने वंश के तीन व्यक्तियों और ननिहाल के दो व्यक्तियों को आदेश दिया: "मेरे पुत्र सर्वार्थसिद्ध ने प्रव्रज्या ली है और वह पर्वतों और वनों में एकांतवास कर रहा है। अतएव मैं तुम लोगों को उसका साथ देने का आदेश देता हूं। कहने को तुम लोग उसके चाचा और मामा हो, किन्तु वास्तव में तुम लोगों और उसके बीच मंत्री और राजा के मध्य का संबंध होगा। तुम लोग अवश्य ही जानते होगे कि क्या करना चाहिए।" ये पांचों व्यक्ति राजा का आदेश पा कर राजकुमार की सेवा और रक्षा करने लगे। साथ ही वे भी मोक्ष-प्राप्ति के उपाय खोजने में लीन रहते थे। वे परस्पर इस समस्या पर तर्क-वितर्क किया करते थे कि तपस्या से मोक्ष प्राप्त हो सकेगा अथवा सुख-सुविधाओं से? दो व्यक्तियों ने कहा: "सुख-सुविधाओं से।" अन्य तीन बोले: "तपस्या से।" वे अपने-अपने मतों पर दृढ़ रहे और सत्य-असत्य का निश्चय न कर सके। सत्य की खोज में राजकुमार ने अन्य तपस्वियों को मनवाने हेतु सन और चावल की इतनी बचत की कि केवल जीवन की रक्षा हो सके। यह देख कर दो व्यक्तियों ने कहा: "राजकुमार की ऐसी तपस्या कोई सच्चा समाधान नहीं है। सुख-सुविधाओं में ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

अब वे इतना कठोर और कष्टदायक आचरण कर रहे हैं कि वे हमारे साथी नहीं रहे।" वे राजकुमार को छोड़ कर मोक्ष-प्राप्ति की खोज में दूर चले गए। राजकुमार ने छः वर्षों तक घोर तपस्या की, फिर भी उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं हो पाया। यह सोच कर कि तपस्या से कोई फल नहीं निकल सकता, राजकुमार ने खीर ले ली और अन्त में बोध प्राप्त किया। यह जान कर तीन व्यक्तियों ने आह भर कर कहा : "राजकुमार को तपस्या करते-करते मोक्ष प्राप्त होने को ही था कि वे अपना विचार बदल कर तपोभ्रष्ट हो गए! हाय, छः वर्षों की तपस्या एक ही दिन में व्यर्थ हो गई!" तीन व्यक्ति अपने दो साथियों की खोज में चल निकले। पांचों व्यक्ति मिल गए और बैठ कर बातचीत करने लगे। तीन व्यक्तियों ने कहा : "अतीत में राजकुमार सर्वार्थसिद्ध प्रासाद से निकल कर वीरान घाटी में आए। उन्होंने राजसी वस्त्र त्याग कर हिरण की खाल ओढ़ ली एवं शांति व मोक्ष की प्राप्ति के लिए घोर तपस्या की। लेकिन अब उन्होंने गोपा से खीर ले ली। उनकी तपस्या भंग हुई। जब हम यह जान पाए, तब तक कुछ भी करने में असमर्थ हो चुके थे।" उन दो व्यक्तियों ने कहा : "तुम लोगों का भी क्या कहना। इतनी देर से यह जान पाए। वह तो एक सनकी मात्र है। वह प्रासाद में रहता था। उसे सब सुख-सुविधाएं उपलब्ध थीं। मगर उसे शांति नहीं मिल सकी और वह इतनी दूर वन में चला आया। चक्रवर्ती राजा का सिंहासन त्याग कर नीच लोगों की तरह रहने लगा। उसका स्मरण करने की क्या आवश्यकता है? उसकी चर्चा करने से केवल दुःख ही होता है।" बुद्ध को नैरंजना में स्नान करके बोधि वृक्ष के नीचे संबोधि प्राप्त हुई और शास्ता देवमनुष्याणाम की उपाधि मिली। तब उन्होंने चुप रह कर पर्येषणा और विचार किया कि कौन दीक्षित हो सकता है। उन्होंने कहा : "उद्ररामपुत्र को नैवसंज्ञानासंज्ञायतन समापत्ति हुई है। उन्हें धर्मोपदेश दिए जा सकते हैं।" इतने में देवों ने बताया : "उद्ररामपुत्र को मरे एक सप्ताह हो गया।" तथागत ने निःश्वास ले कर कहा : "कितने खेद की बात है! वे सद्धर्म में दीक्षित होने ही वाले थे कि अचानक उनकी मृत्यु हो गई।" उन्होंने मनुष्य लोक में फिर पर्येषणा आरंभ की। उन्होंने पाया कि आराड़कालाम नामक एक व्यक्ति को अकिंचन्यायतन समाधि हो चुकी है। उन्हें सत्यज्ञान की दीक्षा दी जा सकती है। ऐसे में देवों ने फिर घोषणा की : "उन्हें भी मरे हुए पांच दिन व्यतीत हो चुके हैं।" तथागत ने पुनः निःश्वास लिया और उसके दुर्भाग्य पर तरस खाया। तथागत ने अपनी पर्येषणा पुनः आरंभ की कि किसे धर्मोपदेश दिया जाए। दीक्षा के लिए केवल वे पंचवर्गीय परिव्राजक ही रह गए थे, जो इस समय मृगदाव में थे। तथागत बोधि वृक्ष के नीचे से उठ खड़े हुए और मृग-दाव की ओर चल पड़े। उनकी मुद्रा गंभीर और शांत थी। उनके शरीर से दिव्य प्रकाश फैल रहा था। उनके केश अमूल्य पत्थरों की भांति कांतिमान थे। उनका पूरा शरीर स्वर्ण वर्ण का हो गया था। वे पंचवर्गीय परिव्राजकों को दीक्षा देने हेतु बड़ी शांतिपूर्वक आगे बढ़ते चले गए। उन्हें दूर से

आते देख कर इन पांच परिव्राजकों ने एक दूसरे से कहा : "जो इधर आ रहा है, वह तो राजकुमार सर्वार्थसिद्ध ही है। इतने वर्ष व्यतीत हो गए किन्तु उन्हें धर्मत्व प्राप्त न हो सका। ज्ञानप्राप्ति से निराश हो कर वे अब हम से मिलने आ रहे हैं। हमें मौन रहना चाहिए और खड़े हो कर उनका अभिवादन नहीं करना चाहिए।" तथागत समीप आते चले गए। उनकी दिव्य भाव-भंगिमा से सभी जीव प्रभावित हो उठे। पंचवर्गीय परिव्राजक भी अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर न रह कर उठ खड़े हुए और उनका अभिवादन किया और प्रथा के अनुसार उनके दायें-बायें खड़े हो गए। तथागत ने उन्हें उपदेश देकर सद्धर्म में दीक्षित किया। वर्षावास की समाप्ति पर ही उन्हें अर्हत्व प्राप्त हुआ।

दो. वीर-कुंड

मृग-दाव से दो-तीन ली दूर पूर्व में एक स्तूप था और स्तूप के समीप एक सूखा कुंड था। कुंड की परिधि अस्सी कदमों से अधिक थी। इस कुंड का एक नाम "प्राण रक्षा कुंड" था और दूसरा था "वीर-कुंड"। प्राचीन अभिलेखों के अनुसार सैकड़ों वर्ष पूर्व एक संन्यासी इस कुंड के तट पर एक कुटी बना कर उसमें एकांतवास करते थे। वे अलौकिक कृत्यों और माया का अध्ययन कर टूटी हुई ईंटों को रत्नों में बदलने तथा मनुष्य व पशु से एक दूसरे का रूप धारण कराने में समर्थ थे। फिर भी वे वायु और वर्षा पर नियंत्रण करने और देवों के पास रहने में समर्थ नहीं हो सके थे। उन्होंने प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन कर देव बनने का उपाय खोजने का प्रयास किया। उपाय यह था कि "देव बनना चिरजीवन-प्राप्ति का एक कृत्य है। यह कृत्य सीखने के लिए सर्वप्रथम संकल्प करना चाहिए और एक ऐसा चबूतरा बनाना चाहिए जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक चाङ से अधिक हो। यह आवश्यक है कि एक शूरवीर छुरा पकड़े चबूतरे के कोने पर खड़ा हो जाए। उसे बोलना कदापि मना कर दिया जाना चाहिए और उसे संध्या से सबेरे तक योंही खड़ा रहना चाहिए। जो व्यक्ति देव बनना चाहता है, उसे चबूतरे के बीचोंबीच बैठ कर छुरे पर हाथ रखना चाहिए, मंत्र पढ़ना चाहिए और अन्य किसी ओर देखना-सुनना नहीं चाहिए। इस प्रकार करने से वह पौ फटने तक देव बन सकता है। तब उसके हाथ का छुरा तलवार में बदल जाएगा और वह स्वयं उड़ कर आकाश में चला जाएगा और देवों का राजा बन जाएगा। वह तलवार उठाए जो भी आदेश देगा, उसका पालन किया जाएगा एवं वह जो चाहेगा, उसे मिल जाएगा। उसे न ज़रा होगी, न वह जीर्ण होगा, वह न व्याधिग्रस्त होगा, न कभी मरेगा।" जब सन्यासी यह उपाय जान गया, तब एक वीर की खोज में बाहर निकला। उसने एक वर्ष तक खोज की, किन्तु उसका मनोरथ पूरा न हो पाया। अंत में उसे नगर में एक ऐसा व्यक्ति मिल ही गया जो रास्ते में रो रहा था। सन्यासी उसका रंग-रूप देख कर प्रसन्न

हुआ। उसने आगे बढ़ कर उस व्यक्ति से पूछा : "तुम किस लिए इतने दुःखी हो?" वह व्यक्ति बोला : "दरिद्रता के कारण मैं शारीरिक श्रम कर अपना जीवन निर्वाह करता था। स्वामी मुझे अच्छी तरह जानता था और मुझ पर भरोसा भी करता था। उसने मुझे यह आश्वासन दिया था कि पांच वर्ष पूरे हो जाने पर मुझे भारी पारिश्रमिक दिया जाएगा। मैं सभी तरह के कष्ट और कठोरता सह, श्रम करता रहा। जब पांच वर्ष पूरे होने को ही थे, मुझ से एक चूक हो गई। स्वामी ने मुझे मारा-पीटा और मुझे कुछ भी न मिला। इसलिए मैं बहुत दुःखी हूं। मुझ पर कौन तरस खाएगा?" उसकी कहानी सुन कर सन्यासी उसे कुटी में ले आया। सन्यासी ने अपनी अलौकिक शक्ति के सहारे भोजन बना कर उसे खिलाया। फिर उससे कुंड में नहा कर नया वस्त्र पहनने को कहा। सन्यासी ने उसे पांच सौ स्वर्ण सिक्के भी दिए और कहा : "इन्हें व्यय कर चुकने पर मुझसे और ले लेना, अपने को पराया न समझो।" इसके अनंतर सन्यासी ने उसे चुपचाप अधिकाधिक धन दे कर उपकार किया ताकि वह कृतज्ञता के बोझ से दब जाए। वीर ने कई बार उपकार का बदला चुकाने के लिए सन्यासी से कुछ सेवा करने की प्रार्थना की। सन्यासी बोला : "मैं एक वर्ष तक एक वीर की तलाश करता रहा था और आज ही आप से मिलने का मेरा अहोभाग्य हुआ। आपका अद्भुत रंग-रूप चित्र पर अंकित आकृति से पूर्णतया एक सा है। आपसे मेरा केवल यही अनुरोध है कि आप सारी रात कुछ न बोलें। इससे अधिक मैं आपसे और कुछ नहीं मांगता।" वीर ने कहा : "यदि आप मुझसे मरने को कहें, तो भी मैं नहीं हिच-किचाऊंगा। कुछ न बोलना क्या बड़ी बात है?" तब सन्यासी ने चबूतरा बनाया और देव बनने हेतु सभी कर्म आरंभ किए एवं बताए हुए उपाय के अनुसार शाम की प्रतीक्षा करने लगा। जब शाम हुई, तब दोनों ने अपना-अपना दायित्व संभाल लिया – सन्यासी ने मंत्र कंठस्थ किए और वीर छुरा लिए खड़ा रहा। पौ फटने के समय वीर सहसा चिल्ला उठा। देखते-देखते आकाश से आग का एक गोला नीचे गिरा और आग और धुआं तुरन्त बादलों की भांति उठ कर वातावरण में व्याप्त हो गए। आपत्ति से बचने हेतु सन्यासी हड़बड़ा कर वीर को कुंड में ले गया। इसके पश्चात् सन्यासी ने वीर से प्रश्न किया : "मैंने तुम्हें कुछ न बोलने के लिए चेताया था। तुम सहसा क्यों चिल्ला उठे?" वीर ने उत्तर दिया : "आपका आदेश पाने के बाद मैं आधी रात में जैसे सपना देखने लगा जिसमें मैंने अनेक विचित्र बातें देखीं – मैंने देखा कि मेरे भूतपूर्व स्वामी ने स्वयं आ कर मेरा अभिवादन किया और आभार प्रकट किया। उस समय मैंने आपके उपकार का स्मरण किया और संभल कर कुछ भी न कहा। वह क्रुद्ध हो उठा और उसने मेरा वध कर डाला। मरण और पुनर्जन्म के समय मैंने अपने पार्थिव शरीर पर दृष्टि डाल कर आह भरी और यह आशा भी की कि अगले जन्मों में मैं मौनव्रत रखूंगा, जिससे आपके महान उपकार का बदला चुका सकूं। मैंने दक्षिण भारत के एक बड़े ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। कोख में रहने और उससे

निकलने में नाना कष्ट झेलने पड़े, लेकिन आपकी भलाई का स्मरण कर मेरे मुंह से एक भी शब्द न निकला। बाद में विद्या सीखने, वयस्क होने, विवाह करने, मां-बाप का स्वर्गवास होने एवं बच्चे के जन्म के समय भी आपके उपकार का स्मरण करता रहता था और चुप रह जाता था। यह देख कर सभी सगे-संबंधियों को आश्चर्य होता था। जब मैं पैंसठ वर्ष का हुआ, तब मेरी पत्नी ने मुझसे कहा, 'अब तुम्हें बोलना होगा। यदि अब भी चुप्पी साधे रहोगे, तो मैं तुम्हारे बेटे का वध कर डालूंगी!' मैंने सोचा कि बात तो पिछले जन्म की है और मैं जीर्ण भी हो चुका हूं। फिर, मेरे यही एक पुत्र है, इसलिए मैंने अपनी पत्नी को रोका और इस प्रकार अपना मौन तोड़ डाला।" सन्यासी बोला: "यह मेरा दोष है। राक्षस ने ही इसमें अड़चनें डाली हैं।" वीर उसके उपकार के बोझ से दबा तो था ही और फिर काम बिगाड़ने पर उसे पश्चाताप भी हो रहा था। वह घुट कर मर गया। इसलिए इस कुंड का नाम "प्राण-रक्षा कुंड" पड़ा क्योंकि यहां भीषण अग्नि रोक दी गई थी। इसका और एक नाम "वीर-कुंड" इसलिए पड़ा क्योंकि वीर उपकार का बदला न चुका पाने के कारण मर गया था।

तीन. त्रिपशु स्तूप

वीर-कुंड के पश्चिम में त्रिपशु स्तूप था, जहां तथागत ने बोधिसत्व-प्राप्ति के लिए साधना करते समय आत्मदाह किया था। इस कल्प के आरंभ में इस वन में लोमड़ी, शशक और वानर परस्पर हेल-मेल से रहते थे। इंद्र ने बोधिसत्व-प्राप्ति के लिए साधना करने वाले पशु की परीक्षा लेनी चाही। एक बूढ़े के रूप में प्रकट हो कर उन्होंने तीनों पशुओं से कहा: "तुम तीनों सुरक्षित तो हो न? तुम्हें कोई भय तो नहीं है?" तीनों पशु बोले: "हम बढ़िया घास चरते हैं और वन में क्रीड़ा करते हैं। भिन्न जातियों के होने पर भी हम घुल-मिलकर सुख-चैन से रहते हैं।" बूढ़े ने कहा: "सुना है कि तुम तीनों के बीच बहुत हेल-मेल है, सो आयु के अंतर की उपेक्षा कर मैं तुमसे मिलने आया हूं। अब मुझे भूख लग रही है, तुम मुझे क्या खिलाओगे?" उत्तर मिला: "आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करें, हम अभी खाने की वस्तु ले आएंगे।" यह कह कर तीनों पशु एक ही उद्देश्य से निकले और अलग-अलग मार्गों से खाद्य-पदार्थ खोजने गए। लोमड़ी ने एक मछली पकड़ी और वानर ने वन में अनोखे फूल व फल तोड़े। दोनों ने ये वस्तुएं बूढ़े के समक्ष उपस्थित कीं। केवल शशक विफल लौटा और दाएं-बाएं उछलता रहा। बूढ़े ने कहा: "मेरे विचार में तुम तीनों के बीच मित्रता नहीं है। वानर और लोमड़ी ने अपने एक ही वचन के पालन के लिए तन-मन से काम किया है। केवल शशक मेरे लिए कुछ भी नहीं लाया। इससे देखा जा सकता है कि तुम लोगों में समानता नहीं है।" यह चुभती बात सुन कर शशक ने वानर

एवं लोमड़ी से कहा : "अधिक से अधिक लकड़ी बीन लाओ, मैं कुछ कर दिखाना चाहता हूं।" लोमड़ी और वानर ने घास और लकड़ी उठा लाने में होड़ सी लगाई। देखते ही देखते लकड़ी का एक ऊंचा ढेर लग गया। उसमें आग लगाई गई। जब आग भभक उठी, तब शशक ने कहा : "ओ, दयालु, मैं अति तुच्छ प्राणी हूं। मैं आपकी मांग पूरी न कर सका। अब मैं अपनी इस दुर्बल काया को आपके आहार के लिए अर्पित करता हूं।" यह कह कर शशक अग्नि में कूद पड़ा और शीघ्र ही ज़ल मरा। तब बूढ़ा अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ और राख में से अस्थियां एकत्रित करने लगा। वह देर तक स्तंभित सा बना रहा। फिर लोमड़ी और वानर से बोला : "बात यहां तक बढ़ गई ! मैं बहुत प्रभावित हूं। इस घटना को न भूला जाए, इसलिए मैं इसे चन्द्रमा पर रख देता हूं, ताकि परवर्ती पीढ़ियां यह कथा जान सकें।" लोगों का कहना है कि तभी से चन्द्रमा पर शशक दिखाई देने लगा है। परवर्ती लोगों ने यहीं पर यह स्तूप बनाया।

यहां से गंगा के साथ-साथ पूर्व में तीन सौ ली चलने के बाद मैं गर्जनपतिपुर पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में अवस्थित था)।

गर्जनपतिपुर

गर्जनपतिपुर की परिधि दो हजार ली से अधिक थी। इसकी राजधानी गंगा के तट पर अवस्थित थी और उसकी परिधि दसेक ली थी। प्रजा संपन्न और सुखी थी। मकानों का क्रम असमाप्त सा लगता था। भूमि उपजाऊ थी और फसलों की खेती समय पर होती थी। जलवायु नम थी। प्रजा सीधी-सादी एवं महत्वाकांक्षी थी तथा बौद्ध धर्म एवं अन्य धर्मों को मानती थी। यहां दस से अधिक संघाराम थे जिनमें भिक्षुओं की संख्या एक हजार से भी कम थी। वे सभी हीनयानी थे। बीस देव-मंदिर थे। विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

एक. बुद्ध की अस्थियों वाला स्तूप

राजधानी के उत्तर-पश्चिम में स्थित संघाराम में एक अशोक स्तूप था। "सिंधु कथा"[1] के अनुसार इस स्तूप में तथागत की एक शङ अस्थियां रखी हुई थीं। अतीत में भगवान ने अवतरित हो कर यहां देवों और मनुष्य के समक्ष सप्ताह भर धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

1. यह या तो एक अनुपलब्ध प्राचीन ग्रंथ है अथवा प्राचीन भारत की किंवदंती मात्र था।

स्तूप के समीप त्रिभूत बुद्धों के ग्रासनों ग्रौर चंक्रमण के ग्रवशेष थे। उनके निकट एक मैत्रेय बुद्ध की प्रतिमा थी। प्रतिमा छोटी तो थी, पर उसकी मुद्रा गांभीर्ययुक्त थी तथा चमत्कारिक शक्ति से संपन्न थी।

दो. ग्रविद्धकर्ण संघाराम

राजधानी से दो सौ ली से ग्रधिक दूर पूर्व में ग्रविद्धकर्ण संघाराम स्थापित था। इसका प्राचीर ग्रधिक लम्बा नहीं था, लेकिन इसमें बहुत उत्कृष्ट उत्कीर्णन किया गया था। तालाब में फूलों की परछाईं दिखाई पड़ती थीं। मंडप ग्रौर भवन एक दूसरे से सटे हुए थे। भिक्षु विनयशील ग्रौर गंभीर थे। प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि हिमगिरि के उत्तर में तुखार में संगीत का ग्रध्ययन करने वाले श्रमण थे। उनमें से दो-तीन श्रमण जो परस्पर ग्रत्यन्त घनिष्ठ थे, पूजा-पाठ के बाद एक दूसरे से कहा करते थे: "सद्धर्म गुह्य है जिसे बोलचाल से समझाया नहीं जा सकता, जबकि तीर्थ तो वस्तुतः विद्यमान हैं, जिनकी यात्रा की जा सकती है। हमें कुछ निकट मित्रों के साथ तीर्थ-यात्रा करनी चाहिए।" ये दो-तीन श्रमण मित्रों के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए निकले। भारत पहुंचने पर उन्होंने एक संघाराम में ग्राश्रय लेना चाहा। पर संघाराम के भिक्षुग्रों ने इन दूरस्थ श्रमणों की उपेक्षा की ग्रौर ग्राश्रय देने से ग्रस्वीकार कर दिया। उन्हें खुले ग्राकाश के नीचे सोना पड़ा। भूख ग्रौर थकान के मारे उनके चेहरे पीले पड़ गए थे ग्रौर वे थक कर चूर-चूर हो गए थे। ऐसे में इस राज्य के राजा भ्रमण पर निकले ग्रौर इन परदेशी भिक्षुग्रों को देख कर उन्हें ग्राश्चर्य हुग्रा। राजा ने उनसे पूछा: "तुम कहां से ग्राए भिखारी हो? यहां किस लिए ग्राए हो? तुम्हारे कर्ण ग्रविद्ध हैं, ग्रौर कपड़े भी फटे-पुराने हैं!" भिक्षुग्रों ने कहा: "हम तुखार से ग्राए हैं। भगवान बुद्ध के प्रवचनों का सविनय ग्रनुकरण करते हुए परिव्राजक बने हैं। हम कुछ साथियों को ले कर तीर्थ-यात्रा पर निकल ग्राए हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि यहां के लोग हमें उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं ग्रौर भारतीय भिक्षुग्रों ने हमें ग्राश्रय देने से भी ग्रस्वीकार कर दिया है। हम स्वदेश लौटना तो चाहते हैं, लेकिन ग्रभी हमारी तीर्थ-यात्रा पूरी नहीं हुई। यद्यपि हमें कष्ट ग्रवश्य झेलने पड़ रहे हैं, फिर भी हम तीर्थ-यात्रा पूरी करने पर ही स्वदेश लौटेंगे।" यह सुन कर राजा ग्रत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने इसी स्थल पर एक संघाराम बनवा दिया ग्रौर एक श्वेत कपड़े पर ये शब्द लिखवा दिए: "मैं इस लोक में सर्वश्रेष्ठ हूं ग्रौर मनुष्यों में सर्वाधिकारी हूं। यह त्रिरत्नों की पूजा का सुफल है। राजा के रूप में मुझे भगवान बुद्ध के उपदेशों के ग्रनुसार किसी भी परिव्राजक की सहायता करने का दायित्व निभाना ही है। ग्रब यह संघाराम ग्राने-जाने वाले भिक्षुग्रों के लिए ही स्थापित किया गया है। ग्रब से किसी कर्ण बिंधे भिक्षु को यहां ग्राश्रय देने की

मनाही होगी।" इसी कहानी के आधार पर इस संघाराम का यह नाम रखा गया था।

तीन. महाशाल और नाना अवशेष

अविद्धकर्ण संघाराम से सौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में गंगा के दक्षिण तट पर महाशाल स्थित था। यहां के सभी लोग ब्राह्मण थे और बौद्ध धर्म को नहीं मानते थे। लेकिन जब कभी किसी भिक्षु से साक्षात्कार होता था, तो पहले उसके ज्ञान के स्तर का पता लगाया जाता था, फिर उसे ज्ञानी पाने पर उसका सविनय अभिवादन किया जाता था।

गंगा के उत्तर में एक नारायण मंदिर था, जो अलंकारिक रूप से सजाया गया था। इसमें देवों की प्रस्तर मूर्तियां थीं। उत्कीर्णन का काम सूक्ष्म एवं अद्‌भुत था। यहां बहुधा चमत्कार हुआ करता था। इसका कारण अज्ञात था।

नारायण मंदिर से तीस ली दूर पूर्व में एक स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। स्तूप का अधिकांश भाग ढह चुका था। उसके सामने एक-दो चाङ ऊंचा प्रस्तर स्तंभ था। उस पर शेर का उभरवां चित्र था और पिशाचों के वशीकरण की कहानी अंकित थी। भूत काल में यहां पिशाचों का राज था। वे अपनी शक्ति के भरोसे मनुष्यों का भक्षण करते थे, प्राणियों पर अत्याचार करते थे एवं धृष्टतापूर्वक ऊधम मचाते रहते थे। तथागत ने प्राणियों की अकाल मृत्यु पर तरस खा कर अपनी दैविक शक्ति से पिशाचों को वश में किया, उनमें सद्धर्म में दीक्षित होने की इच्छा उत्पन्न की और उनसे अहिंसा का पालन करवा दिया। पिशाच उनके प्रवचन मान कर उनका सम्मान करने लगे। उन्होंने एक चट्टान उठा कर भगवान बुद्ध को आदरपूर्वक उस पर बैठा लिया। उन्होंने सद्धर्म में दीक्षित होने और उनकी रक्षा करने का संकल्प किया। तब से बौद्ध धर्म न मानने वाले इस प्रस्तर आसन को हटाने के व्यर्थ प्रयास करने लगे। एक हजार लोगों द्वारा शक्ति लगाई जाने पर भी यह चट्टान टस से मस नहीं होती थी। चट्टान के इर्द-गिर्द सघन वन और निर्मल जल वाले तालाब थे। यहां आ कर सभी लोगों को भय होता था।

पिशाच-वशीकरण-स्तूप से कुछ दूरी पर कई संघाराम थे। उनमें से अधिकांश जीर्ण तो हो चुके थे, फिर भी उनमें भिक्षु रहते थे। वे सभी महायानी थे।

यहां से सौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में एक स्तूप था। उसके केवल अवशेष मात्र रह गए थे, लेकिन उसकी ऊंचाई फिर भी कई चाङ थी। तथागत के परिनिर्वाण के उपरांत आठ राजाओं ने उनकी अस्थियों का बंटवारा कराया। अस्थियां मापने वाले ब्राह्मण ने एक कुम्भ के अंदर मधु लगाया और फिर इसी कुम्भ से राजाओं में अस्थियां बांट दीं। ब्राह्मण यह कुम्भ ले कर लौटा। कुम्भ के अन्दर अस्थियां चिपकी हुई थीं। उसने एक स्तूप बनवाया और उसके भीतर कुम्भ रख दिया। इसी कारण इसका नाम कुम्भ स्तूप पड़ा था। कालान्तर

में सम्राट ग्रशोक ने इस स्तूप को तोड़ कर कुम्भ निकलवा लिया ग्रौर इसी स्थल पर एक बड़ा स्तूप बनवाया। उपवास के दिनों में स्तूप प्रकाशमान हो जाता था।

यहां से उत्तर-पूर्व में गंगा पार कर लगभग एक सौ पचास ली चल कर मैं वैशाली पहुंच गया। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

वैशाली

वैशाली राज्य की परिधि पांच हजार ली से ग्रधिक थी। भूमि उर्वर थी। फल-फूल बहुतायत से थे। ग्राम्र ग्रौर मोचा प्रचुर मात्रा में मिलते थे ग्रौर महंगे भी थे। जलवायु सुहावनी थी। प्रजा सीधी-सादी थी, बढ़-चढ़कर पुण्य कर्म करती थी, विद्याएं सीखने में उत्साही थी एवं सद्धर्म ग्रौर विधर्मों, दोनों में, विश्वास करती थी। संघाराम कई सौ थे, लेकिन ग्रधिकांश ढह चुके थे, केवल तीन-चार सुरक्षित स्थिति में थे। भिक्षु इने-गिने थे। दसियों देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के लोग इधर-उधर बसे हुए थे। दिगंबरों की संख्या सर्वाधिक थी। वैशाली नगर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। उसके ग्राधार की परिधि साठ-सत्तर ली थी। प्रासाद की परिधि चार-पांच ली थी। जनसंख्या बहुत कम थी।

एक. जहां बुद्ध ने "विमलकीर्ति निर्देश सूत्र" प्रतिपादित किए थे

प्रासाद से पांच-छः ली दूर उत्तर-पश्चिम में एक संघाराम था। उसमें कुछेक भिक्षु थे ग्रौर वे भी सम्मतीय। संघाराम के निकट एक स्तूप था। यह वह स्थल था जहां तथागत ने "विमलकीर्ति निर्देश सूत्रों" का प्रतिपादन किया था ग्रौर कोटिपति विमलकीर्ति के पुत्र रत्नकार ग्रादि ने तथागत को एक छत्र प्रदान किया था। उसके पूर्व में एक स्तूप था, जहां सारिपुत्र ग्रादि को ग्रर्हत्व की प्राप्ति हुई थी।

दो. बुद्ध-ग्रस्थि-स्तूप एवं ग्रन्य ग्रवशेष

सारिपुत्र-ग्रर्हत्व-प्राप्ति स्तूप के दक्षिण में एक स्तूप था, जो वैशाली के राजा ने बनवाया था। बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरांत उन्हें बुद्ध की ग्रस्थियां प्राप्त हुईं ग्रौर उन्होंने ग्रत्यन्त श्रद्धापूर्वक यह स्तूप खड़ा करवा दिया था। "सिंधु कथा" में यह उल्लेख मिलता है कि इस

स्तूप में पहले बुद्ध की दस तउ अस्थियां थीं। बाद में सम्राट अशोक ने इसमें से नौ तउ अस्थियां निकाल लीं और इसमें केवल एक तउ अस्थियां रह गईं। कालान्तर में किसी राजा ने फिर इसमें से अस्थियां निकालनी चाहीं। काम अभी-अभी आरंभ हुआ ही था कि भूचाल आ गया। उस राजा को फिर कभी ऐसा करने का साहस नहीं हुआ।

इस स्थल के उत्तर-पश्चिम में एक अशोक स्तूप था। स्तूप के निकट एक प्रस्तर स्तंभ खड़ा था जो पचास-साठ छि ऊंचा था और जिस पर शेर की प्रतिमा अंकित थी। स्तंभ के दक्षिण में एक कुंड था, जो वानरों ने बुद्ध के लिए खोदा था। तथागत ने यहां निवास किया था। कुंड से थोड़ी दूर पश्चिम में एक स्तूप था, जहां वानरों ने तथागत का पात्र लिए वृक्ष पर चढ़ कर मधु एकत्रित किया था। कुंड से थोड़ी दूर दक्षिण में एक स्तूप था, जहां वानरों ने बुद्ध को मधु अर्पित किया था। कुंड के उत्तर-पश्चिम कोने में एक वानर की प्रतिमा थी।

तीन. विमलकीर्ति और रत्नकार के पुराने निवास

संघाराम से तीन-चार ली दूर उत्तर-पूर्व में एक स्तूप विमलकीर्ति के निवास के खंडहर पर स्थापित किया गया था। इस स्तूप में बहुत से चमत्कारिक दृश्य दिखाई देते थे। यहां से कुछ ही दूरी पर एक देवालय था, जो देखने में ईंटों का एक ढेर लगता था। किंवदंती के अनुसार यह ढेर लगी चट्टानें मात्र था। इसी स्थल पर कोटिपति विमलकीर्ति ने रोगी होने का आडम्बर करते हुए धर्मोपदेश दिए थे। इस स्थल से कुछ दूरी पर एक ऐसे स्थान पर एक स्तूप खड़ा था जहां कोटिपति के पुत्र रत्नकार निवास करते थे। यहां से कुछ दूरी पर एक स्तूप था, जहां पर आम्रपाली का पुराना निवास था। बुद्ध की विमाता और अन्य भिक्षुणियां यहीं पर निर्वाण को प्राप्त हुई थीं।

चार. आम्रपाली उद्यान और जहां बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण की घोषणा की थी

संघाराम से तीन-चार ली दूर उत्तर में उस स्थान पर एक स्तूप खड़ा था, जहां मनुष्य और अन्य प्राणी तथागत के साथ तब खड़े रहे थे, जब तथागत परिनिर्वाण के लिए कुशीनगर जाने को थे। इस स्थान से कुछ दूर उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप था, जहां बुद्ध ने अंतिम बार वैशाली नगर पर दृष्टिपात किया था। यहां से थोड़ी दूर दक्षिण में एक विहार था। विहार के सामने एक स्तूप खड़ा था। यही वह उद्यान था, जिसे आम्रपाली ने बुद्ध

को दान किया था।

आम्रपाली उद्यान के समीप एक स्तूप था, जहां बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण के समय की घोषणा की थी। यहीं पर बुद्ध ने आनंद से प्रश्न किया था : "जिसे चतुरऋद्धिपाद प्राप्त होता है, उसकी आयु में एक कल्प का समावेश हो सकता है। तो बताओ, अब तथागत की आयु कितनी होनी चाहिए?" उन्होंने यह प्रश्न कई बार दुहराया, लेकिन आनंद मौन साधे रहे। कारण यह था कि मार ने आनंद को जड़ बना रखा था। आनंद ने अपने आसन से उठ कर वन में जा कर ध्यान लगाया। इतने में मार ने आ कर बुद्ध से कहा : "तथागत, आप मनुष्य लोक में बहुत दीर्घ समय से उपदेश देते रहे हैं और संसार में पड़े लोगों में से जितने का आप ने उद्धार किया है, उनकी संख्या धूलिकणों जितनी असंख्य हो गई है। अब समय आ गया है कि आप परिनिर्वाण का परम सुख पा लें।" भगवान बुद्ध ने नख से कुछ मिट्टी खुरच कर मार से पूछा : "धरती पर मिट्टी अधिक है अथवा मेरे नख में मिट्टी?" मार बोला : "धरती पर मिट्टी अधिक है।" बुद्ध ने कहा : "जितने लोगों का मैंने उद्धार किया है, उनकी संख्या मेरे नख में धंसी मिट्टी के समान है, जबकि जिन लोगों का उद्धार अभी करना है, उनकी संख्या धरती पर पड़ी मिट्टी जितनी अधिक है! तीन महीनों बाद मैं परिनिर्वाण प्राप्त करूंगा!" यह सुन कर मार प्रसन्न हो कर वहां से हट गया। तब आनंद को वन में लगा जैसे उन्होंने एक विचित्र सपना देखा हो। उन्होंने आ कर बुद्ध से कहा : "मैंने वन में स्वप्न में एक बड़ा वृक्ष देखा। उसके पत्ते हरे-भरे थे और छाया घनी थी। अचानक आंधी चली और उसने वृक्ष को पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। भगवान, क्या आप परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे? मेरे मन में आशंका उत्पन्न हुई, इसलिए आपसे पूछने आया हूं।" बुद्ध ने उसे बताया : "मैंने अभी तुम्हें बताया था, लेकिन तुम मार द्वारा जड़ बना दिए गए थे और तुमने समय पर मुझसे मनुष्य लोक में रहने की प्रार्थना नहीं की। मार ने मुझे शीघ्रता से परिनिर्वाण-प्राप्ति का परामर्श दिया है। मैं परिनिर्वाण की तिथि घोषित कर चुका हूं। तुमने सपने में यही देखा था।"

पांच. सहस्र बुद्धों की जातक कथा

जिस जगह बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण के समय की घोषणा की थी, उसके समीप एक स्तूप था, जहां सहस्र पुत्र अपने माता-पिता से मिले थे। भूत काल में एक ऋषि घाटी में एकांतवास करते थे। वसन्त के महीने में वह झरने में स्नान कर रहे थे कि एक मृगी ने आ कर इसी झरने का पानी पिया। इससे मृगी गर्भवती हो गई। उसने एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्री सुन्दर थी, पर उसके चरण मृग जैसे थे। उसका पालन-पोषण ऋषि करने लगे। ऋषि ने उसे अन्य ऋषियों के आश्रम में अग्नि लाने को भेजा। मार्ग में वह जहां से भी

गुजरी, वहां धरती पर कमल के चिह्न पड़ गए। यह देख कर अन्य ऋषियों को आश्चर्य हुआ और उससे कहा कि वह पहले आश्रम का एक चक्कर लगाए तब उसे अग्नि दी जाएगी। मृगी पुत्री ने उनके कहे अनुसार किया और अग्नि ले कर लौट आई। तब राजा ब्रह्मानंद[1] आखेट हेतु निकले। जब उन्होंने कमल के चिह्न देखे, तो चिह्नों के सहारे चलते हुए वे कुटिया तक जा पहुंचे। मृगी पुत्री का अद्भुत रूप-रंग देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए और उसे साथ ले कर प्रासाद वापस लौटे। ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि वह सहस्र पुत्रों को जन्म देगी। यह सुन कर अन्य रानियों ने इसमें अड़चनें डालने के लाख प्रयास किए। प्रसूति के समय मृगी पुत्री ने कमल के एक फूल को जन्म दिया। फूल की एक सहस्त्र पंखुड़ियां थीं और प्रत्येक पंखुड़ी पर एक बच्चा बैठा हुआ था। रानियों ने उसे अमंगलकारी बता कर गंगा में फेंक दिया। फूल जल-धारा के साथ-साथ प्रवाहित हुआ। राजा उजियन[2] गंगा के निचले भाग में भ्रमण कर रहे थे। जब उन्होंने एक पीत छत्र तरंगों के साथ आता हुआ देखा, तो उसे उठवाया और खोल कर देखने पर पाया कि उसके भीतर एक सहस्र शिशु बैठे थे। राजा ने उन्हें पाला-पोसा। बड़े होने पर वे सहस्रों पुत्र बलवान निकले। अपने सहस्र पुत्रों के बल पर राजा ने चारों दिशाओं में अपने राज्य की सीमा का विस्तार आरंभ किया। वे विजय पर विजय प्राप्त करते हुए राजा ब्रह्मानंद की भूमि पर चढ़ाई करने को उद्यत हो गए। यह संवाद पा कर राजा ब्रह्मानंद हतप्रभ रह गए। उनकी सैनिक शक्ति शत्रु का सामना न कर सकती थी। कोई प्रतिकार नहीं था। इतने में मृगी पुत्री जान गई कि उसके पुत्र आ रहे हैं। उसने राजा से कहा : "शत्रु-सेना सीमा के निकट आई है। राज्य में एकता नहीं है। शक्तिशाली शत्रु को परास्त करने के लिए मुझे एक उपाय सूझा है।" राजा को उसकी बात पर विश्वास नहीं आया। वे पहले से अधिक आशंकित हो गए। मृगी पुत्री नगर के प्राचीर पर चढ़ कर शत्रु-सेना के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। सहस्र पुत्रों ने सेना ले कर नगर को घेर लिया। मृगी पुत्री उनसे बोली : "तुम लोगों को अपकर्म नहीं करना चाहिए! मैं तुम्हारी मां हूं, तुम मेरे पुत्र हो।" सहस्र पुत्रों ने कहा : "यह कितनी असंगत बात है!" तब मृगी पुत्री ने दोनों हाथों से अपने स्तनों को दबाया जिससे दूध सहस्र धाराओं में फूट निकला। ममत्व के कारण दूध की धाराएं सहस्र पुत्रों के मुंह में चली गईं। सहस्र पुत्र निहत्थे हुए। उन्होंने अपनी माता के दर्शन किए। फिर वे सेना ले कर वापस लौट गए। इसके पश्चात् दोनों राज्य मैत्रीपूर्वक रहने लगे और प्रजा सुख-चैन से जीवन बिताने लगी।

---

1. किसी विद्वान का मत है कि चीनी के अनुसार इसका संस्कृत नाम "ब्राह्मदत्त" होना चाहिए। हो सकता है कि वे वाराणसी के थे।

2. किसी विद्वान का मत है कि इसका संस्कृत नाम "उद्यान" होना चाहिए। आखिर यह तय नहीं हो सका कि यह किसी राज्य का नाम है या राजा का।

जिस स्थल पर सहस्र पुत्रों ने अपनी माता के दर्शन किए, उस स्थल के निकट एक स्तूप था, जो तथागत के चंक्रमण के अवशेष का प्रतीक था। तथागत ने यहीं पर लोगों को बताया था: "भूत काल में मैं यहीं अपने माता-पिता से मिला था। तुम लोगों ने सहस्र पुत्रों की कथा सुनी है? वे ही भद्रकल्प के सहस्र बुद्ध हैं।"

छः. द्विखंडी प्रवचन भवन और अन्य अवशेष

जातक-कथा-स्तूप के पूर्व में खंडहरों पर एक स्तूप खड़ा था। उससे प्रायः प्रभा निकलती रहती थी। वहां लोग प्रार्थना करने पर अपनी इच्छा पूरी कर सकते थे। यह उसी द्विखंडी प्रवचन भवन के खंडहर थे, जहां तथागत ने "समंत मुख धारणा" सूत्र और अन्य सूत्रों का प्रतिपादन किया था। खण्डहरों के समीप एक स्तूप था, जिसमें आनंद की आधी अस्थियां सुरक्षित थीं। यहां से थोड़ी दूरी पर सैकड़ों स्तूप थे। उनकी निश्चित संख्या अज्ञात थी। यह वही स्थल था, जहां सहस्र प्रत्येक बुद्धों का निर्वाण हुआ था।

वैशाली नगर के भीतर और बाहर बौद्ध धर्म के असंख्य अवशेष थे, जिनका विस्तृत वर्णन करना कठिन है। वे मछली के शल्कों की भांति एक दूसरे से सटे हुए थे और अनगिनत थे। समय बीतता गया और ऋतुओं में परिवर्तन होता रहा, जिससे वन उजड़ गया और कुंड सूख गए। इन अवशेषों के प्रतीक स्वरूप केवल वृक्षों के सड़े हुए तने रह गए थे।

राजधानी से पचास-साठ ली दूर उत्तर-पश्चिम में एक बड़ा स्तूप था, जहां लिच्छवियों ने तथागत को अंतिम विदा दी थी। जब तथागत वैशाली नगर से कुशीनगर जाने को थे और लिच्छवियों ने यह सुना कि बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे, तो वे रोते हुए उनके पीछे चलते रहे। यह देख कर कि वे इतने दुःखी थे, और उन्हें ढाढ़स बंधाने के लिए भगवान के पास कोई शब्द नहीं था। उन्होंने दैविक शक्ति से एक बड़ी नदी वहां ला कर उन्हें रोक दिया। इस नदी का कगार बहुत ऊंचा था और उसमें उफनती धाराएं प्रवाहित हो रही थीं। लिच्छवियों ने रोना समाप्त कर दिया। तथागत ने स्मृति चिह्न के रूप में अपना भिक्षापात्र उन्हें दे दिया।

सात. महादेव की जातक कथा

वैशाली नगर से दो सौ ली से कम दूर उत्तर-पश्चिम में एक पुराना नगर स्थित था। वह कब का उजड़ चुका था और वहां के निवासियों की संख्या बहुत अल्प रह गई थी। उस पुराने नगर में एक स्तूप था, जहां बुद्ध ने बोधिसत्वों, देवों और मनुष्य को अपनी जातक कथा सुनाई थी। बोधिसत्व की प्राप्ति के लिए साधना करते समय उनका यहां चक्रवर्ती

राजा के रूप में जन्म हुआ था और उनका नाम था महादेव। सात रत्नों ने मंगल लक्षण प्रदर्शित किए कि वे मनुष्य लोक पर शासन करेंगे। लेकिन उन्होंने पतनोन्मुख परिवर्तन देख कर अनित्यता अनुभव की एवं प्रव्रज्या लेने का संकल्प किया। वे राजसिंहासन छोड़ कर भिक्षु बने और काषाय चीवर पहन कर सद्धर्म का अध्ययन करने लगे।

आठ. जहां सात सौ आचार्यों की नई संगीति हुई थी

राजधानी से चौदह-पंद्रह ली दूर दक्षिण-पूर्व में एक बड़ा स्तूप खड़ा था, जहां सात सौ आचार्यों की नई संगीति हुई थी। बुद्ध के परिनिर्वाण के एक सौ दस वर्ष पश्चात् वैशाली में भिक्षुओं ने सद्धर्म और विनय के विरुद्ध आचरण किया। तब आयुष्मान यशद कोसल में थे, आयुष्मान सम्भोग मथुरा में, आयुष्मान रेवत हानरो[1] में, आयुष्मान साढ़ वैशाली में और आयुष्मान कुब्जशोभित पाटलिपुत्र में रहते थे। इन महान अर्हंतों की चित्तशुद्धि हो चुकी थी। वे त्रिपिटकों पर सुदृढ़ थे और त्रिविद्या प्राप्त थे। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि थी। वे सबके सब आनन्द के शिष्य थे। यशद ने दूत भेज कर अन्य आचार्यों को वैशाली नगर में बुलवा दिया। तब सात सौ की संख्या पूरी होने में केवल एक की कमी थी। इतने में कुब्जशोभित ने अपने दैवी चक्षुओं से आचार्यों को एकत्र होते हुए देखा और वे आकाश-मार्ग से सभा में पहुंचे। संभोग दायां कंधा अनावृत्त रखे हुए घुटनों के बल बैठ गए और उन्होंने ऊंचे स्वर में उद्घोष किया : "शांति ! आप श्रद्धा से विचार तो करें ! यद्यपि पूज्य धर्मराजा को परिनिर्वाण प्राप्त हुए अनेक वर्ष बीत चुके हैं, तथापि उनकी उक्तियां अब भी विद्यमान हैं। वैशाली नगर के श्रद्धाहीन भिक्षुओं ने असंगत, शीलविहित आचरण किए, दस वस्तुओं को प्रचारित किया और दशबल के उपदेश का उल्लंघन किया। आज यहां उपस्थित सभी आचार्यों को ज्ञात है कि यह धर्म के विरुद्ध है। हम महाभिक्षु आनन्द के प्रवचनों के अनुसार बुद्ध के उपकार का बदला चुकाने के लिए पुनः बुद्ध के उपदेश उद्घोषित करते हैं।" सभा में सभी उपस्थित आचार्यगण प्रभावित हुए। भिक्षुओं को बुलाया गया और विनय के अनुसार उनकी भूलों की आलोचना और रोकथाम की गई, उनके असंगत विनयों को रद्द कर दिया गया एवं सद्धर्म पर प्रकाश डाला गया।

नौ. श्वेतपुर संघाराम

जिस स्थल पर सात सौ आचार्यों की संगीति हुई थी, उस स्थल से अस्सी-नब्बे ली दूर

1. इसका संस्कृत नाम निश्चित नहीं हो सका है।

दक्षिण में श्वेतपुर संघाराम स्थित था। उसमें सुसज्जित चबूतरे एवं रंगीन अलंकृत भवन थे। भिक्षु विनयशील थे और सभी महायानी थे। संघाराम के समीप चार भूत बुद्धों के आसनों तथा चंक्रमण के अवशेष थे। उनके निकट एक अशोक स्तूप था, जो इसका प्रतीक था कि बुद्ध ने दक्षिण में मगध की ओर एवं उत्तर में वैशाली की ओर जाते समय रास्ते में यहीं विश्राम किया था।

दस. परिनिर्वाण के समय आनन्द के शरीर के विभाजन की कथा

श्वेतपुर संघाराम से तीसेक ली दूर दक्षिण-पूर्व में गंगा के दक्षिणी और उत्तरी तटों पर एक-एक स्तूप स्थापित था, जहां आनन्द ने अपनी अस्थियों को दो भागों में बांट कर दो राज्यों को दिया था। आनन्द तथागत के चचेरे भाई थे। वे ज्ञानी थे तथा मतों का सारांश निकालने में पारंगत थे। वे वस्तुओं के नियम जानते थे एवं उनका गहन अध्ययन करते थे। बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरान्त वे महाकाश्यप के बाद संघ का नेतृत्व करते रहे थे। मगध के वन में चंक्रमण करते समय उन्होंने एक श्रामणेर को बौद्ध सूत्रों का पाठ करता हुआ पाया। सूत्रों में अशुद्धियां थीं एवं शब्द-विन्यास अव्यवस्थित था। इसे सुन कर आनन्द हताश हो गए। उन्होंने उस श्रामणेर के पास जा कर उसे समझाया। श्रामणेर ने हंस कर कहा : "आचार्य आप जराजीर्ण हैं। जो कुछ आपने कहा है, वह अशुद्ध है। मेरे आचार्य तत्ववेत्ता हैं और प्रौढ़ अवस्था में हैं। उन्होंने जो कुछ मुझे सिखाया है, वह अशुद्ध नहीं हो सकता!" आनन्द चुप रहे और बाहर आ कर उसांस ली : "मैं जराग्रस्त अवश्य हूं, सभी प्राणियों के लिए ही मनुष्य लोक में इतने दीर्घ काल से सद्धर्म की रक्षा कर रहा हूं। पर प्राणियों के मन में इतना अधिक मैल जम गया है कि वे मेरे प्रवचन सुनना ही नहीं चाहते। अब मनुष्य लोक में मेरे जीवित रहने से कोई लाभ नहीं होगा, मुझे शीघ्र ही परिनिर्वाण प्राप्त होना चाहिए। उन्होंने मगध को छोड़ कर वैशाली की ओर प्रस्थान किया। जब उनकी नाव गंगा की मंझधार में गई, तब मगध के राजा ने उनके चले जाने का संवाद पाया। राजा उनका बड़ा आदर करते थे, इसलिए वे सेना ले कर उन्हें रोकने की चेष्टा में निकले। लाखों सैनिक गंगा के दक्षिण तट पर पंक्तियों में खड़े हुए। उधर वैशाली के राजा ने जब सुना कि आनन्द आ रहे हैं, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए। वे भी सेना ले कर आनन्द के स्वागत में निकले। उनके भी लाखों सैनिक गंगा के उत्तर तट पर एकत्र हो गए। दोनों राज्यों की सेनाएं आमने-सामने खड़ी थीं और पताकाओं ने सूर्य को भी ढंक लिया था। इस चिंता से कि कहीं वे आपस में लड़ न पड़ें और एक दूसरे का वध न कर दें, आनन्द नाव

से ऊपर उठ कर आकाश में आ गए। दैवी शक्ति का प्रदर्शन कर वे शीघ्र ही परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। वे अग्नि में भस्म हो गए। उनकी भस्म दो भागों में बंट गई। एक भाग दक्षिण तट पर जा गिरा और दूसरा भाग उत्तर तट पर। दोनों राजाओं को एक-एक भाग मिला। सभी सैनिकों ने विलाप किया। वे अपने-अपने देश लौट गए और स्तूप बना कर भस्म को उनमें सुरक्षित रखा।

यहां से उत्तर-पूर्व में पांच सौ ली दूर चल कर मैं वृजि पहुंचा। (उत्तरापथ के लोग इसे संवृजि कह कर पुकारते थे। यह राज्य उत्तरापथ में अवस्थित था)।

वृजि

वृजि की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। उसका भूभाग पूर्व से पश्चिम तक लम्बा था, जबकि दक्षिण से उत्तर तक संकीर्ण था। भूमि उर्वर थी। फल-फूलों की प्रचुरता थी। जलवायु में थोड़ी ठंडक थी। प्रजा स्वभाव से चिड़चिड़ी थी। लोगों में अधिकांश परधर्मी थे, बहुत कम लोग बौद्ध धर्म मानते थे। दस से अधिक संघाराम थे और भिक्षु एक हजार से कम थे। वे महायानी और हीनयानी दोनों थे। दसियों देव-मंदिर थे और उनके अनुयायी अधिसंख्य थे। राजधानी चांसुन[1] थी, पर इसका अधिकांश भाग उजड़ चुका था। तीन हजार के लगभग परिवार पुराने प्रासाद के क्षेत्र में बसे हुए थे, जो एक कस्बा-सा लगता था। एक बड़ी नदी के उत्तर-पूर्व में एक संघाराम था, जिसमें कुछ ही भिक्षु थे। वे सुसंस्कृत थे।

एक. जहां धीवरों का धर्म परिवर्तित किया गया था तथा अन्य अवशेष

यहां के पश्चिम में नदी के निकट एक तीन चाङ ऊंचा स्तूप था। स्तूप के दक्षिण में एक पट्टी जैसी लम्बी नदी बहती थी। स्तूप उसी स्थल पर स्थापित था जहां भगवान बुद्ध ने धीवरों का धर्म परिवर्तित किया था। जब बुद्ध मनुष्य लोक में थे तब पांच सौ धीवर साथ मिल कर मछली मारते थे। एक बार उन्होंने इस नदी में एक विशालकाय मछली पकड़ी। मछली के अठारह सिर थे और प्रत्येक सिर पर दो आंखें थीं। धीवरों ने उसे मारना चाहा। इतने में तथागत ने वैशाली में अपने दैवी चक्षुओं से यह सब कुछ देखा। उनका

1. यह चीनी उच्चारण के अनुसार वर्तनी की गई है। सही संस्कृत नाम मालूम नहीं हो सका है।

मन करुणा से भर आया। उन्होंने इस अवसर से लाभ उठा कर मछली को प्रवचन देना और धीवरों का धर्म परिवर्तित करना चाहा। यह सोच कर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा : "वृजि में एक विशालकाय मछली है। मैं उसे प्रवचन देना चाहता हूं और फिर इससे धीवरों को भी प्रबुद्ध करूंगा। तुम लोग भी तो जानते हो कि यही एक समुचित अवसर हैं।" सभी तथागत के साथ दैवी शक्ति से वायु में चलते हुए नदी के तट पर आए। उन्होंने सदा की भांति तथागत को आसन दिया। तथागत ने धीवरों को रोकते हुए कहा : "मछली का वध न करो!" उन्होंने अलौकिक शक्ति से उपाय करके मछली को उसके अपने पूर्वजन्म का बोध कराया तथा उसे बोलने एवं मनुष्योचित कृत्य समझने की शक्ति प्रदान की। तब तथागत ने जानते हुए भी उससे पूछा : "तुमने अपने पूर्वजन्म में क्या पाप किया था, जिससे तुम इस कुत्सित चक्र में आ गए और इतनी नीच वस्तु में बदल गए?" मछली बोली : "मुझे अभिजात घर में जन्म लेने का सौभाग्य मिला था। मैं कपित्थ नामक ब्राह्मण था। मैं अपने उच्च वर्ण के बल पर दूसरों का तिरस्कार और अपमान करता रहता था और अपनी विद्वत्ता के सहारे बौद्ध धर्म की उपेक्षा करता था, बुद्धों का अनादर करता था तथा भिक्षुओं को गंदी गालियां देता हुआ उनकी ऊंट, गधे, हाथी और घोड़े आदि पशुओं से तुलना करता था। इन्हीं कुकर्मों के फलस्वरूप मुझे इतने नीच जीव का रूप धारण करना पड़ा है। लेकिन चूंकि मैंने भूत काल में तनिक पुण्य कर्म भी किए थे, और फिर भगवान बुद्ध विद्यमान हैं, मैंने अपनी आंखों से भगवान बुद्ध को प्रवचन देते हुए देखने और उनके उपदेश सुनने का अवसर पाया है, इसलिए मैं अपनी पिछली करनी का प्रायश्चित करता हूं एवं दीक्षा पाने पर बुद्ध का आभारी हूं।" तथागत ने इस अवसर से लाभ उठा कर उसे उपदेश क्या दिया, मानों उसे एक नया मार्ग ही दिखा दिया। इतने में मछली के जीवन का अंत हुआ और बुद्ध के आशीर्वाद से उसका स्वर्ग में पुनर्जन्म हुआ। निरीक्षण के बाद वह अपने पुनर्जन्म का कारण जान गया और उसे यह भी ज्ञात हुआ कि यह अदृष्ट फल ही है। बुद्ध का उपकार मान कर वह देवों के साथ तथागत के यहां आया और उनकी प्रदक्षिणा की। फिर वह श्रद्धा-भाव से स्वर्ग से लाए हुए सुगंधित फूल उठाए उनके समीप खड़ा हो गया। भगवान बुद्ध फिर धीवरों को उपदेश देने लगे और उन्हें धर्म का परमार्थ समझाया। धीवर प्रभावित हुए। उन्होंने श्रद्धा से बुद्ध को प्रणाम किया और प्रायश्चित किया, जाल को काट डाला एवं नावों को जला दिया। वे सद्धर्म में दीक्षित हुए। उन्होंने चीवर भी पहने और सत्य का श्रवण भी किया। इसलिए उन्हें माया-मोह से मुक्ति पा कर अर्हत्व प्राप्त हुआ।

यहां धीवरों का धर्म परिवर्तित किया गया था, वहां से सौ ली दूर उत्तर-पूर्व में एक जीर्ण नगर के पश्चिम में एक अशोक स्तूप था, जो सौ छि से अधिक ऊंचा था। यहीं पर बुद्ध ने छः महीनों तक धर्म का प्रवर्तन किया एवं देवों व मनुष्य को सद्धर्म में दीक्षित किया था। यहां से लगभग एक सौ चालीस कदम दूर उत्तर में एक छोटा स्तूप था। इसी स्थल

पर तथागत ने भिक्षुओं के लिए विनय बनाए थे। छोटे स्तूप से कुछ दूर पश्चिम में तथागत के केश और नख सुरक्षित रखने वाला स्तूप था। जब यहां तथागत निवास करते थे, तब निकट और दूर के लोग बड़ी संख्या में यहां आए। उन्होंने धूपबत्तियां जलाईं और फूलों की वर्षा की। यहां दिन-रात दीपक जलते रहते थे।

यहां से लगभग एक हजार पांच सौ ली दूर उत्तर-पश्चिम में एक पर्वत और उपत्यका पार कर मैं नेपाल पहुंचा। (उस समय यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

नेपाल

नेपाल की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। यह राज्य हिमगिरि में अवस्थित था। उसकी राजधानी की परिधि बीस ली से अधिक थी। समूचे राज्य में पर्वतश्रेणियां फैली हुई थीं। खेती के लिए अनुकूल स्थितियां थीं। फल-फूलों की प्रचुरता थी। यहां तांबा, सुरागाय एवं जीवजीव मिलते थे। लेन-देन में तांबे के सिक्कों का प्रयोग होता था। जलवायु ठंडी थी। प्रजा कटुभाषी थी, सद्भाव तथा न्यायपरता की अवज्ञा करती रहती थी, विद्यार्जन नहीं करती थी तथापि कारीगरी में दक्ष थी। लोग कुरूप थे और परधर्म व सद्धर्म दोनों को मानते थे। संघाराम और देव-मंदिर एक दूसरे से सटे हुए दिखाई पड़ते थे। यहां दो हजार से अधिक भिक्षु थे। वे महायानी भी थे एवं हीनयानी भी। विधर्मियों की संख्या अज्ञात थी।

एक. अंशुवर्मन और उनकी "शब्द-विद्या"

राजा लिच्छवी क्षत्रिय थे। वे विद्वान थे एवं केवल बौद्ध धर्म को ही मानते थे। वर्तमान राजा का नाम अंशुवर्मन था। वे एक बड़े प्रतिभाशाली विद्वान थे और उन्होंने "शब्द-विद्या" शीर्षक ग्रंथ लिखा था। वे ज्ञानी और सच्चरित्र व्यक्तियों का समादर करते थे। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

दो. छोटा कुंड

राजधानी के दक्षिण-पूर्व में एक छोटा कुंड था। उसमें आग डाली जाने पर लौ उठती थी। उसमें अन्य वस्तुएं डाली जाने पर भी आग लग जाती थी।

यहां से फिर वैशाली लौट कर दक्षिणी दिशा में गंगा पार कर मैं मगध पहुचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

खण्ड आठ

मगध (क)

मगध देश की परिधि पांच हजार से अधिक थी। नगरों की जनसंख्या कम और ग्रामीण जनसंख्या अधिक थी। भूमि उर्वर थी जो खेती के लिए उपयुक्त थी। यहां एक विलक्षण जाति का चावल उत्पन्न होता था। उसके दाने बड़े, सुगंधित, स्वादिष्ट, चमकदार और चिकने होते थे। परंपरा से इस प्रकार का चावल "अभिजात चावल" कहलाता था। धरातल नीचा और आर्द्र था। नगर और गांव सबके सब ऊर्ध्व भूमि पर स्थित थे। ग्रीष्म के आरंभ से शरद के मध्य तक भूमि जलमग्न हो जाने पर नाव चलाई जा सकती थी। लोग सीधे-सादे थे। जलवायु उष्ण थी। लोग विद्याओं को महत्व देते थे और बौद्ध धर्म मानते थे। यहां पचास से अधिक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या दस हजार से अधिक थी। उनमें से अधिकतर महायानी थे। देव-मंदिर दसियों थे और विधर्मी अधिसंख्य थे।

एक. पाटलिपुत्र और उसकी कथा

पुराना नगर गंगा के दक्षिण में स्थित था। उसकी परिधि सत्तर ली से अधिक थी। नगर कब का उजड़ चुका था, फिर भी उसके खंडहर देखे जा सकते थे। भूत काल में जब मनुष्य की आयु गणनातीत हुआ करती थी, वह कुसुमपुर कहलाता था। यह नाम इसलिए पड़ा था क्योंकि प्रासाद में असंख्य सुगंधित कुसुम खिले रहते थे। जब मनुष्य की आयु सहस्रों वर्ष की हो गई थी, तब इसका नाम बदल कर पाटलिपुत्र हो गया।

यहां पहले एक मेधावी ब्राह्मण रहते थे। उनके कई हजार शिष्य थे। वे उन्हें नाना विद्याएं सिखाते थे। एक बार उनके शिष्य बाहर घूमने निकले और उन्होंने एक खिन्न मन शिक्षित युवक को भटकते हुए पाया। उन्होंने उससे पूछा : "तुम इतने म्लान क्यों हो ?" उसने कहा : "मुझ पर यौवन तो आया है, फिर भी मैं अकेला हूं। वर्षों से शिक्षा तो पा रहा हूं, किन्तु किसी भी विद्या पर अधिकार प्राप्त नहीं कर सका हूं। यह सोच कर ही मेरा मन भारी हो जाता है।" शिष्यों ने उससे विनोद करते हुए कहा : "हम अभी तुम्हारी सगाई किए देते हैं।" यह कह कर उन्होंने दो साथियों को वर पक्ष का और अन्य दो को

वधू पक्ष का माता-पिता बना दिया। वे एक पाटलि वृक्ष के नीचे बैठ गए। यह वृक्ष "जामात वृक्ष" कहलाता था। उन्होंने फल तोड़े और पानी भर लाए। उन्हें स्वादिष्ट भोजन और मदिरा मान कर उन्होंने सगाई की बात उठाई और विवाह की तिथि निश्चित की। वधू पक्ष के पिता ने एक फूलयुक्त टहनी ला कर युवक के हाथों में थमा दी और कहा : "यही तुम्हारी नववधू है। आशा है कि तुम्हें यह पसन्द आएगी।" युवक का मन खिल उठा। गोधूलि हुई। घर वापस लौटने का समय आया। तब भी उसका मन वहां से चले जाने को नहीं करता था। ब्राह्मण के शिष्य उससे बोले : "अभी तक तो यह खेल मात्र ही था। अब हम एक साथ ही वापस लौटें अन्यथा वन में नरभक्षी पशु तुम्हें खा जाएंगे।" पर युवक अंत तक उनके साथ नहीं गया और वृक्ष के समीप इधर-उधर घूमता रहा। जब अंधेरा छा गया, तब एक अद्भुत प्रभा से पूरा वन आलोकित हो उठा और साथ ही संगीत की मधुर ध्वनि भी गूंज उठी एवं उसे पंक्तियों में खड़े मंडप दिखाई दिए। कुछ क्षण के उपरांत एक बूढ़ा लाठी टेकता हुआ वहां आया एवं उसने युवक का अभिवादन किया। फिर एक बुढ़िया एक कुमारी के साथ वहां आ पहुंची। उनके पीछे इतने अतिथि थे कि रास्ता ही बन्द हो गया था। वे सभी भड़कीली पोशाकें पहने हुए थे और वाद्ययंत्र बजा रहे थे। बूढ़े ने कुमारी की ओर संकेत करते हुए युवक से कहा : "यह तुम्हारी पत्नी है।" फिर भोज का आयोजन किया गया और सप्ताह भर तक विवाह की खुशियां मनाई गईं। उधर ब्राह्मण के शिष्यों को आशंका हुई कि युवक किसी पशु द्वारा घायल तो नहीं हुआ है। वे उसे ढूंढ़ने निकले। उन्होंने पाया कि युवक अकेले ही वृक्ष के नीचे बैठा हुआ मानों अतिथियों का सत्कार कर रहा था। उन्होंने उसे घर जाने के लिए समझाया-मनाया, पर उसने नहीं माना। बाद में वह नगर में लौट कर सगे-संबंधियों से मिला और उन्हें सारी कहानी सुनाई। लोग ठगे से रह गए। तब युवक उन्हें ले कर वन में गया। लोगों ने पाया कि वह पाटलि वृक्ष वास्तव में एक अभिजात आत्मा का निवास था। बहुत से दास इधर-उधर आते-जाते अत्यंत व्यस्त दिखाई देते थे। उस बूढ़े ने सहजता से उनका स्वागत किया, उनके सम्मान में भोज का आयोजन किया और संगीत बजवाया। स्वामियों और अतिथियों दोनों ने प्रथा के अनुरूप आचरण किया। युवक के मित्रों ने नगर में लौटने पर यह कहानी प्रचारित कर दी। विवाह के एक वर्ष पश्चात् एक पुत्र का जन्म हुआ। युवक अपनी पत्नी से बोला : "मैं नगर लौटना चाहता हूं, पर तुम्हें छोड़ने का मन नहीं करता। अगर यहां पर रहा, तो वनवास मुझे असहनीय होगा।" पत्नी ने उसकी बात अपने पिता को सुना दी। बूढ़े ने युवक से कहा : "क्या सुखी जीवन केवल अपनी जन्मभूमि में मिलता है? मैं अभी तुम्हारे लिए निवास बनवाता हूं। तुम अपना विचार मत बदलो।" बूढ़े ने देवदूतियों से एक दिन से कम समय में ही एक निवास बनवा दिया। जब कुसुमपुर यहां स्थानांतरित हुआ, तब नगर का नाम बदल कर पाटलिपुत्र हो गया, क्योंकि उस युवक के कारण ही

देवदूतियों ने नया नगर बसा दिया था।

दो. अशोक का नरक

पुराने प्रासाद के उत्तर में एक दसियों छि ऊंचा प्रस्तर स्तंभ था, जहां सम्राट अशोक ने नरक बनवाया था। तथागत के परिनिर्वाण के उपरांत सौवें वर्ष में बिंबिसार के पौत्र अशोक नाम के एक सम्राट ने राजधानी को राजगृह से पाटलिपुत्र में स्थानांतरित किया और पुराने नगर के चारों ओर फिर प्राचीर बनवाया। कालांतर में नगर का केवल खण्डहर रह गया। संघारामों, देव-मंदिरों और स्तूपों के कई सौ अवशेष थे, लेकिन उनमें से केवल इने-गिने ही सुरक्षित स्थिति में थे। केवल पुराने प्रासाद के उत्तर में गंगा के निकट एक छोटे से नगर में लगभग एक हजार परिवार बसे हुए पाए गए।

राज्याभिषेक के उपरांत तक अशोक बहुत निर्मम और नृशंस थे। उन्होंने नरक बनवा कर प्राणियों पर अनेक अत्याचार किए। नरक के चारों ओर ऊंचा-ऊंचा प्राचीर खड़ा करवा दिया गया और प्राचीर पर गरगज। धधकती आग, ऊंची भट्टी, पैनी तलवारें और यातना के अन्य संयंत्र सभी यहां उपलब्ध थे। बिलकुल नरक जैसा था यह स्थान। सम्राट अशोक ने एक क्रूर व्यक्ति को इस नरक का अधीक्षक भी नियुक्त किया। आरंभ में वह सभी अपराधियों को, उनके अपराधों में अन्तर किए बिना ही इस नरक में यातनाएं देने के लिए डाल देता था। बाद में जो कोई भूल से भी नरक के निकट से गुजरता था, वह उसे भी मार डालने लगा। जो भी व्यक्ति नरक में डाल दिया जाता था, वह मृत्यु के मुख में पड़ जाता था। इस नरक के विषय में किसी को भी कुछ ज्ञात नहीं था। एक बार एक अभी-अभी प्रव्रज्या प्राप्त श्रमण भिक्षा मांगता हुआ भूल से नरक के द्वार तक जा पहुंचा। नरक के क्रूर स्वामी ने उसे पकड़ कर मार डालने का निर्णय लिया। श्रमण का हृदय कांप उठा। गिड़गिड़ाने पर ही उसे पूजा और प्रायश्चित करने की अनुमति मिली। इतने में उसने देखा कि नरक में लाए जाने पर एक रस्सी से बंधे हुए व्यक्ति के हाथ-पांव काट दिए गए और उसके शरीर को चीर दिया गया। देखते-देखते उस व्यक्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गए। यह देख कर श्रमण शोकाकुल हो उठा और उसी प्रकार अनित्यता का सत्य जान गया तथा अर्हत्व को प्राप्त हुआ। नरक के सैनिक ने उससे कहा: "अब तुम्हें मरना है।" अर्हत्व-प्राप्ति के उपरांत श्रमण को जीवन-मरण का बोध नहीं रह गया था। यद्यपि वह एक बड़े कड़ाह में उबलते पानी में डाला गया, तथापि उसे लगा जैसे वह एक निर्मल जल वाले तालाब में पड़ा हुआ हो। उसे आसन देने हेतु पानी पर एक भीमकाय कमल का फूल भी खिल गया। यह देख कर नरक का स्वामी घबरा गया और एक सैनिक भेज कर सम्राट अशोक को सारी बात बतलाई। सम्राट स्वयं नरक में आए। उन्होंने देव द्वारा श्रमण

को संरक्षण दिए जाने की बात की प्रशंसा की। इतने में नरक का स्वामी बोल उठा : "सम्राट, अब आप को भी मरना है।" सम्राट ने पूछा : "किस लिए ?" नरक के स्वामी ने उत्तर दिया : "सम्राट, आपने हमें आदेश दिया था कि जो भी इस नरक के प्राचीर के भीतर पहुंचे, उसका वध कर दिया जाए। आपने यह नहीं कहा था कि सम्राट इसके अपवाद हैं।" सम्राट ने कहा : "नियम जब एक बार बनाया गया, तो उसमें परिवर्तन करना अनुचित है। मैंने जो आदेश दिया था, उससे क्या तुम बच सकते हो ? यह मेरा ही दोष है कि तुम आज तक जीवित रह सके हो।" यह कह कर सम्राट ने सैनिकों को नरक के स्वामी को भट्ठी में डालने का आदेश दिया। उसकी मृत्यु के उपरांत ही सम्राट उस संकट से बच पाए। उन्होंने ऊंचे-ऊंचे प्राचीर को गिरवा दिया, गहरी-गहरी खाइयों को पाटने को कहा, नरक को नष्ट कर दिया और दंड के नियमों को उदार बनाया।

तीन. सम्राट अशोक ने बुद्ध की अस्थियां रखने वाले स्तूप बनवाए

नरक से कुछ दूर दक्षिण में एक स्तूप था, जो गिर चुका था। उसका केवल उलटे हुए घड़े जैसा भाग शेष रह गया था। उसके चार पार्श्वों पर रत्न और मणि जड़े हुए थे। जंगले पत्थर के थे। यह स्तूप उन चौरासी हजार स्तूपों में से एक था, जो सम्राट अशोक ने अपने प्रासाद में बनवाए थे। इस स्तूप में बुद्ध की एक शङ अस्थियां सुरक्षित थीं। इसमें कभी-कभी चमत्कार हुआ करता था और यह दिव्य प्रभा से आलोकित रहता था। नरक को नष्ट करने के पश्चात् सम्राट अशोक को महाअर्हत उपगुप्त के द्वारा अवसर से पूरा लाभ उठा कर धर्म-परिवर्तित किया गया। वे बौद्ध धर्म मानने लगे। सम्राट ने अर्हत से कहा : "अपने पूर्वजन्म में किए पुण्य कर्मों के परिणामस्वरूप मैं राजसिंहासन पर बैठा हूं। खेद की बात यह है कि अपने पाप के कारण मैं भगवान बुद्ध का प्रवचन न सुन सका। आज मैं बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित रखने हेतु नए-नए स्तूप खड़े करवाना चाहता हूं।" अर्हत ने कहा : "आप अपने पुण्य कर्मों से प्राप्त शक्ति के सहारे देवों द्वारा अपना मनोरथ पूरा कर लें और त्रिरत्नों की रक्षा करें, यही मेरी अभिलाषा है। अब इस अभिलाषा को साकार बनाने का समय आ गया है।" इसके अनंतर उपगुप्त ने सम्राट को भूमि-दान का हेतु विस्तृत रूप से समझाया और चौरासी हजार स्तूपों के निर्माण की तथागत की भविष्य-वाणी भी उन्हें बताई। यह सुन कर सम्राट अशोक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने देवों को बुला कर यह आदेश दिया : "धर्मराज मनुष्य को पुण्य कर्म के लिए दिग्दर्शन देते थे। यह सभी प्राणियों के लिए सुख की बात है। मैं अपने पूर्वजन्म में किए पुण्य कर्मों के बल पर

प्रजापति बना हूं। मैंने तथागत की अस्थियों को नए स्तूपों में सुरक्षित रखने की ठान ली है। तुम देवों को एक हो कर समूचे जम्बूद्वीप में कोटि-कोटि बसे हुए स्थानों में बुद्ध की अस्थियां रखने हेतु स्तूप खड़े करने चाहिए। मनोरथ तो मेरा है, लेकिन इसे मूर्त रूप देने का काम तुम देवों पर निर्भर है। इससे जो पुण्य फल प्राप्त होगा, उस पर मैं अकेला एकाधिकार नहीं करूंगा। तुममें से प्रत्येक को एक स्तूप बनाना चाहिए। काम पूरा हो जाने पर फिर यहां आना।" देवों ने आदेशानुसार अपने-अपने स्थान पर जा कर स्तूपों का निर्माण आरंभ किया एवं काम पूरा हो जाने पर वे नया आदेश पाने वापस आए। सम्राट अशोक आठ राज्यों द्वारा निर्मित स्तूप खोल कर बुद्ध की अस्थियां निकाल लीं और देवों में बांट दीं। ऐसा करने के पश्चात् सम्राट अशोक ने अर्हंत उपगुप्त से कहा : "मैं चाहता हूं कि सभी स्थानों में एक ही समय में बुद्ध की अस्थियां स्तूप के अन्दर रखी जाएं। यह मेरी आशा तो है, किन्तु पूरी नहीं हो सकेगी।" अर्हंत ने कहा : "महाराज, आप देवों को आदेश दें कि निश्चित तिथि को जिस समय सूर्य एक हाथरूपी छाया से ढंक जाए, उसी समय एक साथ बुद्ध की अस्थियों को स्तूपों के भीतर रखा जाए।" सम्राट ने यही आदेश देवों को दे दिया। पूर्वनिर्धारित तिथि आई, सम्राट अशोक आकाश की ओर दृष्टि स्थिर किए उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगे। जब सूर्य मध्य आकाश में पहुंचा, तब अर्हंत ने ऋद्धि शक्ति के सहारे अपने हाथ से उसे ढांप दिया। जिन-जिन स्थानों में स्तूप निर्मित किए गए थे, उन्हीं स्थानों में सभी देव यह दृश्य देख पाए और उन्होंने एक ही समय में बुद्ध की अस्थियों को अपने अपने स्तूपों के भीतर रख दिया। इस प्रकार यह महान कार्य पूरा हो गया।

चार. तथागत के पदचिह्नों वाली शिला

स्तूप के समीप स्थित विहार में एक बृहदाकार शिला थी। उस पर तथागत ने दो पदचिह्न छोड़ रखे थे। प्रत्येक पदचिह्न एक छि आठ छुन लम्बा और छः छुन चौड़ा था। दोनों पदचिह्नों पर सहस्र आरों वाले पहिये के चित्र थे। पांव की दसों उंगलियों पर स्वस्तिक के चिह्न थे। पदचिह्नों में मछली की आकृतियां दिखाई देती थीं और वे समय-समय पर किरणें फेंकती थीं। जब तथागत ने परिनिर्वाण हेतु उत्तर की दिशा में कुशीनगर जाते हुए रास्ते में मुड़ कर दक्षिण की दिशा में मगध पर दृष्टि डाली, तब उन्होंने इस शिला पर खड़े हो कर आनन्द से कहा था : "मैं परिनिर्वाण को प्राप्त हो रहा हूं। अब मैं मुड़ कर मगध पर दृष्टि डाल रहा हूं और ये पदचिह्न छोड़ चला जा रहा हूं। सौ वर्ष के पश्चात सम्राट अशोक जब समूचे मनुष्य लोक पर शासन करेगा, तब यहां राजधानी स्थापित करेगा, त्रिरत्नों की रक्षा करेगा एवं देवों से काम कराएगा।" जब अशोक ने राज्यारोहण किया तब उन्होंने यहां एक नगर खड़ा कर अपनी राजधानी स्थापित की एवं शिला को सुरक्षित

रखने हेतु एक विहार बनवाया। यह प्रासाद के निकट ही था, अतएव वे नित्य इसके दर्शन किया करते थे। बाद में विभिन्न राजाओं ने यह शिला उठा कर ले जाना चाहा। शिला अधिक बड़ी नहीं थी, पर कोई भी उसे उठाने में समर्थ नहीं हो सका था। कुछ समय पूर्व राजा शशांक बौद्ध धर्म का अन्त करने के विचार से यहां आए थे और उन्होंने इस पवित्र शिला को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहा था। खोदे जाने पर भी यह शिला फिर अतीत की भांति ही समतल हो गई और चित्र एवं रंग फिर अतीत जैसे ही हो गए। शिला को गंगा में फेंक दिया गया, लेकिन वह तुरंत अपने पुराने स्थान पर वापस लौट आई। शिला के समीप जिस स्थल पर एक स्तूप खड़ा था, वहां चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

पांच. अशोक का स्तंभ-लेख

तथागत के पदचिह्नों वाले विहार के निकट एक प्रस्तर स्तंभ खड़ा था। वह तीस छि से अधिक ऊंचा था। उस पर जो अभिलेख खुदा था, वह अधूरा रह गया है। अभिलेख का सार यह था : "सम्राट अशोक अपने विश्वास में दृढ़ हैं। उन्होंने बुद्ध, धर्म और संघ को तीन बार जम्बूद्वीप का दान किया और तीनों बार अपने अमूल्य रत्नों व मणियों से उसे वापस ले लिया।" अभिलेख लम्बा था, पर उसका सार यही था।

छः. महेंद्र की कथा

पुराने प्रासाद के उत्तर में पत्थर से बना एक बड़ा भवन था। वह देखने में एक पर्वत सा लगता था। उसके भीतर कई चाङ लम्बा-चौड़ा कक्ष था। वह भवन सम्राट अशोक ने अपने छोटे भाई प्रव्राजक महेंद्र के लिए देवों द्वारा बनवाया था। महेंद्र अभिजात वंश का पुत्र था। वह दुराकांक्षा से प्रेरित हो सम्राट जैसे वस्त्र पहने रहता था, भोग-विलास करता था और मनचाहे कर्म कर डालता था। वह अत्यंत निष्ठुर था। प्रजा उससे घृणा करती थी, पर कुछ न कर सकती थी। वरिष्ठ मंत्रियों और वृद्ध अधिकारियों ने सम्राट अशोक से कहा : "आपके धृष्ट भाई का दुराचार सीमा लांघ गया है। जब शासक प्रजा के साथ समान व्यवहार करते हैं, तभी राज्य में स्थायित्व होता है। प्रजा से समर्थन पाने पर ही शासकों का स्थान सुदृढ़ हो जाता है। यह पूर्वजों का उपदेश है एवं वह प्राचीन काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना है कि आप राजनियमों का पालन करें एवं उसे नियम के अनुसार दण्ड दें।" सम्राट अशोक ने रोते हुए अपने भाई से कहा : "पूर्वजों का कार्य ग्रहण

करके मैं सभी मनुष्यों का आश्रयदाता बन गया हूं। तुम तो मेरे सगे भाई हो, भला मैं तुम्हारी देखभाल और रक्षा करना कैसे भूल सकता हूं? मैं तुम्हें संरक्षण और निर्देशन दे भी नहीं पाया कि तुमने विधियों का उल्लंघन कर डाला। अभी मैं पितरों से भयभीत हूं और मंत्रियों एवं प्रजा की आलोचना से हतबुद्धि हूं।" महेंद्र ने सिर नवाते हुए अपना अपराध स्वीकार करके कहा: "मैंने दुराचार कर विधियों का उल्लंघन किया है। आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे पुन: जीवन प्रदान करें और दण्ड को एक सप्ताह के लिए स्थगित करें।" उसकी बात मान कर अशोक ने उसे एक कालकोठरी में बन्द कर दिया और कड़ा पहरा भी बैठा दिया। साथ ही उसे बढ़िया भोजन दिलवाया, जिससे उसे जीवन में कोई अभाव अनुभव न हो। पहरेदार ऊंचे स्वर में बोला: "एक दिन बीत चुका है। और छः दिन शेष हैं।" इस प्रकार छः दिन बीत गए। महेंद्र चिंतित और भयभीत अवश्य था, पर उसने पूरे चित्त से साधना की और अन्त में अर्हत्व प्राप्त किया। उसने आकाश में जा कर अपनी दैवी शक्ति का प्रदर्शन किया एवं मनुष्य लोक से दूरस्थ एक उपत्यका में वास किया। अशोक ने स्वयं वहां जा कर उससे कहा: "पहले मैंने राजनियमों से बद्ध होने के कारण तुम्हें कड़ा दण्ड देना चाहा था। सोचा तक नहीं था कि तुम्हें साधना करके अर्हत्व प्राप्त होगा। अब तुम्हें मोक्ष-प्राप्ति हुई है। अब तुम राजधानी में वापस लौट सकते हो।" महेंद्र ने कहा: "पहले मैं मायाजाल में फंस कर रूप और रंग में रत था। अब मैं भयजनक नगर जैसे मनुष्य लोक से बाहर निकल आया हूं। यह घाटी मुझे जंच गई है। आप मुझे मनुष्य लोक से अलग इस उपत्यका में सदा के लिए रहने दें तो अच्छा हो!" अशोक बोले: "मन को शांत रखने के लिए क्या गहरी घाटी में जा कर ही रहना आवश्यक है? पर तुम्हारी इच्छा पूरी करने हेतु मैं यहां तुम्हारे लिए एक निवासस्थान बनवाऊंगा।" अशोक ने देवों को बुला कर कहा: "मैं परसों एक भोज का आयोजन करूंगा। आप लोगों को उसमें उपस्थित होना चाहिए और साथ ही आसन के लिए एक-एक बड़ी शिला भी लानी चाहिए।" यह आदेश पा कर देवगण पूर्व-निश्चित तिथि पर भोज में उपस्थित हुए। भोज की समाप्ति पर अशोक ने उनसे कहा: "शिला के आसन इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। आपको स्वयं उनका एक ढेर लगाना चाहिए। मैं आपकी शक्ति का प्रयोग कर इन शिलाओं से एक कक्ष बनाना चाहता हूं।" उनके आदेशानुसार देवों ने एक दिन से भी कम समय में शिलाओं से एक शैलकक्ष बना दिया। तब सम्राट अशोक स्वयं महेंद्र के यहां जा कर उसे इस कक्ष में रहने के लिए लिवा लाया।

सात. सम्राट अशोक के अन्य निर्माणों के अवशेष

पुराने प्रासाद के उत्तर और नरक के दक्षिण में प्रस्तर की एक बृहदाकार द्रोणी थी। वह सम्राट अशोक ने देवों से बनवाई थी। वह प्रस्तर द्रोणी भिक्षुओं को भोजन-दान करने

के काम में आती थी।

पुराने प्रासाद के दक्षिण-पश्चिम में एक पथरीली पहाड़ी थी। उसकी घाटी में दसियों प्रस्तर कोठियां थीं, जो सम्राट अशोक ने उपगुप्त आदि अर्हतों के निवास के लिए देवों से बनवाई थीं। पहाड़ी के समीप पहले एक चबूतरा भी था। वह ढह चुका था और केवल पत्थरों का एक ढेर शेष रह गया था। एक कुंड और भी था। कुंड में जल कभी तरंगित हो जाता था, तो कभी शांत हो कर शीशे की भांति स्थिर हो जाता था। पड़ोसी राज्यों और दूर के लोग उसे पवित्र जल कहते थे। इस कुंड का जल पीने या कुंड में स्नान करने से पाप समाप्त हो जाता था।

पहाड़ी के दक्षिण-पश्चिम में पांच स्तूप थे। उनके आधार तो ढह चुके थे, पर ऊपर वाले भाग फिर भी बहुत ऊंचे थे। दूर से दृष्टि डालने पर वे एक पर्वत जैसे लगते थे। स्तूपों का प्रत्येक पार्श्वभाग सैकड़ों कदम लम्बा था। इन स्तूपों के आधार पर परवर्ती लोगों ने छोटे-छोटे स्तूप खड़े किए थे। "सिंधु कथा" में यह उल्लेख मिलता है : "भूत काल में जब सम्राट अशोक चौरासी हजार स्तूप बनवा चुके, तब भी बुद्ध की पांच शङ अस्थियां शेष रह गई थीं। इसलिए और पांच ऊंचे-ऊंचे स्तूप बनाए गए। उनका आकार-प्रकार अन्य स्थानों के स्तूपों से बिलकुल भिन्न था। उन पर चमत्कार हुआ करते थे और इस प्रकार तथागत का पंचवर्गीय धर्मकाय प्रदर्शित होता था। सद्धर्म में विश्वास न करने वालों की मान्यता थी कि ये राजा नन्द द्वारा सात अमूल्य रत्न रखने के लिए बनवाए गए पांच भण्डार थे। बाद में एक ऐसा राजा भी हुआ जो बौद्ध धर्म नहीं मानता था। वह ऐसी अनर्गल बातों में आ कर लोभवश उनकी खुदाई के लिए दल-बल सहित निकला। जब वे वहां पहुंचे, तो सहसा भूकंप आने से पर्वत गिरे और भीषण हिमपात से अंधेरा छा गया एवं स्तूपों में बिजली गरज उठी। सैनिक धरती पर गिर पड़े और हिल-डुल न सके। हाथी और घोड़े भयतीत हो कर बेतहाशा भाग निकले। इसके पश्चात् किसी को भी उनकी ओर ललचाई दृष्टियों से देखने का साहस नहीं हुआ।" कुछ लोगों का कहना था कि यह चर्चाओं का एक विषय तो रहा है, किन्तु सत्य नहीं है। परन्तु प्राचीन अभिलेख के अनुसार यह एक सत्य था।

आठ. कुक्कुटाराम

पुराने नगर के दक्षिण-पूर्व में कुक्कुटाराम अवस्थित था। वह सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने पर श्रद्धापूर्वक बनवाया गया था। तब उन्होंने पुण्य फल प्राप्त करने हेतु शुभ कर्म किए और एक हजार भिक्षुओं एवं अर्हतों को इस संघाराम में आमंत्रित कर उनका चार वस्तुओं से सत्कार किया तथा उन्हें दैनिक उपयोग की वस्तुओं का दान

दिया। यह संघाराम कब का जर्जरित हो चुका था। केवल इसका खण्डहर ही रह गया था।

नौ. आमलक स्तूप

कुक्कुटाराम के समीप एक बड़ा स्तूप था जो आमलक स्तूप कहलाता था। आमलक भारत में औषधि के काम में आने वाला एक प्रकार का फल है। सम्राट अशोक को जब रोगशय्या पर पड़े-पड़े यह ज्ञात हुआ कि अब उनका प्राण बचाया नहीं जा सकता, तो उन्होंने अगले जन्म में पुण्य फल की प्राप्ति के लिए रत्नों का दान करना चाहा। लेकिन तब सत्ता वरिष्ठ मंत्रियों के हाथ में थी, सम्राट अशोक के आदेश का पालन नहीं किया गया। बाद में औषधि का सेवन करते समय सम्राट अशोक ने अपने पास एक आमलक छिपा रखा। वे आमलक से तब तक खेलते रहे जब तक उसका आधा भाग सड़ न गया। तभी उन्होंने हाथ में आमलक पकड़े एक दीर्घ श्वास छोड़ा और मंत्रियों से प्रश्न किया : "जम्बूद्वीप का स्वामी कौन है?" मंत्रियों ने उत्तर दिया : "महाराज, आप ही तो हैं।" सम्राट अशोक बोले : "नहीं, आज मैं जम्बूद्वीप का स्वामी नहीं हूं। केवल इसी आधे आमलक पर मेरा अधिकार है। हाय, दीपक वायु में बुझ जाता है, मनुष्य की महिमा बनाए रखना भी कितना कठिन है। मैं देश पर शासन करता था और मेरी उपाधि भी अन्य सभी उपाधियों से सर्वोच्च थी। लेकिन अंतिम सांस लेते समय मेरे पास कुछ भी नहीं रह गया है। तिस पर दुष्ट मंत्रियों का अनादर भी सहना पड़ता है। इस आधे फल को छोड़ कर जगत पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।" यह कह कर सम्राट अशोक ने एक दास से कहा : "यह आधा आमलक ले कर कुक्कुटाराम जाओ, भिक्षुओं को इसका दान करो और कह दो कि समूचे जम्बूद्वीप का भूतपूर्व स्वामी अब केवल आधे आमलक का राजा रह गया है। वह भिक्षुओं को प्रणाम करता है और उसकी इच्छा है कि आप लोग उसका यह अंतिम दान स्वीकार करें। जितनी वस्तुएं मेरे पास थीं, वे सब की सब खो चुकी हैं। केवल इस आधे आमलक पर मेरा थोड़ा बहुत अधिकार है। मैं दरिद्र हूं तथापि आशा है कि इस दान से मुझे पुण्य फल मिल सकेगा।" कुक्कुटाराम के स्थविर ने कहा : "सम्राट अशोक सभी मनुष्यों का उद्धार करना चाहते थे। आज वे शीतज्वर से ग्रस्त हैं। दुष्ट मंत्रियों ने सत्ता हथिया ली है। उनकी सभी संचित संपदा से उनको वंचित रखा गया है। दान में वे केवल यही आधा फल देने में समर्थ हैं। मैं अवश्य उनके आदेशानुसार सभी भिक्षुओं को इसे खिलाने का प्रबंध करूंगा।" उन्होंने इस आधे फल को पानी में उबालने को कहा। इसके अनंतर उन्होंने फल के गूदे को सुरक्षित रखने हेतु एक स्तूप बनवाया। यह स्तूप सम्राट के उपकार की स्मृति में खड़ा किया गया था।

दस. घंटा-शब्द-स्तूप एवं देव की कथा

ग्रामलक स्तूप के उत्तर-पश्चिम में एक पुराने संघाराम में घंटा-शब्द-स्तूप खड़ा था। भूत काल में इस नगर में लगभग सौ संघाराम थे ग्रौर भिक्षु स्वभाव के गंभीर ग्रौर ज्ञानी थे। तीर्थिक विद्वान चुप्पी साधे रहते थे। कालांतर में ये भिक्षु क्रमश: स्वर्गवासी हुए ग्रौर परवर्ती भिक्षुग्रों में से कोई भी उनका सक्षम उत्तराधिकारी न बन सका, जबकि तीर्थिक विद्वानों ने सुयोग्य शिष्यों को प्रशिक्षित किया था। उन्होंने सहस्रों साथियों को एकत्रित किया तथा संघाराम के सामने ऊंचे स्वर में ललकारा : "घंटे बजाग्रो, ग्रपने ज्ञानियों को बुला लाग्रो!" तब उन मूर्खों ने बिना सोचे-समझे घंटे बजा दिए। राजा की ग्रनुमति पा कर तर्क-वितर्क ग्रारम्भ हुग्रा। तीर्थिक वाक्पटु ग्रौर मेधावी थे, जबकि भिक्षुग्रों की संख्या ग्रधिक तो थी, लेकिन उनका पक्ष निर्बल था। तीर्थिकों ने कहा : "हम विजयी हुए हैं। ग्रब से सभी संघारामों में भिक्षुग्रों को एकत्रित करने के लिए घंटे बजाने की ग्रनुमति नहीं होगी!" राजा ने तर्क-वितर्क से पूर्व निर्धारित किए गए नियमों के ग्रनुसार तीर्थिकों की मांग पूरी की। भिक्षु ग्रपमानित हुए एवं निरुपाय हो कर चले गए। तब से बारह वर्षों तक एक बार भी घंटे नहीं बजाए गए। उस समय दक्षिणापथ में नागार्जुन नाम के एक बोधिसत्व थे। बचपन में ही उनकी ख्याति फैल गई थी। सयाने होने पर उनकी प्रतिष्ठा ग्रौर भी बढ़ती चली गई। उन्होंने सभी वासनाग्रों का त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की, एकाग्र-चित्त से बौद्ध धर्म के सूत्रों का ग्रध्ययन किया एवं प्रथम स्थान प्राप्त किया। उनके शिष्य देव प्रज्ञासहाय चतुर, कुशाग्रबुद्धि एवं मेधावी थे। उन्होंने ग्रपने ग्राचार्य से कहा : "पाटलिपुत्र में तर्क-वितर्क में तीर्थिकों से हारने के पश्चात् उन विद्वानों को घंटे बजाने से मना किए बारह वर्ष बीत चुके हैं। मैं वहां जा कर धर्म-विरुद्ध मान्यताग्रों के पर्वत को गिराना ग्रौर सद्धर्म की मशाल प्रज्वलित करना चाहता हूं।" नागार्जुन ने कहा : "पाटलिपुत्र के तीर्थिक विद्वान हैं। तुम उनका सामना करने में ग्रसमर्थ हो। यदि वहां जाना है, तो मैं स्वयं जाऊंगा!" देव बोले : "सड़ी-गली घास को उखाड़ फेंकने हेतु पूरे पर्वत को गिराने की क्या ग्रावश्यकता है? ग्राप मुझे ग्रनुमति दें कि ग्रापके उपदेशों के ग्रनुसार उन तीर्थिकों के तर्कों का खण्डन करूं। ग्राचार्यवर, ग्राप तीर्थिकों की ग्रोर से तर्क प्रस्तुत करें ग्रौर मैं उनका खण्डन करूंगा, जिससे दोनों पक्षों की प्रबलता ग्रौर निर्बलता ज्ञात हो सके। फिर हम वहां जाने की योजना बनाएं।" उनकी बात मान कर नागार्जुन ने तीर्थिकों की ग्रोर तर्क प्रस्तुत किए ग्रौर उनका पक्ष-समर्थन किया। देव उनके मतों का खण्डन करने लगे। एक सप्ताह के उपरांत नागार्जुन के सभी मतों का खण्डन कर दिया गया ग्रौर वे भावविभोर हो कर बोले : "ग्रसंगत कथनों का सुगमता से खण्डन किया जा सकता है ग्रौर धर्म-विरुद्ध मत टिक नहीं सकते। जाग्रो! तुम उन्हें ग्रवश्य पराजित कर सकोगे!" बोधिसत्व देव

पहले से ही प्रतिष्ठित थे। यह संवाद पा कर पाटलिपुत्र के तीर्थिक तुरंत एकत्र हुए और उन्होंने राजा से कहा : "महाराज, पहले आप कृपा कर तर्क-वितर्क के स्थल पर उपस्थित हुए थे और श्रमणों को घंटे बजाने से मना किया गया था। हमारी प्रार्थना है कि आप सभी द्वारपालों को यह आदेश दें कि वे किसी परदेशी भिक्षु को नगर के भीतर न आने दें, ताकि भिक्षु एक दूसरे का समर्थन न कर पाएं और पहले के नियम को योंही बदला न जा सके।" राजा ने उनकी प्रार्थना मान कर कड़ा प्रबंध किया। फलस्वरूप देव को नगर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं मिली। निषेधाज्ञा सुन कर उन्होंने वस्त्र बदल दिया और संघाटी को तह कर घास के गठ्ठर में छिपा लिया। फिर वे वस्त्र का पल्ला कमर में खोंस, सिर पर घास का गठ्ठर उठा तेज कदमों से नगर के द्वार से गुजर गए। नगर में प्रविष्ट होने के बाद उन्होंने घास का गठ्ठर फेंक दिया और संघाटी पहन ली। ऐसा कर वे इस संघाराम में इस विचार से पधारे ताकि वहां डेरा डाला जा सके। पर जान-पहचान न होने के कारण किसी ने भी उन्हें ठहरने की अनुमति नहीं दी। उन्हें विवश हो कर घंटे के चबूतरे पर रात गुजारनी पड़ी। पौ फटते ही वे पूरी शक्ति से घंटा बजाने लगे। घंटे का शब्द सुन भिक्षुओं ने आ कर देखा कि घंटा बजाने वाला वही परदेशी भिक्षु है, जो कल आया था। तभी अन्य संघारामों में भी घंटे बजाए गए। राजा ने जांच के लिए अधिकारी भेजा, पर कोई बता न सका कि सर्वप्रथम घंटा किसने बजाया था। जब अधिकारी इस संघाराम में आया, तो भिक्षुओं ने देव का नाम लिया। देव ने कहा : "घंटे का अर्थ भिक्षुओं को बुलाने के लिए बजाई जाने वाली वस्तु मात्र ही है। यदि उसके उपलब्ध होने पर उसका प्रयोग नहीं किया जाता, तो फिर उसे लटकाने की क्या आवश्यकता है ?" अधिकारी बोला :"भूत काल में तर्क-वितर्क में भिक्षु हार गए थे। राजा ने आदेश दे कर घंटा बजाने का निषेध किया था। तब से अब तक बारह वर्ष हो चुके हैं।" देव ने कहा : "क्या ऐसी बात हुई है ? तो आज मैं सद्धर्म पुनर्प्रतिष्ठित करूंगा।" अधिकारी ने लौट कर राजा से कहा : "एक परदेशी भिक्षु भूत काल के अपमान का बदला लेना चाहता है।" तब राजा ने विद्वानों को बुलाया और कहा : "तर्क-वितर्क में जो पराजित होगा, उसे मरना होगा।" तीर्थिक विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत कर उन्हें स्पष्ट किया और अपनी वाक्पटुता का परिचय दिया। बोधिसत्व देव पहले अपने आसन पर बैठे सुनते रहे, फिर उन्होंने उनके मतों का एक-एक करके खण्डन कर डाला। बारह दिन भी नहीं बीते कि उन्होंने सभी तीर्थिकों को परास्त कर दिया। राजा और मंत्रीगण प्रसन्न हुए और उन्होंने देव के सद्गुणों की स्तुति में यह स्तूप खड़ा करवा दिया।

ग्यारह. अश्वघोष के अवशेष

घंटा-शब्द-स्तूप के उत्तर में वाचाल ब्राह्मण के निवास का खण्डहर था।

पहले इस नगर में एक ऐसा ब्राह्मण था, जो निर्जन स्थान में कुटी बना कर रहता था और अन्य लोगों के साथ उसका आवागमन बन्द था। वह प्रेतात्माओं की पूजा करके सिद्धि प्राप्त करता था और उनसे सहायता प्राप्त कर लम्बी-चौड़ी बातें कर सकता था और वाद-विवाद में शब्दाडम्बर करता रहता था। जब कोई उससे प्रश्न करने जाता था, तो वह सदा परदा गिरा कर उत्तर देता था। धुरंधर विद्वानों में से कोई भी उसे निरुत्तर न कर सका था। अधिकारी एवं प्रजा दोनों उसका बड़ा आदर करते थे और उसे एक महात्मा मानते थे। अश्वघोष नामक बोधिसत्व सर्वज्ञ थे और सद्धर्म के मतों में पारंगत थे। उन्होंने लोगों से कहा : "इस ब्राह्मण ने न किसी पंडित से शिक्षा पाई, न पूर्वजों से विद्याएं सीखीं। एकान्त निर्जन में रहते हुए भी उसका नाम चमका है। यदि उसे प्रेतात्माओं की मदद न होती एवं राक्षस उस पर सवार न होते, तो वह कैसे ऐसा कर सकता? जो भी व्यक्ति प्रेतात्माओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों से वाद-विवाद करता है, वह मनुष्य के सम्मुख नहीं बोल सकता है और न ही अपनी बात दुहरा सकता है। आज मैं उसके पास जाऊंगा और देखूंगा कि वह क्या करता है।" अश्वघोष उस ब्राह्मण की कुटी में जा कर उससे बोले : "मैं दीर्घकाल से आपके सद्‌गुणों का प्रशंसक रहा हूं। मेरी प्रार्थना है कि आप परदा उठा लें। मैं आपसे अपने विचार प्रकट करने की धृष्टता करना चाहता हूं।" पर ब्राह्मण अभिमानी था। वह अन्यमनस्क हो कर परदे के पीछे से अश्वघोष से बातें करता रहा और सामने आ कर बातें नहीं कीं। अश्वघोष समझ गए कि इसमें अवश्य प्रेतात्माओं का हाथ है। सो उन्होंने भी अहंकार प्रदर्शित किया। बात समाप्त करके बाहर आने पर उन्होंने लोगों से कहा : "मैं उसे अच्छी तरह जान गया हूं। मैं उसे निश्चित रूप से पराजित कर दूंगा।" उन्होंने राजा के यहां जा कर प्रार्थना की : "आशा है कि आप मुझे उस गृहस्थ से तर्क-वितर्क करने की अनुमति देंगे।" यह सुन कर राजा को आश्चर्य हुआ : "यह कौन है? यदि यह त्रिविद्याओं और षड्भिज्ञाओं से युक्त नहीं होता, तो उस ब्राह्मण से तर्क-वितर्क करने में कैसे समर्थ हो सकता है?" राजा ने रथ तैयार करने की आज्ञा दी और स्वयं उनका तर्क-वितर्क सुनने जाने का निर्णय लिया। अश्वघोष ने त्रिपिटकों के सूक्ष्म अर्थों और पांच विद्याओं के महत्वपूर्ण तत्वों पर प्रकाश डाला, कुशलता से तर्क-वितर्क करते हुए गूढ़ बातों को अल्प शब्दों में ही स्पष्ट कर दिया। जब ब्राह्मण ने अपनी बात समाप्त की, तब अश्वघोष ने ऊंचे स्वर में कहा : "आपने मेरे तर्कों का गलत अर्थ लगाया है। एक बार फिर बोलिए तो!" ब्राह्मण निरुत्तर हो कर चुप्पी साधे रहा। अश्वघोष ने क्रोध में आ कर फटकारा : "आप मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं? उसकी पूजा के पात्र प्रेतात्माओ, शीघ्र उसे बोलना सिखा दें!" यह कहते हुए अश्वघोष परदा उठा कर प्रेतात्माओं को देखने भीतर गए। ब्राह्मण घबरा कर बोला : "रुको! रुक जाओ!" अश्वघोष ने बाहर आ कर कहा : "आज सुबह इसकी नाक कट गई है। 'खोखला नाम स्थिर नहीं होता'

की कहावत चरितार्थ हुई है।" राजा ने कहा : "ग्राप जैसे सद्‌गुणी के अतिरिक्त इस विधर्मी का भण्डाफोड़ करने में कौन समर्थ हो सकता है ! आपमें दूसरों को पहचानने की जो क्षमता है, वह अभूतपूर्व है। राजनियमानुसार आपके असाधारण योगदान की प्रशंसा की जानी चाहिए।"

बारह. तेलाढक संघाराम और उसके समीप बुद्ध संबंधी अवशेष

नगर से दो सौ ली दूर दक्षिण-पश्चिम में संघाराम के अवशिष्ट थे। उसके समीप एक स्तूप था। इस स्तूप से दिव्य प्रकाश फैला करता था एवं कभी-कभी चमत्कार भी होता था। दूर व निकट के लोग यहां आ कर वर मांगते थे। यहां चार भूत बुद्धों के चंक्रमण और आसनों के अवशेष थे।

इस जर्जर संघाराम से सौ ली से अधिक दूर दक्षिण-पश्चिम में तेलाढक संघाराम स्थित था। संघाराम में चार प्रांगण थे। भवन तीन तल्लों के थे। चबूतरे बहुत ऊंचे थे और एक के बाद एक अनेक खुले द्वार थे। वह संघाराम राजा बिंबिसार के अंतिम वंशज ने बनवाया था। उन्होंने व्यापक रूप से मेधावी विद्वानों एवं सच्चरित्र विभूतियों को निमंत्रित किया था। विदेशी ज्ञानी तथा दूर के प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति दलों में यहां आए। संघाराम में एक हजार भिक्षु थे। वे सभी महायानी थे। बीच के द्वार के आगे रास्ते में तीन चैत्य थे। उनके शिखरों पर चक्के थे तथा चक्कों के चारों ओर घंटियां लटकी हुई थीं। नीचे चबूतरे थे, जिनके इर्द-गिर्द बरामदे थे। द्वारों, खिड़कियों, धरनों, छोटी दीवारों और सोपानों पर सोने की कलई चढ़ाई गई थी तथा उन्हें विविध रूप से सजाया गया था। बीच के चैत्य में एक बुद्ध-प्रतिमा थी जो तीन चाङ ऊंची थी। बाएं चैत्य में बोधिसत्व तारा की मूर्ति एवं दाएं चैत्य में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति सुशोभित थीं। ये तीनों मूर्तियां तांबे से बनी थीं। उनकी मुद्राएं गंभीर, रहस्यपूर्ण, भयजनक एवं दूरदर्शी थीं। प्रत्येक चैत्य में बुद्ध की एक-एक शङ अस्थियां सुरक्षित थीं। वे समय-समय पर दिव्य किरणें फेंकती थीं और कभी-कभी चमत्कारिक दृश्य दिखाती थीं।

तेलाढक संघाराम से नब्बे ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक ऊंचा पर्वत था। पर्वत पर बादल और कोहरा छाए रहते थे। चट्टानों के जंगल थे। यह देवों और ऋषियों का निवास-स्थान था। विषैले सर्प और नरभक्षी नाग तालाबों में छिपे रहते थे। वन में हिंस्र पशु-पक्षियों का राज था। पर्वत की चोटी पर एक बृहदाकार शिला थी, जिस पर एक दसेक छि ऊंचा स्तूप खड़ा था। यहां बुद्ध ने समाधि लगाई थी। तथागत दिव्य शक्ति

प्रदर्शित कर इस स्थल पर उतर आए और इस शिला पर रात भर विमुक्ति का आनन्द लेते हुए एक आसन से बैठे रहे। देवों और ऋषियों ने आ कर उनकी सेवा की, स्वर्ग का संगीत बजाया एवं फूलों की वर्षा की। जब तथागत समाधि से उठ गए, तब देवों ने श्रद्धा से रत्नों, स्वर्ण और रजत से यहां एक स्तूप खड़ा कर दिया। कालांतर में ये अमूल्य धातुएं पत्थर में बदल गईं। प्राचीन काल से आज तक किसी ने भी इस स्तूप के दर्शन नहीं किए थे। दूर से पर्वत पर दृष्टि डालने पर एक भी मनुष्य नहीं दीखता था, केवल यह देखा जाता था कि सर्प और पशु झुंड के झुंड में स्तूप की प्रदक्षिणा कर रहे थे तथा देव, ऋषि, अप्सराएं व मुनि पंक्तियों में उसकी स्तुति और पूजा करते थे।

पर्वत क़ी पूर्वी ढाल पर एक स्तूप था, जहां खड़े हो कर तथागत ने देर तक मगध को निहारा था।

तेरह. गुणमति संघाराम और उसकी कथा

उस ऊंचे पर्वत से तीस ली से अधिक दूर उत्तर-पश्चिम में ढलान पर एक संघाराम था। उसके पीछे चट्टानें थीं। और उसका आधार बहुत ऊंचा था। यह संघाराम खड़ी चट्टानों को खोद कर बनाया गया था। भवन ऊंचे-ऊंचे खड़े थे। इसमें पचास से अधिक भिक्षु थे। वे सबके सब महायानी थे। इस स्थल पर बोधिसत्व गुणमति ने एक तीर्थिक को पराजित किया था।

उस काल में इस पर्वत पर माधव नाम के एक तीर्थिक रहते थे। वे सांख्य मतावलम्बी थे और सांख्य-योग की साधना करते थे। वे अपने सांख्य मतों तथा परधर्मों के सिद्धांतों में पारंगत थे एवं भावाभावता का अर्थ सम्यक रूप से समझाने में समर्थ थे। उनकी ख्याति उनके पूर्ववर्तियों से भी बढ़ कर थी और उनके सद्‌गुणों की उनके समकालीन लोग प्रशंसा करते थे। राजा उन्हें सिर-आंखों पर रखते थे और उन्हें रत्न की संज्ञा देते थे। अधिकारी और प्रजा उनका आदर करते थे और उन्हें आचार्य कह कर पुकारते थे। पड़ोसी राज्यों के विद्वान उनकी अध्ययन-विधि ग्रहण कर उनके सद्‌गुणों की प्रशंसा के पुल बांधते रहते थे एवं उन्हें अपना वरिष्ठ समझते थे। वे सच्चे अर्थों में सर्वज्ञ थे। राजा ने परंपरा के अनुसार उन्हें पुरस्कार में दो नगर भी दिए। उस समय दक्षिणापथ में गुणमति नाम के एक बोधिसत्व थे। वे छुटपन में ही बुद्धिमान निकले और गूढ़ार्थों के गहन अध्ययन के लिए उन्होंने सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। वे त्रिपिटक और चार आर्य-सत्यों में पारंगत थे। यह सुन कर कि माधव के सिद्धान्त अत्यन्त गूढ़ और सूक्ष्म हैं, बोधिसत्व गुणमति ने उन्हें पराजित करने का संकल्प किया। उन्होंने अपने एक शिष्य के द्वारा माधव को यह संदेश भिजवाया: "माधव को प्रणाम। आपको थकावट की उपेक्षा कर अपनी सीखी

हुई बातों को दुहराते रहना चाहिए। तीन वर्ष उपरांत मैं ग्रा कर ग्रापकी ख्याति को धूल में मिला दूंगा।" उन्होंने दूसरे तथा तीसरे वर्ष भी इसी ग्राशय के संदेश भिजवाए। जब प्रस्थान का समय ग्राया, तब भी गुणमति ने एक पत्र लिख कर भिजवाया : "ग्रवधि पूरी हो चुकी है। ग्रापका ज्ञानार्जन क्या हुग्रा ? ग्रापको यह ज्ञात होना चाहिए कि मैं ग्रभी ग्रापके यहां जा रहा हूं।" माधव का मन कुम्हला गया। उन्होंने ग्रपने सभी शिष्यों ग्रौर नगरनिवासियों को यह ग्राज्ञा दी : "ग्रब से श्रमणों को ग्रपने घरों में ठहराना मना किया जाता है।" सभी परिवारों ने एक दूसरे को इस निषेधाज्ञा से ग्रवगत करा दिया तथा इस निषेधाज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए चेताया भी। बोधिसत्व गुणमति यष्टि टेकते हुए माधव के नगर में पहुंच गए। लोगों ने निषेधाज्ञा का पालन कर उन्हें ठहरने का स्थान नहीं दिया। कुछ ब्राह्मणों ने उन्हें डांटा-डपटा भी : "सिर मुड़ा, विचित्र वस्त्र पहना हुग्रा, यह विधर्मी कहां का है ? शीघ्र ही यहां से चले जाग्रो, रुकना मत !" बोधिसत्व गुणमति को तीर्थिक को पराजित करना था। ग्रतएव उन्होंने उनके नगर में रात्रि व्यतीत करना चाहा। उन्होंने शिष्टता से विनीत स्वर में कहा : "ग्राप लोग सत्य में विश्वास करने वाले सन्यासी हैं, ग्रौर मैं ग्रार्य-सत्य में विश्वास करने वाला सन्यासी हूं। जब हम सभी सन्यासी हैं, तो ग्राप लोग मेरा बहिष्कार क्यों करते हैं ?" ब्राह्मणों ने निरुत्तर रह कर उन्हें भगा दिया। नगर से भगा दिए जाने पर गुणमति ने एक घने वन में प्रवेश किया। वन में नरभक्षी पशु बहुधा दलों में निकल कर मनुष्यों का भक्षण करते रहते थे। एक स्थानीय बौद्ध ग्रनु-यायी इस चिन्ता से कि कहीं गुणमति पशुग्रों का शिकार न बन जाएं, मशाल उठाए ग्रौर लाठी लिए वहां ग्राया। वह बोधिसत्व से बोला : "दक्षिणापथ में गुणमति नाम के एक बोधिसत्व हैं। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। वे तर्क-वितर्क के लिए यहां ग्रा रहे हैं। इस नगर के शासक को यह ग्राशंका है कि उनकी ख्याति धूल-धूसरित हो जाएगी, इसलिए उन्होंने किसी श्रमण को ठहराने का कठोर निषेध कर दिया है। इस डर से कि कहीं बोधिसत्व गुणमति पर पशु प्रहार न करें, मैं उनकी मदद के लिए ग्राया हूं। ग्राप निश्चिंत हो कर चलिए, डरने की कोई बात नहीं।" गुणमति ने कहा : "सच कहूं, मैं ही गुणमति हूं।" यह सुन कर बौद्ध ग्रनुयायी श्रद्धापूर्वक गुणमति से बोला : "यदि यह सत्य है, तो शीघ्र ही मेरे साथ चलें।" वे घने वन से निकल कर एक वीरान दलदल में जा कर विश्राम करने लगे। बौद्ध ग्रनुयायी ने ग्रलाव जलाया। फिर वह धनुष लिए गुणमति की रक्षार्थ उनके चारों ग्रोर टहलता रहा। रात बीत गई। उसने गुणमति से कहा : "ग्रब ग्राप चले जाएं। मुझे ग्राशंका है कि कोई संवाद पा कर ग्रापकी हत्या के लिए ग्राएगा।" गुणमति ने कृतज्ञता से कहा : "मुझसे तुम्हारा उपकार भुलाए नहीं भूल सकेगा।" गुणमति प्रासाद के समक्ष ग्रा कर प्रहरी से बोले : "दूर से ग्राया एक श्रमण चाहता है कि महाराज उसे माधव के साथ तर्क-वितर्क करने की ग्रनुमति दें।" यह सुन कर राजा ने विस्मित हो कर कहा : "यह कोई एक सनकी

मात्र है।" उन्होंने एक दूत भेज कर माधव को अपनी आज्ञा भिजवा दी : "एक परदेशी श्रमण तर्क-वितर्क हेतु आया है। अब तर्क-स्थल तैयार किया जा चुका है। सार्वजनिक रूप से घोषणा भी की जा चुकी है। सब आपकी बाट जोह रहे हैं। मेरी आशा है कि आप अवश्य पधारेंगे।" माधव ने राजा के दूत से पूछा : "वह दक्षिणापथ का तर्कशास्त्री गुणमति है न ?" दूत ने कहा : "जी हां, वही है।" यह सुन कर माधव अप्रसन्न हुए। लेकिन बात इतनी बढ़ गई थी कि इसे अस्वीकृत नहीं किया जा सकता था। वे विवश हो कर तर्क-स्थल पर गए। तब तक वहां राजा, मंत्री, अधिकारी, जन-साधारण और अभिजात लोग चित्ताकर्षक तर्क-वितर्क सुनने के लिए उपस्थित हो चुके थे। गुणमति ने सर्वप्रथम हेतु प्रस्तुत किया, फिर इसका उपपादन किया। जब शाम का समय हुआ तब माधव ने आयु के गांभीर्य तथा मस्तिष्क के समुचित कार्य न कर सकने का बहाना बना कर कहा कि वे अभी प्रतिवाद करने में असमर्थ हैं और उन्होंने घर लौट कर एकांत में सोच-विचार करने और फिर विपक्ष के प्रश्न का उत्तर देने की अनुमति मांगी। प्रत्येक बार जब गुणमति एक नया प्रश्न उठाता था, तो वे घर लौट कर सोचने-विचारने की अनुमति मांगते थे। किन्तु अगले दिन सुबह जब वे आते, तो कोई विशिष्ट मत प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते थे। छठे दिन वे रक्त थूक-थूक कर चल बसे। मरणासन्न अवस्था में उन्होंने अपनी पत्नी से कहा : "तुम मेधावी हो। मेरे इस अपमान को कभी मत भूलना।" माधव के देहावसान के उपरांत उनकी पत्नी ने उनका अंतिम संस्कार नहीं किया, बल्कि भड़कीले वस्त्र पहन कर तर्क-स्थल पर आ गई। सभा में हो-हल्ला मच गया। लोगों ने एक दूसरे से कहा : "कदाचित माधव अपनी विद्वत्ता के बल पर गुणमति के साथ तर्क-वितर्क को अपनी अपकीर्ति समझते हैं, अतएव उन्होंने अपनी पत्नी यहां भेज दी है। इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि कौन किस पर विजयी हुआ है।" बोधिसत्व गुणमति ने माधव की पत्नी से कहा : "जो तुम्हें वशीभूत कर सकता है, उसे मैंने वशीभूत कर लिया है।" माधव की पत्नी को ज्ञात हुआ कि विजय पाना असंभव है। वह बाहर चली गई। राजा ने गुणमति से प्रश्न किया : "आपने ऐसी कौन सी गोपनीय बात कही है, जिससे वह चुप रह गई ?" गुणमति बोले : "बेचारे माधव की मृत्यु हो गई। उनकी पत्नी मेरे साथ वाद-विवाद करने आई थी।" राजा ने पूछा : "आपको कैसे पता चला कि उनकी मृत्यु हो गई है ? तनिक बताइए तो !" गुणमति ने उत्तर देते हुए कहा : "जब उनकी पत्नी आई, तब उसके मुख पर अपना आत्मजन खो देने का विषाद छा रहा था और उसकी बातों में दुःख और व्यथा का भाव भी कूट-कूट कर भरा हुआ था। इससे मैं ताड़ गया कि माधव चल बसे हैं। 'जो तुम्हें वशीभूत कर सकता है' से मेरा अर्थ उसके पति से था।" राजा ने सत्य पर्यवेक्षण हेतु दूत भेजा और गुणमति ने जो कुछ कहा, वही सत्य पाया गया। तब राजा ने लज्जित हो कर कहा : "बौद्ध धर्म सचमुच अद्भुत है। ऋषि-मुनि क्रमशः उत्पन्न हुए एवं असंस्कृत और संस्कृत धर्मों से सद्धर्म की रक्षा करते रहे

हैं, जिससे सभी प्राणियों को सद्धर्म में दीक्षित होने का अवसर मिला है। मैं परंपरा के अनुसार सच्चरित्र व्यक्ति को पुरस्कार दूंगा।" गुणमति ने कहा : "मैं तो अज्ञानी हूं, पर सद्धर्म के अनुरूप आचरण करता हूं, शील निभाता हूं, ज्ञान की प्राप्ति एवं आत्मसंतोष के सिद्धांतों पर दृढ़ रहता हूं तथा सभी वस्तुओं को समान दृष्टि से देखने का पक्षधर हूं। जब मैं दूसरों का उद्धार करना चाहता हूं, तो सर्वप्रथम विपक्ष का अहंकार तोड़ देता हूं, फिर स्थिति के अनुरूप उपाय कर प्राणियों का उद्धार करता हूं। अब समय आ गया है। मेरी केवल यही आशा है कि महाराज, आप माधव की जागीरों में सभी व्यक्तियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संघाराम के अधीन रहने देंगे। ऐसा होने से आने वाली पीढ़ियों को एक शिक्षा मिलेगी तथा साथ ही यह सत्कर्म सदा-सर्वदा बना रहेगा। जिस बौद्ध अनुयायी ने मुझे संरक्षण दिया था, उसे युग-युग तक सुख भोगना चाहिए। उसे भिक्षुओं का सा भोजन और भोग मिलना चाहिए, ताकि लोगों को बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखने की प्रेरणा मिल सके और सद्गुणियों को पुरस्कार मिल सके।" तब गुणमति के असाधारण योगदान की प्रशस्ति में यह संघाराम बनवाया गया था।

तर्क-वितर्क में माधव की पराजय के अनंतर दसेक ब्राह्मण पड़ोसी राज्य में भाग गए और उन्होंने स्थानीय तीर्थिकों से अपनी अपमानित होने की कहानी सुनाई। वे उन प्रतिभाशाली विद्वानों को बुला कर अपने अपमान का बदला लेने हेतु वापस लौट आए। राजा गुणमति का सत्कार और सम्मान करने लगे थे। उन्होंने स्वयं गुणमति के यहां जा कर उनसे कहा : "उन तीर्थिकों ने अपनी योग्यता का अधिक मूल्यांकन कर मिली-भगत कर तर्क-वितर्क हेतु ढोल बजाने का साहस किया है। मैं आशा करता हूं कि आचार्य उन्हें पराजित करेंगे।" गुणमति ने कहा : "तो उन्हें बुला लाएं।" तीर्थिक विद्वानों ने प्रसन्न हो कर एक दूसरे को ढाढ़स बंधाते हुए कहा : "अब की बार हम विजयी हो कर ही रहेंगे।" और उन्होंने अपने हेतु प्रस्तुत किए और उन्हें सिद्ध किया। तब बोधिसत्व गुणमति बोले : "वे तीर्थिक निर्वासित थे। राजा की आज्ञानुसार वे आज सबके सब अछूत हो गए हैं। भला मैं उनके साथ आमने-सामने वाद-विवाद कैसे कर सकता हूं?" गुणमति ने अपना पर्यंक उठाने के लिए एक लड़का रखा था। वह प्रायः पास में खड़ा रह कर गुणमति की चर्चा सुना करता था और इसलिए गूढ़ बातों में पारंगत हो गया था। उस समय वह पास में खड़ा ध्यान से वाद-विवाद सुन रहा था। गुणमति ने अपने पर्यंक को थपक कर कहा : "पर्यंक, तू ही वाद-विवाद करना!" यह सुन कर सभा में उपस्थित लोगों को आश्चर्य हुआ और गुणमति का आदेश उनकी समझ में न आया। इतने में उस लड़के ने प्रश्न पर प्रश्न उपस्थित करना आरंभ किया। उसका गंभीर विचार सोते की भांति फूट निकलता रहा तथा वह प्रतिध्वनि की भांति शीघ्रता से सुस्पष्ट तर्क उपस्थित करता रहा। वाद-विवाद के तीन चरणों के बाद तीर्थिकों के तर्कों का खण्डन किया गया। उन्हें पुनः मुंह की खानी पड़ी, जैसे धार

कुंठित हो गई हो और पर टूट गए हों। तर्क-वितर्क में हार जाने के बाद वे संघाराम के अधीन खेतिहर बने।

चौदह. शीलभद्र संघाराम और तीर्थिकों पर विजय की कथा

गुणमति संघाराम से लगभग बीस ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक पृथक पहाड़ी थी। उस पर एक संघाराम था, जिसे शास्त्राचार्य शीलभद्र ने तर्क-वितर्क में विजय पाने पर प्राप्त एक नगर का दान कर बनवाया था। संघाराम के समीप एक भीमकाय सीधी चट्टान थी, जो देखने में बुद्ध की अस्थियां सुरक्षित रखने वाले स्तूप-सी लगती थी। शास्त्राचार्य शीलभद्र समतट के ब्राह्मण राजकुल के वंशज थे। युवावस्था में वे विद्याएं सीखने में प्रतिभाशाली थे तथा सद्गुणी थे। उन्होंने ज्ञानियों की खोज में भारत भर का भ्रमण किया था। नालंदा में उनकी बोधिसत्व धर्मपाल से भेंट हुई। बौद्ध धर्म के संदर्भ में उनके उपदेश सुन कर शीलभद्र सद्धर्म में विश्वास करने लगे और उनमें चैतन्य आया। उन्होंने प्रव्रज्या-प्राप्ति की प्रार्थना की और परम सत्य पर पहुंचने का उपाय तथा मोक्ष-प्राप्ति का रास्ता पूछा। उन्होंने बौद्ध धर्म के अतिगहन और सूक्ष्म सिद्धांतों पर अधिकार किया। अपने काल में वे प्रख्यात थे। यहां तक कि अन्य राज्यों में भी उनकी ऊंची प्रतिष्ठा थी। तब दक्षिणापथ में एक ऐसा तीर्थिक रहता था, जो गूढ़ और सूक्ष्म भेदों में पारंगत था। धर्मपाल की ख्याति सुन कर इस गर्वयुक्त तीर्थिक को तीव्र ईर्ष्या हुई। नदियों और पर्वतों को पार कर वह वाद-विवाद के लिए आया और ढोल बजा कर बोला : "मैं दक्षिणापथ का रहने वाला हूं। सुना है कि महाराज, आपके राज्य में एक प्रसिद्ध तर्क-शास्त्री हैं। मेरी बुद्धि कुंठित अवश्य है, किन्तु फिर भी मैं उनके साथ वाद-विवाद करना चाहता हूं।" राजा ने कहा : "आपने ठीक ही कहा है। हमारे राज्य में एक ऐसे ही शास्त्राचार्य हैं।" उन्होंने एक दूत के माध्यम से धर्मपाल को बुलावा भेजा : "दक्षिणापथ का एक तीर्थिक सात समुद्र पार कर आया है और आपसे वाद-विवाद करने का अनुरोध करता है। मेरी आशा है कि आप सभा में उपस्थित होंगे।" यह संदेश पा कर धर्मपाल चीवर व्यवस्थित कर चलने को प्रस्तुत हुए। शीलभद्र उनके शिष्यों में से सर्वाधिक मेधावी थे। धर्मपाल को जाते हुए देख उन्होंने आगे बढ़ कर पूछा : "आपको इतनी शीघ्रता क्यों है?" धर्मपाल बोले : "जब से प्रज्ञा का सूर्य अपनी किरणों को छिपाने लगा, तब से सद्धर्म का दीप निस्तब्धता से जलता रहा है, तीर्थिक चिउंटियों की तरह एकत्रित होने लगे हैं एवं विभिन्न सिद्धांत भैरवियों की भांति उड़ कर अस्तित्व में आने लगे हैं। अब मैं उनके मतों का खण्डन करने जा रहा हूं।" शीलभद्र ने कहा : "मैंने निकट से आपके उपदेश सुने हैं। मुझे तीर्थिकों के मतों का खण्डन करने की आज्ञा दें।" धर्मपाल उनकी प्रतिभा से परिचित थे, सो उन्होंने

उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उस समय शीलभद्र की आयु केवल तीस वर्ष थी। सब को आशंका हुई कि इतनी कम आयु में वे अकेले ऐसा काम संभाल भी सकेंगे कि नहीं। धर्मपाल ने सबकी आशंका दूर करते हुए कहा: "श्रेष्ठ व्यक्तियों का चयन आयु की वरीयता पर निर्भर नहीं करना चाहिए। वर्तमान स्थिति में देखा जाए, तो वह अवश्य ही विपक्ष को परास्त कर सकेगा।" वाद-विवाद के दिन दूर और निकट के लोग, बच्चे-बूढ़े सभी सभा में उपस्थित हुए। तीर्थिक ने अपने मतों पर व्यापक और विस्तृत रूप से प्रकाश डाला और शीलभद्र ने सद्धर्म के अनुसार उनके मतों का गहन विश्लेषण किया। तीर्थिक निरुत्तर हो गया तथा अपमानित हो कर सभा से हट गया। राजा ने शीलभद्र की योग्यता की प्रशंसा में उन्हें इस नगर को निधि के रूप में दान देना चाहा। शीलभद्र ने अस्वीकार करते हुए कहा: "प्रव्राजक धन-संपत्ति को लालायित दृष्टि से नहीं देखते तथा एकांत और सादे जीवन से अपने शील को बनाए रखते हैं। मैं इस नगर को ले कर क्या करूंगा?" इस पर राजा बोले: "धर्मराज मनुष्य लोक से चले गए हैं। प्राणियों का उद्धार करने वाली प्रज्ञा की नौका डूब चुकी है। यदि प्रशंसा नहीं की जाती और भेद नहीं किया जाता, तो परवर्तियों को प्रेरित कैसे किया जा सकता है? बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए मेरा यह अनुरोध है कि आप दया कर इस नगर को स्वीकार कर लें।" तब शीलभद्र ने अपने मत पर स्थिर रहना उचित न समझा और यह नगर स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने यह संघाराम बनवाया और नियमानुसार नगरवासियों से प्राप्त होने वाली आय से संघाराम के रख-रखाव के प्रबंध किए।

पन्द्रह. गया नगर और गया शिर

शीलभद्र संघाराम से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में मैंने चालीस ली की दूरी तय की और नैरंजना पार कर गया पहुंचा। नगर एक दुर्भेद्य स्थान पर स्थित था और उसकी जन-संख्या बहुत कम थी। केवल एक हजार से कुछ अधिक ब्राह्मण परिवार बसे हुए थे। वे सभी ऋषियों के वंशज थे। वे राजा के शासनाधीन नहीं थे तथा समाज में सम्मान के पात्र थे। नगर से तीस ली दूर उत्तर में एक स्वच्छ झरना था। उसका जल पवित्र माना जाता था। मान्यता थी कि इसका जल पीने या इसमें स्नान करने पर मनुष्य पापों से मुक्त हो सकते थे।

नगर से पांच-छ: ली दूर दक्षिण-पश्चिम में गया शिर खड़ा था। यहां झरने कलकल करते बहते थे। घाटियां गहरी थीं। ऊंची-ऊंची सीधी चट्टानें खड़ी थीं। भारत के विभिन्न राज्यों में परंपरा के आनुसार गया शिर "आलौकित पर्वत" कहलाता था। प्राचीन काल

से ही यह परंपरा रही थी कि राजा-महाराजा जब राज्यारोहण के उपरांत दूर-दूर तक सुशासन-व्यवस्था स्थापित कर चुकते थे और पूर्ववर्ती राजवंशों से अधिक शुभ कार्य कर चुके थे, तब वे गया शिर का आरोहण कर ईश्वर की पूजा करते हुए अपनी उपलब्धियों की घोषणा अवश्य करते थे। गया शिर की चोटी पर एक सौ छि से अधिक ऊंचा प्रस्तर स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। उसमें दिव्य शक्तियां निहित थीं और समय-समय पर उससे दिव्य प्रभा फैलती रहती थी। यहीं पर तथागत ने "रत्नमेघ सूत्र" और अन्य सूत्र सुनाए थे।

गया शिर के दक्षिण-पूर्व में एक स्तूप जिस स्थान पर था, वह काश्यप की जन्मभूमि थी। उसके दक्षिण में दो स्तूप थे, जहां गयाकाश्यप और नदीकाश्यप कभी अग्नि की पूजा किया करते थे।

सोलह. प्रागबोधि पर्वत और बुद्ध की संबोधि-प्राप्ति की कथा

जहां गयाकाश्यप अग्नि की पूजा करते थे, वहां से पूर्व की दिशा में एक बड़ी नदी के उस पार प्रागबोधि पर्वत था। तथागत छः वर्ष तक तपस्या करने पर भी बोधि प्राप्त न कर सके। उन्होंने तपस्या त्याग कर एक गोपी की खीर स्वीकार की। वे उत्तर-पूर्व की दिशा से इधर आए। उन्होंने योंही इस पर्वत पर नजर दौड़ाई। एकांत अनुभव करने पर उन्होंने यहीं पर बोधि-प्राप्ति चाही। जब वे उत्तर-पूर्वी ढलान से शिखर पर पहुंचे, तब धरती कंप गई और पर्वत भी हिलने-डुलने लगा। पर्वत-देवता ने घबराहट से उनसे कहा: "यह पर्वत बोधि-प्राप्ति के लिए अनुपयुक्त है। यदि यहां वज्र-समाधि लगाई गई, तो न केवल धरती कंपती हुई धंस जाएगी, बल्कि पर्वत भी उलट जाएगा।" बोधिसत्व दक्षिण-पश्चिम ढलान से नीचे उतरने लगे और आधे रास्ते में रुक गए। चट्टानों में एक शैलगृह था, जिसका मुख गहरी उपत्यका की ओर था। बोधिसत्व इस शैलगृह में प्रविष्ट हुए और ज्योंही समाधि के लिए बैठे, धरती फिर कंप गई और पर्वत फिर हिला-डुला। इतने में शुद्धावास ने आकाश से उदघोष किया: "यह तथागत के लिए बोधि-प्राप्ति का स्थान नहीं है। यहां से चौदह-पंद्रह ली दूर दक्षिण-पश्चिम में तपोवन से कुछ दूरी पर एक पीपल का वृक्ष है और वृक्ष के नीचे वज्रासन है। भूत और भावी बुद्ध सब के सब इस आसन पर बोधि प्राप्त करते रहे हैं। आप भी वहीं जाएं!" तथागत उठ कर खड़े हुए ही थे कि शैलगृह के नागराज उनसे बोल उठे: "यह शैलगृह एकांत भी है एवं रमणीक भी। यह बोधि-प्राप्ति के लिए उपयुक्त है। प्रार्थना है कि आप दया करके यहां से चले न जाएं।" तथागत को यह ज्ञात हो चुका था कि यह शैलगृह बोधि-प्राप्ति के लिए अनुपयुक्त है। किन्तु नागराज

को संतुष्ट करने हेतु वे अपनी छाया-मूर्ति वहां छोड़ कर चले गए। (अतीत में चाहे ज्ञानी हों या मूर्ख, वे सब यह छाया-मूर्ति देख सकते थे। अब भी कुछेक व्यक्ति इसे देख पाते हैं)। देवताओं के मार्गदर्शन में वे बोधि-वृक्ष की ओर चले। जब सम्राट अशोक राजगद्दी पर बैठ गए, तब इस पर्वत पर जहां-जहां से बुद्ध गुजरे थे, स्मारक और स्तूप खड़े करवा दिए गए। वे आकार में भिन्न तो थे, तथापि दिव्य शक्तियां प्रदर्शित करने में उनमें कोई अंतर नहीं था। कभी-कभी आकाश से पुष्पों की वर्षा होती थी और कभी अंधेरी घाटियां दिव्य प्रभा से आलोकित हो जाती थीं। प्रत्येक वर्ष वर्षावास की समाप्ति के दिन विभिन्न स्थानों से भिक्षु और गृहस्थी पूजा के लिए पर्वतारोहण करते थे तथा पर्वत पर एक रात बिता कर वापस लौट जाते थे।

सत्रह. बोधि-वृक्ष का प्राचीर

बोधि-वृक्ष प्रागबोधि पर्वत के चौदह-पंद्रह ली दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित था। उसके चारों ओर ईंटों से निर्मित ऊंचा और मजबूत प्राचीर था। प्राचीर पूर्व से पश्चिम में लम्बा था और दक्षिण से उत्तर में संकीर्ण। प्राचीर की परिधि पांच सौ कदमों से अधिक थी। दुर्लभ वृक्षों और फूलों से छाया पर छाया पड़ती रहती थी। दूब और अन्य विचित्र घास सघन रूप से उग कर धरती को ढके हुए थीं। प्रमुख द्वार पूर्व की ओर नैरंजना के सामने खुला था। दक्षिण द्वार एक बृहदाकार पुष्प-कुंड से जुड़ा हुआ था। पश्चिमी छोर का धरातल दुर्गम था। उत्तर द्वार एक बड़े संघाराम से जुड़ा हुआ था। प्राचीर के भीतर पवित्र अवशिष्ट एक दूसरे से सटे हुए दिखाई देते थे। उनमें या तो स्तूप थे या चैत्य थे। ये सब जम्बूद्वीप के राजा-महाराजाओं, मंत्रियों और अभिजातों ने बुद्ध के प्रति श्रद्धा अर्पित करने के लिए स्मारकों के रूप में बनवाए थे।

1. वज्रासन

प्राचीर के बीचोंबीच वज्रासन था। वह भद्रकल्प के आरंभ में धरती के साथ-साथ उभरा था और तीन हजार महा सहस्र लोकों के केंद्र में स्थित था। वह नीचे स्वर्ण-चक्र तक पहुंचा हुआ था और ऊपर धरती की सतह तक। वह वज्र से बना हुआ था और उसकी परिधि सौ कदमों के लगभग थी। इसका नाम "वज्रासन" इसीलिए पड़ा था कि भद्रकल्प में एक हजार बुद्धों ने यहां वज्र-समाधि लगाई थी। क्योंकि यहां बुद्धत्व प्राप्त होता था, इसलिए इसका एक अन्य नाम भी था, "बोधि-मण्डप"। भूचाल के समय केवल यही

स्थल अविकल रहता था। जब तथागत बोधि-प्राप्ति से पूर्व चार दिशाओं में गए, तब भूमि कंप गई थी। इस स्थल पर पहुंचने पर ही उन्हें सुरक्षा अनुभव हुई थी। जब से अंतिम कल्प आरंभ हुआ, तब से बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा तथा वज्रासन भी रेत से दब जाने के कारण दिखाई नहीं देता था। राजा-महाराजाओं ने बुद्ध द्वारा वर्णित वज्रासन के आकार-प्रकार के अनुसार दो ऐसी अवलोकितेश्वर-प्रतिमाएं स्थापित कीं, जो पूर्व की ओर मुंह किए हुए थीं और क्रमशः वज्रासन की दक्षिणी व उत्तरी सीमाओं का संकेत देती थीं। किंवदंती के अनुसार जब ये दोनों बोधिसत्व-प्रतिमाएं रेत से दब जाएंगी, तब बौद्ध धर्म का अन्त होगा। दक्षिण में स्थापित बोधिसत्व-प्रतिमा वक्ष तक रेत से दब चुकी थी।

2. बोधि-वृक्ष

वज्रासन पर जो बोधि-वृक्ष था, वह पीपल का वृक्ष ही था। बुद्ध के जीवन-काल में यह वृक्ष सैकड़ों छि ऊंचा था। कई बार काटे जाने के बाद भी यह अब भी चार-पांच चाङ ऊंचा था। इसके नीचे बैठ कर भगवान को बोधि प्राप्त हुई थी, इसलिए इसका नाम "बोधि-वृक्ष" पड़ा था। इसके तने और डालियों का रंग पीलापन लिए श्वेत था। हरे-भरे पत्ते ग्रीष्म और शिशिर में झड़ते नहीं थे और सदा चिकने रहते थे। प्रत्येक वर्ष तथागत के परिनिर्वाण के दिन तमाम पत्ते झड़ जाते थे और कुछ देर बाद ही नए पत्ते निकल आते थे। उस दिन हजारों की संख्या में राजा-महाराजा, भिक्षु और गृहस्थी स्वतः यहां आ कर सुगंधित जल और दूध से वृक्ष को धोते और सींचते, संगीत की धुन में फूल चढ़ाते और दीप जलाते थे। वे दिन-रात पूजा करते रहते थे। बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरांत जब सम्राट अशोक ने अभी-अभी राज्यारोहण किया ही था, वे एक विधर्मी थे और उन पर बुद्ध के अवशिष्टों को नष्ट-भ्रष्ट करने की धुन सवार थी। वे स्वयं सेना ले कर बोधि-वृक्ष को काटने आए। उन्होंने वृक्ष की जड़, तने, शाखाओं और पत्तों के टुकड़े-टुकड़े करवा दिए और फिर दसियों कदम दूर पश्चिम में उनका ढेर लगवा दिया। उन्होंने एक ब्राह्मण पुरोहित से हवन के लिए उनमें आग लगाने को कहा। अभी आग पूरी तरह बुझी भी नहीं थी कि राख में से सहसा दो वृक्ष उग आए। आग की रोशनी में इन दो वृक्षों के हरे-भरे पत्ते हरितमणि की भांति चमक रहे थे। ये दो वृक्ष भस्म-बोधि-वृक्ष कहलाते थे। यह अलौकिक दृश्य देख कर सम्राट अशोक ने अपनी भूल पर पश्चात्ताप किया। उन्होंने दूध से बोधि-वृक्ष की बची-खुची जड़ को सींचा। जब पौ फटने को थी, तब तक बोधि-वृक्ष पूर्ववत् उग चुका था। ऐसा चमत्कारिक दृश्य देख कर सम्राट अशोक ने चैन की सांस ली और स्वयं उसकी देख-भाल की। वे इस कार्य में इतने लीन थे कि प्रासाद वापस लौटना भी भूल गए। उनकी रानी भी एक विधर्मी थीं। उन्होंने चोरी-छिपे रात को बोधि-वृक्ष को फिर

कटवा दिया। अगले दिन सुबह जब सम्राट अशोक पूजा हेतु आए, तो उन्हें केवल वृक्ष का कटा हुआ तना दिखाई दिया। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अत्यधिक श्रद्धापूर्वक प्रार्थना की और दूध से सिंचाई की और, एक दिन से भी कम समय में वृक्ष फिर उग आया। बोधि-वृक्ष के प्रति सम्राट अशोक में भारी आदरभाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने पत्थरों से दसेक छि ऊंचा प्राचीर खड़ा करवा दिया। यह प्राचीर अब भी सुरक्षित था। अर्वाचीन काल में राजा शशांक परधर्म में विश्वास करते थे। उन्होंने बौद्ध धर्म पर विष वमन किया, संघारामों को तहस-नहस किया और बोधि-वृक्ष काट दिया। कटाई के समय धरती इतनी गहरी खोदी गई कि वहां एक सोता भी फूट निकला। फिर भी बोधि-वृक्ष की जड़ पूरी तरह उखाड़ी नहीं जा सकी। तब उन्होंने आग लगाई और गन्ने का रस इस उद्देश्य से डलवा दिया कि बची-खुची जड़ जल और सड़ जाए, जिससे फिर नया अंकुर न निकल पाए। कुछ महीनों के पश्चात् मगध के राजा पूर्णवर्मण, जो सम्राट अशोक के अंतिम वंशज थे, यह बात सुन कर व्याकुल हो उठे और बोले : "प्रज्ञा का सूर्य डूब चुका है। केवल यह बोधि-वृक्ष ही रह गया है। अब यदि उसे भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, तो फिर प्राणी क्या देख सकेंगे ?" वे धरती पर गिर पड़े और इतने शोकाकुल हो गए कि सभी प्राणी द्रवित हो उठे। उन्होंने हजारों गायों के दूध से बोधि-वृक्ष की जड़ सींची। एक रात के उपरांत वृक्ष फिर एक चाङ से अधिक ऊचा हो गया। इस डर से कि कालान्तर में कहीं इसकी और कटाई न हो जाए, उन्होंने बोधि-वृक्ष के चारों ओर पत्थरों से एक प्राचीर निर्मित करवा दिया। प्राचीर की ऊंचाई दो चाङ चार छि थी। इसलिए प्राचीर के ऊपर बोधि-वृक्ष का दो चाङ से अधिक ऊंचा भाग देखा जा सकता था।

बोधि-वृक्ष के पूर्व में एक चैत्य था, जो लगभग एक सौ सत्तर छि ऊंचा था। उसके आधार का प्रत्येक पार्श्व बीसेक कदम चौड़ा था। चैत्य कालापन लिए नीले रंग की पक्की ईंटों से बना था और चूने से पोता गया था। प्रत्येक पंक्ति के आलों में स्वर्ण मूर्तियां सुशोभित थीं एवं चार दीवारों पर उत्कीर्णन के अनोखे काम थे। कुछ पर मोतियों की मालाओं की आकृतियां खुदी थीं और अन्य कुछ पर देवताओं की आकृतियां। चैत्य के शिखर पर एक चमकता हुआ ताम्र आमलक स्थापित था। पूर्व में यह चैत्य एक तीन छज्जों वाले भवन से जुड़ा हुआ था। भवन के स्तंभों, शहतीरों और धरनों पर स्वर्ण और रजत के बेल-बूटे बनाए गए थे और उन पर सूक्ष्मता से तराशे गए रत्न जड़े थे। लम्बा-चौड़ा मुख्य भवन तीन तल्लों का था। एक तल्ले से दूसरे तल्ले तक जाया जा सकता था। भवन के बाह्य द्वार के दाएं-बाएं एक-एक आला था। बाएं आले में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की प्रतिमा सुशोभित थी और दाएं आले में बोधिसत्व मैत्रेय की। दोनों प्रतिमाएं रजत की थीं और दस छि से अधिक ऊची थीं।

इस चैत्य के स्थल में पहले एक छोटा-सा चैत्य था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था।

कालांतर में एक ब्राह्मण ने उसका विस्तार किया। वह ब्राह्मण आरंभ में बौद्ध धर्म को नहीं मानता था, बल्कि शिव का भक्त था! यह सुन कर कि शिव हिमगिरि में वास करते हैं, वह अपने भाई के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए चल निकला। शिव ने उससे कहा : "कोई भी मनोरथ पुण्य कर्मों से ही पूर्ण होता है। वह न तुम्हारी प्रार्थना से पूर्ण होता है न मैं पूर्ण कर सकता हूं।" ब्राह्मण ने प्रश्न किया : "कौन सा पुण्य कर्म करने पर मनोरथ पूर्ण हो सकता है?" शिव ने कहा : "सर्वोत्तम पुण्य-फल प्राप्त करने और पुण्य कर्म करने के लिए बोधि-वृक्ष बुद्धत्व-प्राप्ति का स्थल है। तुम्हें तुरन्त वापस लौट जाना चाहिए। बोधि-वृक्ष के आगे एक बड़ा चैत्य खड़ा करवा दो, एक बड़ा कुंड खुदवा दो, तरह-तरह की सेवाएं उपलब्ध करा दो। तब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो जाएगा।" शिव का उपदेश सुनकर ब्राह्मण के मन में पक्का विश्वास उत्पन्न हुआ। वह लौट गया। ब्राह्मण ने चैत्य खड़ा करवा दिया और उसके भाई ने कुंड खुदवा दिया। फिर दोनों भाइयों ने सेवा-सुश्रुषा की। फलत: उनका मनोरथ पूर्ण हुआ। वे राजा के मंत्री बन गए। वे अपने तमाम वेतन और पुरस्कार का दान कर दिया करते थे।

चैत्य के निर्माण के बाद अभी बुद्धत्व प्राप्त तथागत की प्रतिमा बनाने के लिए शिल्पियों को रखने का प्रयत्न किया गया। लेकिन अनेक वर्ष बीत गए और कोई भी यह काम संभालने सामने नहीं आया। बहुत समय बीतने के बाद एक ब्राह्मण आ कर भिक्षुओं से बोला : "मैं तथागत की मूर्ति बनाने में निपुण हूं।" भिक्षुओं ने पूछा : "मूर्ति बनाने के लिए तुम्हें क्या-क्या चाहिए?" ब्राह्मण ने कहा : "केवल सुगंधित मिट्टी की आवश्यकता है। उसे चैत्य में रख दें, और प्रकाश के लिए एक दीप भी चाहिए। जब मैं अन्दर जाऊंगा, तब द्वार ठीक से बन्द कर दें। छ: महीनों के पश्चात् ही द्वार खोला जाए।" भिक्षुओं ने उसकी बात मान ली। छ: महीने पूरे होने में अभी चार दिन शेष थे, तभी भिक्षुओं ने उत्सुकतावश द्वार खोला और देखा कि चैत्य में एक बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित है। तथागत की मुद्रा गंभीरता-पूर्ण थी। वे अपराजित आसन लगाए बैठे थे। उनका दायां पैर ऊपर था। बायां हाथ वक्ष के सामने उठा हुआ था और दायां हाथ नीचे की ओर लटका हुआ था। पूर्वाभिमुख बैठे हुए उनकी सम्माननीय मुद्रा सजीव दिखाई देती थी। आसन चार छि दो छुन ऊंचा और एक चाङ दो छि पांच छुन चौड़ा था। मूर्ति की ऊंचाई एक चाङ एक छि पांच छुन, दो घुटनों के बीच दूरी आठ छि आठ छुन, दो कंधों की चौड़ाई छ: छि दो छुन थी। सभी द्वात्रिंश महापुरुषलक्षण एवं अशीत्यानुव्यंजनानी विद्यमान थे। मूर्ति की करुणापूर्ण मुद्रा बिलकुल सजीव थी। केवल दाएं वक्षस्थल पर चित्रकारी और तराशी का काम पूरा न हो पाया था। चैत्य में कोई भी दिखाई नहीं पड़ा। तब भिक्षुओं को ज्ञात हुआ कि यह तो किसी देवता ने अपनी दिव्य शक्ति प्रदर्शित की है। अचरज में आ कर वे इसका कारण जानने के लिए व्याकुल हो उठे। एक सीधे-सादे श्रमण ने स्वप्न देखा जिसमें उस ब्राह्मण ने उससे कहा :

"मैं बोधिसत्व मैत्रेय हूं। मुझे आशंका थी कि कारीगर बुद्ध की भाव-भंगिमा की कल्पना न कर सकते थे, अतएव मैंने स्वयं आ कर बुद्ध-प्रतिमा बनाई। बुद्ध-प्रतिमा का दायां हाथ इसलिए नीचे लटका हुआ था क्योंकि तथागत जब बुद्धत्व प्राप्त करने को थे, मार उद्विग्नता उत्पन्न करने आया था। पृथ्वी-देवों ने यह समाचार तथागत को बताया। उनमें से एक मार को परास्त करने में तथागत की सहायता के लिए सर्वप्रथम कूद कर सामने आया। उससे तथागत बोले, 'तुम घबराओ मत। शांति के बल पर मैं मार को अवश्य वशीभूत कर लूंगा।' मार ने आ कर पूछा, 'कौन साक्षी है?' तथागत ने दायां हाथ निकाल कर पृथ्वी की ओर लटका दिया, 'यह साक्षी है।' तब दूसरा पृथ्वी-देवता साक्ष्य देने कूद कर सामने आ गया। इसलिए आज बुद्ध-प्रतिमा का दाहिना हाथ उस समय की भांति ही लटका हुआ बनाया गया है।" जब भिक्षु देवता की दिव्य शक्ति के प्रदर्शन का कारण जान गए, तो भावावेश में आ कर उनकी आंखें डबडबा आईं। उन्होंने बुद्ध-प्रतिमा के अपरिष्कृत दाहिने वक्षस्थल पर नाना रत्न जड़ दिए व मोतियों की मालाएं पहना दीं। तरह-तरह के अद्भुत रत्न एक दूसरे की सजावट बन गए। राजा शशांक ने बोधि-वृक्ष को काट डालने पर इस बुद्ध-प्रतिमा को भी नष्ट करना चाहा था। लेकिन बुद्ध-प्रतिमा की करुणापूर्ण मुद्रा देखने पर उनका मन विचलित हो गया। जब वे प्रासाद लौटने को तैयार हुए, तो प्रधान मंत्री को यह आदेश दिया: "इस बुद्ध-प्रतिमा को हटा कर शिव की मूर्ति स्थापित करनी चाहिए।" यह आदेश पा कर प्रधान मंत्री भयभीत हो उठे: "यदि मैंने बुद्ध-प्रतिमा को नष्ट कर डाला, तो जन्म भर विपत्तियां झेलनी पड़ेंगी। लेकिन यदि राजा के आदेश की अवहेलना की, तो मेरी मौत होगी और मेरे कुल का अन्त हो जाएगा। बिलकुल सांप-छछूंदर की गति बन गई। अब मैं क्या करूं?" उन्होंने बौद्ध अनुयायियों से बुद्ध-प्रतिमा के सामने ईंटों से एक दीवार खड़ी करवा दी। दीवार के पीछे अंधियारे को ले कर उनके मन में अपराधी होने का भाव उत्पन्न हुआ, इसलिए अन्दर एक जलता दीप रख दिया। फिर उन्होंने दीवार पर शिव का चित्र बनवाया। जब काम पूरा हुआ, तब उन्होंने राजा शशांक को सूचित किया। यह सुन कर शशांक के मन में भय उत्पन्न हुआ। उनके सारे बदन पर फफोले निकल आए, जिससे त्वचा फट गई। शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई। प्रधान मंत्री ने तुरन्त वापस जा कर दीवार को तुड़वा दिया। यद्यपि बहुत से दिन बीत चुके थे, लेकिन दीप फिर भी जल रहा था। बुद्ध-प्रतिमा अब भी सुरक्षित थी। उस अद्भुत शिल्प-कृति पर कोई क्षति नहीं पहुंची थी। प्रतिमा एक अंधेरे भवन में स्थापित थी, इसलिए दीप दिन-रात जलते रहते थे। ऐसा होने पर भी बुद्ध-प्रतिमा की करुणापूर्ण मुद्रा स्पष्ट रूप से देख पाना कठिन था। केवल प्रातःकाल में एक बृहदाकार चिकने शीशे से सूर्य की किरणों को अन्दर प्रतिबिम्बित किए जाने पर बुद्ध-प्रतिमा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी। जो भी उसे देख लेता था, उसके दुःख में स्वभावतः वृद्धि हो जाती थी।

3. तथागत की बुद्धत्व-प्राप्ति की तिथि

तथागत को बैशाख के कृष्ण पक्ष की अ्रष्टमी को बोधि प्राप्त हुई थी। यह तिथि चीनी पंचांग के अ्रनुसार तीसरे महीने की अ्राठवीं तिथि थी। स्थविरवाद के अ्रनुसार तथागत को वैशाख की अ्रमावस्या को, अ्रर्थात् चीनी पंचांग के अ्रनुसार तीसरे महीने की पन्द्रहवीं तिथि को बोधि प्राप्ति हुई थी। तब तथागत तीस वर्ष के थे। कुछ लोगों का यह भी कहना था कि तब वे पैंतीस वर्ष के हो चुके थे।

4. बुद्धत्व-प्राप्ति एवं बुद्ध की सेवाओं के चिह्न

बोधि-वृक्ष के उत्तर में बुद्ध के चंक्रमण का स्थल था। बुद्धत्व-प्राप्ति के उपरांत तथागत अ्रासन से नहीं उठे, बल्कि सप्ताह भर समाधि लगाए बैठे रहे। समाधि से उठने पर वे बोधि-वृक्ष के उत्तर में सप्ताह भर चंक्रमण करते रहे तथा पूर्व से पश्चिम तक दसेक कदमों की दूरी पर टहलते रहे। जहां-जहां उनके पदचिह्न पड़े, अ्रठारह स्थानों में विलक्षण बेल-बूटे बन गए। परवर्तियों ने यहां ईंटों से दीवार की तीन छि ऊंची नींव डाली। प्राचीन अ्रभिलेखों के अ्रनुसार पवित्र पदचिह्नों के प्रतीकस्वरूप बनाई गई दीवार की यह नींव मनुष्य की अ्रायु बता सकती थी। श्रद्धा से पूजा करने के बाद इसकी लम्बाई नापी जाती थी। लम्बाई पूजा करने वाले की अ्रायु के अ्रनुरूप घटती-बढ़ती रहती थी।

दीवार की नींव के उत्तर में अ्रौर मार्ग के पूर्व में एक समतल शिला पर एक बड़ा चैत्य खड़ा था। उसमें एक बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी, जो सिर ऊंचा उठाने की मुद्रा में थी। यहां तथागत सप्ताह भर अ्रपलक बोधि-वृक्ष को निहारते रहे थे। उन्होंने बोधि-वृक्ष के उपकार का बदला चुकाने के लिए ही ऐसा किया था।

बोधि-वृक्ष से कुछ दूर पश्चिम में एक बड़े चैत्य में एक ताम्र बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। प्रतिमा पूर्व की अ्रोर मुंह किए खड़ी थी अ्रौर दुर्लभ रत्नों से अ्रलंकृत थी। उसके सामने एक काली शिला थी, जिसकी रेखाएं अ्रौर रंग विलक्षण थे। तथागत की बुद्धत्व-प्राप्ति के समय ब्रह्मा ने उनके लिए सप्तरत्नी भवन खड़ा कर दिया अ्रौर इन्द्र ने उनके लिए एक सप्तरत्नी अ्रासन बनाया। उस पर बैठे बुद्ध सप्ताह भर चिन्तन करते रहे। उनके तन से विलक्षण प्रभा विसर्जित हुई जिससे बोधि-वृक्ष अ्रालोकित हो उठा। कालांतर में रत्न पत्थरों में बदल गए।

बोधि-वृक्ष से कुछ दूर दक्षिण में सौ छि ऊंचा एक स्तूप था, जो सम्राट अ्रशोक ने बनवाया था। नैरंजना में स्नान कर बोधिसत्व बोधि-वृक्ष की अ्रोर बढ़े। उन्होंने मन ही मन सोचा : "मैं किस वस्तु से अ्रासन लगाऊं?" क्षण भर में उन्होंने निश्चय कर लिया कि

कुश का प्रयोग करना चाहिए। इतने में इन्द्र एक घास काटने वाले के रूप में प्रगट हुए और कुश ले कर सामने से जाते हुए दिखाई दिए। उनसे बोधिसत्व ने कहा: "क्या तुम मुझे कुछ कुश दे सकते हो?" घास काटने वाले ने आदर से उन्हें कुश दिया। बोधिसत्व कुश ले कर आगे बढ़ते चले गए।

जिस स्थल पर बोधिसत्व ने कुश लिया था, वहां से कुछ दूर उत्तर-पूर्व में एक स्तूप था। इस स्थान में जब बोधिसत्व को बुद्धत्व प्राप्त होने वाला था, शकुनि पक्षियों ने झंड के झुंड में उड़ कर शुभशकुन दिखाए। भारत के शुभशकुनों में यह सर्वाधिक मंगलसूचक माना जाता है। सो शुद्धावास ने मनुष्य लोक की परंपरा के अनुसार शकुनियों को बोधिसत्व के इर्द-गिर्द उड़वा कर बोधिसत्व की दिव्य-शक्ति और पवित्रता प्रदर्शित करवाई।

बोधि-वृक्ष के पूर्व में मार्ग के दोनों किनारों पर एक-एक स्तूप था। इस स्थान पर मार ने बोधिसत्व को उद्विग्न करने की चेष्टा की थी। जिस समय बोधिसत्व को बुद्धत्व प्राप्त होने को था, उस समय मार ने आ कर उन्हें चक्रवर्ती राजा बनने की सलाह दी थी। अपनी चाल को विफल होती देख मार निराश हो कर लौट गया। मार की पुत्रियां अनुमति पा कर बोधिसत्व को बहकाने गईं। लेकिन बुद्ध की महिमा और दिव्य शक्ति से उनकी सुन्दरता नष्ट हो गई और वे जीर्ण-शीर्ण हो गईं। वे क्षीण हो कर लाठी टेकती हुई एक दूसरे को सहारा देती हुई भाग गईं।

बोधि-वृक्ष के उत्तर-पश्चिम में स्थित चैत्य में काश्यप बुद्ध की मूर्ति सुशोभित थी। वह अपनी अलौकिक शक्ति के लिए विख्यात थी और प्रभावान हुआ करती थी। प्राचीन अभिलेखों में यह उल्लेख था कि जो इस मूर्ति की भक्तिपूर्वक सात बार परिक्रमा लगाता है, उसे अपने जन्मस्थल में अपने पूर्वजन्म का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

काश्यप बुद्ध चैत्य के उत्तर-पश्चिम में ईंटों से बनी दो कोठरियों में एक-एक पृथ्वी-देवता की मूर्तियां स्थापित थीं। जब बोधिसत्व को बुद्धत्व प्राप्त होने को था, तब एक पृथ्वी-देवता ने मार के आगमन की सूचना दी और दूसरा बुद्ध का साक्षी बना। उनके योगदान की स्मृति में परवर्तियों ने उनकी मूर्तियां बना कर उनकी स्तुति की।

बोधि-वृक्ष के प्राचीर से कुछ दूर उत्तर-पश्चिम में एक चालीस छि से अधिक ऊंचा स्तूप था, जो केसर स्तूप कहलाता था। यह जागुड के एक व्यापारी ने खड़ा करवाया था। वह बड़ा व्यापारी देवों का भक्त था, लोगों की भलाई के लिए यज्ञ करता था और सद्धर्म की अवज्ञा कर कर्म-फलों में विश्वास नहीं करता था। एक बार वह कई व्यापारियों को ले कर व्यापार के लिए समुद्री यात्रा पर निकला। दक्षिण सागर में उनकी नाव को तूफान का सामना करना पड़ा। दिशा खो कर उनकी नाव लहरों के साथ बहती चली गई। इस प्रकार तीन वर्ष बीते। नाव में खाद्यान्न समाप्त हो गया और उनके पास खाने को कुछ भी न बचा। सभी बहुत चिंतित हुए। वे एक स्वर में देवों के नाम लेने लगे। नाम लेते-

लेते वे थक गए, पर उनकी रक्षा के लिए देव प्रकट नहीं हुए। थोड़ी देर बाद उन्होंने एक सीधी चट्टानों और ऊंची-ऊंची चोटी वाला पर्वत देखा और उन्हें दो ऐसे सूर्य भी दिखाई दिए, जिनकी किरणें परस्पर उलझी हुई थीं, मानो सूर्य और चन्द्र एक साथ उदित हुए हों। यह देख कर व्यापारियों ने एक दूसरे को धीरज बंधाते हुए कहा : "हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें यह पर्वत मिला है। अब हमें पर्वत का आरोहण करना चाहिए, ताकि वहां सुख-सुविधाएं उपलब्ध हो सकें।" बड़े व्यापारी ने उनसे कहा : "यह पर्वत नहीं है, बल्कि एक मकर है। सीधी चट्टानें और ऊंची-ऊंची चोटियां उसके बाल हैं और दो सूर्य वास्तव में उसकी दो आंखें हैं।" उसकी बात अभी पूरी भी नहीं हुई कि नाव मकर के समीप तैरती चली गई। इतने में बड़े व्यापारी ने अपने साथियों से कहा : "सुना है कि बोधिसत्व अवलोकितेश्वर संकटग्रस्त लोगों का उद्धार करते हैं। हम श्रद्धा-भाव से उनका नाम लें।" उन्होंने एक स्वर में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का नाम लेते हुए सद्धर्म में दीक्षित होने की इच्छा व्यक्त की। तभी पर्वत लुप्त हो गया और दोनों सूर्य भी अदृश्य हो गए। अगले ही क्षण उन्होंने देखा कि एक श्रमण गंभीर एवं शिष्ट मुद्रा में यष्टि टेकते हुए आकाश से उतरा और उसने उन्हें डूबने से बचाया। अधिक समय नहीं बीता कि वे स्वदेश लौट आए। अतएव व्यापारियों के मन में बौद्ध धर्म के प्रति विश्वास सुदृढ़ हो गया। उन्होंने पुण्य-फल प्राप्त करने के लिए भरपूर प्रयास किए और एक स्तूप बनवाया। उन्होंने आदर-भाव से पूरित हो कर स्तूप की देखभाल की और केसर मिलाई हुई मिट्टी से उसको लीपा। जब बड़ा व्यापारी बौद्ध धर्म को मानने लगा, तब उसने अपने साथियों के साथ तीर्थयात्रा की और बोधि-वृक्ष के दर्शन किए। उन्होंने वापस लौटने का विचार भी नहीं किया था कि एक महीने का समय बीत गया। वे आपस में बातें करते हुए बोले : "मातृभूमि यहां से बहुत दूर है और बीच में नदी-नाले एवं पर्वतश्रृंखलाएं भी हैं। हम यहां हैं, तो हमारे द्वारा बनवाए गए स्तूप की देखभाल कौन करेगा ?" वे चलते-चलते इस स्थल पर आए। सहसा उन्होंने अपने सामने एक स्तूप खड़ा देखा। सब विस्मित रह गए। समीप आ कर ध्यान से देखने पर ज्ञात हुआ कि यह वही स्तूप है, जो उन्होंने अपने देश में बनवाया था। इसलिए आज भारत का एक दूसरा नाम "केसर" भी पड़ गया है।

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के दक्षिण-पूर्व कोने में न्यग्रोध वृक्ष के निकट एक स्तूप के साथ-साथ एक चैत्य भी खड़ा था। उसमें आसन लगाए बैठे बुद्ध की प्रतिमा सुशोभित थी। जब तथागत ने अभी-अभी बुद्धत्व प्राप्त कर लिया था, तो ब्रह्मा ने यहां उनसे धर्मचक्र प्रवर्तन करने का अनुरोध किया था।

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के भीतर चारों कोनों में एक-एक स्तूप थे। तथागत कुश ले कर बोधि-वृक्ष के नीचे जाने से पूर्व इन चार कोनों में गए थे। उनके प्रत्येक कोने में पहुंचने पर भूचाल आया था। जब वे वज्रासन पर पहुंच गए, तभी शांति हो सकी थी। प्राचीर

के भीतर अधिसंख्य पवित्र स्थल थे। उनका सविस्तार वर्णन करना असंभव है।

5. बोधि-वृक्ष के प्राचीर के निकट के अवशेष

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के बाहर दक्षिण-पश्चिम में एक स्तूप था। इस स्थल पर तथागत को खीर अर्पित करने वाली दो गोपियों का पुराना निवास था। उसके समीप उस स्थल पर एक स्तूप था, जहां गोपियों ने खीर पकाई थी। उसके पास एक और स्तूप था जहां तथागत ने खीर ग्रहण की थी।

6. दक्षिण द्वार के बाहर के अवशेष

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के दक्षिण द्वार के बाहर एक बड़ा तालाब था। उसकी परिधि सात सौ कदमों से अधिक थी। तालाब में पानी हल्की-हल्की लहरें मारता रहता था। पानी शीशे की भांति स्वच्छ तथा सुचिक्कन था। उसमें नाग और मछलियां वास करते थे। यह तालाब ब्राह्मण भाइयों ने शिव के आदेशानुसार खुदवाया था। दक्षिण में एक कुंड था जो इन्द्र ने बुद्ध के लिए उस समय बनाया था जब सम्यक संबोधि-प्राप्ति के बाद तथागत ने संघाटी धोना एवं स्नान करना चाहा था। कुंड के पश्चिम में बड़ी शिला थी, जो इन्द्र हिमगिरि से तब लाया था जब बुद्ध ने अपनी धोई हुई संघाटी को धूप में सुखाना चाहा था। शिला के समीप एक स्तूप उस स्थल पर खड़ा था, जहां तथागत ने अपनी पुरानी संघाटी पर टांके लगाए थे। उसके दक्षिण में वन में जहां स्तूप स्थित था वहीं तथागत ने एक दरिद्र बुढ़िया द्वारा दान में दिया गया पुराना कपड़ा ग्रहण किया था।

इन्द्र द्वारा बनाए गए कुंड के पूर्व में वन में मुचिलिंद कुंड था। उसका जल स्वच्छ, काला और मीठा था। कुंड के पश्चिमी तट पर एक छोटा चैत्य था। उसके भीतर एक बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। बुद्धत्व प्राप्त करने पर तथागत ने यहां आसन लगा कर सप्ताह भर समाधि लगाई थी। उस समय नागराज ने बुद्ध की रक्षा हेतु उनके शरीर को सात बार अपनी देह से लपेटा और अनेक सिर उगा कर ऊपर से नीचे लटका कर उन्हें एक छत्र बना दिया था। नागराज का घर कुंड के पूर्वी तट पर था।

मुचिलिंद कुंड के पूर्व में वन में एक विहार था। उसमें क्षीण अवस्था में पड़े बुद्ध की एक प्रतिमा थी। विहार के निकट चंक्रमण का स्थल था, जो सत्तर कदमों से अधिक लम्बा था। उसके दक्षिण और उत्तर में पीपल के वृक्ष थे। अतीत और वर्तमान में स्थानीय परंपरा के अनुसार रोगी इस बुद्ध-प्रतिमा पर तिल का तेल लगा कर बहुधा भले-चंगे हो जाते थे।

तथागत ने तीर्थिकों को वशीभूत करने के उद्देश्य से, और फिर मार का अनुरोध स्वीकार कर, यहां छः वर्ष तक तपस्या की थी। तब वे दिन में केवल तिल और गेहूं का एक-एक दाना लेते थे। फलस्वरूप वे बहुत क्षीणकाय हो गए थे। चंक्रमण के लिए उठते समय उन्हें किसी वृक्ष का सहारा लेना पड़ता था।

तपोवन में पीपल वृक्ष के समीप एक स्तूप था, जहां अज्ञातकौंडिन्य आदि पंचवर्गीयों का निवास था। जब बोधिसत्व प्रव्रज्या प्राप्त कर पर्वतों और कच्छभूमि में विचरण करते थे और वन में या स्रोतों के समीप विश्राम करते थे, तब राजा शुद्धोदन ने उनकी सेवार्थ पंचवर्गीयों को भेजा। जब बोधिसत्व ने तप आरंभ किया, तो कौंडिन्य आदि पांच परिव्राजक भी उनका अनुसरण कर तप करने लगे।

पंचवर्गीयों के निवास के दक्षिण-पूर्व में उस स्थल पर एक स्तूप था, जहां से बोधिसत्व स्नान के लिए नैरंजना में उतरे थे। नदी तट से थोड़ी दूरी पर बोधिसत्व ने खीर ग्रहण कर ली थी। इस स्थान के पास एक स्तूप खड़ा था, जहां दो व्यापारियों ने उन्हें मट्ठा और लड्डू अर्पित किए थे। बोधिसत्व एक वृक्ष के नीचे विमुक्ति का आनंद लेते हुए आसन लगाए बैठे रहे। एक सप्ताह पश्चात् ही वे समाधि से उठे। उसी समय दो व्यापारी वन से गुजर रहे थे। वन-देवता ने उनसे कहा : "शाक्य वंश के राजकुमार इसी वन में हैं। उन्हें अभी-अभी बुद्धत्व प्राप्त हुआ है। समाधि में लीन हो उन्होंने उनचास दिनों तक कुछ भी नहीं खाया। तुम्हारे पास जो कुछ भी हो, उससे उन्हें सम्मानित करो। तुम्हारा महान हित होगा।" दोनों व्यापारियों ने यात्रा में खाने के लिए तैयार किए हुए लड्डू और कुछ मट्ठा निकाल कर भगवान को अर्पित किया जिसे भगवान ने ग्रहण कर लिया।

जिस स्थान में दो व्यापारियों ने मट्ठा और लड्डू अर्पित किए थे, उसी के पास एक स्तूप खड़ा था। यह वही स्थल था जिस पर चारों देवराजों ने पात्र अर्पित किए थे। जब दो व्यापारियों ने मट्ठा और लड्डू अर्पित किए, तब तथागत ने सोचा कि उन्हें किस पात्र में ग्रहण किया जाए। उस समय चार देवराज स्वर्ण पात्र ले कर चारों दिशाओं से भगवान के समक्ष उपस्थित हुए। भगवान ने मौन रह कर पात्र नहीं लिए। उनका मानना था कि एक परिव्राजक के लिए ऐसे पात्र का प्रयोग अनुचित है। चारों देवराजों ने स्वर्ण पात्र एक ओर रख दिए तथा फिर रजत पात्र और फिर क्रमशः स्फटिक, कांच, लालमणि, वैदूर्य और मोती के बने पात्र भी अर्पित किए। लेकिन भगवान ने उन सबको लेने से अस्वीकार किया। अंत में चारों देवराज अपने-अपने प्रासादों से बैंगनी रंग के अर्ध पारदर्शी पत्थर के पात्र ले आए। भगवान ने किसी का अनादर न करने के विचार से वे चारों पत्थर के पात्र स्वीकार कर लिए और पात्रों को एक दूसरे पर रख कर दबा दिया, जिससे वे एक ही पात्र में बदल गए। इसलिए भगवान के भिक्षा-पात्र का किनारा चार परतों का हो गया।

भिक्षा-पात्र-प्रदान स्तूप के पास एक स्तूप उस स्थान पर खड़ा था जहां तथागत ने अपनी

माता महामायादेवी को धर्मोपदेश दिए थे। बुद्धत्व-प्राप्ति के पश्चात् तथागत को शास्ता देवमनुष्याणाम की उपाधि मिली। उनकी माता महामायादेवी स्वर्ग से उतर कर इस स्थान में ग्राईं। भगवान ने उन्हें धर्मोपदेश दिए ग्रौर इस प्रकार उन्हें हित ग्रौर सुख प्रदान किया। इस स्तूप के समीप एक सूखे पड़े तालाब के तट पर एक स्तूप था, जहां तथागत ने दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर प्राणियों को धर्म की दीक्षा दी थी।

दिव्य-शक्ति-प्रदर्शन स्तूप के समीप उस स्थल पर एक ग्रौर स्तूप था, जहां तथागत ने उरुवेल काश्यप बंधुग्रों एवं उनके एक हजार शिष्यों को सद्धर्म में दीक्षित किया था। जब तथागत ने देशना देना ग्रौर भिन्न-भिन्न स्थितियों के ग्रनुसार प्राणियों को उपसंपन्न करना ग्रारंभ कर दिया, तब उरुवेल काश्यप के पांच सौ शिष्यों ने बुद्ध की देशना ग्रहण करने का ग्रनुरोध किया। काश्यप ने कहा : "मैं भी तुम लोगों के साथ सत्य पथ पर चलूंगा।" वे बुद्ध के यहां गए। तथागत ने उनसे कहा : "मृगचर्म से बने वस्त्र त्याग दो ग्रौर ग्रग्नि-होत्र सामग्री छोड़ दो!" यह सुन कर उन ब्राह्मणों ने बड़ी श्रद्धा से बुद्ध की देशना का पालन कर ग्रपने वस्त्र ग्रौर सामग्री नैरंजना में बहा दिए। जब नदीकाश्यप ने नैरंजना में ग्रग्निहोत्र सामग्री बहती हुई देखी, तो वह ग्रपने शिष्यों को साथ ले कर ग्रपने बड़े भाई को देखने गया। यह देख कर कि उसके बड़े भाई सद्धर्म में दीक्षित हो चुके हैं, वह भी भिक्षु बन गया। गयाकाश्यप ने ग्रपने दो सौ शिष्यों के साथ जब सुना कि उसके भाइयों ने ग्रपना पंथ छोड़ दिया है, तो वह भी बुद्ध के पास गया ग्रौर उसकी उपसंपदा हुई।

जिस स्थान में काश्यप बंधु सद्धर्म में दीक्षित हुए थे, उस स्थान के उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप खड़ा था, जहां तथागत ने उस ग्रग्नि-नाग को वशीभूत किया था जिसकी काश्यप बंधु उपासना करते थे। किसी को सद्धर्म में दीक्षित करने से पूर्व तथागत सदा उसके इष्ट-देवता को वश में कर लेते थे। ग्रत: उन्होंने उस ग्रग्नि-नाग की गुहा में एक रात वास किया जिसकी वे ब्राह्मण उपासना करते थे। जब रात हुई, तब ग्रग्नि-नाग धुग्रां ग्रौर ग्राग छोड़ने लगा। समाधिस्थ बुद्ध भी प्रज्वलित हो उठे। गुहा खुली थी ग्रौर भीषण ग्राग से प्रकाशमय हो रही थी। इस डर से कि कहीं भीषण ग्राग से बुद्ध को क्षति न पहुंचे, समस्त ब्राह्मण भागे-भागे गुहा के पास गए ग्रौर विलाप करने लगे। उरुवेल काश्यप ने ग्रपने शिष्यों से कहा : "यह ग्राग लगी नहीं जान पड़ती है, बल्कि महाश्रमण ग्रग्नि-नाग को ग्रपने वश में कर रहे हैं।" पौ फटने पर तथागत ने ग्रग्नि-नाग को भिक्षा-पात्र में रख ब्राह्मणों को दिखाया। इस स्थान के समीप एक स्तूप था, जहां पांच सौ प्रत्येक बुद्ध एक साथ निर्वाण को प्राप्त हुए थे।

मुचिलिंद कुंड के दक्षिण में एक स्तूप था, जहां काश्यप, बुद्ध को जल में डूबने से बचाने ग्राया था। काश्यप बंधुग्रों की ऋद्धि शक्ति की प्रशंसा की जाती थी। निकट ग्रौर दूर के सभी लोग उनके सद्‌गुणों के प्रशंसक ग्रौर भक्त बन गए थे। तब भगवान पथभ्रष्टों

को रास्ता दिखाने और सभी प्राणियों का उद्धार करने में सलग्न थे। उन्होंने घटाओं से आकाश को ढक दिया और मेघ बरसाये, किन्तु अपने निवास के आसपास की भूमि को सूखा रखा। वर्षा को देख कर काश्यप ने अपने शिष्यों से कहा : "कहीं महाश्रमण का निवास जलमग्न न हो गया हो!" जब वे नाव ले उनकी रक्षार्थ वहां पहुंचे, तब उन्होंने देखा कि भगवान पानी पर ऐसे चल रहे थे, जैसे वे भूमि पर ही हों। जब वे नदी की मंझधार में आए, तो पानी दोनों ओर हट गया और बालू उभर आई। यह देख कर काश्यप आश्वस्त हो कर चला गया।

7. पूर्वी द्वार के बाहर के अवशेष

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के पूर्वी द्वार से दो-तीन ली दूरी पर नेत्रहीन नागराज की गुहा थी। अपने पूर्वजन्मों में किए हुए पापों का फल मिलने पर यह नागराज जन्म से ही नेत्रहीन था। जब तथागत प्रागबोधि पर्वत से बोधि-वृक्ष की ओर चलते हुए रास्ते में इस गुहा के पास से गुजरे, तब इस नागराज की आंखों में एकाएक ज्योति वापस लौट आई। उसने देखा कि बोधिसत्व बोधि-वृक्ष की ओर जा रहे हैं। वह बोधिसत्व से बोला : "आपको शीघ्र ही बुद्धत्व प्राप्त होगा। मेरी आंखें नष्ट हुए अनेक वर्ष बीत चुके हैं। जब भी कोई बुद्ध बनता है, मेरे नेत्रों में ज्योति लौट आती है। भद्रकल्प के तीन भूत बुद्धों ने जब इस संसार में चरण रखे थे, तब भी मेरी आंखों में ज्योति लौट आई थी। आज आप यहां पधारे हैं और मेरी आंखें खुलने लगी हैं। अतएव मैं जान गया हूं कि आपको बुद्धत्व अवश्य प्राप्त होगा।"

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के पूर्वी द्वार के समीप एक स्तूप उस स्थान पर खड़ा था, जहां मार ने बोधिसत्व को डराया-धमकाया था। जब मार को ज्ञात हुआ कि बोधिसत्व को बुद्धत्व प्राप्त हो रहा है, उसने बोधिसत्व को बहकाया भी और उद्विग्न भी किया। किन्तु उसके प्रयास विफल रहे। उसे घबराहट और उदासी हुई। बोधिसत्व को डराने-धमकाने की नीयत से उसने मार-सेना को पुनर्गठित किया और युद्ध का अभ्यास कराया। इससे जोर की आंधी चली, भीषण वर्षा हुई, बादल गरजे, बिजली चमकी और घनघोर अंधेरा छा गया। आग लगी, धुंआ उठा, बालू उड़ी और पत्थर लुढ़के। भाले और धनुष का भी प्रयोग किया गया। मार ने प्रत्येक हथकंडा अपनाने में कोई कसर न उठा रखी। यह देख कर बोधिसत्व दशपारमिताओं का स्मरण करते हुए समाधिस्थ रहे, जिससे सभी शस्त्र कमल के फूलों में बदल गए। मार-सेना घबरा कर भाग खड़ी हुई। यहां से कुछ दूरी पर दो स्तूप खड़े थे, क्रमशः इन्द्र और ब्रह्मा ने बनाए थे।

8. उत्तर द्वार के बाहर महाबोधि संघाराम

बोधि-वृक्ष के प्राचीर के उत्तर द्वार के बाहर जो महाबोधि संघाराम था, वह सिंहल के एक स्वर्गीय राजा ने बनवाया था। उसके छः प्रांगण थे। भवन तीन तल्लों के थे। प्राचीर तीन-चार चाङ ऊंचा था। वास्तुकला उत्कृष्ट थी और उसके आकर्षक चित्र अद्वितीय थे। बुद्ध-प्रतिमा सोने और चांदी से बनी हुई थी और उस पर मणि और रत्न जड़ित थे। सभी स्तूप ऊंचे थे और अद्भुत ढंग से अलंकृत थे। उनमें तथागत की अस्थियां सुरक्षित थीं। अस्थियों के अवशेष अंगुल जितने बड़े, श्वेत, चिकने एवं अर्धपारदर्शी थे। मांस के अवशेष बड़े-बड़े मोतियों जैसे थे और उनका रंग हल्का बैंगनी था। प्रति वर्ष जिस महीने में तथागत ने दिव्य शक्ति का प्रदर्शन किया था, उसी महीने की पूर्णिमा को (यानी भारतीय पंचांग के अनुसार बारहवें महीने की तीसवीं तिथि को, अर्थात् चीनी पंचांग के अनुसार प्रथम महीने की पंद्रहवीं तिथि को) ये अस्थियां लोगों को दिखाई जाती थीं। ऐसे अवसर पर प्रकाश फैल जाता था, या आकाश से पुष्पों की वर्षा होती थी। संघाराम में भिक्षुओं की संख्या एक हजार से कम थी। वे सभी महायान के स्थविरवादी थे और दृढ़तापूर्वक विनय का पालन करते थे।

अतीत में दक्षिण सागर में सिंहल का राजा भगवान बुद्ध का भक्त था। उनके कुल का एक भाई परिव्राजक था। वह बुद्ध संबंधी तीर्थों के दर्शनार्थ भारत गया। जिन संघारामों में उसने ठहरना चाहा, उन संघारामों के भिक्षुओं ने उसकी सादगी और भोलेपन की हंसी उड़ाई। लाचार हो वह स्वदेश लौटा। राजा ने स्वयं जा कर उसका स्वागत किया। दुःख के मारे श्रमण का गला रुंध गया। वह कुछ भी बोल न सका। राजा ने पूछा : "तुम पर ऐसी क्या बीती जो तुम इतने दुःखी हो रहे हो ?" श्रमण ने कहा : "मैंने अपने देश की प्रतिष्ठा के बल पर परिव्रज्या करता हुआ जहां-तहां ज्ञान सीखने का प्रयास किया और विदेश में मुझे मौसम के कठोर थपेड़े सहने पड़े। वहां अपने प्रत्येक आचरण पर मेरा अपमान किया जाता था और मेरी प्रत्येक बात की हंसी उड़ाई जाती थी। इतने कष्टों और अनादर का सामना करने पर भला मैं कैसे प्रसन्न हो सकता हूं ?" राजा बोले : "यह सब कैसे हुआ ?" श्रमण ने कहा : "मेरी हार्दिक आशा है कि महाराज आप पुण्य-फलों की प्राप्ति हेतु भारत में एक संघाराम बनवाएं। इस प्रकार बुद्ध के प्रति श्रद्धा भी आपत हो जाएगी और आपको उच्च प्रतिष्ठा भी मिल जाएगी, जिससे स्वर्गीय राजा को सुख-शांति मिल सकेगी तथा परवर्ती पीढ़ियों का उपकार हो सकेगा।" राजा ने कहा : "यह एक सत्कर्म है। ऐसा सुझाव मैं इतनी देर में क्यों सुन पाया हूं ?" उन्होंने अपने रत्न भारत के राजा को भिजवा दिए। भारत के राजा ने उपहार ग्रहण किए और इस दूरस्थ देश का सम्मान करने के विचार से उन्होंने दूत से पूछा : "मुझे कौन-सा प्रत्युपकार करना चाहिए ?" दूत बोला : "सिंहल के

राजा भारत के महाराजा को प्रणाम करते हैं। ग्रापका नाम ग्रौर ग्रापके उपकार दूरस्थ स्थानों में बहुचर्चित हैं। उन स्थानों की जनता ग्रापके ग्रनुग्रह के बोझ से दबी है। हमारे देश का एक श्रमण ग्रापके देश की संस्कृति का पूजक था। उसने तीर्थ-यात्रा के लिए ग्रापके देश का भ्रमण करने की धृष्टता की। उसने संघारामों में ठहरना चाहा, पर किसी संघाराम में भी उसे ठहरने नहीं दिया गया। उसे ग्रवर्णनीय कष्ट झेलने पड़े ग्रौर ग्रपमानित हो कर स्वदेश लौटना पड़ा। मैंने व्यक्तिगत रूप से एक दूरगामी उपाय सोच लिया है जिससे ग्राने वाली पीढ़ियां भी उसका ग्रनुकरण कर सकें, ग्रर्थात् भारत में एक संघाराम स्थापित किया जाए, ताकि विदेशों से ग्राने वाले भिक्षुग्रों को विश्राम के लिए एक स्थान मिले एवं हमारे दोनों देश मैत्रीपूर्वक साथ-साथ रहें तथा दूतों का ग्रादान-प्रदान होता रहे।" इस पर भारत के राजा ने कहा : "तथागत ने दिव्य शक्ति से प्रजा को प्रभावित किया था ग्रौर ग्रभी उनका प्रभाव विद्यमान है। ग्रपनी इच्छानुसार ग्राप तीर्थों में से किसी एक को चुन लें।" स्वदेश वापस लौट कर दूत ने सारी बात राजा को बताई। मंत्रियों ने घुटने टेक कर राजा का ग्रभिनंदन किया। राजा ने संघाराम के निर्माण के विषय पर विचारार्थ श्रमण को बुलाया। श्रमण ने कहा : "बोधि-वृक्ष एक ऐसा तीर्थ है, जहां भूत ग्रौर भावी बुद्धों को बोधि प्राप्त होती है। ग्रन्य स्थानों की तुलना में यह स्थान सर्वोत्तम है।" तब राजा ने रत्नों का दान कर यह संघाराम बनवाया ग्रौर उसकी देखभाल के लिए ग्रपने देश से भिक्षु भेजे। राजा द्वारा एक ताम्रपत्र पर खुदवाए गए ग्रभिलेख में कहा गया : "निस्वार्थ हो कर दान करना बुद्धों की देशना है। पुण्य कर्म करने वालों की सहायता करना मुनियों का उपदेश है। ग्राज मैंने राज्यारोहण कर श्रद्धा से यह संघाराम बनवाया है, ताकि भगवान बुद्ध का स्मरण किया जा सके, पूर्वजों को सुख-शांति मिल सके ग्रौर प्रजा का उपकार हो जाए। मेरे देश के भिक्षु स्वतंत्रता से इस संघाराम में ग्रा-जा सकते हैं एवं ग्रन्य देशों के भिक्षुग्रों को भी उनकी ही तरह यह ग्रनुमति है। यह संदेश निरन्तर परवर्ती पीढ़ियों तक पहुंचाया जाना चाहिए।" इसलिए इस संघाराम में ग्रधिकतर भिक्षु सिंहल के थे।

9. वर्षावास का समय

बोधि-वृक्ष के दक्षिण में इतने ग्रधिक बुद्ध संबंधी ग्रवशेष थे कि उनका विस्तृत वर्णन करना ग्रसंभव है। प्रति वर्ष वर्षावास की समाप्ति के उपरांत सात दिनों ग्रौर सात रातों में हजारों भिक्षु ग्रौर गृहस्थ चारों दिशाग्रों से यहां ग्राते थे। वे सुगंधित फूल उठाए, वाद्य बजाते ग्रौर वन में विहार करते हुए पूजा-पाठ करते थे। भारत के भिक्षु बुद्ध की देशना के ग्रनुसार श्रावण के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन से ग्रर्थात् चीनी पंचांग के पांचवें महीने

की सोलहवीं तिथि से वर्षावास आरंभ करते थे और आश्विन की अमावस्या को अर्थात् चीनी पंचांग के आठवें महीने की पंद्रहवीं तिथि को वर्षावास समाप्त करते थे। भारत में मासों के नाम बारह नक्षत्रों के अनुरूप रखे गए थे। प्राचीन काल से ही वे अपरिवर्तित रहे थे। इस संदर्भ में विभिन्न निकायों और संप्रदायों के बीच कोई मतभेद नहीं था। लेकिन चीन में तो वर्षावास चौथे महीने की सोलहवीं तिथि को आरंभ होता है तथा सातवें महीने की पंद्रहवीं तिथि को समाप्त होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि दोनों देशों की भाषाओं में भारी अंतर है और अनुवाद में अशुद्धियां हुई हैं। इसलिए ऋतुओं और मासों की गिनती में यह त्रुटि हुई।

खण्ड नौ

मगध (ख)

अठारह. गंधहस्तिन कुंड

बोधि-वृक्ष के पूर्व में नैरंजना के उस पार वन में एक स्तूप था। उसके उत्तर में एक कुंड था जहां गंधहस्तिन अपनी माता की सेवा करता था। बोधि-प्राप्ति के लिए साधना करते समय तथागत एक नन्हे गंधहस्तिन के रूप में जन्मे थे। वह गंधहस्तिन उत्तर गिरि में निवास करता था और कुंड के पास क्रीड़ा करता था। उसकी माता नेत्रहीन थीं। वह कमल-कंद तोड़ और स्वच्छ जल ला, तन-मन से अपनी माता की सेवा करता था। समय बीतता गया एवं वह ऐसा ही करता रहा। कालांतर में एक व्यक्ति वन में विहार के समय रास्ता भटक गया और दुविधा में पड़ा विलाप करने लगा। उसका रुदन सुन कर गंधहस्तिन को उस पर दया आई। उसने उस व्यक्ति को आगे चलते हुए मार्ग दिखा दिया। जब वह व्यक्ति अपने देश में लौट गया, तो उसने राजा को बताया : "मुझे ज्ञात हुआ है कि छोटा गंधहस्तिन किसी वन में घूमता है। वह एक दुर्लभ पशु है। उसे पकड़ लाया जा सकता है।" राजा ने उसकी बात मान ली और वे सेना ले कर निकल पड़े। आगे-आगे चलते हुए जब उस व्यक्ति ने राजा को वह गंधहस्तिन दिखाया, तो उसकी दोनों बांहें तुरन्त टूट कर भूमि पर गिर गईं, मानो उन्हें किसी ने काट दिया हो। इस विस्मयकारी बात से राजा आश्चर्यचकित अवश्य हुए, फिर भी वे गंधहस्तिन को पकड़ कर ले गए। गंधहस्तिन बांधा गया और अनेक दिनों तक उसने आहार नहीं किया। हस्तीशाला के पालक ने यह बात राजा को बताई। राजा ने स्वयं जा कर गंधहस्तिन से पूछा। गंधहस्तिन ने उत्तर दिया : "मेरी मां नेत्रहीन हैं। इन दिनों से वे भूखी रही हैं। आज मैं विपत्ति में फंसा हूं, तो फिर खाने को गले से कैसे उतार सकता हूं ?" राजा उसकी मातृ-भक्ति से प्रभावित हुए और उसे मुक्त कर दिया। कुंड के पास स्तूप के समक्ष एक प्रस्तर स्तंभ खड़ा था। इस स्थल पर काश्यप बुद्ध ध्यान से आसन लगाए बैठे थे। उसके निकट चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

उन्नीस. जहां एक तीर्थिक ने शपथ खाई थी

चार बुद्धों के आसनों के पूर्व में महानदी के उस पार घने वन में एक प्रस्तर स्तंभ उस स्थान पर था जहां एक तीर्थिक ने समाधि लगाई थी और शाप दिया था। इस तीर्थिक का नाम था उद्रामपुत्र। उसे प्रकृति से प्रेम था। वह नगर के बाहर वास करता था और इस तपोवन में एकांत जीवन बिताता था। उसे पंचाभिज्ञा और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन प्राप्त हो चुकी थी। मगध का राजा उसका बड़ा आदर करता था और प्रत्येक दिन मध्याह्न में उसे अपने प्रासाद में भोजन के लिए बुलावा भेजता था। उद्रामपुत्र भूमि से ऊपर उठ कर हवा में आता-जाता था। यह क्रम कभी बन्द नहीं होता था। मगध का राजा खड़े-खड़े उसकी बाट जोहता था और उसे आता हुआ देख कर हाथ बढ़ा कर उसकी अगवानी करता था। राजा स्वयं उसे आसन देता था। एक बार राजा को भ्रमण के लिए बाहर निकलना पड़ा। उसने उद्रामपुत्र का सत्कार करने का काम किसी को सौंप देना चाहा। पर अंत:पुर में कोई ऐसा नहीं मिला, जो यह कार्य संभालने में समर्थ हो। उसकी छोटी पुत्री दयार्द्र, सत्वधान, सुशील और रूपवती थी। वह मिलनसार और सक्षम भी थी। कोई भी उससे बढ़ कर नहीं हो सकता था। राजा ने उसे बुला कर कहा : "मैं बाहर जा रहा हूं। तुम्हें एक काम सौंपना चाहता हूं। तुम्हें उसे पूरा करने के लिए भरपूर प्रयत्न करने चाहिएं। मैं सदा ऋषि उद्रामपुत्र का सम्मान करता रहा हूं। जब वे भोजन के लिए आएं, तो तुम्हें मेरी भांति उनकी सेवा करनी होगी।" इसके बाद राजा निरीक्षण-दौरे पर गया। पुत्री अपने पूज्य पिता के आदेशानुसार ऋषि की प्रतीक्षा में खड़ी रही। जब उद्रामपुत्र आया, तब उसने हाथ बढ़ा कर उसकी अगवानी की तथा फिर आसन दिया। स्त्री से स्पर्श होने पर उद्रामपुत्र में काम की वासना उत्पन्न हुई, जिससे वह अपनी अलौकिक शक्ति खो बैठा। भोजन के बाद जब वह लौटने को हुआ, तब हवा में चलने में असमर्थ हो गया। उसे झुंझलाहट हुई। पर मुंह पर राजा की पुत्री को फुसलाते हुए उसने कहा : "पहले मैं ईश्वर के ध्यान में मग्न हो, बैठे-बैठे ही समाधि लगाता था और स्त्री क्लेशों से दूर रहता था। हवा में आता-जाता था। अतएव मुझे तनिक भी अवकाश नहीं मिल पाता था। यद्यपि मैंने सुना था कि प्रजा मुझसे मिलना चाहती है, किन्तु भूत काल के मुनियों का यह उपदेश है कि लोक-कल्याण को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। भला मैं अपने ही कल्याण के लिए दूसरों की मदद करना कैसा भूल सकता हूं? आज से मैं द्वार से बाहर निकलूंगा, भूमि पर चलूंगा, ताकि जो मुझे देखे, उसे लाभ मिले।" यह बात राजा की पुत्री ने सार्वजनिक रूप से घोषित की। लोगों ने आदर-भाव से बढ़-चढ़ कर मार्गों पर झाड़ू लगाई। हजारों व्यक्ति खड़े-खड़े उद्रामपुत्र की प्रतीक्षा करने लगे। उद्रामपुत्र प्रासाद से पैदल चल कर वन में वापस आया। समाधि लगाते समय उसका मन विचलित हो गया और

वह अपना ध्यान केंद्रित न कर सका। वन में बैठा, तो उसे केवल पक्षियों की चहचहाहट ही सुनाई दी। कुंड के पास बैठा, तो मछलियों के हो-हल्ले का शब्द ही उसके कान से टकराया। फलस्वरूप उसका चित्त बिखर गया और वह समाधि न लगा सका। उसने क्रुद्ध हो कर शपथ ली : "अगले जन्म में मैं एक खूंख्वार पशु के रूप में जन्म लूंगा। मेरा शरीर लोमड़ी जैसा होगा और मेरे पंख होंगे, मैं जीवों का भक्षण करूंगा। मेरा शरीर तीन हजार ली चौड़ा होगा और एक-एक पंख डेढ हजार ली लम्बे होंगे। मैं वन में जा कर पक्षियों को खा डालूंगा और जल के नीचे जा कर जलीय जीव-जन्तुओं को।" शाप देने के पश्चात् उसका क्रोध कम होता गया। प्रयत्न करने पर उसे समाधि की शक्ति फिर से प्राप्त हो गई। कुछ समय बाद उसका देहावसान हो गया। उसका नैवसंज्ञानासंज्ञायतन स्वर्ग में पुनर्जन्म हुआ और उसे अस्सी हजार कल्पों की आयु प्राप्त हुई। तथागत ने यह भविष्य-वाणी की कि स्वर्ग में आयु की समाप्ति होने पर वह अपने शाप से ग्रस्त होगा और कुत्सित रूप धारण करेगा। तब से उसका नीच जन्तुओं के रूप में पुनर्जन्म होता रहेगा और इस दुष्चक्र से वह कभी नहीं उबर सकेगा।

बीस. कुक्कुटपाद गिरि और महाकाश्यप की कथा

महानदी के पूर्व में वन से सौ ली से अधिक दूरी पर कुक्कुटपाद गिरि अथवा गुरुपाद गिरि स्थित था। ऊंचे-उंचे कगार और सीधी-खड़ी चट्टानें थीं। अथाह गुहाओं का न ओर था न छोर। तलहटी में एवं सोतों के बीच ऊंचे-ऊंचे वृक्ष फैले खड़े थे। ढलानों पर हरीभरी घास चट्टानों को ढके हुए थी। तीन चोटियां और उनके निकट सीधी चट्टानें आकाश को छूती हुई दिखाई देती थीं और उनका रूपाकार बादलों जैसा लगता था। चूंकि आयुष्मान महाकाश्यप इस गिरि पर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे, इसलिए लोगों को इस गिरि का नाम ले कर पुकारने का साहस नहीं होता था। इसी कारण इसका एक अन्य नाम पड़ा "गुरुपाद गिरि"। महाकाश्यप तथागत के शिष्य थे। उन्हें षड्भिज्ञा और आठ विमोक्ष प्राप्त थीं। प्राणियों को धर्मोपदेश देने का कार्य पूरा कर, परिनिर्वाण से पूर्व, तथागत ने काश्यप से कहा : "मैंने प्राणियों के लिए परिनिर्वाण के उपाय की खोज में कल्पों तक तप किया। मेरी सभी अभिलाषाएं आज साकार हो चुकी हैं। अब मैं परिनिर्वाण को प्राप्त हो रहा हूं, तुम्हें अपना समूचा अभिधर्म-पिटक सौंपता हूं। तुम्हें संसार में सद्धर्म का संरक्षण एवं प्रचार करना चाहिए और इस कार्य में कोई दोष न होने देना चाहिए। मैं अपनी मौसी द्वारा प्रदत्त स्वर्ण खचित काषाय संघाटी छोड़े जाता हूं। तुम उसे मैत्रेय के बुद्धत्व प्राप्त होने पर उसे दे देना। मेरा धर्म मानने वाले भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों और उपासि-काओं का तुम्हें सर्वप्रथम उद्धार करना चाहिए और उन्हें संसार से उबारना चाहिए।"

बुद्ध की आज्ञा पा कर काश्यप मनुष्य लोक में सद्धर्म की रक्षा करते रहे। संगीति के बीस वर्ष उपरांत उन्हें इहलोक की अनित्यता से घृणा हुई और उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त करने का विचार किया। वे कुक्कुटपाद गिरि की ओर चल पड़े। उत्तर की ओर वे पगडंडियों पर चलते हुए दक्षिण-पश्चिम ढलान पर पहुंचे। वहां पथ दुर्गम था और कोई रास्ता नहीं था। उन्होंने अपनी यष्टि भूमि पर दे मारी जिससे पर्वत मानों काट सा दिया गया। ऊपर जाने के लिए रास्ता बन गया। वे आगे बढ़ते गए और चक्कर लगा एवं टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता पार कर वे उत्तर-पूर्व की दिशा में पर्वत के शिखर पर जा पहुंचे और तीन चोटियों के मध्य में बुद्ध की काषाय संघाटी उठा कर खड़े हो गए। उन्होंने अपनी साधना के बल पर तीनों चोटियों को उलट डाला। इसलिए अब इस पर्वत पर तीन उत्तुंग पृष्ठ दिखाई देते हैं। भविष्य में जब मैत्रेय इहलोक में जन्म लेंगे और तीन सभाओं में धर्मोपदेश देंगे, तब भी असंख्य प्राणी नास्तिक होंगे। वे इस पर्वत पर चढ़ कर उस स्थान में पहुंचेंगे, जहां काश्यप कभी खड़े हुए थे। मैत्रेय चुटकी बजा कर तीन उत्तुंग पृष्ठों को फिर से सीधा कर देंगे और काश्यप को देखते ही वे प्राणी और अधिक घमंडी बन जाएंगे। तब महाकाश्यप मैत्रेय को काषाय संघाटी सौंप कर उनका अभिवादन करेंगे। ऐसा करने के अनंतर वे उड़ कर आकाश में जाएंगे और दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर आत्मदाह के लिए अग्नि प्रज्वलित करेंगे तथा इस प्रकार वे परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। यह दृश्य देख कर सभी प्राणियों का गर्व नष्ट हो जाएगा, वे सद्धर्म में विश्वास करने लगेंगे और अर्हत्व प्राप्त करेंगे। अभी इस गिरि के शिखर पर एक स्तूप खड़ा था। रात के सन्नाटे में दूर से देखने पर कभी-कभी प्रज्वलित मशाल देखी जा सकती थी। किन्तु गिरि का आरोहण करने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

इक्कीस. बुद्धवन गिरि और यष्टिवन

कुक्कुटपाद गिरि से सौ ली दूर उत्तर-पूर्व में बुद्धवन गिरि स्थित था। शिखर ऊंचे थे और ढाल सीधे। गिरि के मध्य भाग में एक शैलगृह था, जिसमें बुद्ध ने विश्राम किया था। उसके समीप एक सपाट शिला थी, जिस पर इन्द्र और ब्रह्मा ने बुद्ध के शरीर को पोतने के लिए गोशीर्ष चन्दन पीसा था। आज भी यह शिला बहुत सुगंधित थी। यहां पांच सौ अर्हत भी छिपे हुए हैं। सौभाग्यशाली व्यक्ति उन्हें कभी-कभी देख भी सकते हैं। ऐसे समय पर ये अर्हत श्रामणेरों के रूप में प्रगट हो कर गांव-गांव जा कर भिक्षा मांगते हैं। वे कभी दृष्टिगोचर होते हैं तो कभी अदृश्य। उनके चमत्कारों का अल्पशब्दों में वर्णन करना असंभव है।

बुद्धवन गिरि की घाटी में पूर्व की दिशा में तीसेक ली की दूरी चलने पर यष्टिवन दिखाई पड़ता है। वन में बांस के सीधे एवं ऊंचे उठे हुए वृक्ष थे। वे ढालों को ढके हुए थे और समग्र

घाटी में फैले हुए थे। अतीत में एक ऐसा ब्राह्मण भी था, जिसके मन में इस बात पर शंका रहती थी कि शाक्यमुनि का शरीर एक चाङ छः छि ऊंचा है। उसे विश्वास नहीं आता था। उसने एक चाङ छः छि ऊंची यष्टि से बुद्ध का शरीर नापने की कोशिश की। पर बुद्ध का शरीर सदा यष्टि के सिर के ऊपर एक चाङ छः छि बढ़ जाता था। इस प्रकार बुद्ध का शरीर इतना ऊंचा हो गया कि उसकी वास्तविक ऊंचाई का पता लगाना असंभव हो गया। तब वह ब्राह्मण यष्टि वहीं छोड़ कर चला गया और यष्टि ने यहां जड़ पकड़ ली। यष्टिवन में एक बड़ा स्तूप था, जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। तथागत ने यहां सप्ताह भर देवों एवं मनुष्यों के सामने अपनी दिव्य शक्तियों का प्रदर्शन किया था और धर्मोपदेश दिए थे।

1. जयसेन की कथा

यष्टिवन में उस समय में जयसेन नाम का एक उपासक वास करता था। उसका जन्म पश्चिम भारत के एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उसे सादगी और प्रकृति से प्रेम था। मायामय इहलोक में रहते हुए भी उसके हृदय में परमसत्य के प्रति आस्था थी। उसने देशी-विदेशी ग्रंथों के गूढ़ और सूक्ष्म सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया था। वह वाक्पटु था और उसके मत विचारोत्पादक थे। वह बड़ा शिष्ट और तेजस्वी था। श्रमण, ब्राह्मण, विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक विद्वान, राजा-महाराजा, मंत्री, बड़े-बड़े व्यापारी और अभिजात उसके दर्शन करने आते रहते थे और आदर-भाव से उससे शिक्षा ग्रहण करते थे। प्रत्येक दस परिवारों में से छः का कोई न कोई सदस्य उसका शिष्य था। सत्तर वर्ष का हो चुकने पर भी उसका मन अध्ययन में लगा रहता था। अन्य विद्याओं को छोड़ कर वह विशेष रूप से बौद्ध सूत्रों का अध्ययन करने लगा। वह दिन-रात एकाग्रचित्त से अपने अध्ययन में संलग्न रहा। भारत में एक परंपरा थी कि अगरबत्ती के चूर्ण और जल के मिश्रण से पांच-छः छुन ऊंचा छोटा स्तूप बना कर उसके अन्दर सूत्रों की एक प्रति रख दी जाती थी। यही तथाकथित "धर्म स्तूप" होता था। उनकी संख्या अधिक हो जाने पर एक बड़ा स्तूप बनाया जाता था और उसके अन्दर सभी धर्म स्तूप रख दिए जाते थे। उसके उपरांत लोग उसकी प्रायः देखभाल किया करते थे। इसलिए जयसेन दीक्षा देते समय एक ओर मुंह से शिष्यों को बौद्ध धर्म के सिद्धांत समझाते रहते थे और दूसरी ओर श्रद्धा भाव से पूरित हो कर दोनों हाथों से स्तूप बना कर पुण्य कर्म करते रहते थे। रात को वे चंक्रमण, वंदना व पूजा-पाठ भी करते थे एवं समाधि भी लगाते थे। वे खाना और सोना भूल कर दिन-रात कभी शिथिल नहीं होते थे। उनकी आयु सौ वर्ष की हो चुकी थी, तथापि वे हतोत्साहित नहीं हुए और न ही अपने कार्य में शिथिल पड़े। तीस वर्षों के समय मे उन्होंने कुल मिला कर सात कोटि धर्म स्तूप बना दिए और प्रत्येक कोटि धर्म स्तूप बन जाने पर एक बड़ा स्तूप बनाया जाता

था और उसके अन्दर सभी धर्म स्तूप रख दिए जाते थे। वे बड़े यत्न से उनकी देखभाल करते रहते थे। समय-समय पर वे बहुत से भिक्षुओं को बुला कर धार्मिक समारोह भी आयोजित करते रहते थे। ऐसे समय में दैवी प्रभा फैल जाती थी और चमत्कार भी दिखाई देते थे। ये स्तूप समय-समय पर किरणें फेंकते थे।

2. यष्टिवन के निकट के अवशेष

यष्टिवन से दसेक ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक ऊंचे पर्वत के दक्षिण में दो उष्ण सोते थे। इनका जल बहुत उष्ण था। ये दो सोते तथागत ने फोड़ निकाले थे और इनमें वे स्नान करते थे। इन दो सोतों का जल आज भी तनिक सा घटा नहीं था। दूर और निकट से लोग आ कर इनमें स्नान करते थे। अनेक दीर्घकालीन रोगों से ग्रस्त व्यक्ति यहां स्नान कर भले-चंगे हो जाते थे। सोतों के निकट एक स्तूप था, जो तथागत के चंक्रमण का स्मारक था।

यष्टिवन से छः-सात ली दूर दक्षिण-पूर्व में एक ऊंचे पर्वत के आगे एक स्तूप खड़ा था। तथागत ने यहां मनुष्य और देवों को दो-तीन मास तक धर्मोपदेश दिए थे। राजा बिंबिसार ने भी उनकी देशना सुननी चाही। उन्होंने पत्थर हटा कर पर्वत पर एक रास्ता बनवाया। ऊपर की ओर चढ़ता हुआ यह रास्ता बीसेक कदम चौड़ा तथा तीन-चार ली लम्बा था।

ऊंचे पर्वत से तीन-चार ली दूर उत्तर में एक पृथक पहाड़ी थी, जिसमें ऋषि व्यास कभी एकांत जीवन व्यतीत करते थे। ढाल पर जो शैलगृह खोदा गया था, उसका अवशेष अब भी मौजूद था। उन्होंने शिष्यों को अपनी विद्या सिखाई और जो परंपरा उन्होंने बनाई थी, वह अब भी बनी हुई है।

पृथक पहाड़ी से चार-पांच ली दूर उत्तर-पूर्व में एक लघु एकाकी पर्वत था। ढाल पर एक लम्बा-चौड़ा शैलगृह था। उसमें एक हजार से अधिक व्यक्ति समा सकते थे। उसमें तथागत ने तीन मास तक धर्मोपदेश दिए थे। शैलगृह के ऊपर एक सपाट शिला थी, जिस पर इन्द्र और ब्रह्मा ने गोशीर्ष चन्दन पीस कर बुद्ध के शरीर पर पोता था। इस शिला में अब भी चन्दन की तीक्ष्ण सुगंध थी।

3. असुर प्रासाद की अनोखी कथा

शैलगृह के दक्षिण-पश्चिम कोने में एक कंदरा थी, जो असुरों का प्रासाद कहलाती थी। एक यंत्र-तंत्र जानने वाले मनचले ने तेरह मित्रों को बुला इस कंदरा के अंदर जाने की बात उठाई और उन्होंने एक दूसरे का साथ देने का वचन दे कर कंदरा में प्रवेश किया। तीस-चालीस ली दूर चलने के बाद वे एक खुली जगह पर पहुंचे। वहां एक नगर दिखाई

दिया। नगर का प्राचीर और भवन सोने, चांदी व कांच के थे। नगर के द्वार पर दोनों ओर खड़ी कन्याओं ने उनका स्वागत और अभिवादन किया। वे आगे बढ़ते चले गए और भीतर के द्वार पर जा पहुंचे। दो दासियां स्वर्ण थालों में ताजा फूल और गंधद्रव्य उठाए उनकी ओर बढ़ीं और बोलीं : "आप लोगों को सर्वप्रथम कुंड में नहाना चाहिए। फिर आप गंध-द्रव्य लगा, फूलों का मुकुट पहन कर अन्दर चलें। किन्तु इस ऐन्द्रजालिक को तो तुरन्त अकेले अन्दर जाना है।" शेष तेरह व्यक्ति नहाने चले गए। कुंड में उतरने के उपरांत वे स्तब्ध रह गए और भ्रमित हो गए। तभी उन्होंने स्वयं को धान के खेतों में बैठे हुए पाया। खेत कंदरा से तीस-चालीस ली दूर उत्तर में मैदान में थे।

4. सेतु

शैलगृह के समीप एक सेतु था, जो दसेक कदम चौड़ा एवं चार-पांच ली लम्बा था। जब राजा बिंबिसार ने बुद्ध के पास जाना चाहा, तब चट्टानों को तोड़ कर हटाया गया और सरिता के मार्ग को बदल दिया गया। कहीं पत्थर लगाए गए, तो कहीं शैल हटाए गए। अंत में एक सीढ़ीनुमा सेतु बनाया गया, जो उस स्थल पर पहुंचता था, जहां बुद्ध विद्यमान थे।

बाईस. कुशाग्रपुर (पुराना राजगृह)

यहां से ऊंचा पर्वत पार कर पूर्व की ओर साठ ली से अधिक दूर चल कर कुशाग्रपुर तक पहुंचा जाता था। कुशाग्रपुर मगध के मध्य में अवस्थित था एवं प्राचीनकालीन राजाओं की राजधानी था। कुशाग्रपुर का नाम इसलिए पड़ा था कि यहां बढ़िया कुश प्रचुरता से मिलता था। उसके चारों ओर पर्वतश्रेणियां घिरी हुई थीं जो बाहरी प्राचीर का काम देती थीं। पश्चिम में एक पगडंडी थी। उत्तर में बाहर जाने के लिए एक मार्ग था। यह स्थान पूर्व से पश्चिम तक लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक संकरा था। उसकी परिधि डेढ़ सौ ली थी। नगर के खंडहरों की परिधि तीसेक ली थी। संकरे मार्गों के दोनों किनारों पर जहां-तहां कर्णिकार के वृक्ष थे। उनके फूल एक विशेष सुगंधि से युक्त थे। उनका रंग सोने जैसे चटकीला था। वसंत के अन्त में सारा वन स्वर्ण रंग से रंग जाता था।

1. जहां मदोन्मत्त हाथी का वशीकरण किया गया था

प्रासाद के उत्तर द्वार के बाहर उस स्थल पर एक स्तूप था, जहां देवदत्त ने अजातशत्रु

के साथ दोस्ती गांठने के बाद तथागत की हत्या करने की कुचेष्टा में धनपाल नामक मदोन्मत्त हाथी छोड़ा था। तथागत ने अपनी उंगलियों के शीर्ष से पांच शेर उत्पन्न किए और वह मदोन्मत्त हाथी विनम्र हो कर उनके समक्ष पेट के बल बैठ गया।

2. सारिपुत्र की अर्हत्व-प्राप्ति की कथा

मदोन्मत्त-हस्ती-वशीकरण स्तूप के उत्तर-पूर्व में एक स्तूप था, जहां सारिपुत्र को भिक्षु अश्वजित के धर्मोपदेश सुनने के बाद अर्हत्व प्राप्त हुआ था। जब सारिपुत्र एक गृहस्थ थे, तो वे अपनी योग्यता और विशालहृदयता के लिए बहुत सम्मानित थे। वे शिष्यों को विद्याएं सिखाते थे। एक बार वे राजगृह गए। उस समय भिक्षु अश्वजित भिक्षा मांग रहे थे। दूर से उन्हें आते देख कर सारिपुत्र अपने शिष्यों से बोले: "इधर आ रहा वह व्यक्ति बहुत शालीन दिखाई देता है। यदि उसे अर्हत्व प्राप्त न हुआ होता, तो वह इतना सुशील कैसे होता? हम तनिक रुकें और देखें कि वह किधर जा रहा है।" भिक्षु अश्वजित अर्हत बन चुके थे। वे क्लेशों से मुक्त, विनम्र और सच्चरित्र थे। वे गंभीर मुद्रा में यष्टि टेकते हुए आए। सारिपुत्र ने उनका अभिवादन कर पूछा: "आयुष्मान, आप भले तो हैं? आपके गुरु कौन हैं? आप किस धर्म में दीक्षित हुए हैं जो इतने प्रसन्नमुख हैं?" अश्वजित ने उनसे कहा: "क्या तुम नहीं जानते कि राजा शुद्धोदन के राजकुमार ने चक्रवर्ती राजा का पद त्याग कर एवं छः पंथों के प्राणियों पर तरस खा छः वर्षों तक तप किया था? उन्हें संबोधि व सर्वज्ञता प्राप्त हुई थीं। वे ही मेरे आचार्य हैं। जहां तक धर्म का प्रश्न है, वह न तो भाव है, न अभाव है। उसे सुव्यवस्थित रूप से बताना कठिन है। केवल बुद्ध ही बुद्धों के साथ इसे समग्र रूप से स्पष्ट कर सकते हैं। मुझ जैसा अज्ञानी विस्तार से कैसे बता सकता है?" यह कह कर अश्वजित ने सद्धर्म की स्तुति में सारिपुत्र को श्लोक पढ़ कर सुनाए। यह सुनने पर सारिपुत्र ने अर्हत्व प्राप्त किया।

3. श्रीगुप्त अग्नि-कुंड की कथा

सारिपुत्र की अर्हत्व-प्राप्ति के स्थल से कुछ दूर उत्तर में एक बड़ा और गहरा गढ़ा था और उसके निकट एक स्तूप खड़ा था। यह वही स्थल था, जिस स्थल पर श्रीगुप्त ने अग्नि-कुंड एवं विषैले भोजन से बुद्ध की हत्या करनी चाही थी। श्रीगुप्त परधर्म में विश्वास करता था और अपने सद्धर्म-विरुद्ध मतों पर अडिग था। कुछ ब्राह्मणों ने उससे कहा: "प्रजा गौतम का सम्मान करती है, जिससे हम निराश्रित हो गए हैं। आपको उन्हें अपने घर भोज पर बुलाना चाहिए। द्वार के नीचे एक बड़ा गढ़ा खोदें और उसके अन्दर आग

लगा दें। गढ़े के मुंह को सड़ी लकड़ी से बन्द कर उस पर धूल बिखेर दें और सभी भोजनों में विष मिला दें। यदि वे जलते गढ़े में न भी गिरे, तो भी विषैला भोजन खाने से उनकी मृत्यु हो जाएगी।" उनकी बात मान कर श्रीगुप्त ने भोज का आयोजन किया। नगर के सभी लोगों को ज्ञात था कि श्रीगुप्त के मन में तथागत के प्रति दुर्भाव उत्पन्न हुआ है। उन्होंने तथागत को बहुत समझाया-मनाया कि वे वहां न जाएं। लेकिन भगवान ने उनसे कहा: "तुम निश्चिंत रहो। सभी वस्तुओं में कोई भी ऐसी नहीं है, जो तथागत के शरीर को क्षति पहुंचा सके।" वे निमंत्रण पर गए। जैसे ही उन्होंने अपने पैर दहलीज पर रखे, अग्नि-कुंड जल-कुंड में बदल गया। उसका जल शीशे की भांति स्वच्छ हो गया था और उसमें कमल के फूल खिल रहे थे। यह देख कर श्रीगुप्त घबरा गया और उसके हाथ-पांव फूल गए। उसने साथियों से कहा: "वह तंत्र-मंत्र के सहारे अग्नि से तो बच गया, तथापि अभी विषैले भोजन जो हैं।" भोजन के उपरांत भगवान ने श्रीगुप्त को धर्मोपदेश दिए। श्रीगुप्त अपनी भूल मान कर सद्धर्म में दीक्षित हुआ।

4. वैद्य जीवक संबंधी अवशेष

श्रीगुप्त के अग्नि-कुंड के उत्तर-पूर्व में पर्वत के मोड़ पर एक स्तूप उस स्थल पर खड़ा था जहां वैद्य जीवक ने बुद्ध के लिए एक भवन बनवाया था और उसके प्राचीर के साथ-साथ फूल एवं फल के वृक्ष उगाए थे। भवन की टूटी दीवारें और वृक्षों के सड़े तने अब भी दिखाई देते थे। अपने जीवन काल में तथागत ने अनेक बार उस भवन में वास किया था। उसके पास ही जीवक का निवास था। निवास के खण्डहर और पुराना कुआं आज भी विद्यमान थे।

तेईस. गृध्रकूट और बुद्ध के स्मारक-चिह्न

प्रासाद से चौदह-पंद्रह ली दूर उत्तर में गृध्रकूट था। वह उत्तर पर्वत के दक्षिण ढाल से जुड़ा हुआ था और धरती से ऊंचा उठ कर गर्व से खड़ा था। गृध्रकूट पर गिद्ध वास करते थे। पूरा कूट एक ऊंचे चबूतरे-सा लगता था। नील गगन और हरियाली से ढंका पर्वत एक दूसरे को शोभा देते दिखाई पड़ते थे और वहां गहरे तथा हल्के रंगों में अन्तर स्पष्ट था। पचास वर्षों तक मनुष्य लोक पर शासन करने के काल में तथागत ने अनेक बार इस पर्वत पर वास किया और धर्मोपदेश दिए। उनकी देशना सुनने के लिए राजा बिंबिसार के नेतृत्व में बहुत से लोगों ने घाटियां और ढाल पार कर तलहटी से चोटी तक पत्थरों

से एक दसेक कदम चौड़ी ग्रौर पांच-छः ली लम्बी सीढ़ियां बनाई थीं। रास्ते में दो छोटे स्तूप थे। एक का नाम था "सवारी-उत्तरण", ग्रर्थात् यहां ग्राने पर राजा-महाराजाग्रों को ग्रागे पैदल चलना पड़ता था। दूसरे का नाम था "जन-साधारण की रोक", ग्रर्थात् जन-साधारण को यहां रुक जाना पड़ता था, उन्हें राजा-महाराजाग्रों के साथ ऊपर जाने की ग्रनुमति नहीं थी। कूट पूर्व से पश्चिम तक लम्बा ग्रौर दक्षिण से उत्तर तक संकीर्ण था। पश्चिम में ढाल पर ईंटों से बना एक ऊंचा, लम्बा-चौड़ा चैत्य-विहार था जिसका ग्राकार ग्रनोखा था ग्रौर द्वार पूर्व की ग्रोर खुला था। तथागत ने ग्रनेक बार इस विहार में धर्मोपदेश दिए थे। ग्राज उसमें उपदेश देने की मुद्रा में बुद की एक ग्रादमकद प्रतिमा सुशोभित थी।

विहार के पूर्व में एक लम्बोतरा शैल था जिस पर तथागत ने चंक्रमण किया था। उसके निकट एक बड़ी चट्टान थी, जो एक चाङ चार छि ऊंची थी ग्रौर जिसकी परिधि तीस कदमों से ग्रधिक थी। देवदत्त ने बुद्ध पर प्रहार के लिए जो पत्थर दूर से फेंका था, वह इसी चट्टान पर ग्रा गिरा था। चट्टान के दक्षिण में ढाल के नीचे एक स्तूप था जहां तथागत ने "सद्धर्म पुंडरीक सूत्र" सुनाए थे। विहार के दक्षिण में ढाल पर एक बड़ा शैलगृह था, जिसमें तथागत ध्यान लगा कर बैठे थे।

बुद्ध-शैलगृह के उत्तर-पश्चिम में एक शैलगृह के सामने एक सपाट शिला थी। उस स्थल पर ग्रानन्द मार से भयभीत हुए थे। जब ग्रायुष्मान ग्रानन्द इस शिला पर समाधि लगाए बैठे थे, तब मार ने गरुड़ का रूप धारण कर कृष्ण पक्ष की एक रात में इस शिला पर कब्जा किया ग्रौर शक्तिपूर्वक ग्रपने पंख फड़फड़ाए एवं चीख मारी, ताकि ग्रायुष्मान को डराया-धमकाया जा सके। ग्रायुष्मान भयभीत हुए ग्रौर ग्रसमंजस में पड़ गए। यह देख कर तथागत ने ग्रपने शैलगृह की चट्टान में छेद बना कर ग्रपना हाथ बढ़ाया ग्रौर ढाढ़स बंधाते हुए ग्रानन्द के सिर पर हाथ फेरा तथा स्नेह भरे स्वर में कहा: "यह मार का बदला हुग्रा रूप है। डरो मत।" सांत्वना पा कर ग्रानन्द निश्चिंत ग्रौर प्रसन्न हो गए। शिला पर गरुड़ की निशानी ग्रौर चट्टान में वह छेद बहुत समय बीत जाने पर भी ग्रब भी दिखाई दे सकते थे।

विहार के निकट कई शैलगृह थे। उनमें सारिपुत्र एवं ग्रन्य महा ग्रर्हतों ने समाधियां लगाई थीं। सारिपुत्र के शैलगृह के ग्रागे एक सूखा हुग्रा बड़ा कुग्रां था।

विहार के उत्तर-पूर्व में झरने में एक सपाट चट्टान थी, जिस पर तथागत ने ग्रपनी संघाटी सुखाई थी। चट्टान पर संघाटी की श्वेत ग्रौर चमकदार रेखाएं स्पष्ट रूप से दिखाई देती थीं, मानों वे खुदी हुई हों। उसके पास शिला पर बुद्ध के पदचिह्न थे। उंगलियों की रेखाएं ग्रस्पष्ट तो थीं, फिर भी देखी जा सकती थीं।

उत्तर पर्वत की चोटी पर एक स्तूप था। वहां तथागत ने मगध का विहंगम दृश्य लिया ग्रौर सप्ताह भर उपदेश दिए।

चौबीस. विपुल गिरि

नगर के उत्तरी द्वार के पश्चिम में विपुल गिरि था। स्थानीय लोगों का कहना था कि इस गिरि के दक्षिण-पश्चिम ढाल के उत्तर में पहले कभी पांच सौ गर्म सोते थे। मगर अब केवल दस-बीस सोते ही रह गए थे। लेकिन वे सभी गर्म नहीं थे। उनमें से कुछ का जल ठंडा हो गया था, और अन्य कुछ का जल गर्म था। उन सोतों का उद्गम हिम गिरि के दक्षिण में अनवतप्त झील से था और जल भूमि के नीचे बहता हुआ यहां आया था। जल स्वच्छ था और उसका स्वाद अनवतप्त झील के जल के समान था। जल पांच सौ छोटी-छोटी धाराओं में बंट कर छोटे किन्तु उष्ण पाताल से गुजरा था। पाताल में भभकती आग थी और ताप ऊपर आ जाता था, जिससे जल गर्म हो जाता था। सभी सोतों पर शेर या श्वेत हाथी के सिर के रूप में तराशे गए पत्थर सजाए गए थे। कुछ सोतों पर प्रस्तर जलसेतु थे, जिनके माध्यम से जल नीचे पत्थरों के बने कुंड में जा गिरता था। देशी और परदेशी यहां नहाने आते थे और उनमें से अधिकतर नहाने के बाद रोगों से छुटकारा पा लेते थे।

गर्म सोतों के इर्द-गिर्द स्तूपों एवं विहारों के खण्डहर मछली के शल्कों की भांति एक दूसरे से सटे हुए थे। वे सभी चार भूत बुद्धों के आसनों व चंक्रमण के अवशेष थे। पर्वतों और सोतों की शृंखलाओं के होने से यह स्थल परोपकारियों और ज्ञानियों के लिए एक उपयुक्त आश्रम था। अतएव इहलोक से सन्यास ले कर यहां एकांतवास करने वाले भी संभवतः बहुत हुए होंगे।

1. पीपल शैलगृह और समाधि का अभ्यास करने वाले भिक्षुओं की कथा

गर्म सोतों के पश्चिम में पीपल गुहा थी। उसमें भगवान रहा करते थे। उसके पीछे जो कंदरा थी, वह असुरों का प्रासाद थी। समाधि लगाने का अभ्यास करने वाले अधिकांश भिक्षु इस शैलगृह में वास करते थे। इसमें विलक्षण दृश्य और नाग, सर्प एवं सिंह की आकृतियां दिखाई पड़ा करती थीं। जो उन्हें देखता था, उसका मन विक्षिप्त हो जाता था। किन्तु यह तीर्थ महात्माओं का वास रहा था। इसलिए श्रद्धा भाव से उनका अनुकरण करने वाले लोग इस शैलगृह की विपत्तियों पर ध्यान नहीं देते थे। वर्तमान काल में एक विनयशील भिक्षु प्रकाश में आया, जो एकांत का प्रेमी था। उसने इस शैलगृह में रह कर समाधि का अभ्यास करने का निर्णय लिया। किसी ने उसे समझाया : "उसके अन्दर मत जाओ। उसमें अनेक विपत्तियां और विलक्षण बातें उत्पन्न हो चुकी हैं, जिनसे बहुत से

लोगों के प्राण नष्ट हो गए हैं। ऐसी दशा में समाधि लगाने की बात तो दूर, जान से हाथ धोने की भी संभावना है। तुम्हें पिछली बातों से सबक सीखना चाहिए, अन्यथा पश्चात्ताप करोगे।" भिक्षु बोला: "नहीं। मेरा मन तो बुद्धत्व प्राप्त करने और मार को वश में करने में लगा है। मैं ऐसी-वैसी विपत्तियों से क्यों डरूं?" यह कह कर वह भिक्षु यष्टि लिए उस शैलगृह में गया और पूजोपहार जुटा कर जप करने लगा। दस दिन बाद कंदरा से एक युवती ने निकल कर भिक्षु से कहा: "आयुष्यमान काषाय चीवर पहने विनय का पालन करते हैं और सभी प्राणियों के शरणदाता हैं। वे प्रज्ञा की प्राप्ति हेतु समाधि लगाते हैं और प्राणियों के आचार्य हैं। आज तुम यहां रह कर हमें डरा-धमका रहे हो। क्या तथागत का यही उपदेश है?" भिक्षु बोला: "मैं बुद्ध की देशना के अनुरूप शीलों का पालन करता हूं और कोलाहल से बचने के लिए ही इस घाटी में एकांतवास कर रहा हूं। सहसा मेरी निन्दा की गई, आखिर मेरा क्या दोष है?" युवती ने कहा: "ज्योंही तुम जप करने लगते हो, त्योंही बाहर से मेरे शयन-कक्ष में आग लग जाती है और मेरे बच्चों को सताती है। मेरी प्रार्थना है कि हम पर दया करो, आगे जप मत करो।" इस पर भिक्षु ने कहा: "मैं अपनी रक्षा के लिए जप करता हूं। दूसरों को क्षति पहुंचाने का मेरा विचार नहीं है। पहले जो लोग यहां आसन लगा कर समाधिस्थ होते थे, वे अर्हत्व की प्राप्ति चाहते थे, ताकि वे नरक, प्रेत और पशु इन तीन विपाकावरणों का उद्धार करने में समर्थ हो सकें। विलक्षण दृश्यों से भयभीत हो उनके प्राण पखेरू उड़ गए थे, यह तुम्हारा पाप है। तो मैंने जप कर क्या अनुचित काम किया है?" युवती ने कहा: "अपने जघन्य पाप से मेरा अज्ञान बढ़ा है। अब से मैं गुप्त वास करूंगी और सदाचार का पालन करूंगी। साथ ही मैं यह आशा भी करती हूं कि तुम फिर कभी जप न करोगे।" भिक्षु पहले की तरह समाधि लगाता रहा और कुछ भी नहीं हुआ।

2. अन्य अवशेष

विपुल गिरि पर एक स्तूप था जहां तथागत ने देशना दी थी। अब बहुत से दिगंबर यहां वास करते थे और सुबह से शाम तक निरंतर तप करते रहते थे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक उनकी आंखें सूर्य पर ही टिकी रहती थीं।

नगर के उत्तर द्वार के पूर्व में पर्वत के दक्षिण ढाल के उत्तर में पूर्व की दिशा में दो-तीन ली दूर चलने पर एक बड़ा शैलगृह देखने को मिलता था। उसमें देवदत्त समाधि लगाते थे।

शैलगृह से थोड़ी दूर पूर्व में एक सपाट शिला पर रक्त का सा रंग था और उसके निकट एक स्तूप खड़ा था। इस स्थल पर एक भिक्षु ने आत्महत्या कर अर्हत्व प्राप्त किया था।

वह भिक्षु एकाग्र मन से तप करता था और एकांतवास कर समाधि लगाता था। वर्ष बीतते गए, फिर भी उसे अर्हत्व प्राप्त न हो सका। उसने अपनी भर्त्सना की और मन ही मन कहा : "अंत समय में भी मुझे अर्हत्व प्राप्त न हो सका। जीवन में क्लेश ही क्लेश हैं। व्यर्थ जीने का क्या अर्थ ?" उसने इस शिला पर आ कर आत्महत्या की। उसी क्षण उसे अर्हत्व प्राप्त हो गया। आकाश में उड़ कर उसने दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर आग से अपने शरीर को जलाया। वह निर्वाण को प्राप्त हुआ। उसके सदगुणों की प्रशंसा के लिए यह स्तूप स्मारक के रूप में खड़ा किया गया था।

इस शिला के पूर्व में चट्टानों पर एक स्तूप स्थापित था। इसी स्थान पर एक भिक्षु ने चट्टान से नीचे कूद कर अर्हत्व प्राप्त किया था। जब बुद्ध मनुष्य लोक में विद्यमान थे, तब एक भिक्षु पर्वत पर वन में अर्हत्व-प्राप्ति के लिए समाधि लगाता था। दीर्घकालिक तप के बावजूद उसे अर्हत्व प्राप्त न हो सका। वह दिन-रात एकाग्र चित्त से समाधि लगाना एक क्षण के लिए भी नहीं भूलता था। तथागत को जब ज्ञात हुआ कि उसे अर्हत्व प्राप्त होने वाला है, तब वे उसके प्रयास को सफल बनाने के लिए उसके यहां गए। तथागत ने वेणुवन से चट्टान के नीचे आ कर चुटकियां बजा कर उसे बुलाया और उसकी प्रतीक्षा में देर तक खड़े रहे। जब उस भिक्षु ने दूर से महात्माओं को देखा, तो वह प्रसन्न हुआ और उसे साहस बंधा। वह चट्टान से नीचे कूद पड़ा। जब वह नीचे गिरता जा रहा था तब भी उसका चित्त शुद्ध बना रहा था और उसे बुद्ध की देशना के प्रति पूरा विश्वास था। इसलिए भूमि पर गिरने से पूर्व ही उसे अर्हत्व प्राप्त हो गया। भगवान ने उससे कहा : "तुम्हें जानना चाहिए कि अब समय आ गया है।" तब वह ऊपर उठ कर आकाश में गया और उसने दिव्य शक्ति का प्रदर्शन किया। उसकी श्रद्धा की स्तुति में ही यह स्तूप स्मारक के रूप में स्थापित किया गया था।

पच्चीस. कलंदक वेणुवन

नगर के उत्तर द्वार से एक ली दूरी पर कलंदक वेणुवन स्थित था। इसमें एक ईंटों से बना विहार था। उसका आधार प्रस्तर का था और द्वार पूर्व की दिशा में खुला था। तथागत ने अनेक बार इस विहार में वास किया था और उपदेश दे कर मूढ़ों को प्रबुद्ध और गृहस्थों को उपसंपन्न किया था। इसमें तथागत की एक आदमकद प्रतिमा सुशोभित थी।

पहले नगर में कलंदक नाम का एक बड़ा व्यापारी रहता था। वह अपनी विपुल संपत्ति के लिए प्रसिद्ध था। उसने तीर्थिकों को एक विशाल वेणुवन का दान किया था। जब उसने तथागत के दर्शन किए, उनके धर्मोपदेश सुने और उनके प्रति उसके मन में श्रद्धाभाव उत्पन्न हुआ, तब उसे पछतावा हुआ कि उन तीर्थिकों को उस वेणुवन में वास करने की अनुमति

नहीं देनी चाहिए थी, जिससे अब शास्ता देवमनुष्याणाम के वास के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। देव उसकी सदिच्छा से प्रभावित हुए। वे तीर्थिकों को वहां से भगाने के विचार से वहां जा कर उनसे बोले : "गृहपति कलंदक इस वेणुवन में बुद्ध के लिए एक विहार बनवाना चाहता है। तुम लोगों को शीघ्र यहां से चले जाना होगा, अन्यथा विपत्तियों में फंस जाओगे।" तीर्थिक क्रुद्ध हो कर चले गए। गृहपति ने यहां एक विहार बनवाया। जब निर्माण पूरा हो गया तो वह बुद्ध को लेने स्वयं गया। तथागत ने उसका दान स्वीकार किया।

1. बुद्ध की अस्थियों वाला स्तूप

कलंदक वेणुवन के पूर्व में एक स्तूप था, जो राजा अजातशत्रु ने खड़ा करवाया था। तथागत के परिनिर्वाण के अनंतर राजा-महाराजाओं ने आपस में उनकी अस्थियां बांटीं। अजातशत्रु ने भी एक भाग पाया। स्वदेश लौट कर उन्होंने बुद्ध की अस्थियों की पूजा के लिए श्रद्धाभाव से यह स्तूप बनवाया। जब सम्राट अशोक के मन में बुद्ध के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने इस स्तूप को खोल कर अस्थियां निकालीं और अन्य एक स्तूप स्थापित करवाया। अब भी इस स्तूप में कुछ अस्थियां बची हुई थीं और प्रायः किरणें फेंकती रहती थीं।

2. आनन्द की आधी अस्थियां रखने वाला स्तूप

अजातशत्रु स्तूप के निकट एक स्तूप में आयुष्मान आनन्द की आधी अस्थियां सुरक्षित थीं। जब आयुष्मान परिनिर्वाण-प्राप्ति के लिए मगध से वैशाली जाने को तैयार हुए, तब दो राज्यों के बीच विवाद उठा। दोनों ने शस्त्रबल का सहारा लेना चाहा। आयुष्मान का मन दुःखा और उन्होंने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर दिया। मगध के राजा आयुष्मान के शरीर का आधा भाग लिए इस तीर्थ पर पहुंचे और उन्होंने श्रद्धाभाव से यह स्तूप बनवाया।

स्तूप के समीप तथागत के चंक्रमण का अवशेष था। यहां से कुछ दूरी पर एक स्तूप उस स्थल पर खड़ा था, जहां सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने वर्षावास किया था।

3. प्रथम संगीति

वेणुवन से पांच-छः ली दूर दक्षिण-पश्चिम में दक्षिण गिरि के उत्तर में एक विस्तृत वेणुवन में एक विशाल शैलगृह था। तथागत के परिनिर्वाण के उपरांत आयुष्मान महाकाश्यप

ग्रौर नौ सौ निन्यानवे महा ग्रर्हतों ने इसमें त्रिपिटकों का संकलन किया था। उसके सामने एक बड़े भवन का क्षतिग्रस्त ग्राधार था। यह भवन राजा ग्रजातशत्रु ने उन महा ग्रर्हतों के लिए बनवाया था।

जब महाकाश्यप वन में समाधिस्थ थे, तब एकाएक प्रकाश फैल गया ग्रौर भूचाल ग्रा गया। उन्होंने सोचा : "यह मंगल का लक्षण है ग्रथवा ग्रमंगल का ?" उन्होंने दिव्य चक्षुग्रों से देखा कि भगवान शालवन में परिनिर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। वे तुरन्त ग्रपने शिष्यों को साथ ले कर कुशीनगर की ग्रोर चल पड़े। रास्ते में उनका एक ब्राह्मण से सामना हुग्रा। ब्राह्मण हाथ में ग्राकाश से गिरे फूल लिए हुए था। महाकाश्यप ने उससे पूछा : "तुम किधर से ग्रा रहे हो ? जानते हो कि मेरे ग्राचार्य ग्रब कहां हैं ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया : "मैं कुशीनगर से ग्रा रहा हूं। मैंने देखा था कि ग्रापके ग्राचार्य परिनिर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। देव ग्रौर मनुष्य उनकी पूजा कर रहे हैं। ये फूल मुझे वहीं मिले थे।" यह संवाद सुन कर महाकाश्यप ने ग्रपने शिष्यों से कहा : "प्रज्ञा का सूर्य ग्रस्त हो चुका है ग्रौर ग्रब जगत में ग्रंधेरा छा जाएगा। ग्राचार्य चल बसे ग्रौर प्राणी गिर पड़ेंगे।" ग्रालसी भिक्षु प्रसन्न हो कर एक दूसरे से बोल उठे : "तथागत के परिनिर्वाण से हमें ग्रानन्द मिलेगा। विनय के विरुद्ध ग्राचार करने पर ग्रब हमें कौन फटकार ग्रौर रोक सकेगा ?" यह सुन कर महाकाश्यप ग्रत्यंत दुःखी हुए। उन्होंने बुद्ध के उपदेशों के ग्रनुसार विनय-विरुद्ध भिक्षुग्रों को दण्ड देने हेतु बौद्ध सूत्रों का संग्रह करने की सोची। शालवन पहुंच कर उन्होंने भगवान बुद्ध के दर्शन किए ग्रौर उनके प्रति श्रद्धा ग्रर्पित की। कुछ देर बाद धर्मराज का देहावसान हुग्रा। मनुष्य ग्रौर देव दोनों ग्रपना शास्ता खो बैठे। ग्रन्य महा ग्रर्हत भी क्रमशः निर्वाण को प्राप्त हुए। तब महाकाश्यप ने चिंतन किया : "बुद्ध के उपदेश ग्रहण करने ग्रौर उनका पालन करने के लिए बौद्ध सूत्रों का संग्रह करना ग्रावश्यक है।" ऐसा सोच कर उन्होंने सुमेरु का ग्रारोहण कर घंटा बजाया ग्रौर ऊंचे स्वर में यह घोषणा की : "राजगृह में एक धर्म-समारोह का ग्रायोजन होगा। ग्रर्हत्व प्राप्त लोगों की संगीति होगी !" घंटे के शब्द के बीच महाकाश्यप का ग्रादेश तीन हजार महा सहस्र लोकों में प्रचारित हुग्रा। यह सुन कर ग्रर्हत्व प्राप्त लोग ग्रा कर सभा में एकत्रित हुए। उनसे महाकाश्यप ने कहा : "तथागत के परिनिर्वाण के उपरांत यह जगत शून्य हो गया है। हमें बुद्ध के उपकार का बदला चुकाने हेतु बौद्ध सूत्रों का संग्रह करना चाहिए। इस कार्य के लिए ग्रावश्यक है कि व्यक्ति कम हों ग्रौर वातावरण शांत। ग्रधिक व्यक्तियों से इस शुभ कार्य में ग्रड़चनें पड़ेंगी। ऐसे ही व्यक्ति इस कार्य में भाग ले सकते हैं, जो त्रिविद्या ग्रौर षड्भिज्ञा प्राप्त हों, जिन्होंने बुद्ध के उपदेश ग्रहण करने में कोई भूल न की हो ग्रौर जो स्वयं उपदेश देते समय सुबोध शब्दों में बिना रुकावट के सद्धर्म के मत को सुव्यवस्थित रूप से स्पष्ट करने में समर्थ हों। जिन व्यक्तियों को ग्रभी साधना करनी पड़ती है, वे ग्रपने-ग्रपने स्थान वापस लौट जाएं।" केवल नौ सौ निन्यानवे

व्यक्ति रह गए, जिनमें आनन्द नहीं थे। उन्हें अभी साधना करनी शेष थी। महाकाश्यप ने उन्हें पास बुला कर कहा : "तुम अभी क्लेशों से मुक्त नहीं हो सके हो। तुम्हें अर्हंतों की सभा से चले जाना होगा।" इस पर आनन्द बोले : "मैं वर्षों तक तथागत का परिचारक रह चुका हूं। उनकी देशना सुनने का एक भी अवसर मैंने कभी हाथ से नहीं जाने दिया है। अब बौद्ध सूत्रों का संग्रह किया जा रहा है और मैं इस कार्य से वंचित रखा जा रहा हूं। धर्मराज के परिनिर्वाण के उपरांत मैं निराश्रित हो गया हूं।" महाकाश्यप ने कहा : "तुम दुःखी और क्रुद्ध न हो। तुम बुद्ध का परिचार करने के कारण सचमुच एक ज्ञानी हो। किन्तु तुम्हारी तृष्णाएं और आशंकाएं अभी समाप्त नहीं हुई हैं और तुम्हारे क्लेशों और आस्रवों का अन्त नहीं हुआ है।" आनन्द निरुत्तर रह गए। सभा से चल कर वे एक निर्जन स्थान पर आए। उन्होंने अर्हत्व प्राप्त करने का प्रयास किया, लेकिन वह विफल रहा। थक जाने पर उन्होंने चीवर उतारे बिना ही सो जाना चाहा। उन्होंने अपना सिर अभी उपधान पर रखा भी नहीं था कि वे अर्हत बन गए।

वे सभास्थल पर गए और द्वार खटखटा कर उपस्थित हो गए। महाकाश्यप ने पूछा : "क्या तुम्हारे आस्रवों का अंत हो गया है? तब तो तुम्हें अपनी अलौकिक शक्ति प्रदर्शित करनी चाहिए, न कि द्वार से भीतर आना चाहिए।" उनकी आज्ञानुसार आनन्द ने ताली के छेद के माध्यम से भीतर प्रवेश किया और उपस्थित भिक्षुओं को प्रणाम कर वे पास में बैठ गए। तब वर्षावास की प्रथम पूर्णिमा थी। काश्यप ने ऊंचे स्वर में घोषणा की : "ध्यान से सुनो। आनन्द ने बुद्ध के उपदेश सुन कर स्मरण रखे हैं। इस पर तथागत ने उनकी प्रशंसा की थी। वे 'सूत्र-पिटक' का संकलन करेंगे। उपाली विनय से सुपरिचित हैं और उन्होंने उसका गंभीरता से अध्ययन भी किया है। यह बात सबों को ज्ञात है। सो वे 'विनय-पिटक' के संकलन का कार्य संभालेंगे। और मैं, काश्यप, 'अभिधर्म पिटक' का संग्रह करूंगा।" जब वर्षा के तीन मास बीत गए, तब त्रिपिटकों के संकलन का कार्य पूरा हो गया। चूंकि महाकाश्यप स्थविर थे, इसलिए इसे स्थविरवाद की संज्ञा दी गई।

जहां महाकाश्यप ने बौद्ध सूत्रों का संग्रह किया था उस स्थान के उत्तर-पश्चिम में एक स्तूप था। वह उस स्थल पर खड़ा था, जहां आनन्द भिक्षुओं की फटकार सुन कर बौद्ध सूत्रों के संग्रह के कार्य से वंचित हो कर लौट आए थे और उन्हें समाधि लगा कर अर्हत्व प्राप्त हुआ था। इसके अनंतर ही वे संग्रह के कार्य में भाग ले सके।

आनन्द-अर्हत्व-प्राप्ति स्तूप से बीसेक ली दूर पश्चिम में एक स्तूप था जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। यह वही स्थल था जहां महासांघिक बौद्ध सूत्रों का संग्रह हुआ था। महा-काश्यप के नेतृत्व में बौद्ध सूत्रों के संग्रह के कार्य से वंचित रखे गए हजारों भिक्षु ऐसे थे जिनमें से कुछ को आगे अध्ययन करने की आवश्यकता थी और अन्य कुछ को इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे यहां एकत्रित हुए और आपस में बोले : "जब तथागत जीवित

थे, तब हम एक ही आचार्य से शिक्षा-दीक्षा लेते थे। अब जब धर्मराज परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, तो हम बहिष्कृत कर दिए गए। बुद्ध के उपकार का बदला चुकाने हेतु हमें बौद्ध सूत्रों का संग्रह करना चाहिए।" साधारण भिक्षुओं और अर्हतों तथा मुनियों व ज्ञानियों ने साथ मिल कर "सूत्र-पिटक", "विनय-पिटक", "अभिधर्म-पिटक", "विविध पिटक" और "धारणी-पिटक" का संकलन कर दूसरे पांच पिटक प्रतिपादित किए। चूंकि इस संकलन-कार्य में साधारण भिक्षुओं और अर्हतों दोनों ने भाग लिया था, इसलिए उन्हें महा-सांघिक निकाय का नाम दिया गया।

4. कलंदक कुंड और प्रस्तर स्तंभ

वेणुवन विहार से दो सौ कदमों से अधिक दूर उत्तर में कलंदक कुंड था। यहां तथागत ने अनेक बार उपदेश दिए थे। कुंड का जल स्वच्छ, शांत एवं आठ गुणों से युक्त था। बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरांत यह कुंड सूख गया।

कलंदक कुंड से दो-तीन ली दूर उत्तर-पश्चिम में साठ छि से अधिक एक ऊंचा अशोक स्तूप था। उसके पास एक प्रस्तर स्तंभ खड़ा था। उस पर खुदे अभिलेख में स्तूप के निर्माण का विवरण दिया गया था। स्तंभ प्रायः पचास छि ऊंचा था और उसके शिखर पर हाथी की मूर्ति थी।

छब्बीस. राजगृह

प्रस्तर स्तंभ से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व में राजगृह स्थित था। बाह्य प्राचीर नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था और कुछ भी नहीं रह गया था। भीतरी प्राचीर ढह अवश्य चुका था, पर उसका आधार फिर भी बहुत ऊंचा था। उसकी परिधि बीस ली से अधिक थी और चारों दिशाओं में एक-एक द्वार थे।

जब राजा बिंबिसार ने कुशाग्रपुर को अपनी राजधानी बनाया, तब पंजीकृत निवासियों को बहुधा आग से नुकसान उठाना पड़ता था। किसी एक परिवार की असावधानी से पड़ोसी आग की बलि चढ़ जाते थे। बचाव का कोई उपाय भी नहीं था। धनवान भी कुछ न कर सकते थे। लोग शिकायत करते थे और नगर में रहने के अनिच्छुक हो गए थे। इस पर बिंबिसार ने कहा : "मेरे दोष के कारण प्रजा को ऐसे कष्ट झेलने पड़ रहे हैं। विपत्तियों की समाप्ति के लिए मुझे कौन-सा पुण्य कर्म करना चाहिए ?" इस पर मंत्रियों ने कहा : "महाराज, आप विवेकशील और पराक्रमी हैं और राज्य में सुशासन है। प्रजा की असाव-

धानी से ही अग्निकांड हुआ करते हैं। यह आवश्यक है कि कड़ी विधियां बनाई जाएं, जिनके अनुसार अपराधियों को दण्ड दिया जाए। जब भी कहीं भीषण आग लगे तो सर्वप्रथम यह जांच की जाए कि किससे आग लगी। फिर उसे दण्ड दे कर उसका सारा परिवार शीतवन में निष्कासित किया जाए। शीतवन में शव फेंके जाते हैं और वह एक अमंगल स्थान माना जाता है। लोग वहां कभी नहीं जाते। वहां निष्कासित होने का अर्थ है शव की भांति फेंका जाना। चूंकि लोग शीतवन में रहने को अपमानजनक मानते हैं, इसलिए वे अवश्य सावधानी बरतेंगे।" बिंबिसार ने कहा: "ठीक है। सभी नगरनिवासियों के सामने यह घोषणा की जाए।" कुछ समय बाद प्रासाद में ही आग लगी। बिंबिसार ने अपने मंत्रियों से कहा: "अब मुझे विस्थापित होना है।" उन्होंने राज्यभार राजकुमार को सौंप दिया और स्वयं विधि-नियमों की रक्षा के लिए शीतवन में वास करने चले गए। यह संवाद पाकर कि राजा बिंबिसार नगर के बाहर शीतवन में बस गए हैं, वैशाली के राजा ने सैनिक अभ्यास कराया और अवसर का लाभ उठा कर उन पर आक्रमण करना चाहा। सीमा पर तैनात अधिकारियों ने इस संदर्भ में सूचना दी और तभी प्राचीर का निर्माण आरंभ हुआ। चूंकि राजा सर्वप्रथम यहां वास करने लगे थे, इसलिए इस नगर का नाम राजगृह पड़ गया। अधिकारियों, अभिजातों और जन-साधारण ने भी क्रमशः यहां अपने घर स्थानान्तरित कर लिए। कुछ लोगों की यह मान्यता भी थी कि राजा अजातशत्रु के शासनकाल में ही यह नगर बसाया गया था। राजसिंहासन पर बैठने के पश्चात् अजातशत्रु ने इसे अपनी राजधानी घोषित किया। जब सम्राट अशोक ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया, तब उन्होंने राजगृह को दान के रूप में ब्राह्मणों को दे दिया था। इसी कारण अब इस नगर में कोई साधारण लोग नहीं रहते थे, केवल लगभग एक हजार ब्राह्मण परिवार बसे हुए थे।

प्रासाद के दक्षिण-पश्चिम कोने में दो छोटे संघाराम थे। दूसरे देशों से आए भिक्षु उनमें ठहरते थे और बुद्ध ने भी उनमें उपदेश दिए थे। यहां से उत्तर-पश्चिम में उस स्थल पर एक स्तूप खड़ा था, जो गृहपति ज्योतिष्क का जन्मस्थान था।

नगर के दक्षिण द्वार के बाहर मार्ग के पूर्व में एक स्तूप था, जहां तथागत ने धर्मोपदेश दिए थे और राहुल को उपसंपन्न किया था।

सताईस. नालंदा संघाराम

यहां से तीसेक ली दूर उत्तर में नालंदा सघाराम स्थित था। कहते हैं कि इस संघाराम के दक्षिण में आम्रवन में एक कुंड था। कुंड में रहने वाले नाग का नाम नालंदा था। चूंकि यह संघाराम कुंड के पास निर्मित किया गया था, इसलिए उसका यह नाम पड़ा। लेकिन इस नाम के सच्चे अभिप्राय के अनुसार जब तथागत बोधिसत्व थे, तब वे महाराजा बने

श्रौर उन्होंने यहीं पर अपनी राजधानी स्थापित की। वे प्राणियों पर दया कर उदारता से दान करते थे। उनके सद्गुणों की प्रशंसा के लिए वे "नालंदा" अर्थात "दान में अतृप्त" के नाम से पुकारे जाने लगे। यही कारण था कि इस संघाराम का नाम नालंदा पड़ गया। इस स्थल पर पहले एक आम्रवन था। पांच सौ व्यापारियों ने दस कोटि स्वर्ण-सिक्कों से यह वन खरीदा और फिर बुद्ध को उसका दान किया। बुद्ध ने यहां तीन मास तक धर्मोपदेश दिए और व्यापारियों एवं अन्य लोगों को अर्हत्व प्राप्त हुआ। बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही समय बाद इस राज्य के स्वर्गीय राजा शकरादित्य ने सद्धर्म और त्रिरत्न के प्रति श्रद्धा-भाव लिए इस मंगल स्थल पर यह संघाराम खड़ा करवाया था। जब निर्माण-कार्य आरंभ हुआ, तब नाग के शरीर को काट दिया गया था। यह देख कर एक निर्ग्रंथ ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की : "यह एक शुभ स्थल है। यहां जो संघाराम निर्मित होगा, वह अवश्य फलेगा-फूलेगा और भारत के पांचों भागों का आदर्श बनेगा। एक हजार वर्ष बाद तो वह और भी अधिक विकसित होगा। परवर्ती विद्वानों के लिए विद्याओं में सफलता प्राप्त करना कठिन तो न होगा, किन्तु वे प्रायः रक्तवमन करेंगे क्योंकि नाग को विक्षत कर दिया गया है।" शकरादित्य के पुत्र बुद्धगुप्त गद्दी पर बैठने के बाद अपने पूज्य पिता की भांति पुण्य कर्म करते रहे और उन्होंने इस संघाराम के दक्षिण में एक और संघाराम स्थापित करवाया। राजा तथागतगुप्त ने श्रद्धा-भाव से अपने पूर्वजों के कार्य ग्रहण कर इस संघाराम के पूर्व में एक अन्य संघाराम बनवाया। जब बालादित्य राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने इस संघाराम के उत्तर-पूर्व में चौथा संघाराम निर्मित करा दिया। निर्माण-कार्य पूरा हो जाने पर राजा ने एक भोज का आयोजन किया और प्रसिद्ध व अप्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा-भाव व्यक्त करने हेतु साधारण भिक्षुओं और अर्हतों को बुलावा भेजा। भारत के पांचों भागों से भिक्षु भोज में उपस्थित हुए। सभी अपने-अपने आसनों पर बैठ गए। तब और दो भिक्षु आ पधारे। उन्हें तीसरे तल्ले पर ले जाया गया। किसी ने उनसे पूछा : "महाराजा ने भोज में भिक्षुओं और अर्हतों को निमंत्रित किया है। आप दो आचार्य सबसे पीछे पधारे हैं। क्या मैं यह पूछने की धृष्टता करूं कि आप कहां से आए हैं?" उन दोनों ने कहा : "चीन से। स्थविर रोग से ग्रस्त हुए। उन्हें भोजन खिलाने के बाद ही हम प्रस्थान कर सके थे। महाराजा का आमंत्रण प्राप्त हुआ, अतएव हम भोज में आ गए।" यह सुन कर पूछने वाला दंग रह गया और उसने तुरन्त यह बात राजा को बताई। राजा समझ गए कि वे दोनों अर्हत हैं। उनका अभिवादन करने वे ऊपर गए। तब तक वे दोनों चले जा चुके थे और किसी को भनक भी नहीं पड़ी थी। फलस्वरूप राजा के मन में सद्धर्म के प्रति विश्वास और अधिक बढ़ गया। उन्होंने राज्य त्याग कर प्रव्रज्या प्राप्त की। परिव्राजक बनने पर उनका स्थान सभी भिक्षुओं के बाद, सबसे नीचा था। इससे अप्रसन्न हो उन्होंने मन ही मन सोचा : "पहले मैं जब राजसिंहासन पर बैठा था, तो मेरा स्थान सर्वाधिक

ऊंचा था। आज प्रव्रज्या-प्राप्ति के बाद मेरा स्थान सब भिक्षुओं के बाद सबसे नीचा हो गया।" वे तुरन्त भिक्षुओं से मिलने गए और अपना मत प्रकट किया। भिक्षुओं ने विचार-विमर्श के पश्चात् यह निर्णय लिया कि अनुपसंपन्न श्रामणेरों का क्रम आयु के अनुरूप हो। यह इस संघाराम का एक अद्वितीय नियम था। उस राजा के पुत्र वज्र राजगद्दी पर बैठने के बाद सद्धर्म में दृढ़ विश्वास करते थे। उन्होंने इस संघाराम के पश्चिम में एक नया संघाराम बनवा दिया। बाद में मध्यदेश के राजा ने इसके उत्तर में एक और बड़ा संघाराम स्थापित करवाया। सभी संघाराम एक ही प्राचीर के अन्दर रखे गए और एक ही द्वार खोला गया। विभिन्न युगों के राजा-महाराजाओं के निर्माण-कार्यों और कुशल शिल्पियों के मंजे हाथों से ये संघाराम सचमुच आकर्षक और भव्य दिखाई देते थे। राजा शकरादित्य द्वारा निर्मित संघाराम में बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। प्रति दिन संघ के चालीस भिक्षु इस संघाराम में भोजन के लिए भेजे जाते थे, ताकि दानपति के उपकार का बदला चुकाया जा सके।

भिक्षु कई हजार थे। सभी सुयोग्य और ज्ञानी थे। उनमें से सैकड़ों भिक्षु अपने सद्गुणों के लिए विदेशों में प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध थे। भिक्षु विनयशील थे और संघ के नियम कठोर थे। सभी उनका कठोरता से पालन करते थे। वे भारत के विभिन्न राज्यों में आदर्श माने जाते थे। वे सुबह से रात तक गूढ़ समस्याओं और मतों पर विचार-विमर्श करते रहते थे एवं अध्ययन में कभी संतुष्ट नहीं होते थे। वे दिन-रात एक दूसरे को सावधान करते रहते थे। अधिक आयु वाले कम आयु वालों की सफलता के लिए एक दूसरे को मदद देते रहते थे। यदि उनमें से कोई त्रिपिटक के गूढ़ार्थ पर चर्चा न करता, तो उसे लज्जा आती थी और अकेलापन अनुभव होता था। जो विदेशी विद्वान अपनी जगत-प्रसिद्धि चाहते थे, वे यहां आ कर अपनी शंकाएं दूर करते थे और उसके पश्चात् उनका नाम प्रकाशित हो जाता था। अतएव यदि कोई इसके नाम की चोरी करके भी कहीं चला जाता था, वहां उसका सत्कार और सम्मान किया जाता था। जो विदेशी लोग इसमें प्रवेश कर वाद-विवाद करना चाहते थे, उन्हें सर्वप्रथम द्वारपालों के प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते थे। अधिकांश को उत्तर देने में विफल हो वापस लौटना पड़ता था। केवल प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान में पारंगत होने वालों को ही भीतर जाने की अनुमति मिल सकती थी। इन परदेशी छात्रों को भिक्षुओं के साथ विद्याओं पर तर्क-वितर्क करना पड़ता था और दस में से सात-आठ को विफल हो कर हट जाना पड़ता था। जो दो-तीन ज्ञानी रह जाते थे, भिक्षुओं द्वारा एक-एक करके प्रश्न पूछे जाने पर उनका भी अभिमान टूट जाता था और नाम धूल में मिल जाता था। यहां सुयोग्य, मेधावी, चतुर एव विविध विद्याओं में पारंगत ज्ञानी एक के बाद एक उभर कर आते रहे थे। उदाहरणार्थ, धर्मगुप्त और चन्द्रगुप्त ने बुद्ध के उपदेशों के प्रचार में नाम कमाया था। गुणमति और सारमति अपने समकालीन लोगों में बहुत

प्रतिष्ठित थे। प्रभामित्र के तर्क स्पष्ट हुआ करते थे। विशेषमित्र के संवाद उदात्त थे। ज्ञानचन्द्र आदर्श चरित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धि थे। शीलभद्र सदाचारी और सूक्ष्म दृष्टि वाले थे। इन आचार्यों के नाम तो सर्वविदित थे। वे पूर्वजों से अधिक सच्चरित्र सिद्ध हुए और सभी पुराने ग्रंथों में पारंगत थे। उनमें से प्रत्येक ने दसेक निबंध और भाष्य लिखे, जो बहुचर्चित थे और जिन्हें बड़ा महत्व दिया जाता था।

संघाराम के इर्द-गिर्द सद्धर्म के प्रायः सौ अवशेष थे। कुछ उदाहरणों द्वारा उनकी एक झलक मिल सकती है।

1. संघाराम के निकट के अवशेष

संघाराम के कुछ दूर पश्चिम में एक विहार था। उसमें तथागत ने तीन मास तक वास किया और देवों एवं मनुष्य को धर्मोपदेश दिए। विहार से सौ कदमों से अधिक दूर दक्षिण में एक छोटा स्तूप उस स्थल पर खड़ा था जहां दूर से आए एक भिक्षु ने बुद्ध के दर्शन किए थे। जब उस भिक्षु ने तथागत और अर्हतों के दर्शन किए, तो उसके मन में श्रद्धा-भाव उत्पन्न हुआ। उसने उन्हें दण्डवत कर चक्रवर्ती राजा बनने का वर मांगा। तथागत ने सबों से कहा: "मैं उस भिक्षु के लिए दुःखी हूं। उसने व्यापक पुण्य कर्म किए हैं एवं उसका विश्वास दृढ़ है। यदि वह चाहे तो उसे शीघ्र ही बुद्धत्व प्राप्त हो सकेगा। पर आज उसने चक्रवर्ती राजा बनने का वर मांगा है। अगले जन्म में उसका वर पूरा होगा। जिस स्थल पर उसने दण्डवत की है, उससे नीचे स्वर्ण चक्र तक जितने अधिक रेणुकण होंगे, उतनी ही अधिक बार वह चक्रवर्ती राजा बन सकेगा। जब वह सांसारिक आनन्द में इतना लीन है, तो उसे अर्हत्व कभी भी प्राप्त न हो सकेगा।" स्तूप के दक्षिण में खड़ी मुद्रा में अवलोकितेश्वर की प्रतिमा स्थापित थी। किसी ने देखा था कि वे हाथ में धूपदान उठाए बुद्ध-विहार की ओर गए और उन्होंने उसकी प्रदक्षिणा की।

अवलोकितेश्वर-प्रतिमा के दक्षिण में एक स्तूप में तथागत द्वारा तीन मास में काटे गए केश और नख सुरक्षित थे। जो कोई रोगी उसकी प्रदक्षिणा करता था, वह बहुधा भला-चंगा हो जाता था। इस स्तूप के पश्चिम में प्राचीर के बाहर कुंड के पास एक स्तूप खड़ा था, जहां एक तीर्थिक ने हाथ में एक पक्षी लिए बुद्ध से जीवन-मरण के संदर्भ में पूछा था। यहां से पचासेक कदम दूर दक्षिण-पूर्व में प्राचीर के भीतर एक विलक्षण वृक्ष देखने को मिलता था। वह आठ-नौ छि ऊंचा था और उसका तना दो शाखाओं में विभाजित था। तथागत ने दातुन करने के बाद वृक्ष की जो टहनी धरती पर फेंक दी थी, उसने जड़ पकड़ ली। वर्षों तक मौसम के थपेड़े खाने के बाद भी उसकी ऊंचाई पूर्ववत रही, न वढ़ी न घटी। वृक्ष के पूर्व में एक बड़ा विहार था जो दो सौ छि ऊंचा था। उसमें तथागत ने चार मास

त्मक उपदेश दिए थे। बड़े विहार के सौ कदम दूर उत्तर में स्थित एक विहार में एक अवलोकितेश्वर-प्रतिमा सुशोभित थी। जब भक्त पूजा के लिए आते, तो वे अलग-अलग दृश्य देखते थे और प्रतिमा की स्थिति निश्चित न कर पाते थे। प्रतिमा कभी द्वार के समीप दिखाई देती थी, तो कभी द्वार के बाहर छज्जे के आगे। परदेशी भिक्षु और गृहस्थ इसके दर्शनार्थ आते थे।

अवलोकितेश्वर विहार के उत्तर में एक बड़ा विहार था, जो तीन सौ छि से अधिक ऊंचा था। वह राजा बालादित्य ने बनवाया था। उसकी साज-सज्जा, आकार-प्रकार और बुद्ध-प्रतिमा बोधि-वृक्ष के नीचे स्थित विहार के समकक्ष थी। उसके उत्तर-पूर्व में एक स्तूप था। इस स्थल पर तथागत ने सप्ताह भर धर्मोपदेश दिए थे। उसके उत्तर-पश्चिम में चार भूत बुद्धों के आसनों के अवशेष थे। उसके दक्षिण में सम्राट शीलादित्य द्वारा बनवाया गया कांस्य विहार था। उसका निर्माण पूरा न हुआ था। योजना में उसकी ऊंचाई दस चाङ निर्धारित की गई थी। यह परियोजना बाद में पूरी होगी। यहां से दो सौ कदम दूर पूर्व में प्राचीर के बाहर खड़ी मुद्रा में बुद्ध की ताम्र प्रतिमा थी। वह अस्सी छि से अधिक ऊंची थी और उसे आड़ देने के लिए एक छः तल्लों वाला भवन स्थापित किया गया था। यह प्रतिमा राजा पूर्णवर्म ने बनवायी थी।

राजा पूर्णवर्म द्वारा बनवाई गई बुद्ध की ताम्र प्रतिमा से दो-तीन ली दूर उत्तर में ईंटों से बने विहार में बोधिसत्व तारा की प्रतिमा सुशोभित थी। प्रतिमा ऊंची थी और चमत्कार दिखाया करती थी। प्रत्येक वर्ष के प्रथम दिन बोधिसत्व तारा की पूजा की जाती थी। निकट के राजा-महाराजा, मंत्री और अभिजात धूप और फूल चढ़ाते थे। हर ओर झंडियां और छत्र दिखाई देते थे। वीणा और बांसुरी के शब्दों के बीच झांझ-मजीरे बजते रहते थे। ऐसा समारोह सप्ताह भर आयोजित होता था। विहार के प्राचीर के दक्षिणी द्वार के भीतर एक बड़ा कुआं था। जब बुद्ध जीवित थे, तब व्यापारियों का एक दल तृषार्त हो बुद्ध के सामने उपस्थित हुआ। भगवान ने भूमि की ओर इशारा करते हुए कहा कि इसमें से पानी मिल सकता है। व्यापारियों ने पहिए के धुरे से धरती खोदी, जिससे धरती धंस गई और सोता फूट निकला। पानी पी, धर्मोपदेश सुन, सबों ने अर्हत्व प्राप्त किया।

अट्ठाईस. कोलिक ग्राम और मौद्गल्यायन का जन्मस्थान

नालंदा संघाराम से आठ-नौ ली दूर दक्षिण-पश्चिम में कोलिक ग्राम था। उसमें एक अशोक स्तूप था, जो आयुष्मान मौद्गल्यायन की जन्मभूमि का द्योतक था। उसके समीप एक स्तूप था, जहां आयुष्मान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। स्तूप में उनकी अस्थियां सुरक्षित थीं। आयुष्मान का जन्म एक प्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन में ही वे और

सारिपुत्र अंतरंग मित्र बन गए थे। सारिपुत्र का उनकी तीक्ष्ण बुद्धि के लिए सम्मान किया जाता था और आयुष्मान अपने अद्‌भुत विवेक के कारण प्रतिष्ठित थे। उन दोनों की बुद्धिमत्ता समकक्ष थी। वे साथ-साथ रहते और काम करते थे। उन्होंने जीवन भर एक दूसरे का साथ देने का वचन दिया था एवं जो कुछ करना हो, एक ही साथ करने की प्रतिज्ञा की थी। उन दोनों ने सांसारिक जीवन से ऊब कर प्रव्रज्या प्राप्त करनी चाही। इस प्रकार वे संजय के शिष्य बने। सारिपुत्र अर्हंत अश्वजित से मिले और बुद्ध के उपदेश सुनने पर उन्होंने अर्हत्व प्राप्त किया। लौट कर उन्होंने आयुष्मान के समक्ष बुद्ध के उपदेश दोहराए। उन्हें सुन कर आयुष्मान ने सद्धर्म के संदर्भ में स्रोतापन्न-फल प्राप्त किया। जब आयुष्मान अपने ढाई सौ शिष्यों को ले कर भगवान बुद्ध के यहां गए, तो बुद्ध ने उन्हें दूर से आते देख उनकी ओर इशारा करते हुए सबों को बताया : "इधर आ रहा है वह मनुष्य जो मेरे शिष्यों में सर्वाधिक ऋद्धि शक्ति प्राप्त करेगा।" मौद्‌गल्यायन ने बुद्ध से सद्धर्म में दीक्षित होने की विनती की। बुद्ध ने कहा : "स्वागत, भिक्षु ! श्रद्धा से आध्यात्मिक साधना करने पर दुःख से मुक्ति पा सकोगे।" यह सुनते ही आयुष्मान के बाल झड़ गए और सांसारिक वस्त्रों में परिवर्तन आ गया। उनका हृदय विशुद्ध हुआ और आचार में शिष्टता आ गई। एक सप्ताह के उपरांत उनके क्लेश और आस्रव समाप्त हुए। उन्हें अर्हत्व और ऋद्धि शक्ति प्राप्त हुए।

उनतीस. जहां राजा बिंबिसार ने बुद्ध का स्वागत किया था

मौद्‌गल्यायन के जन्मस्थान से तीन-चार ली दूर पूर्व में उस स्थल पर एक स्तूप था जहां राजा बिंबिसार ने बुद्ध का स्वागत किया था। जब तथागत को अभी-अभी बुद्धत्व प्राप्त हुआ ही था, तब उन्हें ज्ञात था कि मगध की प्रजा के मन में उनके दर्शन करने की तीव्र इच्छा है। राजा बिंबिसार का आमंत्रण पा कर वे एक दिन सुबह काषाय संघाटी पहने, हाथ में भिक्षा-पात्र लिए राजगृह की ओर चल पड़े। उनके साथ एक हजार भिक्षु जा रहे थे। ये सबके सब भिक्षु बूढ़े जटाधारी ब्राह्मण थे जिन्होंने सद्धर्म के प्रति भक्ति से प्रेरित हो काषाय चीवर पहन कर प्रव्रज्या प्राप्त की थी। तब इन्द्र मानव का रूप धारण कर प्रकट हुए। उनके सिर पर जटा थी। उनके बाएं हाथ में स्वर्ण कुंभ था और दाएं हाथ में यष्टि। उनके चरण भूमि से चार अंगुल ऊंचे अधर में रहते थे। उन्होंने अधर में ही चलते हुए भगवान बुद्ध को रास्ता दिखाया। मगध के राजा बिंबिसार ने अपने राज्य के सहस्रों ब्राह्मणों, गृहपतियों और उपासकों को ले कर राजगृह से बाहर आ कर आदरभाव से भगवान बुद्ध और भिक्षुओं का स्वागत किया।

तीस. कालपिनाक ग्राम और सारिपुत्र का जन्मस्थान

जिस स्थल में राजा बिंबिसार ने बुद्ध का स्वागत किया था उस स्थल से बीसेक ली दूर दक्षिण-पूर्व में कालपिनाक ग्राम अवस्थित था। ग्राम में एक अशोक स्तूप था। यह आयुष्मान सारिपुत्र की जन्मभूमि था। एक कुआं आज भी ज्यों का त्यों था। उसके निकट एक स्तूप था जहां आयुष्मान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। स्तूप में उनकी अस्थियां सुरक्षित थीं।

आयुष्मान सारिपुत्र का जन्म एक अभिजात ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पूज्य पिता सुयोग्य और ज्ञानी थे। उनका सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों पर अधिकार था। उन्होंने सभी शास्त्रों का सर्वांगीण अध्ययन किया था। उनकी पत्नी ने एक स्वप्न देखा और अपने पति को बताया : "कल रात मैंने स्वप्न में एक विलक्षण व्यक्ति को देखा। कवच पहने और वज्र उठाए उसने एक के अतिरिक्त शेष सभी पहाड़ों को गिरा दिया और फिर पीछे हट कर वह उस पहाड़ के नीचे खड़ा हो गया।" पति बोला : "यह एक शुभ स्वप्न है। तुम एक पुत्र को जन्म दोगी। वह पंडित बनेगा और अपने समय में सर्वश्रेष्ठ निकलेगा। वह विभिन्न संप्रदायों के तर्क-शास्त्रियों को निरुत्तर करेगा और उनके मतों का खंडन करेगा। वह केवल एक व्यक्ति से हट कर होगा और उसी व्यक्ति का शिष्य बनेगा।" पत्नी सचमुच गर्भवती हो गई और एकाएक कुशाग्रबुद्धि भी बन गई। वह विचारोत्पादक मत प्रस्तुत करने और तर्क-वितर्क में धाराप्रवाह बोलने में समर्थ हुई। आयुष्मान सारिपुत्र आठ वर्ष की आयु में ही जगत्प्रसिद्ध हो चुके थे। वे स्वभाव के भोले और दयाशील थे। क्लेशों से मुक्त हो उनकी बुद्धि का पूर्ण विकास होता गया। बचपन में ही उन्होंने मौद्गल्यायन से मित्रता स्थापित की थी। उन्हें सांसारिक जीवन से घृणा थी, पर उन्हें कहीं भी दीक्षित होने का अवसर नहीं मिला। उन्होंने मौद्गल्यायन के साथ तीर्थिक संजय के पास रह कर साधना आरंभ की। बाद में दोनों परस्पर बोले : "यह परम सत्य नहीं है और दुःख का निराकरण नहीं हो सकता। हम विवेकशील आचार्य की खोज का अपना रास्ता अपनाएं। चाहे किसी को भी पहले अमृत पीने को क्यों न मिले, हम एक साथ उसका आस्वादन करेंगे।" जब महा अर्हत अश्वजित हाथ में पात्र लिए भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश कर रहे थे, तब उनसे सारिपुत्र का सामना हुआ। सारिपुत्र ने उनका रंगरूप अद्भुत एवं आचार में सुशीलता पाई। उन्होंने आगे बढ़ कर उनसे प्रश्न किया : "आपका आचार्य कौन है?" अश्वजित ने उत्तर दिया : "गृह त्याग कर परिव्राजक बन बुद्धत्व प्राप्त शाक्य राजकुमार मेरे आचार्य हैं।" सारिपुत्र ने पूछा : "उन्होंने किस धर्म का प्रवर्तन किया है? क्या आप मुझे बता सकते हैं?" अश्वजित बोले : "मैंने अभी-अभी अध्ययन आरंभ किया है, उसका परम सत्य जान नहीं सका हूं।" सारिपुत्र ने कहा : "तो कृपया, आपने जो कुछ सुना है,

सुनाइए।" तब अश्वजित धर्मोपदेश देने लगे। सुनते ही सारिपुत्र ने स्रोतापन्न-फल प्राप्त किया। फिर वे अपने ढाई सौ शिष्यों को ले कर भगवान बुद्ध के दर्शनार्थ गए। उन्हें दूर से आते हुए देखते ही भगवान ने उनकी ओर इशारा करते हुए सभा से कहा: "वह मेरे शिष्यों में एवं प्रज्ञा के क्षेत्र में प्रथम निकलेगा।" निकट पहुंचने पर सारिपुत्र ने भगवान को प्रणाम किया और सद्धर्म में दीक्षित होने की प्रार्थना की। भगवान बोले: "स्वागत, भिक्षु!" यह सुनते ही सारिपुत्र को उपसंपदा प्राप्त हुई। दो सप्ताह बाद जब बुद्ध दीर्घ-नखब्रह्मचारिन को धर्मोपदेश दे रहे थे, तो वे भी पास में उपस्थित थे। बुद्ध की देशना सुनने के अनंतर उन्हें बोधि प्राप्त हुई और अर्हत्व भी प्राप्त हुआ। बाद में आनन्द ने बुद्ध के मुंह से बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि सुन कर दूसरों को बता दी। सबका दिल दु:खने लगा। बुद्ध के प्रति सारिपुत्र की आस्था और श्रद्धा और भी अधिक गहराती चली गई। उन्होंने बुद्ध को परिनिर्वाण प्राप्त करते हुए देखना नहीं चाहा। अतएव उन्होंने भगवान से अनुरोध किया कि वे ही पहले निर्वाण को प्राप्त हो जाएं। भगवान ने उससे कहा: "तुम्हें जानना ही चाहिए कि तुम्हारे निर्वाण का समय आ गया है।" अपने शिष्यों से बिदा ले वे अपनी जन्मभूमि वापस आए। उनकी सेवा करने वाले श्रामणेर ने यह संवाद शीघ्र ही नगरों और गांवों में फैला दिया। राजा अजातशत्रु और प्रजा वायु की भांति शीघ्रता से उनके यहां गए और मेघों की तरह एकत्र हो गए। सारिपुत्र ने उन्हें धर्मोपदेश दिए। सुनने पर लोगों की भीड़ छंट गई। आधी रात के बाद सारिपुत्र ने विमुक्ति का आनन्द लेते हुए समाधि लगाई। समाधि की समाप्ति पर ही वे वहीं निर्वाण को प्राप्त हुए।

कालपिनाक ग्राम से चार-पांच ली दूर दक्षिण-पूर्व में उस स्थल पर एक स्तूप था, जहां आयुष्मान सारिपुत्र का एक शिष्य निर्वाण को प्राप्त हुआ था। किसी का कहना था कि जब कश्यप बुद्ध जीवित थे, तब तीन कोटि महाअर्हंत एक साथ इसी स्थल में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे।

इकतीस. इन्द्रशैलगुहा गिरि

सारिपुत्र के शिष्य के स्तूप से तीसेक ली दूर पूर्व में इन्द्रशैलगुहा गिरि स्थित था। गिरि की उपत्यकाएं अत्यंत गहरी थीं और फूलों एवं वनों से ढकी थीं। गिरि की दो चोटियां अटल-अचल खड़ी थीं। पश्चिमी चोटी के दक्षिणी ढाल पर एक बृहदाकार शैलगृह था। वह बहुत चौड़ा तो था, किन्तु अधिक ऊंचा नहीं था। इसमें कभी तथागत ने वास किया था। तब इन्द्र ने बयालीस शंकाएं चट्टान पर अंकित कर बुद्ध से दूर करने को कहा था और बुद्ध ने उनका समाधान कर दिया था। उनके चिह्न अभी भी सुरक्षित थे। प्राचीन मुनि के

प्रतिरूप में एक बुद्ध-प्रतिमा हाल में स्थापित की गई थी। जो भी उसके दर्शन करता था, उसके मन में आदर और श्रद्धा-भाव बरबस उत्पन्न हो जाता था। ढाल पर चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष भी थे। पूर्वी चोटी पर एक संघाराम था। कहते हैं कि संघाराम के भिक्षु रात को जब भी पश्चिमी चोटी पर शैलगृह की ओर देखते तो सदा बुद्ध-प्रतिमा के आगे दीप जलते हुए पाए जाते थे।

1. हंस स्तूप

इन्द्रशैलगुहा गिरि की पूर्वी चोटी पर संघाराम के सामने हंस नामक स्तूप था। इस संघाराम में भिक्षु हीनयानी थे। हीनयानी अनुक्रमवादी ही थे, इसलिए उन्हें तीन शुद्ध मांस खाने की अनुमति थी। इस संघाराम में यह प्रथा सदा प्रचलित थी। बाद में तीन शुद्ध मांस समय पर मिल नहीं सके। चंक्रमण करते समय जब एक भिक्षु ने सहसा देखा कि हंसों के झुंड आकाश में उड़ रहे हैं, तो उसने विनोदपूर्वक कहा: "आज भिक्षुओं के लिए मध्याह्न का भोजन अपर्याप्त था। महासत्व को यह जानना ही चाहिए।" उसकी बात पूरी भी नहीं हुई कि एक हंस उड़ता हुआ वापस आया और उसी के सामने भूमि पर गिर गया। हंस ने अपना मृत शरीर उस भिक्षु को अर्पित किया। भिक्षु ने यह बात दूसरों को बताई। द्रवित हो कर सभी की आंखें डबडबा आई। वे परस्पर बोले: "तथागत ने सद्धर्म का प्रवर्तन किया था तथा अलग-अलग स्थितियों के अनुसार दीक्षा दी। मगर हम मूर्खतापूर्वक अनुक्रमवादी शिक्षा का अनुसरण करते रहे हैं। महायान ही सत्य है। हमें पुरानी प्रथा त्याग कर भगवान बुद्ध के उपदेशों का अनुकरण करना चाहिए। इस हंस ने हमें पाठ सिखाया है। वह सचमुच एक सर्वश्रेष्ठ शिक्षक था। हमें उसके योगदान का प्रचार-प्रसार करना चाहिए, ताकि उसकी कहानी सदा-सर्वदा प्रचलित रह सके।" उन्होंने एक स्तूप खड़ा किया, हंस का कर्म लिपिबद्ध किया एवं उस मरे हंस को स्तूप के नीचे गाड़ दिया।

2. कपोतक संघाराम

इन्द्रशैलगुहा गिरि से एक सौ पचास ली से अधिक दूर उत्तर-पूर्व में कपोतक संघाराम अवस्थित था। इसमें दो सौ से अधिक भिक्षु थे। वे सर्वास्तिवादी थे। संघाराम के पूर्व में एक अशोक स्तूप था। भगवान बुद्ध ने कभी एक रात यहां लोगों को धर्मोपदेश दिया था। जब वे देशना दे रहे थे, तब एक चिड़ीमार वन में जाल फैला कर पक्षियों को फंसाने की ताक में बैठा था। किन्तु एक दिन व्यतीत हो जाने के बाद भी उसे कुछ भी हाथ न लगा। तब वह बोला: "यह मेरा दुर्भाग्य है, कुकर्मों का फल है।" वह बुद्ध के यहां गया और जोर से

चिल्लाया : "आज तथागत यहां उपदेश दे रहे हैं, जिससे एक दिन तक प्रतीक्षा करने पर भी मैं किसी पक्षी को फंसा न सका। मेरी पत्नी और बच्चे भूख से मर रहे हैं। मैं क्या करूं?" तथागत ने उससे कहा : "तुम अलाव सुलगाओ, फिर मैं तुम्हें खाने की चीज दे दूंगा।" तथागत ने एक बड़े कपोतक का रूप धारण कर अलाव में जा कर आत्मदाह किया। चिड़ीमार ने कपोतक को घर ले जा कर अपनी पत्नी व बच्चों के साथ खा लिया। वह फिर बुद्ध के यहां गया। तथागत ने उसे दीक्षा दी। बुद्ध के धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् चिड़ीमार को अपने किए पर पछतावा हुआ। उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर साधना की। शीघ्र ही उसे अर्हत्व प्राप्त हुआ। इसलिए इस संघाराम का नाम कपोतक संघाराम पड़ा।

बत्तीस. एकाकी पहाड़ी पर अवलोकितेश्वर की प्रतिमा

कपोतक संघाराम से दो-तीन ली दूर दक्षिण में एक एकाकी पहाड़ी थी। वह बहुत ऊंची थी एवं वृक्षों की हरियाली और फूलों से ढकी थी। घाटी में स्वच्छ जल के झरने थे। पहाड़ी पर अनेक विहार और देव-मंदिर थे। उन पर नक्काशी का अनुपम काम था। बीचोंबीच के विहार में एक अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की प्रतिमा सुशोभित थी। प्रतिमा छोटी तो थी, पर उसकी मुद्रा गांभीर्यपूर्ण, रहस्यमय एवं संभ्रमपूर्ण थी। प्रतिमा के हाथ में कमल का फूल था और सिर पर बुद्ध की मूर्ति। वहां प्राय: ऐसे कुछ व्यक्ति दिखाई दे जाते थे जो बोधिसत्व के दर्शन के लिए उपवास रखते तथा ध्यान लगाते थे। सप्ताह, दो सप्ताह और एक मास के उपरांत जो व्यक्ति अवलोकितेश्वर बोधिसत्व के प्रभाव में आ जाता था, वह देख सकता था कि स्वयं अवलोकितेश्वर बोधिसत्व सज-धज कर प्रतिमा से बाहर निकल आते हैं। उनके चेहरे पर तेज थिरकता है और वे उसे उपदेश देते थे। अतीत में दक्षिण सागर के सिंहल के राजा ने प्रात:काल जब दर्पण में अपने को देखना चाहा तो उन्होंने अपना चेहरा नहीं देखा, बल्कि जम्बूद्वीप के मगध में तालवन में एक पहाड़ी पर यह बोधिसत्व-प्रतिमा देखी। राजा बहुत प्रसन्न हुए और उसे खोजना चाहा। इस पहाड़ी पर पहुंचने पर उन्होंने इस बोधिसत्व-प्रतिमा को दर्पण में देखी हुई प्रतिमा के समान ही पाया। अतएव वे एक विहार निर्मित कर उसकी पूजा करने लगे। परवर्ती राजा-महाराजाओं ने उनका अनुकरण करते हुए इस विहार के निकट नए विहार और मंदिर बनवाए तथा अगरबत्ती, फूल और संगीत से पूजा करने की परंपरा बनाए रखी।

तैंत्तीस. अन्य अवशेष, जहां बुद्ध ने धर्मोपदेश दिए थे

एकाकी पहाड़ी पर अवलोकितेश्वर बोधिसत्व-प्रतिमा से चालीसेक ली दूर दक्षिण-

पूर्व में एक संघाराम में पचास से अधिक भिक्षु थे। वे हीनयानी थे। संघाराम के सामने एक बड़ा स्तूप था जो चमत्कार दिखाया करता था। यहां बुद्ध ने ब्रह्मा आदि को सप्ताह भर धर्मोपदेश दिया था। स्तूप के समीप तीन भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

संघाराम से सत्तर ली से अधिक दूर उत्तर-पूर्व में गंगा के दक्षिणी तट पर एक घनी जनसंख्या वाला कस्बा था। वहां कई देव-मंदिर थे, उन पर उत्कीर्णन के बढ़िया काम थे। उसके कुछ दूर दक्षिण-पूर्व में एक बड़ा स्तूप उस स्थल पर स्थापित था, जहां बुद्ध ने कभी एक रात उपदेश दिया था।

यहां से पूर्व में वनों और पर्वतों में सौ ली चलने पर लावनिल कस्बा[1] मिलता था। संघाराम के समक्ष एक अशोक स्तूप था। बुद्ध ने यहां तीन मास तक उपदेश दिए थे। यहां से दो-तीन ली दूर उत्तर में एक बड़ी झील थी जिसकी परिधि तीस ली से अधिक थी। उसमें चार रंगों के कमल के फूल चारों ऋतुओं में खिले रहते थे।

यहां से पूर्व में वनों और पर्वतों में दो सौ ली का रास्ता तय करने पर हिरण्य पर्वत राज्य की सीमा मिलती थी। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

1. कुछ विद्वानों का मानना है कि इस कस्बे का नाम रोहिनील होना चाहिए।

खण्ड दस

हिरण्य पर्वत राज्य

हिरण्य पर्वत राज्य की परिधि तीन हजार ली से अधिक थी। राजधानी गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित थी और उसकी परिधि बीस ली से अधिक थी। फसलों के लहलहाते खेत थे और नाना प्रकार के फल-फूल मिलते थे। जलवायु सुहावनी थी। प्रजा भोली-भाली थी। दस से अधिक संघाराम थे और चार हजार से अधिक भिक्षु थे। उनमें से अधिकतर सम्मतीय थे। देव-मंदिरों की संख्या बीस से अधिक थी। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। अर्वाचीन काल में पड़ोसी राज्य के एक राजा ने इस राज्य के शासक को गद्दी से उतार कर भिक्षुओं को राजधानी का दान किया। नगर में दो सघाराम निर्मित किए गए। प्रत्येक संघाराम में लगभग एक हजार भिक्षु थे। वे हीनयान के सर्वास्तिवादी थे।

एक. हिरण्य पर्वत

राजधानी के निकट गगा के समीप हिरण्य पर्वत था। पर्वत धुम्रां छोड़ता था जिससे सूर्य और चन्द्रमा ढक जाते थे। प्राचीन और अर्वाचीन कालों के ऋषि-मुनि यहां वास करते थे। देव-मंदिर अभी सुरक्षित थे, जिनमें प्राचीन काल से चली आ रही प्रथा का अनुसरण किया जाता था। तथागत ने भी यहां वास किया था और देवों एवं मनुष्य को धर्मोपदेश दिए थे।

राजधानी के दक्षिण में उस स्थल पर एक स्तूप था जहां तथागत ने तीन मास तक उपदेश दिए थे। उसके पास तीन भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

दो. भिक्षु श्रुतविंशतिकोटि की कथा

तीन भूत बुद्धों के चंक्रमण के अवशेषों से थोड़ी दूर पश्चिम में एक स्तूप था जहां भिक्षु श्रुतविंशतिकोटि का जन्म हुआ था।

प्राचीन काल में इस नगर में एक धनवान गृहपति था। बुढ़ापे में उसके एक बेटा उत्पन्न हुआ। एक व्यक्ति ने उसे यह संवाद सुनाया। उसने उस व्यक्ति को बीस करोड़ स्वर्ण सिक्कों का पुरस्कार दिया। इसलिए उसने अपने बेटे का नाम श्रुतविंशतिकोटि रखा। सयाना होने तक उसके बेटे ने धरती पर कभी पांव नहीं रखे थे। अतएव उसके तलवों में लगभग एक छि लम्बे, चिकने और कोमल बाल उग आए। उनका रंग स्वर्ण का सा था। गृहपति अपने बेटे से बहुत लाड़-प्यार करता था और उसके लिए नाना प्रकार के खिलौने जुटा लेता था। उसके घर से हिमगिरि तक के रास्ते में एक के बाद एक धर्मशालाएं स्थापित की गईं। उसके भृत्य सभी आवश्यक उत्तम औषधियां एक धर्मशाला से दूसरी धर्मशाला तक पहुंचाते रहते थे और कभी देरी नहीं लगाते थे। उस गृहपति का ऐसा ऐश्वर्य तथा वैभव था। भगवान जानते थे कि उसमें पुण्य की प्रकृति जाग जाएगी, इसलिए उन्होंने मौद्गल्यायन को उसे दीक्षा देने के लिए भेजा। मौद्गल्यायन उसके घर पहुंचे, लेकिन उन्होंने अपना नाम नहीं बताया। गृहपति और उसके परिजन सूर्य देवता के भक्त थे। वे प्रति दिन सुबह पूर्व की ओर मुख कर प्रणाम करते थे। आयुष्मान मौद्गल्यायन अपनी दैवी शक्ति के सहारे सूर्य में से निकल कर उनके सम्मुख प्रकट हुए। गृहपति का बेटा समझा कि वे ही सूर्य देवता हैं, अतः वह उन्हें सुगंधित चावल का दान कर घर वापस लौटा। चावल इतना सुगंधित था कि सारा राजगृह महक उठा। सम्राट बिंबिसार ने भी यह विलक्षण सुगंधि सूंघी। आश्चर्यान्वित हो कर उन्होंने जांच का आदेश दिया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह चावल वेणुवन विहार के मौद्गल्यायन गृहपति के घर से लाए गए हैं। तभी उन्हें पता चला कि गृहपति के बेटे के पास ऐसी विलक्षण वस्तु उपलब्ध है। उन्होंने उसे बुलावा भेजा। आदेश पा कर गृहपति ने मन ही मन सोचा कि जाए तो कैसे जाए? कौन-सी सवारी सुरक्षित होगी? यदि नाव से जाए, तो आंधी चलने और लहरें उठने का भय होगा। यदि गाड़ी या हाथी की सवारी से जाए, तो गाड़ी उलटने या हाथी का संतुलन बिगड़ने का भय होगा। उसने अपने घर से राजगृह तक एक नाला खुदवाया और पूरे नाले में सरसों डलवा दी गई। सरसों पर नाव रखी गई और लम्बे रस्से से उसे खींचा गया। गृहपति का बेटा जब राजगृह पहुंचा, तो उसने सर्वप्रथम भगवान के दर्शन किए। भगवान ने उससे कहा: "सम्राट बिंबिसार ने तुम्हें इसलिए बुलावा भेजा है क्योंकि वे तुम्हारे तलुओं में उगे बालों को देखना चाहते हैं। यदि सम्राट देखना चाहते हैं, तो तुम्हें पैरों को रानों पर रख कर बैठना होगा। यदि तुम अपने पैर सम्राट की ओर सीधे बढ़ाओगे, तो विधान के अनुसार मृत्युदण्ड मिलेगा।" बुद्ध की शिक्षा ले कर गृहपति का बेटा सम्राट के दर्शन करने गया। उसे प्रासाद में ले जाया गया। जब सम्राट ने उसके तलुओं में उगे बालों को देखने की इच्छा व्यक्त की, तब वह पैरों को रानों पर रख कर बैठ गया। सम्राट ने उसके शिष्टाचार की प्रशंसा की और उन्हें वह पसन्द भी आया। प्रासाद से निकल कर गृहपति का बेटा फिर जब बुद्ध के निवास

गया, तब तथागत धर्मोपदेश दे रहे थे। सुन कर वह प्रभावित हुश्रा श्रौर उसने तत्काल प्रव्रज्या ग्रहण की। वह बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए ध्यान लगा कर साधना करने लगा श्रौर विहार करते रहने से उसके तलुश्रों में रक्त बह गया। भगवान ने उससे पूछा : "भले मानस, तुम वीणा बजाना जानते हो ?" वह बोला : "जानता हूं।" "तो सुनो, वीणा बजाने का उदाहरण ही ले लें। यदि तार श्रावश्यकता से श्रधिक कसे गए, तो ध्वनि लयबद्ध नहीं हो सकती। यदि तार श्रावश्यकता से श्रधिक ढीले कर दिए गए, तो ध्वनि में सामंजस्य नहीं हो सकता। तारों को न श्रधिक कसने, न श्रधिक ढीला करने पर ही सुर मिलाए जा सकते हैं। साधना भी ऐसी ही है। श्रधिक तनाव होने से थकावट होती है श्रौर चित्त शिथिल हो जाता है, जबकि श्रधिक ढील होने से स्वभाव मन्द पड़ जाता है श्रौर मनोबल टूट जाता है।" बुद्ध की देशना सुन कर उसने उनकी प्रदक्षिणा की श्रौर श्रधिक समय नहीं बीता कि उसे श्रर्हत्व प्राप्त हुश्रा।

तीन. छोटी पृथक पहाड़ी पर बुद्ध संबंधी श्रवशेष

हिरण्य पर्वत के पश्चिम में गंगा बहती थी। गंगा से दक्षिण में श्रागे जाने पर एक छोटी एकाकी पहाड़ी पाई जाती थी। शिखर की चट्टानें एक दूसरे पर पड़ी हुई थीं श्रौर उसके ढाल सपाट थे। बुद्ध ने यहां तीन मास तक वर्षावास किया था श्रौर यहीं पर यक्ष बकुल को वश में कर लिया था। पहाड़ी के दक्षिण-पूर्व की तलहटी में एक बड़ी शिला पर बुद्ध के श्रासन का चिह्न था जो एक छुन से श्रधिक गहरा, पांच छि दो छुन लम्बा श्रौर दो छि एक छुन चौड़ा था। चिह्न पर एक स्तूप खड़ा था। उसके दक्षिण में एक शिला पर एक ऐसा चिह्न था जो बुद्ध द्वारा कुंडिका रखी जाने से बना था। यह चिह्न एक छुन से श्रधिक गहरा था श्रौर वह श्रष्टदल पुष्प के रूप में दीखता था। बुद्ध के श्रासन के चिह्न से थोड़ी दूर दक्षिण-पूर्व में यक्ष बकुल का पदचिह्न था जो एक छि पांच-छः छुन लम्बा, सात-श्राठ छुन चौड़ा श्रौर लगभग दो छुन गहरा था। इस पदचिह्न के पीछे श्रासन लगाए बुद्ध की एक प्रस्तर प्रतिमा थी। वह छः-सात छि ऊंची थी। उससे कुछ दूर पश्चिम में बुद्ध के चंक्रमण का स्थल था। पहाड़ी के शिखर पर एक शैलगृह था जिसमें यक्ष रहा करता था। उसके उत्तर में बुद्ध का पदचिह्न था जो एक छि श्राठ छुन लम्बा, छः छुन से श्रधिक चौड़ा श्रौर करीब श्राधा छुन गहरा था। बुद्ध के पदचिह्न पर एक स्तूप स्थापित था। तथागत ने यक्ष को वश में करने के बाद उसे मनुष्य का भक्षण न करने का श्रादेश दिया। यक्ष बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था श्रौर मृत्यु के उपरांत उसका स्वर्ग में पुनर्जन्म हुश्रा था।

पहाड़ी के पश्चिम में छः-सात सोते थे, जिनका पानी बहुत गर्म था। हिरण्य पर्वत की

सीमा के दक्षिण में अनेक पर्वतश्रृंखलाएं और वन फैले हुए थे। वनों में भीमकाय जंगली हाथी प्रचुरता से मिलते थे।

यहां से गंगा के दक्षिण तट के साथ-साथ पूर्व दिशा में तीन सौ ली से अधिक लम्बा रास्ता तय करने के बाद मैंने चम्पा की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

चम्पा

चम्पा राज्य की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। राजधानी के उत्तर में गंगा बहती थी। राजधानी की परिधि चालीस ली से अधिक थी। भूमि नीची और गीली थी। खेतों में फसलें लहलहाती थीं। जलवायु नम थी। प्रजा सीधी-सादी थी। दसियों संघाराम थे। मगर उनमें से अधिकतर ढह कर नष्ट-भ्रष्ट हो चुके थे। भिक्षु दो सौ थे। वे हीनयानी थे। बीसेक देव-मंदिर थे। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

राजधानी का प्राचीर ईंटों से बना था और कई चाङ ऊंचा था। प्राचीर का आधार ऊंचे और दुगर्म स्थान पर डाला गया था और शत्रु से रक्षार्थ बने निर्माण भी ऊंचे और दुर्भेद्य थे। इस कल्प के प्रारंभ में जब मनुष्य अभी-अभी उत्पन्न हुए थे, तो वे निर्जन स्थानों में गुफाओं में वास करते थे और अपने रहने के लिए मकान एवं प्रासाद बनाना नहीं जानते थे। कालांतर में एक देवी मनुष्य लोक में आई। वह गंगा के तट पर विहार करने गई। गंगा में स्नान करते समय उसे अपने सौंदर्य पर गर्व हुआ जिससे वह गर्भवती हो गई। उसने चार पुत्रों को जन्म दिया। पुत्रों ने जम्बूद्वीप को आपस में बांट कर एक-एक क्षेत्र पर आधिपत्य जमा लिया। उन्होंने राजधानियां स्थापित कीं, नगर निर्मित किए और सीमाएं निर्धारित कीं। उस देवी के पुत्रों में से ही एक की राजधानी चम्पा थी और वह जम्बूद्वीप में सर्वप्रथम प्रकाश में आया नगर था।

राजधानी से एक सौ चालीस-पचास ली दूर पूर्व में गंगा के दक्षिण तट पर चारों ओर से घिरा एक द्वीप था। द्वीप पर ऊंचे पर्वत और सीधी-खड़ी चट्टानें थीं। पर्वत पर एक देव-मंदिर स्थापित था। उसमें पूजित देव समय-समय पर चमत्कार कर दिखाते थे। कुछ लोगों ने चट्टानों में गुहा खोद कर वास किया। एक तालाब बनाया गया, जिसमें दूसरे स्थानों से जल लाया गया। विलक्षण वृक्षों के पौधे लगाए गए और उनके बीच फूलों की क्यारियां बनाई गई थीं। चट्टानें विशाल और सीधी-खड़ी थीं। यह ऋषि-मुनियों के लिए एक उपयुक्त वासस्थान था। यहां आ कर पर्यटकों का मन जाने का नहीं होता था।

चम्पा के दक्षिणी भाग में वनों में जंगली हाथियों और नरभक्षी पशुओं के झुंड देखे

जा सकते थे। उनकी संख्या लगभग एक हजार थी। वे इधर-उधर भागते दिखाई देते थे।

यहां से पूर्व में चार सौ ली से अधिक दूर चल कर कजंगल में पहुंचा जाता था। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

कजंगल

कजंगल राज्य की परिधि दो हजार ली से अधिक थी। भूमि नीची और गीली थी। भरपूर फसलें काटी जाती थीं। जलवायु नम थी और प्रजा हंसमुख थी। यहां मेधावी विद्वानों का बड़ा आदर किया जाता था एवं विद्याओं और शिल्पों को महत्व दिया जाता था। छः-सात संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या तीन सौ से कुछ अधिक थी। दस देव-मंदिर थे। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। गत सैकड़ों वर्षों में राजवंश का कोई उत्तराधिकारी उत्पन्न नहीं हुआ, अतएव कजंगल एक पड़ोसी राज्य के अधीन हो गया। राजधानी नष्ट हो कर खण्डहर बन गई थी। अधिकांश जनता गांवों में बसी हुई थी। जब सम्राट शीलादित्य पूर्वी भारत के दौरे के समय यहां पहुंचे, तो उन्होंने मकान बनवा कर राजकीय मामले निपटाए। उनके आने पर घास-फूस से झुग्गियां खड़ी की गई थीं, जिन्हें जाते समय आग लगा कर जला दिया गया था। कजंगल के दक्षिण में बहुत से जंगली हाथी पाए जाते थे। उत्तरी सीमा पर गंगा के निकट एक ऊंचा चबूतरा था जो ईंटों और पत्थरों से बना था। चबूतरे का आधार चौड़ा एवं ऊंचा था और उस पर नक्काशी का अनोखा काम था। चबूतरे के हर पार्श्व पर संतों की आकृतियां खुदी हुई थीं। बुद्ध और देवताओं के रंग-रूप में अंतर था।

यहां से पूर्व में चल कर गंगा के उस पार कोई छः सौ ली लम्बा रास्ता तय करने के बाद मैं पुंड्रवर्द्धन पहुंचा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

पुंड्रवर्द्धन

पुंड्रवर्द्धन राज्य की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि तीसेक ली थी। जनसंख्या अधिक थी। तालाब, भवन और फूलों की क्यारियां जहां-तहां देखे जा सकते थे। भूमि नीची और तर थी। फसलों के लहलहाते खेत थे। पनस के फलों की प्रचुरता थी और वे महंगे भी थे। ये फल कद्दू जितने बड़े थे। पक जाने पर इनका रंग पीलापन लिए लाल हो जाता था। फल को तोड़ने पर अन्दर दसियों बीज पाए जाते थे जो सारस

के अंडों जितने बड़े होते थे। बीज को तोड़ कर पीलापन लिए लाल रंग का बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट कोश्रा मिलता था। पनस के फल या तो अन्य फलों की भांति वृक्ष की डालियों पर लगते थे या भूमि के अन्दर उपजे फ़ूलिङ की भांति वृक्ष की जड़ों पर भी लगते थे। पुंड्रवर्द्धन में जलवायु नम थी। प्रजा अध्ययनशील थी। बीसेक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या तीन हजार से अधिक थी। वे महायानी भी थे और हीनयानी भी। देव-मंदिरों की संख्या सौ थी। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। असंख्य दिगंबर निर्ग्रंथ थे।

एक. वाशिभा संघाराम

राजधानी से लगभग बीस ली दूर पश्चिम में वाशिभा संघाराम स्थित था। संघाराम का प्रांगण चौरस था और भवन व मण्डप ऊंचे थे। सात सौ से अधिक भिक्षु सबके सब महायानी थे। पूर्वी भारत के अधिकांश प्रतिष्ठित भिक्षु इस संघाराम में वास करते थे।

वाशिभा संघाराम के निकट एक अशोक स्तूप था। इसी स्थल पर तथागत ने देवों और मनुष्य को तीन मास तक धर्मोपदेश दिए थे। उपवास के दिनों में इस स्थल पर प्रकाश फैल जाया करता था। स्तूप के समीप चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे। स्तूप से कुछ दूरी पर एक विहार स्थापित था। उसमें बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की प्रतिमा सुशोभित थी। बोधिसत्व के दिव्य चक्षुओं से कुछ भी छिप नहीं सकता था। वह दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर भक्तों की कामना पूरी करते थे। दूर और निकट के लोग उपवास कर उनसे वर मांगने आते रहते थे।

यहां से पूर्व में नौ सौ ली दूर चलने के उपरांत एक बड़ी नदी पार कर मैं कामरूप में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य पूर्वी भारत में स्थित था)।

कामरूप

कामरूप राज्य की परिधि लगभग दस हजार ली थी। राजधानी की परिधि तीसेक ली थी। भूमि नीची और तर थी। समय पर फसलों की खेती होती थी। पनस और नारियल के वृक्ष तो प्रचुर थे, किन्तु फल अत्यन्त महंगे थे। नदी-नाले और तालाब तथा झीलें पट्टियों की तरह नगरों के बीच फैले हुए थे। जलवायु सुहावनी थी। प्रजा भोली-भाली थी। लोगों का कद नाटा था और रंग सांवला। उनकी बोलियां मध्यदेश से कुछ भिन्न थीं। लोग

उग्र स्वभाव के थे। वे अध्ययनशील एवं उद्यमी थे। वे देवों की उपासना करते थे, बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं करते थे। अतएव सद्धर्म के प्रवर्तन से अब तक यहां कोई भी संघाराम स्थापित नहीं हुआ था और न ही भिक्षुओं का संघ बना था। कुछेक लोग बौद्ध धर्म मानते तो थे, लेकिन चोरी-छिपे। सैकड़ों देव-मंदिर और दसियों हजार विधर्मी थे।

एक. राजा कुमार का आमंत्रण

कामरूप का वर्तमान राजा देव नारायण का वशज था। वह ब्राह्मण था। उसका नाम भास्करवर्म था। उसका एक और नाम कुमार भी था। यह राजवंश इस प्रदेश पर आधिपत्य करने के बाद से पीढ़ी-दर-पीढ़ी शासन करता चला आ रहा था। वर्तमान राजा तक राजवंश की एक हजार पीढ़ियां हो चुकी थीं। वर्तमान राजा अध्ययनशील थे। प्रजा सुशासन के लिए उनकी कृतज्ञ थी। विद्वान उनके सद्‌गुणों से प्रभावित हो, दूर-दूर से यहां आते रहते थे। राजा बौद्ध धर्म को नहीं मानते थे, किन्तु विद्वान श्रमणों का आदर करते थे। आरंभ में जब राजा ने यह सुना कि एक चीनी श्रमण मगध के नालंदा संघाराम में ठहरा हुआ है और सात समुद्र पार कर बौद्ध धर्म का अध्ययन करने आया है, तो उन्होंने कई बार दूत भेज सविनय उसे आमंत्रण दिया था। किन्तु चीनी श्रमण ने उनका निमंत्रण अस्वीकार कर दिया था। ऐसे में आचार्य शीलभद्र ने कहा : "यदि बुद्ध के उपकार का बदला चुकाना हो, तो सद्धर्म का प्रचार-प्रसार करना चाहिए। तुम जाओ! दूरी से न डरो! राजा कुमार पीढ़ियों से विधर्मी रहे हैं, तथापि उन्होंने अब किसी श्रमण को निमंत्रण दिया है। यह एक अच्छी बात है। यदि वे अपना विचार बदल कर सद्धर्म ग्रहण करें तो इससे दूरगामी हित होगा। तुमने अकेले दूर परदेशों में भ्रमण करने, सद्धर्म के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने तथा प्राणियों का उद्धार करने का दृढ़ संकल्प और प्रतिज्ञा की थी। उस समय क्या तुम्हें केवल अपने जन्मस्थान और देश का ही ध्यान आया था? तुम्हें लाभ-हानि का विचार छोड़ देना चाहिए। मान-अपमान पर ध्यान मत दो, सद्धर्म का प्रचार करो, मोह में पड़े लोगों को उपदेश दो, दूसरों के बाद ही अपना ध्यान रखो, अपने आदर-अनादर की बात भूल कर बौद्ध धर्म का विकास करो।" आचार्य से अनुमति पा कर मैं दूतों के साथ रवाना हुआ। मैंने राजा के दर्शन किए। राजा कुमार बोले : "मैं स्वयं तो अयोग्य हूं, किन्तु विद्वानों को सर-आंखों पर बिठाता हूं। आपकी ख्याति सुन कर मैं आपसे अत्यन्त प्रभावित हो गया हूं। अतएव मैंने आप को निमंत्रण देने की धृष्टता की है।" मैंने कहा : "मैं अक्षम और अज्ञात हूं। यह जान कर कि आपने मेरे विषय में कुछ सुना है, मुझे लज्जा आ रही है।" राजा कुमार ने कहा : "धन्य हैं! आप बुद्ध के भक्त बन ज्ञान में वृद्धि के लिए प्राणों पर

खेलते हुए संकटों को एक के बाद एक पार कर परदेशों में भ्रमण के लिए निकले हैं। यह आपके देश के सम्राट की शिक्षा की देन है और आपके देश में ज्ञान-विज्ञान को महत्व दिए जाने का सुफल है। आज भारत के राज्यों में महाचीन की 'छिनवाङ की विजय का संगीत' नामक धुन की प्रशंसा की जाती है। मैंने भी यह धुन सुनी थी। क्या महाचीन ही आपकी मातृभूमि है?" मैंने उत्तर दिया: "जी हां। इस धुन में हमारे देश के सम्राट के सद्गुणों की स्तुति की गई है।" राजा कुमार ने कहा: "आचार्य, मैंने कभी सोचा तक नहीं था कि आप इसी देश के निवासी हैं। मैं आपके देश की परंपरा और प्रथा का प्रशंसक हूं। आदर-भाव से पूर्व की ओर देखता रहता हूं। किन्तु पहाड़ों और नदियों के पड़ने से मार्ग दुर्गम होने के कारण वहां जा कर अपना आदर-भाव प्रकट करने का मुझे अवसर नहीं मिला है।" मैं बोला: "हमारे देश के सम्राट के पवित्र गुण देश की सीमांत क्षेत्रों पर जाने जाते हैं एवं उनके सुशासन का प्रभाव दूरस्थ स्थानों में भी पड़ा है। परदेशी उनके दर्शन करने आते हैं और बहुतों ने उनके अधीन रहने की इच्छा व्यक्त की है।" राजा कुमार ने कहा: "जब अन्य देश ऐसा ही करते हैं, तो मैं भी उनके दर्शन करना और उन्हें कुछ उपहार भेंट करना चाहता हूं। अभी सम्राट शीलादित्य कजंगल में ठहरे हुए हैं। वे पुण्य कर्मों को बढ़ावा देने हेतु महादान करेंगे। भारत के सभी ज्ञानी श्रमणों और ब्राह्मणों को बुलाया गया है। मुझे भी उन्होंने वहां जाने का आमंत्रण दिया है। आशा है कि आप मेरे साथ जाएंगे।" तब मैं राजा कुमार के साथ कजंगल गया।

दो. पूर्वी सीमा की प्राकृतिक स्थिति

कामरूप के पूर्वी भाग में पर्वत ही पर्वत फैले हुए थे। कोई बड़ा नगर नहीं था। पूर्वी सीमा दक्षिण-पश्चिम (चीन) के असभ्य लोगों के वास-स्थानों से जुड़ी हुई थी। इसलिए इस राज्य के निवासियों की आकृति उन लोगों से मिलती-जुलती थी। स्थानीय लोगों से विस्तार से पूछने पर ज्ञात हुआ कि कामरूप से कोई दो मास तक यात्रा करने के बाद दक्षिण-पश्चिमी सछ्वान की सीमा तक पहुंचा जा सकता है। किन्तु रास्ते में दुर्गम पर्वतमालाएं और उफनती नदियां हैं, विषमज्वर का बोलबाला है और फिर विषैले सांप एवं विषैली घास भी यात्रियों के प्राण संकट में डालते रहते हैं। कामरूप के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में बहुत खूंख्वार जंगली हाथी थे जो झुंड के झुंड में दिखाई पड़ते थे। अतएव इस राज्य की हाथी की सेना विशेष शक्तिशाली थी।

यहां से दक्षिण में एक हजार दो-तीन सौ ली का रास्ता तय करने पर समतट की सीमा आती थी। (यह राज्य पूर्व भारत में स्थित था)।

समतट

समतट की परिधि तीन हजार ली से अधिक थी। समुद्रतट पर स्थित होने के कारण इस राज्य में भूमि नीची एवं गीली थी। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। फसलों के लहलहाते खेत थे और फल-फूल प्रचुरता से मिलते थे। जलवायु नम थी। प्रथाएं शिष्ट थीं। लोग स्वभाव से उग्र थे। उनका कद छोटा था और रंग सांवला। वे उद्यमी और अध्ययनशील थे और बौद्ध धर्म एवं अन्य धर्मों को भी मानते थे। यहां संघारामों की संख्या तीस से अधिक थी और भिक्षु दो हजार से ज्यादा। वे सभी स्थविरवादी थे। सौ देव-मंदिर थे। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। दिगंबर निर्ग्रंथों की संख्या अत्यधिक थी।

राजधानी से कुछ दूर एक स्थल में अशोक स्तूप था। इसी स्थल पर तथागत ने देवों और मनुष्य को सप्ताह भर धर्मोपदेश दिए थे। स्तूप के समीप चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे। यहां से थोड़ी दूरी पर स्थित एक संघाराम में गहरे नीले रंग के जेड की एक आठ छि ऊंची बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी। उसमें द्वात्रिंश महापुरुषलक्षण और अशीत्यनुव्यंजनानी विद्यमान थे। यह प्रतिमा बहुधा अलौकिक शक्ति प्रदर्शित करती थी।

एक. छः श्रुत राज्य

समतट से उत्तर-पूर्व में सागर के निकट पर्वतों में श्रीक्षेत्र राज्य स्थित था। उससे दक्षिण-पूर्व में सागर के तट पर कामलंक राज्य स्थित था। उसके पूर्व में द्वारपति राज्य था। द्वारपति के पूर्व में ईशानपुर राज्य था। उसके पूर्व में महाचंपा राज्य स्थित था, जिसे हम चीनी लिनयी कह कर पुकारते हैं। उसके दक्षिण-पश्चिम में यवनद्वीप राज्य था। मार्ग में पर्वत और नदियां पड़ने के कारण मैंने छः राज्यों की सीमाओं के अन्दर प्रवेश नहीं किया, फिर भी किंवदंतियों से इनकी प्रथाओं और स्थितियों के संदर्भ में कुछ जाना जा सकता था।

समतट से पश्चिम में लगभग नौ सौ ली चलने के बाद मैं ताम्रलिप्ति पहुंचा। (यह राज्य पूर्व भारत में अवस्थित था)।

ताम्रलिप्ति

ताम्रलिप्ति की परिधि प्रायः एक हजार चार सौ ली थी। इसकी राजधानी की परिधि

दसेक ली थी। समुद्र के समीप स्थित होने के कारण यहां भूमि नीची और गीली थी। फसलों की खेती समय पर होती थी। फल-फूल बहुतायत से मिलते थे। जलवायु कुछ उष्ण थी। प्रथाएं बर्बरतापूर्ण थीं। लोग साहसी थे। वे बौद्ध धर्म तथा परधर्मों को मानते थे। दस से अधिक संघाराम थे और कोई एक हजार भिक्षु। देव-मंदिरों की संख्या पचासेक थी। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। समुद्रतट पर स्थित होने के कारण इस राज्य में जल और स्थल यातायात की सुविधाएं उपलब्ध थीं। असंख्य दुर्लभ रत्न एवं मणियां इस राज्य में एकत्र होती रहती थीं। अतएव इस राज्य के निवासी प्राय: संपन्न हुआ करते थे।

राजधानी के समीप एक अशोक स्तूप था। स्तूप के निकट चार भूत बुद्धों के आसनों एवं चंक्रमण के अवशेष थे।

यहां से उत्तर-पश्चिम दिशा में सात सौ ली से अधिक लम्बा रास्ता तय कर मैं कर्ण-सुवर्ण पहुंच गया। (यह राज्य पूर्व भारत में स्थित था)।

कर्णसुवर्ण

कर्णसुवर्ण की परिधि लगभग चार हजार पांच सौ ली थी। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। जनसंख्या बहुत अधिक थी और लोग संपन्न थे। भूमि नीची एवं गीली थी। फसलों की खेती ऋतुओं के अनुरूप की जाती थी। फूलों की बहार थी। अधिसंख्य दुर्लभ फल मिलते थे। जलवायु नम थी। लोग सुशील थे। वे शिल्प सीखने में संलग्न रहते थे और बौद्ध धर्म तथा अन्य धर्म मानते थे। दसेक संघारामों में भिक्षुओं की संख्या दो हजार से अधिक थी। वे हीनयान के सम्मतीय थे। पचास से अधिक देव-मंदिर थे। विधर्मी असंख्य थे। ऐसे तीन संघाराम और भी थे, जिनमें देवदत्त के उपदेशों का पालन करते हुए भिक्षुगण दूध की वस्तुएं नहीं खाते थे।

एक. रक्तमृत्तिका संघाराम

राजधानी के समीप रक्तमृत्तिका संघाराम स्थित था। संघाराम का प्रांगण विस्तृत था और भवन ऊंचे थे। इस राज्य के सर्वश्रेष्ठ, मेधावी और कुशाग्रबुद्धि विद्वान इसी संघा-राम में एकत्रित थे। वे परस्पर एक दूसरे को सावधान करते हुए नीति-दर्शन पर विचार-विमर्श किया करते थे।

प्रारंभ में इस राज्य में कोई भी बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं करता था। तब दक्षिणापथ

से एक तीर्थिक तांबे की कमरपेटी पहने, सिर पर प्रज्वलित मशाल लगाए, हाथ में यष्टि लिए, अतीव अभिमान में भरा इस राजधानी में आया। उसने ढोल बजा-बजा कर इस राज्य के लोगों को तर्क-वितर्क के लिए ललकारा। किसी ने उससे पूछा : "तुम्हारे सिर पर और कमर पर ऐसी विचित्र साज-सज्जा क्यों हैं?" वह बोला : "मैंने इतना अधिक ज्ञान अर्जित किया है कि मुझे डर है कि कहीं मेरा पेट न फट जाए। इसीलिए तांबे की पेटी पहन रखी है। और मैं अंध एवं मूर्ख लोगों पर तरस खाता हूं, अत: उन्हें प्रबुद्ध करने हेतु सिर पर मशाल लगाए हूं।" दस दिन यों ही बीत गए। किसी को उससे प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ और राज्य में ढूंढ़ने पर भी कोई प्रज्ञ व्यक्ति नहीं मिला। राजा बोले: "क्या मेरे राज्य में कोई भी ज्ञानी नहीं है? यह तो मेरे राज्य का बड़ा अपमान होगा कि किसी आगंतुक ने तर्क-वितर्क के लिए ललकारा है, किन्तु उसकी चुनौती स्वीकारने वाला कोई नहीं है। तुम्हें कुछ ज्ञानी सन्यासियों की तलाश करनी है।" किसी ने राजा को बताया : "वन में एक विलक्षण व्यक्ति रहता है, जो अपने आप को श्रमण कहता है। उसका मन अध्ययन में ही लगा रहता है। उसे इस प्रकार एकांतवास करते हुए बहुत समय बीत चुका है। धर्म और नीति-दर्शन के अनुरूप आचरण न करने पर क्या ऐसा होना संभव है?" यह सुन कर राजा उस श्रमण को लेने स्वयं वन में गए। श्रमण ने उनसे कहा : "मैं दक्षिणापथ का रहने वाला हूं। यात्रा करते हुए यहां आया हूं। मेरा ज्ञान उथला है। मेरे विषय में आपने जो कुछ सुना है, मैं उसके अनुरूप सिद्ध नहीं भी हो सकता हूं। तथापि आपने जो आज्ञा दी है, उसका पालन करने से इनकार करने की धृष्टता मैं नहीं कर सकता। मेरी प्रार्थना है कि यदि मैं तर्क-वितर्क में विफल न हुआ, तो आप बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा के लिए एक संघाराम बनवा दें एवं भिक्षुओं को आमंत्रित करें।" इस पर राजा बोले : "जैसा आपने कहा है, वैसा ही होगा। आपकी कृपा हम कभी नहीं भूलेंगे।" श्रमण सभा में चला गया। उस तीर्थिक ने अपने धर्म के मत सुनाए। उसका व्याख्यान तीन हजार शब्दों वाला था जिनका अर्थ गूढ़ था और विषय व्यापक। उसमें नाम-रूप के सिद्धांत और ऐसी बातें जो देखी-सुनी हुई थीं, सब समाविष्ट थे। श्रमण ने उसका व्याख्यान एक बार सुन कर ही समझ लिया। श्रमण ने कुछ सौ शब्दों में ही अपने तर्क प्रस्तुत किए। उनमें न सैद्धांतिक भूल थी और न शब्दों के प्रयोग में दोष था। फिर उसने तीर्थिक से उसके धर्म के मत के संबंध में प्रश्न किए। तीर्थिक उत्तर में युक्तियां प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा एवं निरुत्तर हो गया। तीर्थिक की अपकीर्ति हुई और वह अपमानित हो कर वहां से चला गया। राजा ने श्रमण के सद्गुण और योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की और यह संघाराम निर्मित कराया। तबसे ही इस राज्य में भगवान बुद्ध के धर्म का प्रचार-प्रसार होने लगा।

संघाराम के समीप एक अशोक स्तूप था। इसी स्थल पर तथागत ने सप्ताह भर उपदेश दे कर श्रोताओं को प्रबुद्ध किया था। स्तूप के पास एक विहार था और चार भूत बुद्धों के

ग्रासनों व चंक्रमण के ग्रवशेष भी थे। जिन स्थलों पर तथागत ने धर्मोपदेश दिए वहां कई स्तूप थे। वे सबके सब सम्राट ग्रशोक द्वारा खड़े करवाए गए थे।

यहां से दक्षिण-पश्चिम में सात सौ ली चलने पर मैंने ग्रोड्र की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य पूर्व भारत में स्थित था)।

ग्रोड्र

ग्रोड्र की परिधि सात हजार ली से ग्रधिक थी। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। भूमि उर्वर थी ग्रौर फसलों के लहलहाते खेत थे। यहां के सभी फल ग्रन्य राज्यों की ग्रपेक्षा बड़े लगते थे। यहां उगने वाली ग्रद्भुत घास ग्रौर फूलों का विस्तृत वर्णन करना ग्रसंभव था। जलवायु उष्ण थी। लोग स्वभाव से उग्र थे। वे हट्टे-कट्टे थे ग्रौर उनका रंग सांवला था। उनकी बोली ग्रौर प्रथा मध्यदेश से भिन्न थी। वे ग्रध्ययनशील थे। ग्रधिकांश लोग बौद्ध धर्म को मानते थे। सौ से ग्रधिक संघाराम थे ग्रौर भिक्षुग्रों की संख्या दस हजार से ग्रधिक थी। सभी भिक्षु महायानी थे। पचास देव-मंदिर थे। उनके बीच विधर्मी ग्रव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। विभिन्न स्थानों में दसेक स्तूप थे। वे सम्राट ग्रशोक द्वारा उन स्थलों पर खड़े करवाए गए थे जहां तथागत ने उपदेश दिए थे।

एक. पुष्पगिरि संघाराम

ग्रोड्र के दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र में एक पर्वत पर पुष्पगिरि संघाराम स्थापित था। उसमें स्थित एक प्रस्तर स्तूप पर प्राय: चमत्कार देखे जा सकते थे एवं उपवास के दिनों में प्रकाश फैलता रहता था। दूर ग्रौर समीप से ग्राने वाले भक्तगण सुंदर-सुंदर छत्र स्तूप पर चढ़ाते थे। यदि इन छत्रों को चक्र के नीचे ग्रथवा किसी उलटे हुए पात्र जैसे स्तूप पर रखा जाता था तो वे गिरते नहीं थे, जैसे चुम्बक पर सुई स्थिर हो जाती है। इस स्तूप के उत्तर-पश्चिम में पर्वत पर एक संघाराम था। उसमें भी एक स्तूप था ग्रौर वह भी ऊपर वर्णित स्तूप की तरह ही चमत्कारी था। वे दो स्तूप देवों ने ही बनाए थे, इसलिए उनकी इतनी ग्रलौकिक शक्तियां थीं।

दो. चरित्र नगर

ग्रोड्र के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में सागर के निकट चरित्र नगर ग्रवस्थित था। इसकी परिधि

बीसेक ली थी। समुद्री व्यापारी एवं दूरस्थ स्थानों से आने वाले यात्री दूसरी जगहों में जाने के लिए इस नगर में ठहरते थे। नगर दुर्भेद्य था और यहां नाना दुर्लभ रत्न व मणियां उपलब्ध थे। नगर के बाहर पांच संघाराम थे। वे शल्कों की भांति क्रम से खड़े थे। उनमें ऊंचे-ऊंचे भवन थे एवं कलात्मक ढंग से बनाई गई बुद्ध-प्रतिमाएं सुशोभित थीं। इस नगर से बीस हजार ली दूर दक्षिण में सिंहल स्थित था। स्तब्ध रात्रि में दूर तक दृष्टि डालने पर सिंहल के बुद्ध-दंत-स्तूप के शिखर पर मोती का प्रकाश देखा जा सकता था। यह प्रकाश इतना तेज था मानों आकाश में एक मशाल प्रज्वलित हो।

यहां से दक्षिण-पश्चिम में वनों में लगभग एक हजार दो सौ ली चलने के बाद मैं कोंगोद पहुंचा। (यह राज्य पूर्व भारत में स्थित था)।

कोंगोद

कोंगोद की परिधि एक हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि बीसेक ली थी। यह राज्य सागर के तट पर स्थित था। राज्य में पर्वतमालाएं फैली हुई थीं। भूमि नीची एवं गीली थी। फसलों की खेती समय पर की जाती थी। जलवायु उष्ण थी और लोग साहसी थे। वे सुडौल और सांवले रंग के थे। वे प्राय: शिष्ट थे। यहां ढकोसले की बातें कम होती थीं। लिपि मध्यदेश के समान थी, किन्तु बोली बहुत भिन्न थी। वे बौद्ध धर्म को नहीं मानते थे। यहां सौ से अधिक देव-मंदिर थे और तीर्थिकों की संख्या दस हजार से भी अधिक थी। राज्य में दसियों छोटे-छोटे नगर थे। वे पहाड़ों की तलहटी में सागर के तट पर निर्मित किए गए थे। नगर दृढ़ और दुर्भेद्य थे। सैनिक साहसी थे। कोंगोद का अपने पड़ोसी राज्य पर दबदबा था। उसका कोई शक्तिशाली शत्रु नहीं था। राज्य सागर के तट पर स्थित था, अतएव यहां अनेक दुर्लभ रत्न और मणियां उपलब्ध थे। मुद्रा के रूप में कौड़ियों का प्रयोग होता था। यहां कालापन लिए नीले रंग के भीमकाय हाथी होते थे, जिनसे लम्बी यात्रा के लिए वाहन का काम लिया जा सकता था।

यहां से दक्षिण-पश्चिम में घने जंगलों में ऊंचे-ऊंचे वृक्ष आकाश को छूने की चेष्टा करते दिखाई देते थे। उनके बीच से सूर्य की किरणें भी नहीं आ सकती थीं। जंगलों में कोई एक हजार पांच सौ ली का रास्ता तय करने पर मैंने कलिंग में प्रवेश किया। (यह राज्य दक्षिणा-पथ में स्थित था)।

कलिंग

कलिंग की परिधि पांच हजार ली से अधिक थी। राजधानी की परिधि लगभग बीस

ली थी। फसलों की खेती समय पर होती थी। फल-फूल प्रचुरता से मिलते थे। विस्तृत वन सैकड़ों ली तक फैले हुए थे। इस राज्य में काले जंगली हाथी पाए जाते थे जो पड़ोसी राज्यों में दुर्लभ पशु माने जाते थे। जलवायु बहुत उष्ण थी। लोग स्वभाव से उग्र ग्रौर स्वेच्छाचारी थे, तथापि वे ग्रपने वचन के पक्के होते थे। वे धाराप्रवाह बोलते थे एवं उनका उच्चारण स्पष्ट होता था। बोलचाल मध्यदेश से भिन्न थी। ग्रल्पसंख्यक लोग बौद्ध धर्म मानते थे, जबकि बहुसंख्यक विधर्मी थे। दसेक संघाराम थे ग्रौर कोई पांच सौ भिक्षु। वे महायान के स्थविरवादी थे। देव-मंदिरों की संख्या सौ से ग्रधिक थी। विधर्मी बहुत ग्रधिक थे ग्रौर उनमें से ग्रधिकतर जैनी थे।

कलिंग पहले कभी एक ऐसा राज्य रहा था जहां जनसंख्या ग्रधिक थी, मार्गों में राहगीरों की भीड़ ग्रौर गाड़ियों का तांता लगा रहता था। कंधे से कंधे टकराते थे ग्रौर गाड़ी से गाड़ी। यदि लोग ग्रपनी बांहें ऊपर उठाते, तो बांहों का एक विशाल मण्डप सा बन जाता था। उस समय पांच विद्याग्रों में पारंगत एक ऋषि पर्वत में एकांतवास कर ध्यान लगाता था। एक स्थानीय निवासी द्वारा ग्रनादर किए जाने पर वह कुपित हुग्रा, जिससे वह ग्रपनी ग्रलौकिक शक्ति खो बैठा। तब उसने शाप दिया ग्रौर बूढ़े-बच्चे भी शापग्रस्त होने से न बच सके। उसके शाप से यहां के बुद्धिमान ग्रौर मूर्ख सभी मर गए। राज्य उजड़ गया। यह स्थिति एक लम्बी ग्रवधि तक बनी रही। कालांतर में यद्यपि कुछ लोग यहां ग्रा कर बसने लगे, किन्तु जनसंख्या फिर भी कम ही रही। इसलिए ग्रभी भी इस राज्य में कम निवासी थे।

राजधानी से कुछ दूर दक्षिण में सौ छि ऊंचा एक ग्रशोक स्तूप था। स्तूप के समीप चार भूत बुद्धों के ग्रासनों एवं चंक्रमण के ग्रवशेष थे।

कलिंग के उत्तरी क्षेत्र में एक पर्वत पर उस स्थल पर सौ छि से ग्रधिक ऊंचा एक प्रस्तर स्तूप खड़ा था जहां इस कल्प के प्रारंभ में जब मनुष्य की ग्रायु ग्रसंख्य थी, एक प्रत्येक बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुग्रा था।

यहां से उत्तर-पश्चिम में पर्वतों पर एवं वनों में लगभग एक हजार ग्राठ सौ ली चलने के बाद मैं कोसल की सीमा में प्रविष्ट हुग्रा। (यह राज्य मध्यदेश में स्थित था)।

कोसल

कोसल की परिधि छ: हजार ली से ग्रधिक थी। चारों ग्रोर पर्वतमालाग्रों से घिरे इस राज्य में ग्रपार वन-संपदा थी। राजधानी की परिधि चालीस ली के लगभग थी। भूमि उर्वर थी ग्रौर भरपूर फसलें होती थीं। नगर ग्रौर गांव एक दूसरे के समीप थे। जनसंख्या

अधिक थी और लोग संपन्न थे। वे हट्टे-कट्टे, सांवले रंग के, साहसी और उग्र स्वभाव के थे और बौद्ध धर्म एवं अन्य धर्मों को मानते थे तथा शिल्पों में पारंगत थे। राजा क्षत्रिय थे और बुद्ध के भक्त थे। वे अत्यन्त दयार्द्र थे। संघारामों की संख्या सौ से अधिक थी और भिक्षुओं की संख्या दस हजार से कम। वे सभी महायानी थे। सत्तर से अधिक देव-मंदिर भी थे। उनके बीच विधर्मी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

एक. नागार्जुन व देव

राजधानी से कुछ दूर दक्षिण में एक प्राचीन संघाराम था। उसके समीप एक स्तूप था जो सम्राट अशोक ने बनवाया था। तथागत ने यहां अपनी दिव्य शक्ति का प्रदर्शन कर तीर्थिकों को वश में किया था। बाद में बोधिसत्व नागार्जुन ने इस संघाराम में वास किया। तात्कालिक राजा का नाम सातवाहन था। वह नागार्जुन का बड़ा आदर करता था। उसने उनके द्वार पर प्रहरी बैठा दिया। बोधिसत्व देव सिंहल से आए। उन्होंने बोधिसत्व नागार्जुन के साथ बौद्ध धर्म के सिद्धांतों पर विचार-विमर्श करने का अनुरोध किया और प्रहरी से कहा : "कृपया, आप अपने स्वामी को मेरे आने का संवाद दे दें।" प्रहरी ने जा कर नागार्जुन को यह संवाद दिया। नागार्जुन देव की ख्याति से अवगत थे। उन्होंने एक पात्र में पानी भर कर एक शिष्य से कहा : "तुम यह पात्र ले जा कर देव को दिखला दो।" देव ने पात्र में भरे पानी को निहारा तथा कुछ भी बोले बिना उसमें एक सुई रख दी। वह शिष्य दोनों हाथों से पात्र को उठाए वापस लौटा। बात उसकी समझ में न आई। नागार्जुन ने उससे पूछा: "उन्होंने कुछ कहा?" शिष्य उत्तर में बोला : "वे मौन रहे। उन्होंने केवल पानी में एक सुई रख दी।" नागार्जुन बोले : "वे कितने कुशाग्रबुद्धि हैं! देवता की भांति गुह्य से गुह्य बातें जानते हैं एवं संत की भांति सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन भी देख सकते हैं। ऐसे विवेकशील व्यक्ति को तुरन्त अन्दर बुलाना चाहिए।" शिष्य ने पूछा : "आपने जो कुछ कहा है, मेरी समझ में नहीं आ रहा। क्या इसका अर्थ है कि चुप्पी ही वाक्पटुता है?" उसे समझाते हुए नागार्जुन बोले : "पानी का आकार पात्र के अनुरूप चौकार या गोल होता है। वह अन्य वस्तुओं को जो चाहे स्वच्छ हों या मैली, ढकेल सकता है। वह सारी शून्यता को भरता है एवं उसकी स्वच्छता अज्ञात है। मैंने पात्र में पानी भर इसलिए भिजवाया था क्योंकि मैं उन्हें यह बताना चाहता था कि मेरा ज्ञान सर्वव्यापी है, जबकि उन्होंने पानी में सुई रखकर यह जता दिया कि वे मेरे ज्ञान की थाह लेना चाहते हैं। वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उन्हें तुरन्त अन्दर बुला लाओ।" नागार्जुन गंभीर और रोबीले थे। उनसे बातें करते समय हरेक को सिर नीचा रखना पड़ता था। देव इससे पहले ही नागार्जुन

के आचरण और सद्गुणों के बारे में जान गए थे। उनकी यह चिरपोषित अभिलाषा थी कि उन्हें नागार्जुन से शिक्षा-दीक्षा मिले। अब अवसर पाने पर उन्होंने सर्वप्रथम अपने आप को संभाला। फिर भी वे नागार्जुन के रोब से संत्रस्त थे। अतएव सभा में उन्होंने एक एकांत स्थान में अपना आसन जमाया। फिर वे स्पष्ट एवं सटीक शब्दों में गूढ़ सिद्धांतों पर व्याख्यान देने लगे। नागार्जुन बोले : "आपकी विद्वत्ता अपने समकालीनों से बढ़ कर है और आप इतने वाक्पटु हैं कि अपने पूर्ववर्तियों की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करते हैं। मैं तो जीर्ण-शीर्ण हो चुका हूं। आप जैसे गुणी व श्रेष्ठ व्यक्ति से भेंट होने पर मुझे पानी उंड़ेलने के लिए कलश एवं ज्ञान सौंपने के लिए उचित व्यक्ति मिला है। इस प्रकार दीप जलता रहेगा एवं कार्य का उत्तराधिकारी प्राप्त होगा। सद्धर्म का प्रचार-प्रसार करना आप जैसे महानुभावों पर ही निर्भर है। आप कृपया आगे आ कर बैठें और बौद्ध धर्म के गूढ़ तत्वों पर विस्तृत व्याख्यान दें।" नागार्जुन की बात सुन कर देव को मन ही मन गर्व अनुभव हुआ। प्रमुख विषय पर व्याख्यान देने से पूर्व उन्होंने संबंधित गौण विषयों पर प्रकाश डाला। वे धाराप्रवाह बोलते चले जा रहे थे। बीच में उन्होंने सिर उठा कर नागार्जुन को देखा। उनकी गंभीर और रोबीली मुद्रा को देखते ही उनका मुंह एकदम बन्द हो गया। उन्होंने अपने आसन से उठ कर नागार्जुन से क्षमा मांगी एवं शिक्षा देने की विनती की। नागार्जुन बोले : "आप पहले बैठ तो जाइए। आज मैं आपको परम सत्य बताऊंगा। ये धर्मराज तथागत के सच्चे उपदेश हैं।" देव ने दण्डवत किया एवं नागार्जुन का शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा : "अब से मैं आपके ही उपदेशों के अनुरूप आचरण करूंगा।"

दो. नागार्जुन की आत्महत्या की कथा

बोधिसत्व नागार्जुन औषधि शास्त्र में पारंगत थे। औषधियों का सेवन करते हुए उनकी आयु बढ़ती हुई सैकड़ों वर्ष की हो चुकी थी, तथापि उनका तेज क्षीण नहीं हुआ था और न ही उनके रंगरूप में कोई परिवर्तन आया था। राजा सातवाहन भी अनोखी औषधियों का सेवन करते थे, जिससे उसकी आयु भी सैकड़ों वर्ष की हो चुकी थी। उसके एक अल्पायु पुत्र ने अपनी माता से पूछा : "मैं राज्यारोहण कब कर सकता हूं ?" उसकी माताजी बोलीं : "वर्तमान स्थिति को देखते हुए ऐसा लगता है कि इसकी कोई निश्चित तिथि नहीं है। तुम्हारे पिताजी सैकड़ों वर्षों के हो चुके हैं, उनके पुत्रों-पौत्रों में से अनेक अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर चुके हैं। यह नागार्जुन के पुण्य प्रयास और औषधियों का प्रभाव है। यदि बोधिसत्व नागार्जुन का निर्वाण हो जाता है, तो तुम्हारे पिताजी भी शीघ्र ही स्वर्गवासी हो जाएंगे। बोधिसत्व नागार्जुन विवेकशील और दयार्द्र दाता हैं। उन्होंने मानों अपने

प्राण तक दूसरों को प्रदान किए हुए हैं। तुम्हें जा कर उनसे उनका सिर मांगने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि तुम्हारी मांग पूरी हुई, तो तुम अपनी अभिलाषा को मूर्त रूप देने में समर्थ हो सकोगे।" राजकुमार ने अपनी माता की आज्ञा आदरपूर्वक मान ली। वह नागार्जुन के निवास संघाराम गया। उसे देख कर प्रहरी हतप्रभ रह गया। राजकुमार सीधा अन्दर चला गया। उस समय बोधिसत्व नागार्जुन सूत्रों का पाठ करते हुए विहार कर रहे थे। सहसा उन्होंने राजकुमार को आता देखा। रुक कर उससे पूछा : "आज आपने इस संघाराम में सायंकाल में किस लिए पदार्पण किया? आप इतने घबराए हुए, डरे हुए, हड़बड़ाकर यहां क्यों आए हैं?" राजकुमार बोला : "अपनी पूज्य माताजी के साथ बातचीत में दान करने वाली विभूतियों की चर्चा करते हुए मैंने यह विचार व्यक्त किया कि प्राणों को प्यारा समझने की बात तो सूत्रों और सूक्तियों में बहुचर्चित है। किन्तु क्या कोई ऐसा होगा जो दूसरों के अनुरोध पर अपने जीवन का दान कर दे। मेरी माताजी ने कहा, 'नहीं। दस दिशाओं के सुगत एवं तीन जन्मों के तथागत ने अर्हत्व की प्राप्ति की प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने घोर तप से बोधि प्राप्त की और शीलों के पालन व सहिष्णुता के लिए साधना की। उन्होंने पशु के आहार के लिए अपना तन अर्पित किया, अथवा कपोतक की जान बचाने के लिए अपने शरीर का मांस काट डाला। राजा चन्द्रप्रभा ने एक ब्राह्मण को अपने सिर का दान किया था और राजा मैत्रीबल ने अपना रक्त भूखे यक्ष को पिलाया था। ऐसी बातों का विस्तार से वर्णन करना असंभव है। पूर्वगामी महापुरुषों के उदाहरण ही लें। किस काल में ऐसा व्यक्ति नहीं था?' इस काल में बोधिसत्व नागार्जुन, आप ही ऐसा उदात्त आदर्श रखते हैं। मुझे एक मनौती के लिए एक मानव के सिर की आवश्यकता है। मैंने इसके लिए गत कई वर्षों से प्रयास किया है, किन्तु किसी ने भी अपने सिर का दान करना नहीं चाहा। किसी को मार कर उसका सिर काटने का विचार भी मेरे मन में आया था। पर यह तो एक भीषण अपराध होता। एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या होती। इससे मेरी अपकीर्ति होती। बोधिसत्व, केवल आप ही ऐसे हैं जो सद्धर्म में दीक्षित हो बुद्धत्व की प्राप्ति की आशा लगाए हुए हैं। आप सभी प्राणियों पर दया करते हैं। आपका उपकार अपार है। आप अपने जीवन को तुच्छ समझ, उसे तैरता बादल मानते हैं। आप अपने शरीर का तिरस्कार कर उसे खड़ी हुई लकड़ी मानते हैं। मेरा अनुरोध आपकी इच्छा के विरुद्ध नहीं है। मैं आशा करता हूं कि आप मेरा अनुरोध अवश्य पूर्ण करेंगे!" इस पर नागार्जुन बोले : "जी हां, आपने ठीक ही कहा है। मैं बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए साधना करता हूं और बुद्ध की दानशीलता का अनुसरण करता हूं। मेरा शरीर शब्द और जल के बुद्‌बुद् जैसा है। वह चार जन्मों में प्रव्रजन करता है और छः गतियों में विचरण करता है। वह मेरे वर के अनुकूल है और अन्य की तृष्णा के विरुद्ध नहीं है। लेकिन राजकुमार, मैं यह पूछना चाहता हूं कि एक अनुचित बात है, जिसे लेकर क्या किया जाए? मेरे जीवन का आज अंत होने

को है। उसके पश्चात् आपके पिता की भी मृत्यु होगी। इस बात पर आप जरा सोचिए। उनका उद्धार कौन करेगा ?" यह कह कर नागार्जुन ने आत्महत्या के साधन की तलाश में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। अन्त में उन्होंने घास के सूखे पत्ते से अपनी गर्दन काट ली। मानों तलवार के वार से उनका सिर धड़ से अलग हो गया। यह देख कर राजकुमार घबरा कर भाग गया। प्रहरी ने विस्तृत रूप से सारी बात राजा को बताई। राजा को बड़ा दुःख हुआ और उनके प्राण-पखेरू भी उड़ गए।

तीन. भ्रामर गिरि

कोसल से तीन सौ ली से अधिक दूर दक्षिण-पश्चिम में भ्रामर गिरि स्थित था। गिरि उत्तुंग था और चट्टानें सीधी थीं। कोई घाटी नहीं थी। समूचा गिरि मानों एक सम्पूर्ण शैल ही था। राजा सातवाहन ने बोधिसत्व नागार्जुन की सेवा में इस गिरि पर से चट्टानें हटा कर एक संघाराम निर्मित करवाया था। पहले गिरि से दसेक ली दूर स्थल में एक सुरंग बनाई गई और फिर गिरि पर नीचे से ऊपर की ओर चट्टानें खोद कर हटाई गई थीं। संघाराम में बरामदे और ऊंचे-ऊंचे भवन व मण्डप स्थापित किए गए। इसमें कुल पांच तल्ले थे। प्रत्येक तल्ले पर चार प्रांगण थे और प्रत्येक प्रांगण में एक चैत्य था। चैत्यों में बुद्ध के शरीर जितनी ऊंची स्वर्ण प्रतिमाएं सुशोभित थीं। वे अनुपम शिल्प की परिचायक थीं। कुछ अन्य स्थानों में तो केवल स्वर्ण तथा रत्नों से ही सजावट की गई थी। गिरि की चोटी पर से एक झरना नीचे गिरता था और जल-धाराएं भवनों के चारों ओर प्रवाहित होती रहती थीं तथा पट्टियों की भांति बरामदों के बीच एक दूसरे को काटती दिखाई देती थीं। बड़ी-बड़ी खिड़कियां बाहर की ओर खुली थीं, जिनसे प्रकाश भवनों के अन्दर आता था। उस काल में राजा सातवाहन द्वारा इस संघाराम का निर्माण आरंभ करवाए जाने के बाद श्रमिकों की कमी और राजभंडार रिक्त हो जाने के कारण निर्माण-कार्य अधूरा रह गया था, जिससे राजा बहुत चिंतातुर हो गए थे। यह देख कर नागार्जुन ने उनसे पूछा : "महाराज, आप किसी चिंता में डूबे लगते हैं ?" राजा सातवाहन बोले : "मैंने बड़े यत्नपूर्वक पुण्य कर्म करना चाहा और यह भी चाहा कि यह पुण्य कर्म उस समय तक बना रहे जब बोधिसत्व मैत्रेय इस लोक में जन्म लेंगे। लेकिन कार्य पूरा ही नहीं हुआ और कोष की धन-संपदा समाप्त हो चुकी। इस पर मुझे असीमित दुःख हो रहा है। रात को नींद नहीं आती और सबेरे तक बैठा रहता हूं।" नागार्जुन ने कहा : "महाराज, चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। उदात्त पुण्य कर्म से अपार हित मिलता है। जब तक मनोरथ उदात्त होता है, तब तक कोई ऐसी चिंताजनक बात नहीं हो सकती जिसका समाधान न

किया जा सके। महाराज, आज आप प्रासाद वापस लौट जाएं और जी भर कर अपना मन बहलाएं। परसों सुबह भ्रमण पर निकलें और जी भर कर प्राकृतिक सुषमा देखने के उपरांत यहां आएं। फिर हम संघाराम के निर्माण-कार्य पर बात करेंगे।" राजा ने प्रसन्नतापूर्वक नागार्जुन का उपदेश ग्रहण किया एवं उनकी प्रदक्षिणा की। बोधिसत्व नागार्जुन ने एक अद्भुत औषधि शैलों पर छिड़की और देखते ही देखते वे शैल सोने के टुकड़ों में बदल गए। भ्रमण के समय राजा सातवाहन ने सोने को देखा, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे नागार्जुन के निवास पर गए और उनसे बोले: "आज भ्रमण के समय मैंने देवों के जादू से वशीभूत हो पर्वत में जहां-तहां सोने के ढेर देखे हैं।" नागार्जुन ने कहा: "नहीं, यह देवों का जादू नहीं। महाराज, आपकी निष्ठा से ही ये सोने के टुकड़े उत्पन्न हुए हैं। आपको तुरन्त इनका उपयोग करना चाहिए, ताकि उदात्त कार्य पूरा करने में सहायता मिल सके।" संघाराम के निर्माण में इन सोने के टुकड़ों का उपयोग किया गया। निर्माण पूरा हो जाने पर भी कुछ टुकड़े शेष रह गए। यह देख कर पांच तल्लों में से प्रत्येक तल्ले पर चार ऊंची-ऊंची बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमाएं स्थापित की गईं। इस पर भी बड़ी मात्रा में सोने के टुकड़े बचे रह गए। उन्हें राज-भंडार में सुरक्षित रख दिया गया। हजारों की संख्या में भिक्षुओं को संघाराम में वास करने तथा बौद्ध सूत्रों का पाठ करने के लिए बुलाया गया। बोधिसत्व नागार्जुन ने शाक्य बुद्ध द्वारा सुनाए गए सूत्रों और अन्य बुद्धों के सूत्रों को वर्गीकृत कर इस संघाराम में संगृहीत कर रखा। इसलिए सबसे ऊपर वाले तल्ले में केवल बुद्ध की प्रतिमाएं और सूत्र रखे गए। सबसे नीचे वाले तल्ले में गृहस्थों के रहने के प्रबंध किए गए एवं संपत्ति व विविध वस्तुएं रखी गईं। बीच के तीनों तल्लों में भिक्षुओं के शयनकक्ष थे। कहते हैं कि इस संघाराम का निर्माण पूरा हो जाने पर राजा सातवाहन ने गणना कर पाया कि श्रमिकों के लिए लवण के मूल्य के रूप में नौ कोटि स्वर्ण सिक्के व्यय किए गए थे। बाद में भिक्षु परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे और न्याय के लिए राजा के समक्ष उपस्थित हुए। इतने में गृहस्थों ने आपस में सलाह की: "भिक्षु लड़-झगड़ रहे हैं और उनकी बातें परस्पर विरुद्ध हैं। दुष्ट जन इस अवसर का अनुचित लाभ उठा कर इस संघाराम को अवश्य नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे!" उन्होंने अन्दर से द्वार बन्द कर भिक्षुओं को भगा दिया। इसके पश्चात् इस संघाराम में कोई भिक्षु नहीं रह गया। दूर से गिरि पर दृष्टि डालने पर ज्ञात नहीं हो सकता था कि आगमन-निर्गमन का रास्ता कहां है। कभी-कभी चिकित्सा में प्रवीण व्यक्तियों को रोग के उपचार के लिए संघाराम के भीतर बुलाया भी जाता था। किन्तु आते-जाते समय उनके चेहरों पर मुखौटे लगा दिए जाते थे जिससे वे रास्ता न पहचान सकें।

यहां से दक्षिण दिशा में घने वनों में नौ सौ ली से अधिक दूरी तय करने पर मैं आंध्र पहुंचा। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

आंध्र

आंध्र तीन हजार ली के घेरे में फैला था। उसकी राजधानी वेंगीपुर थी, जिसकी परिधि कोई बीस ली थी। यहां भूमि उपजाऊ और पैदावार प्रचुर थी। जलवायु उष्ण थी। स्थानीय निवासी उग्र और तीक्ष्ण स्वभाव के थे। वे मध्यदेश से भिन्न बोली बोलते थे, लेकिन लिपि प्राय: समान थी। राज्य में बीस से अधिक संघाराम थे जिनमें तीन हजार से अधिक भिक्षु थे। तीस से अधिक देव-मंदिर थे। विधर्मियों की संख्या अत्यधिक थी।

एक. आचार अर्हत संघाराम

वेंगीपुर के निकट एक विशाल संघाराम था। उसमें ऊंचे-ऊंचे भवन और चबूतरे थे जिन पर अनूठी नक्काशी के बढ़िया काम थे। बुद्ध-प्रतिमा के चेहरे पर तेज थिरकता था। वह शिल्प की एक अद्भुत कलाकृति थी। संघाराम के सामने कई सौ छि ऊंचा एक प्रस्तर स्तूप खड़ा था। यह संघाराम और स्तूप आचार अर्हत द्वारा बनवाये गए थे।

संघाराम से कुछ दूर दक्षिण-पश्चिम में एक अशोक स्तूप उस स्थल पर खड़ा था जहां तथागत ने उपदेश दिए थे, दिव्य शक्ति प्रदर्शित की थी और असंख्य लोगों को उपसंपन्न किया था।

दो. दिग्नाग एवं "हेतुविद्या भाष्य"

आचार अर्हत संघाराम से कोई बीस ली दूर दक्षिण-पश्चिम में एक अलग पर्वत खड़ा था। चोटी पर एक प्रस्तर स्तूप था। बोधिसत्व दिग्नाग ने "हेतुविद्या भाष्य" प्रतिपादित किया था। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बोधिसत्व दिग्नाग ने बौद्ध धर्म के प्रभाव में आ कर प्रव्रज्या ली और वे सद्धर्म में दीक्षित हुए। उन्हें प्रज्ञा की महत्वाकांक्षा थी और उनकी बुद्धि-शक्ति अद्भुत तथा प्रकांड थी। अपने युग के असहाय सांसारिक प्राणियों पर तरस खा कर उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार करने की ठान ली। उन्होंने सोचा था कि हेतुविद्या अत्यन्त गहन और गूढ़ है तथा दीक्षार्थियों के लिए बिना भगीरथ प्रयास किए सीख पाना असंभव है। अत: उन्होंने एकांत गुफा में ध्यानमग्न हो कर इस शास्त्र के गुणों की मीमांसा की और इसकी शैली एवं तात्पर्य की जांच-परख की। इसी समय पहाड़ों पर आकाशवाणी गूंज उठी और बादलों के रंग बदल गए। एक पर्वत-देवता ने दिग्नाग को सैकड़ों छि आकाश में ऊंचा उठा कर यह उद्घोष किया : "भगवान बुद्ध ने स्थितियों के अनुसार प्राणियों का

मार्गदर्शन किया था और गूढ़ार्थों का सारतत्व निकाल, सूक्ष्म शब्दार्थों का गहन अध्ययन कर, कृपा कर उन्हें हेतुविद्या प्रदान की थी। तथागत के परिनिर्वाण के बाद यह शास्त्र लुप्त हो गया था। आज ही बोधिसत्व दिग्नाग ने अपने सद्गुणों, प्रकांड बुद्धि तथा बुद्ध के पवित्र उपदेशों की गहरी समझ से हेतुविद्या का पुनः प्रचार किया है। तभी बोधिसत्व दिग्नाग ने प्रकाश फेंक कर अंधकारपूर्ण जगत को आलोकित कर दिया।" आंध्र के राजा के हृदय में बोधिसत्व के प्रति असीम आदर-भाव था। बोधिसत्व का प्रकाशमय रूप देख कर उसे संदेह हुआ कि वे वज्र-समाधि लगाए हुए हैं। उसने बोधिसत्व दिग्नाग से अर्हत्व प्राप्त करने का अनुरोध किया। दिग्नाग ने कहा : "मैं ध्यान लगा कर बौद्ध सूत्रों के गूढ़ अर्थों का भाष्य करना चाहता हूं और मुझे संबोधि प्राप्त करनी है, न कि अर्हत्व।" राजा ने कहा : "अर्हत्व प्राप्त करना सभी संतों की अभिलाषा होती है। त्रिलोकों की वासनाओं से विमुक्त होना और त्रिविद्याएं प्राप्त कर लेना एक महान कर्म है। मेरी कामना है कि आप शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त करें।" बोधिसत्व दिग्नाग राजा के अनुरोध पर प्रसन्न हो कर अर्हत्व प्राप्त करने को प्रस्तुत हो गए। यह संवाद पा कर बोधिसत्व मंजूश्री को दिग्नाग पर बड़ा खेद हुआ। उन्होंने चुटकी बजा कर दिग्नाग को चेताया : "मुझे खेद है कि आपने महत्वाकांक्षा छोड़ कर संकीर्ण एवं क्षुद्र लक्ष्य प्राप्त करना चाहा और अपने ही हित की धुन में समस्त प्राणियों का उद्धार करने का आदर्श छोड़ने को आप तैयार हो गए हैं। यदि आप किसी पुण्य कर्म से हित पाना चाहते हैं तो आपको बोधिसत्व मैत्रेय द्वारा रचित 'योगाचार्य भूमि शास्त्र' का व्यापक रूप से प्रचार कर परवर्तियों का मार्गदर्शन करना चाहिए। इससे अनेक लोगों का बड़ा हित होगा।" दिग्नाग ने बोधिसत्व मंजूश्री का उपदेश प्राप्त कर उनकी प्रदक्षिणा की। अब से दिग्नाग ने हेतुविद्या के गहन अध्ययन और प्रचार के कार्य में मन लगाया। इस शास्त्र के गूढ़ अर्थ समझने में शिक्षार्थियों की संभावित दुविधा दूर करने के लिए उन्होंने उसका सारांश निकाल कर "हेतुविद्या भाष्य" प्रतिपादित किया। यह काम पूरा करने के बाद वे "योगाचार्य भूमि शास्त्र" की व्याख्या देने में जुट गए। उनके सारे शिष्य सुप्रसिद्ध विद्वान बन गए।

यहां से दक्षिण की दिशा में वनों में एक हजार ली से अधिक दूरी तय करने के बाद मैं धान्यकटक पहुचा। (इसका एक और नाम था बृहद् आंध्र। यह दक्षिणापथ में स्थित था)।

धान्यकटक

धान्यकटक राज्य की परिधि छः हजार ली से अधिक थी और राजधानी का घेरा चालीस ली। भूमि उर्वर और फसलें खूब पैदा होती थीं। चारों ओर बंजर भूमि दिखाई पड़ती थी।

नगर व ग्राम कम थे। जलवायु थोड़ी उष्ण थी और लोगों का रंग सांवला था। वे उग्र और साहसी थे और कलाएं सीखने में प्रवृत्त रहते थे। शल्कों की भांति एक दूसरे से सटे हुए अनेक संघाराम दिखाई देते थे, लेकिन उनमें से अधिकांश जरा-जीर्ण हो गए थे। कोई बीस संघाराम अभी सुरक्षित स्थिति में थे। एक हजार से अधिक भिक्षु थे। उनमें से अधिकांश महासांघिक थे। प्रायः सौ देव-मंदिर थे और विधर्मियों की संख्या बहुत अधिक थी।

एक. पूर्व शिला संघाराम एवं अवर शिला संघाराम

राजधानी के पूर्व में पर्वत पर पूर्व शिला संघाराम और पश्चिम में पर्वत पर अवर शिला संघाराम स्थित थे। ये दोनों संघाराम इस राज्य के स्वर्गीय राजा ने भगवान बुद्ध के लिए बनवाए थे। नदी के साथ-साथ एक छोटा रास्ता इन दोनों संघारामों को जोड़े हुए था। चट्टानों को खोद कर ऊंचे-ऊंचे भवन खड़े किए गए थे और पर्वत के ढालों पर बरामदे बनाए गए थे। देव संघारामों की रक्षा करते थे और ऋषि-मुनि यहां आ कर विहार एवं विश्राम करते थे। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् एक हजार वर्षों तक प्रत्येक वर्ष लगभग एक हजार भिक्षु यहां वर्षावास करते थे। वर्षावास की समाप्ति पर वे सभी अर्हत्व प्राप्त करते थे और अपनी सिद्धियों के बल पर आकाश में अंतर्धान हो जाते थे। बाद में भिक्षु तथा अर्हत साथ मिल कर यहां रहते थे। गत सौ वर्षों में दो संघारामों में एक भी भिक्षु नहीं रह गया था। पर्वत-देवता भेड़िए या वानर का रूप धारण कर पथिकों को डरा कर भगा देता था। अतः ये दोनों संघाराम वीरान पड़ गए थे।

दो. भाविवेक की कथा

राजधानी के दक्षिण में थोड़ी दूरी पर एक विशाल चट्टान थी। यह एक ऐसा स्थान था जहां शास्त्राचार्य भाविवेक असुर प्रासाद में बोधिसत्व मैत्रेय की बुद्धत्व-प्राप्ति की प्रतीक्षा में बैठे थे। शास्त्राचार्य भाविवेक सच्चरित्र, उदार, सद्गुण-संपन्न और शीलवान थे। यद्यपि प्रकट में वे सांख्य का वस्त्र पहने रहते थे, पर वास्तव में वे नागार्जुन के मतों का प्रचार करते थे। जब यह सुनने में आया कि मगध में बोधिसत्व धर्मपाल अपने हजारों शिष्यों के साथ सद्धर्म का प्रचार कर रहे हैं, तो भाविवेक ने उनके साथ सद्धर्म पर विचारार्थ, यष्टि लिए मगध की ओर प्रस्थान किया। पाटलिपुत्र पहुंचने के बाद उन्हें पता चला कि बोधिसत्व धर्मपाल बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे थे। शास्त्राचार्य ने अपने एक शिष्य से कहा :

"तुम बोधि-वृक्ष के नीचे बोधिसत्व धर्मपाल के यहां जाओ और मेरा यह संदेश उन तक पहुंचा दो, 'बोधिसत्व, आप भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करते हैं और पथभ्रष्टों का मार्गदर्शन करते हैं। मैं लम्बे समय से आपके सद्गुणों का प्रशंसक रहा हूं; किन्तु मेरी प्रज्ञा पूरी न होने के कारण मैं आपके दर्शन नहीं कर सका। मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं बोधि-वृक्ष के दर्शन के लिए व्यर्थ ही नहीं आऊंगा। मैं उसके दर्शन के लिए तभी आऊंगा जबकि मुझे शास्ता देवमनुष्याणाम की उपाधि मिलेगी।'" बोधिसत्व धर्मपाल ने शास्त्राचार्य के शिष्य से कहा: "मनुष्य का जीवन एक स्वप्न जैसा है और प्राण तैरते बादलों के समान अस्थिर हैं। समय अल्प होने के कारण मुझे परिश्रमपूर्वक कार्य करना चाहिए। मेरे पास विचार-विमर्श का अवकाश नहीं है।" संदेशवाहक आते-जाते रहे परन्तु दोनों की भेंट नहीं हो सकी। शास्त्राचार्य भाविवेक अपने देश वापस लौट गए। चित्त स्थिर होने पर उन्होंने विचारा: "केवल बोधिसत्व मैत्रेय बुद्धत्व प्राप्त हो जाने पर मेरी शंकाएं दूर कर सकते हैं।" वे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति के सामने बैठे "महाकारुणिचित्तधारणी" का पाठ करने लगे। वे तीन वर्षों तक उपवास करते रहे। तब बोधिसत्व अवलोकितेश्वर प्रकट हुए। उन्होंने शास्त्राचार्य से पूछा: "तुम्हारा क्या मनोरथ है?" शास्त्राचार्य ने उत्तर दिया: "बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन के लिए मैं इसी लोक में जीवित रहना चाहता हूं।" बोधिसत्व अवलोकितेश्वर ने कहा: "मानव जीवन दुर्लभ और क्षीण है और इहलोक भ्रम तथा तैरते बादलों जैसा क्षणभंगुर है। तुम्हें यत्नपूर्वक पुण्य कर्म करना चाहिए। इस प्रकार तुषित लोक में तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। वहां तुम बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन कर सकोगे और तुम्हारी आकांक्षा शीघ्र ही पूरी हो जाएगी।" शास्त्राचार्य बोले: "मेरा मनोरथ नहीं बदलेगा और वह डिगाया नहीं जा सकता।" बोधिसत्व अवलोकितेश्वर ने कहा: "यदि ऐसा है तो तुम धान्यकटक की राजधानी के दक्षिण में चट्टान पर वज्रपाणि के पास जाओ और श्रद्धा के साथ 'वज्रपाणि धारणी' का पाठ करो। तब तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जाएगा।" शास्त्राचार्य धान्यकटक गए और "वज्रपाणि धारणी" का पाठ करने लगे। तीन वर्षों के उपरांत वज्रपाणि ने प्रकट हो कर उनसे कहा: "तुम इतना कठोर श्रम क्यों कर रहे हो? तुम्हारा मनोरथ क्या है?" शास्त्राचार्य ने उत्तर दिया: "मैं मनुष्य लोक में रह कर ही बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन करना चाहता हूं। बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के निर्देश पर मैं यहां आया हूं। देवता, क्या आप बोधिसत्व मैत्रेय से मिलने का मेरा मनोरथ पूरा करेंगे?" वज्रपाणि ने उन्हें भेद बताते हुए कहा: "इस चट्टान में असुर प्रासाद है। मेरे आदेशानुसार प्रार्थना करो तो चट्टान अपने आप खुल जाएगी। तुम तुरंत उसमें प्रवेश कर लेना और बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन की प्रतीक्षा करना।" शास्त्राचार्य ने कहा: "अंधेरे एकांत में मुझे कैसे ज्ञात होगा कि बुद्ध पधारे हैं?" वज्रपाणि ने कहा: "जब मैत्रेय पधारेंगे तब मैं आ कर तुम्हें बता दूंगा।" आदेश पा कर शास्त्राचार्य एकाग्र चित्त से पूजा-पाठ

करने लगे और तीन वर्ष तक ऐसा करते रहे। आरंभ में उन्होंने यह सोचा तक नहीं था कि तंत्र-मंत्र जपते हुए चट्टान पर सरसों दे मारें तो चट्टान एकाएक एक गुहा में बदल जाएगी। लाखों लोग वहां यह विलक्षण दृश्य देखने आए और घर लौटना भी भूल गए। गुहा के द्वार पर खड़े शास्त्राचार्य ने भीड़ से कहा : "बोधिसत्व मैत्रेय के दर्शन के लिए मैं वर्षों से प्रार्थना करता रहा हूं। देवता के वरदान से मेरा यह मनोरथ आज पूरा हो गया है। आप लोग भी बुद्ध के दर्शन के लिए अन्दर प्रवेश करें।" यह सुन कर सभी लोग भयभीत हो उठे। किसी को भी देहली पर पांव रखने का साहस नहीं हुआ। उनको भय था कि वह किसी विषैले सांप की मांद न हो। उसमें घुसने पर उन्हें अपने प्राण गंवाने पड़ जाएंगे। शास्त्राचार्य ने अपनी बात फिर दुहराई। अन्त में मात्र छः व्यक्ति उनके साथ द्वार के अन्दर प्रविष्ट हुए। शास्त्राचार्य ने मुड़ कर दर्शकों से विदा ले, स्थिर मन से गुहा के अन्दर प्रवेश किया। इसके अनंतर गुहा का द्वार पुनः बन्द हो गया। बाहर खड़े लोगों को अभी-अभी अपनी कही हुई अनुचित बातों पर पछतावा हुआ।

यहां से दक्षिण-पश्चिम की दिशा में एक हजार ली चलने के उपरांत मैं चोल पहुंचा। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

चोल

चोल का घेरा दो हजार चार-पांच सौ ली था। राजधानी की परिधि लगभग दस ली थी। यहां भूमि वीरान थी, घने जंगल और दलदल फैले थे। जनसंख्या कम थी। डाकू खुले तौर पर लूटपाट मचाते रहते थे। जलवायु उष्ण थी और लोगों का आचरण धूर्तता-पूर्ण था। लोग स्वभाव से क्रूर और उग्र थे। वे तीर्थिक थे। संघाराम ढह कर खण्डहर हो गए थे। केवल थोड़े से भिक्षु थे। दसियों देव-मंदिर थे और दिगंबरों की संख्या अधिक थी।

राजधानी से कुछ दूर दक्षिण-पूर्व में एक स्तूप था जो सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। तथागत ने यहां दिव्य शक्ति का प्रदर्शन कर सद्धर्म के प्रवचन दिए, तीर्थिकों को वशीभूत किया और देवों तथा मनुष्यों को सद्धर्म में दीक्षित किया था।

एक. देव की कथा

राजधानी के पश्चिम में थोड़ी दूरी पर एक पुराना सघाराम था, जहां बोधिसत्व देव और अर्हत के मध्य शास्त्रार्थ हुआ था। जब बोधिसत्व देव ने सुना कि इस संघाराम में

अर्हंत उत्तर रहते हैं जिन्हें षड्भिज्ञा और आठ विमोक्ष प्राप्त है, तो वे उनसे मिलने और उनके आचार का निरीक्षण करने सात समुद्र पार कर आए। उन्होंने इस संघाराम में आ कर अर्हंत के यहां डेरा डालना चाहा। अर्हंत अल्प में ही संतुष्ट रहते थे। उनके कमरे में मात्र एक पलंग था। देव के लिए उनके पास ऐसी कोई वस्तु न थी जो चटाई का काम दे सके। अतः उन्होंने झड़े हुए पत्तों को इकट्ठा कर देव से उन पर बैठने को कहा। अर्हंत ने समाधि लगाई। आधी रात में वे समाधि से उठे। तब देव ने अपना संशय दूर करने के लिए उनसे प्रश्न किये। अर्हंत उनके प्रश्नों का उत्तर देते रहे और देव फिर नए प्रश्न प्रस्तुत करते रहे। प्रश्नों का सातवां दौर समाप्त हुआ, तब अर्हंत चुप्पी साधे बैठे रहे। वे बोधिसत्व मैत्रेय से सहायता लेने के लिए गुप्त रूप से दिव्य शक्ति के सहारे तुषित लोक पहुंचे। मैत्रेय ने उन्हें समझाते हुए कहा : "वह देव कल्पों से तप करते आए हैं और भद्र कल्प में वे बुद्ध बनेंगे। आपको इसका ज्ञान नहीं है। इसलिए आपको उनका सम्मान करना चाहिए।" क्षण भर में ही अर्हंत अपने आसन पर लौट आए। उन्होंने गूढ़ तत्वों पर प्रकाश डाला और सूक्ष्म अर्थों का विश्लेषण किया जिन्हें सुन कर देव ने उनसे कहा : "यह व्याख्या तो बोधिसत्व मैत्रेय ने अपनी पवित्र बुद्धि से की है। आप जैसा सुर इस पर गहन चिंतन करने में कैसे समर्थ हो सकता है।" अर्हंत ने कहा : "जी हां, आपने सही कहा।" उन्होंने आसन से उठ कर सविनय क्षमा मांगी और उनके प्रति गहरा आदर-भाव प्रकट किया।

यहां से दक्षिण में घने जंगलों में एक हजार पांच सौ ली चलने के बाद द्रविड़ पहुंचा जाता था। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

द्रविड़

द्रविड़ की परिधि छः हजार ली थी। राजधानी कांचीपुर का घेरा तीस ली से अधिक था। भूमि उर्वर और आर्द्र थी। फसलों के लहलहाते खेत थे। फूल-फल बहुतायत से मिलते थे। रत्नों एवं मणियों का उत्पादन होता था। जलवायु उष्ण थी। स्थानीय लोग निर्भीक, साहसी और निष्ठावान थे। वे ज्ञानियों का सम्मान करते थे। उनकी भाषा और लिपि मध्यदेश से थोड़ी भिन्न थी। सौ से अधिक संघाराम थे तथा प्रायः दस हजार भिक्षु थे। वे सभी स्थविरवादी थे। देव-मंदिरों की संख्या अस्सी से अधिक थी। उनमें अधिकांश दिगंबर थे। अपने जीवन काल में तथागत ने अनेक बार इस राज्य का भ्रमण किया था और धर्मोपदेश दे कर लोगों को उपसंपन्न किया था। इसलिए सम्राट अशोक ने इस राज्य के तीर्थ स्थानों में स्तूप बनवाए थे।

एक. धर्मपाल की उपकथा

कांचीपुर बोधिसत्व धर्मपाल का जन्मस्थान था। धर्मपाल द्रविड़ के एक मंत्री के ज्येष्ठ पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही वे उदार और शीलवान थे। बड़े होने पर वे महत्वाकांक्षी बन गए। जब वे बीस साल के हुए तब राजा ने अपनी पुत्री के साथ उनका विवाह कराया। विवाह की रात वे बहुत उद्विग्न और दु:खी हुए। बुद्ध-प्रतिमा के सामने उन्होंने भक्तिपूर्वक वर मांगा। उनकी सदिच्छा से प्रभावित हो कर देवता उन्हें उठा कर कांचीपुर से सैकड़ों ली दूर एक पहाड़ पर संघाराम में ले गए और उन्हें भवन में बैठा कर चले गए। इतने में एक भिक्षु ने भवन का द्वार खोल कर उन्हें बैठे देखा। उसे शंका हुई कि कहीं वह युवक चोर न हो। उनसे पूछताछ हुई। धर्मपाल ने अपनी इच्छा प्रकट कर प्रव्रज्या दिए जाने का अनुरोध किया। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ और उन्होंने उनका अनुरोध स्वीकार किया। राजा के आदेशानुसार निकट और दूर के स्थानों में उनकी तलाश की गई। अंत में पता चला कि देवता उन्हें दूरस्थ स्थान में ले गए थे। यह सुन कर राजा आश्चर्यचकित हुए और साथ ही धर्मपाल का पहले से अधिक सम्मान करने लगे। प्रव्रज्या-प्राप्ति के उपरांत बोधिसत्व धर्मपाल निष्ठापूर्वक अध्ययन करते रहे। उनके आचरण और प्रसिद्धि पिछले अध्यायों में उल्लिखित हो चुके हैं।

कांचीपुर से थोड़ी दूर दक्षिण में एक बृहद् संघाराम था। इस में द्रविड़ के ज्ञानी एकत्र रहते थे। यहां सौ से अधिक छि ऊंचा एक स्तूप खड़ा था जो सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। तथागत ने यहां धर्मोपदेश दिए, तीर्थिकों को वशीभूत किया और मनुष्य एवं देवताओं को उपसंपन्न किया था। स्तूप के पास चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

यहां से दक्षिण की दिशा में तीन हजार ली चलने के बाद मलकूट आया। (यह राज्य दक्षिणापथ में अवस्थित था)।

मलकूट

मलकूट का घेरा पांच हजार ली था। राजधानी की परिधि कोई चालीस ली थी। क्षार की मात्रा अधिक होने के कारण भूमि में बहुत कम फसलें उत्पन्न होती थीं। द्वीपों में उत्पन्न मोतियों और रत्नों का यहां भंडार था। जलवायु बहुत उष्ण थी और लोग सांवले रंग के थे। वे स्वभाव से कठोर और उग्र थे तथा बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी विश्वास रखते थे। वे विद्याओं की उपेक्षा करते थे और व्यापार में लाभ के पीछे पड़े रहते थे।

अधिकांश संघारामों के खण्डहर मात्र रह गए थे। कुछ संघाराम सुरक्षित स्थिति में थे। भिक्षु भी इने-गिने थे। सैकड़ों देव-मंदिर थे। विधर्मियों की संख्या अधिक थी और उनमें अधिकांश दिगंबर थे।

राजधानी के पूर्व में थोड़ी दूरी पर एक प्राचीन संघाराम था। उसका प्रांगण उजड़ गया था और उसके अवशिष्ट मात्र रह गए थे। यह संघाराम सम्राट अशोक के छोटे भाई महेंद्र द्वारा बनवाया गया था। संघाराम के पूर्व में एक स्तूप था जिसका ऊंचा आधार भूमि के नीचे धंस गया था। किन्तु स्तूप का ढूह अभी भी उलटे रखे हुए पात्र के रूप में खड़ा था। यह स्तूप सम्राट अशोक ने बनवाया था। तथागत ने यहां धर्मोपदेश दिए थे और दिव्य शक्ति का प्रदर्शन कर असंख्य लोगों को उपसंपन्न किया था। उनकी स्मृति में यह स्तूप खड़ा किया गया था। कालांतर में स्तूप की चमत्कारी शक्ति बढ़ती गई। यहां प्रार्थना करने पर भक्तों का मनोरथ पूरा हो जाता था।

एक. मलय पर्वत

मलकूट के दक्षिण में समुद्रतट पर मलय पर्वत खड़ा था। गगनचुंबी चोटियां और सीधी-खड़ी चट्टानें तथा गहरी घाटियों में अनेक झरने थे। घाटियों में चंदन और चन्दनेव आदि के पेड़ उगते थे। चन्दनेव के पेड़ देखने में चंदन से लगते हैं। दोनों में भेद करना कठिन है। ग्रीष्म के मध्य में यदि ऊंचे स्थान से दूर उगे इन वृक्षों पर दृष्टि डाली जाए तो पता चलेगा कि जिस पेड़ पर सर्प लिपटे हुए दिखाई पड़ते हैं, वे चन्दनेव के ही पेड़ हैं। चन्दनेव शीतल है, इसलिए सर्प उस पर लिपटना पसंद करता है। फिर चन्दनेव के पेड़ पर तीर मार कर चिह्न अंकित किया जाता है। जाड़ों में सर्पों की तंद्रावस्था में ही पेड़ को काटा जाता है। कर्पूर वृक्ष का तना सरु से मिलता-जुलता है, लेकिन उसके पत्ते, फूल व फल भी सरु से भिन्न हैं। कटाई के बाद आर्द्र होने के कारण कर्पूर की लकड़ी से सुगंध नहीं फैलती। जब वह सूख जाती है, तो लकड़ी की तंतु-रचना के अनुसार उसे चीरा जाता है और उसमें अभ्रक के आकार वाला और हिम जैसे रंग का रस निकलता है। यह सर्पसुगंधिका कहलाता है।

दो. पोतलक पर्वत

मलय पर्वत के पूर्व में पोतलक पर्वत स्थित था। पगडंडियां खतरनाक और चट्टानें तिरछी हो कर बाहर की ओर बढ़ी हुई थीं। चोटी पर एक जल कुंड था। कुंड का पानी शीशे

की भांति स्वच्छ था। पानी नदी का रूप ले कर पर्वत के चारों ओर बीस चक्कर लगाने के बाद बहता हुआ दक्षिणी समुद्र में जा गिरता था। कुंड के पास एक शैलगृह था जहां बोधिसत्व अवलोकितेश्वर प्राय: आते-जाते थे और विहार एवं वास करते थे। भक्तजन प्राणों को संकट में डाल कर भी नदियों व पहाड़ों को पार कर बोधिसत्व के दर्शन करने आते थे। किन्तु बहुत कम भक्त इस दुर्गम तीर्थ-स्थल तक पहुंच सकते थे। पर्वत की तलहटी में रहने वाले बड़ी श्रद्धा के साथ बोधिसत्व के दर्शन की प्रार्थना करते थे, तो वे कभी महेश्वर के रूप में तो कभी पाशुपत के रूप में प्रकट होते थे और प्रार्थियों को प्रबुद्ध एवं संतुष्ट कर उनका मनोरथ पूरा करते थे।

पोतलक पर्वत के उत्तर-पूर्व में समुद्र तट पर एक नगर था जिससे सिंहल जाया जा सकता है। स्थानीय निवासियों का कहना है कि यहां से समुद्री जलमार्ग पर दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग तीन हजार ली तय करने के बाद सिंहल पहुंचा जा सकता है।

खण्ड ग्यारह

सिंहल

सिंहल सात हजार से अधिक ली का भू-भाग घेर लेता है। राजधानी की परिधि कोई चालीस ली थी। भूमि उर्वर, जलवायु ग्रीष्म की भांति उष्ण थी। समय पर फसलों की जुताई-बुवाई होती थी और पेड़-पौधों तथा पुष्पों-फलों की प्रचुरता थी। आबादी घनी थी और जीवन बहुत संपन्न था। स्थानीय लोग नाटे और काले रंग के होते थे। वे स्वभाव से साहसी और कठोर थे, अध्ययनशील थे और पुण्य कर्मों के प्रति आस्था रखते थे। पुण्य-फल की प्राप्ति के लिए वे परोपकार करते रहते थे।

एक. रत्न द्वीप की दंतकथा

सिंहल आरंभ से ही एक रत्न द्वीप है और देवों का आवास रहा है। कालांतर में दक्षिणापथ के एक राजा की पुत्री की पड़ोसी राजा के साथ सगाई हुई। विवाह के दिन बारात निकली। रास्ते में ही एक सिंह बारात पर टूट पड़ा। भय से सभी सेवक-सेविकाएं भाग निकले। राजकुमारी रथ में अकेली रह गई। उसने मन ही मन सोचा कि अब वह नहीं बचेगी। किन्तु सिंह ने उसे पीठ पर लाद घने जंगलों में ले जा कर उसे एक निर्जन घाटी में बसा दिया। सिंह राजा हिरणों का शिकार कर और फल तोड़ कर उसकी सेवा तथा भरण-पोषण करता रहा। कुछ वर्षों के अनंतर राजकुमारी ने एक पुत्र तथा एक पुत्री को जन्म दिया। दोनों देखने में मनुष्य सरीखे लगते थे, परन्तु उनका स्वभाव तथा रक्त तो पशु का था। बड़े होने पर लड़का असाधारण बलिष्ठ बन गया। वह एक ही वार में खूंख्वार जानवरों को भी मार डालता था। बीस वर्ष की आयु में उसे मनुष्य की बुद्धि प्राप्त हुई। उसने अपनी माता से पूछा : "मैं क्या हूं ? मेरे पिता पशु हैं और माता मानवी। आप दोनों एक ही जाति के नहीं हैं, तो फिर पति-पत्नी कैसे बने ?" तब माता ने सारी कहानी बेटे को सुनाई। बेटा बोला : "मनुष्य और पशु भिन्न जातियों के हैं। हमें शीघ्र ही यहां से चले जाना चाहिए।" माता ने कहा : "बेटा, पहले मैंने भी भाग जाने की कोशिश की थी, लेकिन मैं

सफल नहीं हुई।" फिर बेटा पहाड़ों तथा घाटियों में अपने पिता के ठौर-ठिकाने का पता लगाने के लिए उनका पीछा करने लगा ताकि अवसर पा कर भाग निकला जा सके। एक दिन जब पिता दूर चला गया तो बेटा अपनी माता व बहन को उठा कर पर्वत से नीचे उतर कर एक बस्ती में जा पहुंचा। माता ने बेटे-बेटी को चेतावनी देते हुए कहा: "हम तीनों को अपने रहस्य का उद्घाटन नहीं करना चाहिए, और न ही औरों के सामने अपना इतिहास बताना चाहिए, अन्यथा लोग हमारी उपेक्षा करेंगे।" वे अपने राज्य में लौट आए। लेकिन अब इस राज्य पर उनके वंश का शासन नहीं रहा था। फिर उनके वंश का भी अन्त हो गया। उन्हें गांव में शरण लेनी पड़ी। ग्रामवासियों ने उनसे पूछा: "आप किस राज्य के रहने वाले हैं?" माता का उत्तर था कि "मैं इसी राज्य की निवासी थी, परदेश में भटकने के बाद अब संतान के साथ जन्मभूमि लौट आई हूं।" सबों को उन पर दया आई और उन्होंने उनको जीवन की आवश्यक वस्तुएं प्रदान कीं।

सिंह राजा जब अपनी घाटी में लौटा, तो उसने पाया कि वे सब भाग निकले हैं। बीते जीवन और सगी संतान की स्मृति में वह अत्यन्त दु:खी हुआ। क्रोधाग्नि में जल कर वह घाटी से निकल गांवों में चक्कर मारता रहा, दहाड़ते हुए मनुष्यों व पशुओं पर झपटता रहा और प्राणियों की निर्मम हत्या करता रहा। जो भी गांव से बाहर निकलता, वह उसका शिकार बन जाता था। उसके पंजों से अपनी जान बचाने के लिए ग्रामवासियों को ढोल व शंख बजाते हुए धनुष-बाण तथा बल्लम से लैस हो कर झुंड के झुंड में घर से बाहर निकलना पड़ता था। राजा को अपने शासन की स्थिरता पर संशय हुआ, उसने सिंह को पकड़ने के लिए शिकारी भेजे। खुद राजा भी दस हजार हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल सैनिक ले कर निकला। वे सब जंगलों, झीलों तथा नदियों के किनारों पर एवं पहाड़ों में छिप गए। किन्तु बादल के गर्जन की भांति सिंह की भयंकर दहाड़ से पूरी सेना कांप गई और भाग खड़ी हुई। जब सिंह न पकड़ा जा सका, तब राजा को पुन: किसी ऐसे वीर को ढूंढ़ने का आदेश देना पड़ा कि जो कोई राज्य की इस घोर विपत्ति को दूर करने के लिए सिंह को पकड़ लेगा, उसे भारी इनाम दिया जाएगा। सिंह राजा के पुत्र ने जब राजा का यह आदेश सुना, तो उसने अपनी माता से कहा: "हम भूखों मर रहे हैं। बेहतर है कि मैं सेना में भर्ती हो जाऊं। यदि पुरस्कार मिला तो मैं माता और बहन का पालन-पोषण तो कर सकूंगा।" इस पर माता ने आपत्ति की: "ऐसी बातें तुम्हें शोभा नहीं देतीं। वह पशु है, तो भी तुम्हारा पिता ही है। यह धर्म के विरुद्ध है कि जीवन की कठिनाइयों से छुटकारा पाने के लिए तुम अपने ही पिता की हत्या करना चाहते हो?" बेटे ने कहा: "मनुष्य और पशु एक जाति के नहीं हैं। दोनों में कौन सा धर्म-संबंध है? अब हम उससे अलग रहते हैं। फिर अनुचित हत्या का प्रश्न ही नहीं उठता। हमें उससे क्या लेना-देना है?" बेटा एक तेज धारवाली छुरी छिपाए सेना में भर्ती होने के लिए चला गया।

हज़ारों सैनिक और घुड़सवार मेघों और घने कोहरे की भांति जंगल को चारों ओर से घेरे हुए थे, किन्तु किसी को सिंह के पास फटकने का साहस नहीं हो रहा था। इस समय बेटा आगे बढ़ा और सिंह उसके वशीभूत हो गया। उसके हृदय में बेटे का प्यार पाने की उमंग भरी थी। उसकी सारी क्रोधाग्नि ठंडी हो गई। बेटे ने छुरी निकाल कर सिंह के पेट में घोंप दी। ममता से परिपूर्ण सिंह को उसे मारने की तनिक भी इच्छा नहीं हुई। वह बेटे की अंधाधुंध मार सहता रहा। जब उसका पेट पूरी तरह से चिर गया, तब वह बड़ी दु:खद मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा को यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा : "यह आदमी कौन है? यह कैसी अजीब बात है?" रहस्य जानने के उद्देश्य से राजा ने बेटे को फुसलाया-धमकाया भी। बेटे को अपनी आपबीती विस्तार से बतानी पड़ी। राजा ने कहा : "यह कैसा अन्याय है? जब तुम अपने पिता की हत्या करने में भी नहीं झिझके, तो परायों के साथ क्या करोगे? आखिर तुम पशु की संतान जो ठहरे। तुम्हें वश में करना कठिन है। तुम्हारा क्रूरतापूर्ण स्वभाव कभी भी भड़क उठ सकता है। तुमने जन हित के लिए एक महान विपत्ति का अन्त कर बड़ा योगदान किया है, किन्तु स्वयं अपने पिता की हत्या कर तुमने अपनी क्रूरता का परिचय भी दे दिया है। तुम्हारे योगदान के लिए मैं तुम्हें भारी पुरस्कार दूंगा। परंतु नीति शास्त्र के विरुद्ध तुम्हारे कुकर्म के लिए तुम्हें कहीं दूर निष्कासित कर दूंगा। इस तरह जहां राज्य के नियम को क्षति नहीं पहुंचेगी, वहीं राजा अपनी बात के धनी भी सिद्ध होंगे।" इसके पश्चात दो बड़ी-बड़ी नौकाएं तैयार की गईं जिनमें प्रचुर मात्रा में अनाज और अन्य खाद्यपदार्थ रखे गए। पुरस्कार के नाम पर उसकी माता राज्य में ही रख ली गई और उसके जीवन-निर्वाह की व्यवस्था कर दी गई। बेटा और बेटी एक-एक नौका पर सवार हो कर समुद्र में भाग्य के भरोसे छोड़ दिए गए। बेटा अंत में रत्न द्वीप जा पहुंचा। वहां उसे रत्न-मणियों के प्रचुर भंडार का पता चला। वह उसी द्वीप पर बस गया। बाद में जो कोई व्यापारी रत्न आदि ढूंढ़ने इस द्वीप पर पहुंचते, वह उन्हें मार डालता और उनकी संतान अपने पास रख लेता। इस प्रकार उसकी वंशवृद्धि होने लगी। कालांतर में पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ती गई। फिर वह राजा बन कर गद्दी पर बैठा। मंत्रियों को नियुक्त किया गया, ऊंच-नीच की व्यवस्था की गई। राजधानी निर्मित हुई, गांव और नगर स्थापित हुए और इस रत्न द्वीप को उसने अपना राज्य बना लिया। क्योंकि उनके पूर्वज ने सिंह मारा था, इसलिए इस नए राज्य का नाम सिंहल रखा गया।

पुत्री की नौका समुद्री तरंगों के साथ बहती हुई फारस के पश्चिमी भाग में जा पहुंची। वहां वह देवों से मोहित हुई और उसने अनेक कन्याओं को जन्म दिया। यह स्थान आज का पश्चिमी नारी राज्य है। सिंहल के निवासी नाटे होते हैं और उनका रंग काला, चेहरा चपटा और माथा चौड़ा है। वे स्वभाव से साहसी, कठोर और क्रूर हैं। यह उनके पशु के वंशज होने के कारण हुआ है। अधिकतर निवासी पराक्रमी और बलिष्ठ हैं। यह सिंहल

की उत्पत्ति की एक कथा है।

दो. सिंहल की कथा

बौद्ध सूत्रों के अनुसार इसकी एक अन्य कथा भी है।

अतीत काल में रत्न द्वीप के विशाल लोह-नगर में पांच सौ राक्षसियां वास करती थीं। नगर के प्राचीर पर शुभाशुभ के संकेत देने के लिए वे दो रेशमी कपड़े फहराती थीं। शुभ बात होने पर शुभसूचक रेशमी कपड़ा लहराया जाता था और अशुभ घटना होने पर अशुभसूचक रेशमी कपड़ा लहराया जाता था। जब व्यापारी रत्न द्वीप पर आते थे, तो राक्षसियां सुंदरी के रूप में बदल कर मधुर संगीत के साथ फूल उठाए व्यापारियों का अभिवादन करती थीं और उन्हें फुसला कर लोह-नगर में ले जाती थीं। वे भोज का आयोजन करती थीं। भोज समाप्त होने के बाद राक्षसियां व्यापारियों को लोहे की कोठरियों में बन्द कर देती थीं और धीरे-धीरे उन्हें खा लेती थीं।

उस समय जम्बूद्वीप में सिंह नाम का एक बड़ा व्यापारी रहता था। उसके पुत्र का नाम सिंहल था। पिता के वृद्ध होने के बाद सिंहल घर का काम-काज संभालने लगा। वह पांच सौ व्यापारियों के साथ रत्न-मोती आदि एकत्रित करने समुद्र में गया और वायु की तरंगों ने उन्हें रत्न द्वीप तक पहुंचा दिया। शुभसूचक रेशमी कपड़ा लहराता देख कर राक्षसियां मधुर संगीत बजातीं, फूल उठाए उनके स्वागत में पंक्तियों में खड़ी रहीं ताकि उन्हें फुसला कर लोह-नगर में ले जाया जा सके। सिंहल और राक्षसियों की रानी का मिलन हुआ और अन्य व्यापारियों तथा राक्षसियों का भी अलग-अलग संयोग हुआ। एक वर्ष पश्चात् उनसे एक-एक बच्चे का जन्म हुआ। धीरे-धीरे राक्षसियों में इन व्यापारियों से विरक्ति उत्पन्न हुई। उन्होंने व्यापारियों को लोहे की कोठरियों में बन्द कर नए व्यापारियों के आगमन की प्रतीक्षा करनी चाही। उसी रात सिंहल ने एक दुःस्वप्न देखा और उसे ज्ञात हुआ कि कोई अमंगल होने वाला है। उसने चोरी-छिपे स्वदेश लौटने का मार्ग ढूंढ़ने की चेष्टा की। लोहे की कोठरियों से गुजरते समय उसे अन्दर से एक हृदयविदारक क्रंदन सुनाई दिया। एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़ कर उसने पूछा: "तुम लोगों को कौन पकड़ लाया है? तुम यहां दुःख से क्यों मरे जा रहे हो?" उत्तर में किसी ने कहा: "क्या आप नहीं जानते कि इस नगर में सभी स्त्रियां राक्षसी हैं। वे हमें भोग-विलास का लालच दे कर नगर में ले आई थीं। आपके आगमन से पहले ही उन्होंने हमें यहां बन्द कर दिया है और अब वे हमें चुन-चुन कर खाने लग गई हैं। अब तक हमारे अधिकांश साथी उनका ग्रास बन चुके हैं। आप लोगों का भी यही दुःखद अन्त होगा।" सिंहल ने पूछा: "इस

आपत्ति से बचने का कोई उपाय है ?" उत्तर में उसे सुनाई दिया : "हमने सुना है कि समुद्र तट पर एक आकाशीय अश्व है। श्रद्धापूर्वक उसकी प्रार्थना करने पर वह आप लोगों को इस संकट से छुटकारा दिलाने में मदद देगा।" यह सुन कर सिंहल ने राक्षसियों की दृष्टि बचा कर अपने साथ आए व्यापारियों को सब कह सुनाया और उन्होंने समुद्र तट पर जा कर श्रद्धापूर्वक अपने बचाव की प्रार्थना की। इतने में आकाशीय अश्व उतर कर उनसे बोला : "तुम लोग मेरे अयालों को कस कर पकड़ लो। पीछे मुड़ कर मत देखना। मैं इसी प्रकार समुद्र पार कर तुम्हें विपत्ति से मुक्त करा, तुम्हें जम्बूद्वीप पर स्वदेश वापस पहुंचाने में समर्थ हो सकता हूं।" सभी व्यापारियों ने आकाशीय अश्व का आदेश मान लिया और कस कर उसके अयालों को पकड़ लिया। आकाशीय अश्व उछल कर आकाश में मेघों से बने मार्ग पर दौड़ने लगा और समुद्र तट पार करने ही वाला था कि उसी समय राक्षसियों को पता चला कि उनके शिकार भाग गए हैं। वे एक दूसरे से पूछने लगीं, पर किसी को पता नहीं था कि वे कैसे भाग सके। वे अपना-अपना बच्चा उठाए आकाश में आ गईं। तभी पता चला कि ये व्यापारी समुद्र तट को पार करने वाले हैं, तो वे उन्हें पुकारती हुई उड़ती हुई वहां आ गईं। क्षण भर में वे व्यापारियों के पास जा पहुंचीं और अपने-अपने शिकार को पकड़ कर वेदना मिश्रित प्रसन्नता से आंसू बहाते और रोते हुए कहने लगीं : "सौभाग्य से तो हमें अपने स्वामी मिले हैं। हमारा परिवार सुखी है और हमारा प्रेम बहुत गाढ़ा है। हमें क्या पता था कि तुम हम मां-बेटे को छोड़ कर चले जाओगे और हमें चिर वियोग में मार डालोगे। भला किसी का दिल इतना पत्थर कैसे हो सकता है ? तुम यहां रह कर हमारी देखभाल करो और हमारे साथ ही नगर लौट चलो।" व्यापारियों ने उदासीनता दिखाई और उन्हें नगर लौटने का मन भी नहीं हुआ। जब राक्षसियों ने देखा कि उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों का व्यापारियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तो वे उन्हें फंसाने की कोशिश में नाना उत्तेजक रूप तथा अंग प्रदर्शित करने लगीं। व्यापारी पूरी तरह से मंत्रमुग्ध हो प्रणय-जाल से मुक्त नहीं हो पाए और उनका मन विचलित हो गए। इस कारण वे गिर कर धरती पर आ गए। खुशी के मारे राक्षसियां एक दूसरे को बधाई देती हुई अपने-अपने व्यापारी पति को ले कर नगर लौट आईं। सिंहल बुद्धिमान और चरित्रवान था। उसकी दृष्टि तीक्ष्ण और मानस तृष्णा से विमुख थी। अतः वह समुद्र को पार कर इस विपत्ति से बच गया।

राक्षसियों की रानी अकेली ही नगर में लौटी। सभी राक्षसियों ने उसकी हंसी उड़ाते हुए कहा : "तुममें प्रतिभा तथा कौशल का अभाव है। इसीलिए तुम्हारे पति ने तुम्हें छोड़ा है। जब तुम अयोग्य हो तो तुम्हें यहां नहीं रहना चाहिए।" राक्षसियों की रानी अपने बच्चे को ले कर उड़ती हुई सिंहल के सामने आई और आकर्षक चालें चलते हुए सिंहल को मोहित करने और उसे फुसला कर वापस बुलाने की चेष्टा करने लगी। सिंहल ने मंत्र

जपते हुए अपनी तलवार उठा ली और कड़े शब्दों में उससे कहा : "तुम राक्षसी हो, मैं मनुष्य हूं। मनुष्य और राक्षसी एक चक्र के नहीं हैं। हम दोनों पति-पत्नी नहीं बन सकते। यदि तुमने मुझे फिर मजबूर करने की कोशिश की, तो मैं तुम्हें तुरंत मार डालूंगा।"

राक्षसियों की रानी समझ गई कि उसकी चाल विफल हो गई है। वह आकाश में उड़ कर सिंहल के घर आई। उसने सिंहल के पिता से कहा : "मैं एक राजा की पुत्री हूं। सिंहल ने मुझे अपनी पत्नी बनाया और हम दोनों की एक पुत्री भी हुई। जब हम रत्न एवं मोती लिए स्वदेश लौट रहे थे, रास्ते में समुद्री तूफान के कारण हमारा जहाज डूब गया। केवल मैं, मेरी पुत्री और सिंहल ही बच सके। हमने अनेक पहाड़ों तथा नदियों को पार किया और भूख तथा सर्दी की यातनाएं सहीं। हमें न जाने कितने कष्टों और विपत्तियों का सामना करना पड़ा। लेकिन पता नहीं क्यों, मेरा एक शब्द अप्रिय लगने पर ही उसने मुझे भगा दिया। ऊपर से, मुझे राक्षसी कह कर मुझ पर कलंक भी लगाया। मैं अपने देश लौटना चाहती हूं। पर वह यहां से अत्यन्त दूर है। मैं पति-परित्यक्ता स्त्री परदेश में हर प्रकार से निराश्रित हूं। विवश हो कर ही मैंने आप को यह सब बताने की धृष्टता की है।" यह सुन कर सिंह ने कहा : "यदि तुम्हारा कथन सच है, तो तुम इसी घर में रहो।"

राक्षसियों की रानी को सिंहल के घर में रहते अधिक समय नहीं हुआ कि सिंहल भी लौट आया। उसके पिता सिंह ने उसे डांटते हुए कहा : "क्यों, तुम रत्नों और मोतियों को तो ज्यादा महत्व देते हो और अपनी पत्नी व पुत्री की अवहेलना करते हो?" सिंहल ने उत्तर दिया : "वह राक्षसी है।" उसने सारी कहानी मां-बाप को कह सुनाई। जब उसके परिवारजनों और रिश्तेदारों को पता चला, तो उन सब ने आ कर राक्षसियों की रानी को भगा दिया।

राक्षसियों की रानी ने जा कर राजा के सामने सिंहल की शिकायत की। राजा ने सिंहल को दण्ड देने का निर्णय लिया। सिंहल ने कहा : "राक्षसी विषय-वासना के मोह से मनुष्य को फंसाने वाली पिशाचिनी है।" लेकिन राजा ने उसकी बात नहीं मानी और वह राक्षसियों की रानी के रूप पर लट्टू हो गया। उसने सिंहल से कहा : "यदि तुम इस स्त्री से विवाह-संबंध तोड़ने का हठ करते हो, तो उसे मेरे अंतःपुर में रहने दो।" सिंहल बोला : "इससे कदाचित और भी बड़ी विपत्ति उत्पन्न होगी। वह एक नरभक्षी राक्षसी है।" राजा ने सिंहल की बात अनसुनी कर राक्षसी को अपनी रानी बना लिया।

इसके पश्चात् एक दिन आधी रात में राक्षसियों की रानी उड़ कर रत्न द्वीप लौटी और पांच सौ राक्षसियों को प्रासाद में ले आई। उन्होंने मंत्र-तंत्र से प्रासाद में मनुष्यों और पशुओं को नोच-चीर कर उनका मांस खाया और खून चूस लिया। फिर वे शेष बची लाशों को उठवा कर रत्न द्वीप में ले गईं। दूसरे दिन सुबह जब मंत्रीगण प्रासाद के सामने आए, तो उन्होंने पाया कि द्वार पूरी तरह बन्द है। देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी कोई हलचल

नहीं हुई और न कोई द्वार खोलने ही आया। सबों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने द्वार तोड़ा और पंक्तिबद्ध रूप से अन्दर प्रवेश किया।

प्रासाद में कोई भी नहीं दिखाई पड़ा। जगह-जगह हड्डियों के ढेर लगे थे। मंत्रियों, सेनानायकों और बड़े-छोटे सभी पदाधिकारियों का रंग उड़ गया। वे बिलख-बिलख कर रोने लगे। किसी को पता नहीं था कि आखिर हुआ क्या। तभी सिंहल ने सबों को इस विपत्ति का पूरा कारण बताया। पदाधिकारियों और प्रजा को ज्ञात हुआ कि यह विपत्ति राजा ने स्वयं मोल ली थी। राजा के सलाहकारों, वरिष्ठ मंत्रियों, पदाधिकारियों और सेनानायकों ने एक चरित्रवान व्यक्ति को चुन कर राजगद्दी पर बैठाने के लिए सच्चरित्र ज्ञानियों से परामर्श लिया। सभी लोगों ने सिंहल की प्रशंसा करते हुए कहा कि वह सद्‌गुणी और बुद्धिमान है। उन्होंने परामर्श दिया कि "किसी को बिना सोचे-समझे योंही गद्दी पर नहीं बैठा दिया जाना चाहिए। पहले उसके सद्‌गुणों और प्रतिभा की परख करनी चाहिए और फिर उसकी विवेकशीलता की। सद्‌गुण और प्रतिभा के बिना वह राजगद्दी पर बैठने के लिए अनुपयुक्त होगा और विवेक के बिना वह राज्य के मामलों का निपटारा कैसे कर सकेगा? सिंहल वांछनीय है। उसने स्वप्न में विपत्ति के आगमन का पता लगाया था और अपनी आस्था से आकाशीय अश्व को प्रभावित कर दिया था। उसी ने राजा को समझा-बुझा कर अपनी निष्ठा दिखाई थी और अपनी बुद्धिमत्ता से स्वयं को भी बचा लिया था। यह उसकी विद्या का वरदान और उसका सौभाग्य है। एक नए राजवंश की उत्पत्ति अनिवार्य होती है।" सभी पदाधिकारियों और प्रजा ने खुशी-खुशी सिंहल को अपना राजा बनाना स्वीकार किया। बार-बार इनकार करने पर भी जब वे नहीं माने तो सिंहल विवश हो कर राजी हो गया। वह सभी पदाधिकारियों और सेनानायकों को सविनय प्रणाम कर राजगद्दी पर बैठा। उसने भूतपूर्व राजवंश की बुराइयों को समाप्त किया और सच्चरित्र व्यक्तियों की प्रशस्ति कर उन्हें अपना आदर्श बनाया। उसने यह आदेश भी दिया : "मेरे साथ जो व्यापारी राक्षसी राज्य गए थे, वे अब भी वहीं हैं। उनके जीवन-मरण का कुछ पता नहीं है और पुण्य तथा अनिष्ट में अन्तर नहीं हो पा रहा है। अब हमें उनका उद्धार करना होगा। सबसे पहले सेना को सुव्यवस्थित करना चाहिए। संकट में फंसे लोगों को बचाना और संकटग्रस्त लोगों को राहत देना राज्य के लिए पुण्य कर्म है, रत्न-मोती एकत्रित करना राज्य के लिए हितकारी काम है।" आदेशानुसार युद्धाभ्यास किया गया और रत्न द्वीप की ओर समुद्र पार करने का अभियान आरंभ हो गया।

लोह-नगर पर अशुभसूचक रेशमी कपड़ा निरंतर लहराने लगा। राक्षसियों के चेहरों पर हवाइयां उड़ गईं और वे बहुत भयभीत हुईं। लाचार हो कर उन्हें सैनिकों को फुसलाने के लिए मटकने-चटकने की अपनी पुरानी चाल का सहारा लेना पड़ा। राजा उनकी इस चाल से पूरी तरह परिचित था। उसने सैनिकों को मंत्र जपते हुए वीरता के साथ आगे

बढ़ने का आदेश दिया। राक्षसी गिरती-लड़खड़ाती हुई पीछे हटीं। कुछ समुद्र में स्थित टापू पर भाग कर जा छिपीं और कुछ समुद्र के अतल जल-राशि में मग्न हो कर मर गईं। सिंहल की विशाल सेना ने लोह-नगर को नष्ट कर दिया और कारागार को तोड़ कर व्यापारियों का उद्धार कर लिया। उन्हें अगणित रत्न और मोती हाथ लगे। राजा ने अपने देश की प्रजा को रत्न द्वीप पर बसने के लिए बुलाया और वहां नगर तथा राजधानी निर्मित किए। एक नया राज्य स्थापित हो गया। उस नए राज्य का नाम राजा के नाम सिंहल पर पड़ा। सिंहल की कथा तथागत की जातक कथा ही है।

तीन. बौद्ध धर्म के दो संप्रदाय

अतीत में सिंहल में केवल देवताओं की पूजा की जाती थी। बुद्ध के परिनिर्वाण की शताब्दी के बाद सम्राट अशोक के भाई महेंद्र ने सांसारिक भोग-विलास का त्याग कर बुद्धत्व पाने का दृढ़ निश्चय किया। उन्हें षड्भिज्ञा और आठ विमोक्ष प्राप्त हुए। वे आकाश में चलते हुए सिंहल आए और वहां बौद्ध धर्म का प्रचार किया एवं बुद्ध के उपदेश दिए। तभी से सिंहल की प्रजा सीधी-सादी तथा निष्ठावान बनी। राज्य में कई सौ संघाराम थे जिनमें बीस हजार से अधिक भिक्षु थे। वे महायानी स्थविरवादी थे। यहां बौद्ध धर्म के प्रचार होने के दो सौ वर्ष बाद, विशेषता के अनुसार, दो संप्रदाय बन गए : पहला, महाविहारवाद, जो महायान का बहिष्कार कर हीनयान का अध्ययन करता था। दूसरा, अभयगिरिवाद, जो महायान और हीनयान दोनों का अध्ययन करता था। वे त्रिपिटक के अध्ययन पर विशेष बल देते थे। भिक्षु शीलवान और अनुशासित थे, ध्यान व चिंतन में एकाग्र रहते थे। वे विवेकशील और अध्ययनशील थे। जिन भिक्षुओं का आचार-विचार सीखने योग्य था, उनकी संख्या अत्यधिक थी।

चार. बुद्ध-दंत विहार

राजप्रासाद के पास बुद्ध-दंत विहार था, जो सैकड़ों छि ऊंचा है। वह चमकदार और चिकना है। उस पर मोती, रत्न और मणि जड़ित हैं। विहार पर बनाए गए स्तंभ पर एक बड़ी पद्मराग मणि रखी हुई है जो प्रकाश फेंकती है और दिन-रात जगमगाती रहती है। दूर से देखने पर लगता है मानों एक चमकीला सितारा झिलमिलाता हो। राजा प्रति दिन तीन बार सुगंधित जल से बुद्ध के दांत को धोते हैं और धूप-बत्ती जलाते हैं। उसकी पूजा में श्रद्धा के साथ सभी मूल्यवान पदार्थ चढ़ाए जाते हैं।

पांच. सिर झुकी बुद्ध-मूर्ति

बुद्ध-दंत विहार के पास एक छोटा सा विहार था जिसे सजाने के लिए अनेक चमकीले रत्नों का प्रयोग किया गया था। विहार में एक स्वर्ण की बुद्ध-मूर्ति सुशोभित थी। यह मूर्ति इस राज्य के स्वर्गीय राजा के कद के अनुसार बनवाई गई थी। मूर्ति के उष्णीष पर एक मूल्यवान रत्न विभूषित था। एक बार एक चोर रत्न की चोरी करने की ताक में था। लेकिन विहार अन्दर दीवारों और बाहर बाड़ों से घिरा था। उस पर कड़ा पहरा रखा जाता था। चोर बाहर से एक सुरंग खोद कर अन्दर घुस गया और उसने उष्णीष पर जड़ा रत्न उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। तभी बुद्ध मूर्ति क्रमशः ऊर्ध्व होती गई। चोर का प्रयत्न विफल हुआ। उसने पीछे हट कर हाथ मलते हुए कहा : "तथागत जब बोधि प्राप्त करने के लिए तप करते थे, उस समय उन्होंने विशाल हृदय का परिचय दे कर महान प्रतिज्ञा की थी कि वे चतुर्योनियों पर दया करते हुए सब को अपने प्राणों से ले कर राज्य और नगर तक प्रदान करेंगे। आज यह मूर्ति एक रत्न को लिए इतनी कृपण क्यों हो गई है। मैं तो सोचता हूं कि बुद्ध अपनी वह प्रतिज्ञा भूल गए हैं।" यह सुनते ही बुद्ध-मूर्ति का सिर झुक गया और रत्न चोर के हाथ में आ गया। चोर उसे बेचने बाजार में ले गया। उस रत्न को देखते ही लोगों ने कहा : "यह तो स्वर्ण की बुद्ध-मूर्ति के उष्णीष पर जड़ा रत्न है। तुम्हें यह कहां से मिला और यहां बेचने क्यों आए हो ?" उन्होंने चोर को पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित किया। राजा की पूछताछ पर चोर ने कहा : "यह रत्न स्वयं बुद्ध ने मुझे दिया है। मैंने चोरी नहीं की।" राजा को उसकी बात पर विश्वास नहीं आया और उसने जांच करने के के लिए अपना दूत विहार में भेजा। दूत ने पाया कि बुद्ध-मूर्ति का सिर तब तक झुका हुआ था। इस चमत्कार को देख कर राजा की आस्था और भी अधिक सुदृढ़ हो गई। उसने चोर को दंड नहीं दिया बल्कि उसे धन दे कर रत्न वापस ले लिया। रत्न को पुनः बुद्ध-मूर्ति के उष्णीष पर लगा कर उसे सुशोभित किया गया। तब से यह बुद्ध-मूर्ति सिर झुकाए हुए है।

छः. भिक्षुओं का भोजन और मणियों का संग्रह

प्रासाद के पास एक बृहद रसोईघर था जिसमें प्रति दिन 18 हजार भिक्षुओं के लिए भोजन बनाया जा सकता था। भोजन के समय भिक्षु अपने पात्र ले आते थे और भोजन के बाद अपने-अपने निवासस्थान लौट जाते थे। इस राज्य में बौद्ध धर्म के फैलने के बाद ही यह रसोईघर बनाया गया था। राजा की संतानें एक के बाद एक राजगद्दी पर बैठती रहीं और यह परम्परा पीढ़ियों से चली आ रही थी। गत दसेक वर्षों में राजनीतिक अस्थि-

रता के कारण किसी ने भी राज्यारोहण नहीं किया। अतः यह प्रथा भी समाप्त हो गई थी।

यह राज्य समुद्र के किनारे पर स्थित था। यहां मणियों का उत्पादन होता था। राजा स्वयं मंदिर में पूजा-पाठ करते थे और देवता स्वयं दुर्लभ मणियां ला कर उपस्थित करते थे। नगरवासी जगह-जगह रत्नों की खुदाई करते और भाग्य के अनुसार अधिक या कम रत्न प्राप्त कर लेते थे। मोती पाने पर उन्हें राज्य को कर देना पड़ता था।

सात. लंका पर्वत और नारिकेल द्वीप

इस राज्य के दक्षिण-पूर्व में लंका पर्वत था। पर्वत में गहरी घाटियां और सीधी-खड़ी चट्टानें थीं जहां देवगण वास और विहार करते थे। तथागत ने यहां "लंकावतार सूत्र" सुनाए थे।

सिंहल से दक्षिण की दिशा में हजारों ली दूर समुद्र में नारिकेल द्वीप था। उस द्वीप के निवासी इतने नाटे थे कि उनका कद मात्र तीन छि ऊंचा होता था। निवासियों की पक्षी जैसी चोंच होती थी। वहां फसलों की खेती नहीं होती थी। स्थानीय लोग केवल नारियल खाते थे।

नारिकेल द्वीप से पश्चिम की दिशा में कई हजार ली दूर समुद्र में एक एकांतिक द्वीप स्थित था। द्वीप के पूर्व भाग में एक खड़ी चट्टान पर पत्थर की एक बुद्ध-मूर्ति थी। एक सौ छि से अधिक ऊंची यह मूर्ति पूर्व की ओर मुंह किए बैठी थी। उसके उष्णीष पर चंद्रकांत मणि लगी हुई थी। जब चांदनी इस विरल मणि पर पड़ती तो प्रपात नीचे गिरने लगता और पानी ऊंची खड़ी चट्टानों पर से बहते हुए घाटियों में जा गिरता था। एक बार एक व्यापारिक नौका समुद्र में तूफान की मार और थपेड़ों से बहती-तैरती इस एकांतिक द्वीप पर जा पहुंची। खारी समुद्री पानी पिया नहीं जा सकता था। सब प्यास से मरे जा रहे थे। पूर्णिमा का दिन था। बुद्ध-मूर्ति के उष्णीष से जल प्रवाहित हो कर नीचे गिरा। सबों में जान आई। वे समझे कि उनकी भक्ति से द्रवित हो कर देवता ने ही उन्हें बचा लिया था। वे द्वीप पर कुछ दिन ठहरे। जब चांद ऊंची-खड़ी चट्टान के पीछे छिप जाता तो जल का प्रवाह बन्द हो जाता था। यह देख कर बड़े व्यापारी ने कहा : "लगता है कि यह जल-प्रवाह हमें बचाने के लिए नहीं आया था। सुना जाता है कि जब चांदनी चंद्रकांत मणि पर पड़ती है तो उससे जल-प्रपात गिरने लगता है। क्या इस बुद्ध-मूर्ति के उष्णीष पर चंद्र-कांत मणि लगी है ?" सब लोग चट्टान पर चढ़े और उन्होंने पाया कि सचमुच बुद्ध-मूर्ति के उष्णीष पर चंद्रकांत मणि जड़ित थी। इस द्वीप से स्वदेश लौटने के बाद उन्होंने जो कुछ देखा, लोगों को कह सुनाया।

सिंहल के पश्चिम में कई हजार ली दूर समुद्र में एक महारत्न द्वीप स्थित था। उस द्वीप पर कोई मनुष्य नहीं रहता था। केवल देवताओं का ही वास था। रात के सन्नाटे में दूर से देखने पर द्वीप के पर्वतों और घाटियों में प्रकाश जगमगाता दिखाई देता था। बहुत से व्यापारी वहां गए, पर किसी ने कुछ भी नहीं पाया।

द्रविड़ से उत्तर की दिशा में वीरान जंगलों में चलते हुए मैं एक पृथक नगर और गांव से गुजरा था। डाकुओं के दल यात्रियों को लूटते रहते थे। दो हजार ली की यात्रा के बाद मैं कोंकनपुर पहुंचा। (यह राज्य दक्षिणापथ में अवस्थित था)।

कोंकनपुर

कोंकनपुर का घेरा पांच हजार ली था। राजधानी की परिधि तीस ली थी। भूमि उपजाऊ थी और फसलों के लहलहाते खेत थे। जलवायु गर्मियों की तरह उष्ण थी। स्थानीय लोग उग्र और साहसी थे। उनका रंग श्याम और स्वभाव उग्र और उच्छृंखल था। लेकिन वे अध्ययनशील थे। वे पुण्य कर्म करते थे, सद्‌गुणों और विद्याओं को महत्व देते थे। यहां सौ से अधिक संघाराम थे और उनमें दस हजार से अधिक भिक्षु थे। वे महायान व हीनयान दोनों का अध्ययन करते थे। कई सौ देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के अनुयायी अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

एक. प्रासाद के निकट के अवशेष

राजमहल के निकट एक विशाल संघाराम था जिसमें तीन सौ से अधिक भिक्षु थे। वे सभी ज्ञानी थे। संघाराम में सौ छि से अधिक ऊंचा एक चैत्य था जिसमें राजकुमार सर्वार्थसिद्ध का मुकुट सुरक्षित था। मुकुट दो छि ऊंचा था। उस पर रत्न और मोती सुशोभित थे। वह एक मंजूषा में रखा गया था। हर उपवास के दिन उसे ऊंचे आसन पर दर्शनार्थ रखा जाता था और उसकी पूजा में फूल चढ़ाए जाते थे। वह रह-रह कर प्रकाश फेंकता था।

राजधानी के निकट स्थित बड़े संघाराम में एक चैत्य था जो पचास छि ऊंचा था। उसमें मैत्रेय वोधिसत्व की दस छि ऊंची चंदन की मूर्ति सुशोभित थी। उपवास के दिन बुद्ध मूर्ति से मोमबत्ती जैसी दिव्य रोशनी निकलती थी। यह मूर्ति अर्हंत श्रुतविंशतिकोटि द्वारा बनवायी गई थी।

राजधानी के उत्तर में कुछ दूरी पर तालवन था जो तीस ली से अधिक भूमि घेरता था।

ताल वृक्ष के पत्ते लम्बे, चौड़े तथा चिकने थे। उनका प्रयोग विभिन्न राज्यों में लिखने के लिए किया जाता था। तालवन में एक स्तूप था जहां चार भूत बुद्धों के ग्रासनों ग्रौर चंक्रमण के ग्रवशेष थे। स्तूप के पास ग्रर्हत श्रुतविंशतिकोटि की ग्रस्थियां सुरक्षित रखने वाला स्तूप भी था।

राजधानी से कुछ दूर पूर्व में एक ग्रन्य स्तूप था। उसका शिलाधार ढह चुका था, लेकिन शेष भाग फिर भी तीस छि ऊंचा था। वृद्धों से सुना है कि इस स्तूप में तथागत की ग्रस्थियां रखी हुई थीं। उपवास के दिन वहां मोमबत्ती की तरह दिव्य रोशनी फैलती थी। तथागत ने यहां उपदेश दिए थे ग्रौर दिव्य शक्ति का प्रदर्शन कर प्राणियों को उपसंपन्न किया था।

राजधानी के दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूरी पर सौ छि से ग्रधिक ऊंचा एक स्तूप खड़ा था। वह सम्राट ग्रशोक द्वारा बनवाया गया था। इस स्थल पर ग्रर्हत श्रुतविंशतिकोटि ने दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर प्राणियों को सद्धर्म में दीक्षित किया था। स्तूप के पास एक संघाराम था जिसका ग्रब केवल खण्डहर रह गया था। यह संघाराम इसी ग्रर्हत द्वारा बनवाया गया था।

यहां से उत्तर-पश्चिम की दिशा में विराट मैदान ग्रौर घने जंगलों में नरभक्षी पशुग्रों का राज था ग्रौर डाकुग्रों के दल लूटमार करते रहते थे। दो हजार चार-पांच सौ ली चलने के बाद मैं महाराष्ट्र पहुंचा। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र की परिधि छः हजार ली थी। राजधानी का घेरा तीस ली था। उसके पश्चिम में एक बड़ी नदी बहती थी। भूमि उर्वर थी ग्रौर फसलों की प्रचुर खेती होती थी। जलवायु ग्रीष्म की भांति गर्म थी। वहां सरल हृदय को महत्व देने की परम्परा थी। लोगों का कद ऊंचा था। वे स्वभाव से ग्रहंकारी ग्रौर उच्छृंखल थे, किन्तु उपकार का बदला ग्रवश्य चुकाते थे ग्रौर ग्रपकार का बदला भी ग्रवश्य ही लेते थे। ग्रपमानित होने पर वे प्राणों का मोह त्याग कर बदला लेने पर तुले रहते थे। जब कोई संकट के समय मदद लेने के लिए ग्राता, तो वे ग्रपनी सुरक्षा की परवाह न कर उसे बचाने ग्रागे बढ़ जाते थे। ग्रपमान का बदला लेने से पहले वे विपक्ष को पूर्व सूचना दे देते थे। फिर दोनों पक्ष कवच पहन कर लड़ते थे। युद्ध में विजेता परास्त हुए शत्रु का पीछा करते समय जो ग्रात्मसमर्पण कर चुके हों उनकी हत्या नहीं करते थे। युद्ध के मैदान में पीठ दिखाने वाले व्यक्तियों को कोई दंड नहीं दिया जाता था, केवल उन्हें स्त्रियों के वस्त्र दे दिये जाते थे जिससे ग्रपमानित हो कर वे

आत्महत्या कर लेते थे। राज्य द्वारा सैकड़ों वीर रखे हुए थे। युद्ध के निणर्यात्मक क्षण में जब मदिरा पी कर उन्हें नशा चढ़ जाता और उनमें से कोई एक जब साहस के साथ आगे बढ़ता तो शत्रुओं का मनोबल टूट जाता था। दूसरों को क्षति पहुंचाने पर इन योद्धाओं को दंड नहीं दिया जाता था। यात्रा के समय उनके आगे ढोल पीटा जाता था। राज्य में कई सौ क्रूर हाथी भी पाले जाते थे। युद्ध में जाने से पहले उन्हें भी मदिरा पिलाई जाती थी। उन्मत्त हाथियों का झुंड आगे लपक कर सब कुछ पैरों तले रौंद देता था। उनके आगे कोई शत्रु टिक नहीं पाता था। राज्य इन्हीं योद्धाओं तथा हाथियों के बल पर पड़ोसी राज्यों पर अत्याचार करता रहता था। राजा एक क्षत्रिय था। उसका नाम पुलकेशिन था। वह एक महान दूरदर्शी और विवेकशील राजा था। वह बहुत दयालु भी था। इसलिए मंत्रीगण उसके प्रति अत्यन्त निष्ठावान थे। उस समय सम्राट शीलादित्य पूर्व-पश्चिम पर विजय-अभियान कर रहे थे। दूर और निकट के सभी राज्य उनकी अधीनता स्वीकार करते जा रहे थे। केवल महाराष्ट्र उनकी अधीनता नहीं मानता था। उस पर विजय पाने के लिए सम्राट शीलादित्य ने कई बार स्वयं पूरे भारत की सेनाएं ले कर और दूसरे राज्यों के वीरों की मदद से उस पर चढ़ाई की। लेकिन वह हर बार पराजित हो गया। महाराष्ट्र की सेना तो वीर थी, पर रीति-रिवाज और परंपरा विलक्षण थी। स्थानीय निवासी अध्ययनशील थे और परधर्मो तथा सद्धर्म दोनों का सम्मान करते थे। यहां एक सौ से अधिक संघाराम थे और पांच हजार भिक्षु थे। वे महायान तथा हीनयान दोनों का अध्ययन करते थे। लगभग सौ देव-मंदिर थे और बहुत से विधर्मी थे।

एक. समीप के अवशेष

राजधानी के अन्दर और बाहर उन स्थानों पर पांच स्तूप थे, जहां चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे। ये स्तूप सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गए थे। इनके अतिरिक्त पत्थर व ईंटों के अनेक स्तूप भी थे जिनकी संख्या इतनी अधिक थी कि उनका अलग-अलग विवरण देना कठिन है।

राजधानी के दक्षिण में थोड़ी दूरी पर एक पुराना संघाराम खड़ा था। उसमें अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की एक प्रस्तर मूर्ति सुशोभित थी। बोधिसत्व की दिव्य शक्ति से जो भी वहां वर मांगने आता, उसका मनोरथ बहुधा पूरा हो जाता था।

दो. आचार संघाराम और शैलगुहा

महाराष्ट्र के पूर्वी भाग में एक विशाल पर्वत खड़ा था। शिखरों और चट्टानों की अटूट

श्रृंखलाओं के कारण यह स्थान बाह्य संसार से अलग हो गया था। गहरी घाटी में एक संघाराम स्थित था। उसके ऊंचे-ऊंचे भवन और कक्ष चट्टानों को खोद कर खड़े किए गए थे और चट्टानी कगार पर गहरी घाटी के किनारे पंक्तिबद्ध अट्टालिकाएं एवं मण्डप बनाए गए थे। यह संघाराम अर्हंत आचार द्वारा बनवाया गया था। अर्हंत आचार पश्चिमी भारत का वासी था। उसकी माता के स्वर्गवास के बाद जब उसने माता के अगले जन्म का पता लगाया तो उसे ज्ञात हुआ कि उसका इस राज्य में स्त्री के रूप में पुनर्जन्म हुआ था। अतएव अर्हंत यहां आया और उसने स्थानीय निवासियों को उपदेश देना और अवसर पा कर उन्हें सद्धर्म में दीक्षित करना चाहा। वह भिक्षा मांगने एक गांव गया और उसी घर जा पहुंचा जहां उसकी माता का पुनर्जन्म हुआ था। उसे भोजन का दान करते समय एक लड़की के स्तनों से दूध निकलने लगा। यह देख कर उसके संबंधियों को अशुभ लगा। तब अर्हंत ने उन्हें पूर्वजन्म की कथा सुनाई। इस तरह उस लड़की को अर्हत्व प्राप्त हो गया। इस बात से प्रभावित हो कर अर्हंत ने अपनी माता के असीम उपकार का बदला चुकाने के लिए इस संघाराम का निर्माण करवाया।

संघाराम में सौ छि से अधिक ऊंचा चैत्य था। उसमें सतहत्तर छि ऊंची एक प्रस्तर बुद्ध-मूर्ति आसीन थी। मूर्ति के ऊपर पत्थर के सात छत्र थे जो अधर में लटके थे और एक दूसरे से जुड़े नहीं थे। हर दो पत्थर के छत्रों के बीच तीन छि की दूरी है। वृद्धों का कहना था कि यह अर्हंत के वरदान का फल था। अन्य लोगों का कहना था कि यह ऋद्धि शक्ति का परिणाम था और कुछ का कहना था कि यह औषधि एवं मंत्र बल के कारण संभव हुआ था। इन उल्लेखों के विवेचन करने पर भी इसका सच्चा कारण ज्ञात नहीं हो सका। चैत्य के चारों ओर चट्टानों को खोद कर बोधिसत्व-प्राप्ति के लिए तप करने वाले तथागत की जीवनी, स्थलों, कथाएं, बोधि-प्राप्ति के शुभ लक्षण और परिनिर्वाण के चमत्कार आदि छोटी-बड़ी कथाएं अंकित की गई थीं। संघाराम के द्वार के बाहर उत्तर-दक्षिण में तथा दाईं-बाईं ओर एक-एक पत्थर की हाथी की मूर्ति खड़ी थी। स्थानीय दंतकथा के अनुसार ये हाथी की मूर्तियां कभी-कभी चिंघाड़ती भी थीं, जिससे धरती कांप जाती थी। अतीत में बोधिसत्व दिग्नाग इसी संघाराम में प्रायः रहते थे।

यहां से कोई हजार ली चलने के बाद नर्मदा नदी के उस पार भरुकच्छप है। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

भरुकच्छप

भरुकच्छप की परिधि दो हजार चार-पांच सौ ली थी और राजधानी का घेरा बीस से

अधिक ली था। राज्य में भूमि क्षारयुक्त और ऊसर थी। वहां समुद्री जल उबाल कर नमक निकाला जाता था। स्थानीय निवासी समुद्र से लाभ उठाते रहते थे और उनकी आजीविका समुद्र पर ही निर्भर थी। जलवायु गर्मियों की भांति उष्ण थी और बवंडर अचानक उठते रहते थे। स्थानीय लोग उथले व कपटी थे, विद्याओं तथा शिल्प से अज्ञान थे। वे सद्धर्म एवं परधर्म दोनों को मानते थे। दस से अधिक संघाराम थे और तीन सौ से अधिक भिक्षु। वे महायानी तथा स्थविरवादी थे। दस से अधिक देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों और शाखाओं के व्यक्ति अव्यवस्थित रूप से बसे थे।

इस राज्य से उत्तर-पश्चिम में दो हजार ली चलने पर मैं मालव पहुंचा। (यह राज्य दक्षिण लाट कहलाता था और दक्षिणापथ में स्थित था)।

मालव

मालव की परिधि छः हजार से अधिक ली थी। राजधानी का घेरा तीस से अधिक ली था। वह महानदी के दक्षिण-पूर्व तट पर अवस्थित थी। भूमि उर्वर थी, भरपूर फसल काटी जाती थी। पेड़-पौधे एवं फल-फूल प्रचुरता से मिलते थे। वहां की भूमि गेहूं की खेती के अनुकूल थी, इसलिए स्थानीय निवासी अधिकतर रोटी ही खाते थे। लोग स्वभाव से सहृदय और मिलनसार थे। प्रायः चतुर तथा तेज थे। उनकी वाणी शिष्ट और सुबोध थी तथा वे विद्याओं और शिल्पों में पारंगत थे। पूरे भारत में दो राज्य विद्याओं पर महत्व देते थे। एक, दक्षिण-पश्चिम का मालव और दूसरा, उत्तर-पूर्व का मगध। दोनों राज्यों के लोग विवेकशीलता को महत्व देते थे और न्याय का समर्थन करते थे। वे परिश्रमी, बुद्धिमत्तापूर्ण और अध्ययनशील थे। मालव में सद्धर्म और परधर्म दोनों पर विश्बास किया जाता था। सैकड़ों संघाराम थे और बीस हजार से अधिक भिक्षु थे। बे हीनयानी सम्मतीय थे। कई सौ देव-मंदिर थे। तीर्थिकों की अनेक शाखाएं थीं। अधिकांश पाशुपत मत के समर्थक थे।

एक. धर्मादित्य की कथा

यह कथा राज्य के ऐतिहासिक ग्रंथों में उल्लिखित है। साठ वर्ष पहले इस राज्य के सम्राट का नाम धर्मादित्य था। वे प्रतिभाशाली, विवेकशील और ज्ञानी थे। प्रजा की रक्षा एवं भरण-पोषण करते और बौद्ध धर्म व भिक्षुओं का सम्मान करते थे। जन्म से मृत्यु तक उन्हें कभी भी क्रोध नहीं आया और न ही उन्होंने कभी जीवों की हत्या की। पानी भी

छानने के बाद ही हाथियों और घोड़ों को पिलाया जाता था, क्योंकि डर रहता था कि कहीं पानी में रहने वाले जीवों को क्षति न पहुंचे। उसकी सहृदयता अनुपम थी। उनके पचास से अधिक वर्षों के शासन काल में पशु और मानव घुल-मिल कर रहते थे और प्रजा पशुओं को मारती नहीं थी। प्रासाद के निकट एक विहार था। विहार की वास्तुकला अत्यन्त उत्कृष्ट थी और पूर्ण रूप से अलंकृत थी। विहार में सात बुद्ध-मूर्तियां सुशोभित थीं। प्रति वर्ष पंचवार्षिक परिषद आयोजित होती थी और चारों दिशाओं से भिक्षु आमंत्रित किए जाते थे। उनकी परिचर्या के लिए चार वस्तुएं उपस्थित की जाती थीं और उन्हें चीवर व पात्र अथवा सप्तरत्न का दान दिया जाता था। इस प्रकार का पुण्य कर्म बिना रुके वर्षों से बना रहा था।

दो. भद्ररुचि द्वारा असत्य का खण्डन

राजधानी से उत्तर-पश्चिम की दिशा में बीस ली चलने के बाद मैं ब्राह्मण नगर पहुंचा। नगर के पास एक गहरा गढ़ा था। शरद व ग्रीष्म की ऋतुओं में लगातार दसेक दिनों तक वर्षा होती रहती थी और पानी चारों ओर से गढ़े में जा गिरता था। पर उस गढ़े में पानी कभी जमा नहीं होता था। गढ़े के पास एक छोटा स्तूप खड़ा था। वृद्धों का कहना था कि यह वही स्थल है जहां से एक अभिमानी ब्राह्मण जीवित ही नरक में धंस गया था। प्राचीन काल में इस नगर में एक ब्राह्मण रहता था। वह एक प्रकांड विद्वान बन कर तत्कालीन विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। उसने बौद्ध और तीर्थिक सूत्रों के सूक्ष्म तत्वों का गहन चिंतन किया था। उसे ज्योतिष शास्त्र का भी पूरा ज्ञान था और उसका आचार-विचार आदर्श माना जाता था। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। राजा उसका बड़ा सम्मान करता था और प्रजा भी उसका आदर करती थी। उसके एक हजार से अधिक शिष्य थे जो उससे शास्त्र सीखते थे और उसके सदाचार के प्रशंसक थे। ब्राह्मण कहा करता था : "मैंने इस मनुष्य लोक के कल्याण के लिए ही जन्म लिया है। मैं उपदेश दे कर साधारण लोगों का मार्गदर्शन करता हूं। पूर्ववर्ती मुनि और परवर्ती शास्त्री मेरी अपेक्षा हीन थे। लोग शिव, वासुदेव, नारायण और बुद्ध के भक्त बन गए, उनके चित्र और मूर्तियां बना कर उनकी श्रद्धा से पूजा करते हैं। मेरे गुण और कर्म तो उनसे भी बढ़ कर हैं और मुझे ख्याति प्राप्त हुई है। यदि मैं उनसे भिन्न आचरण न करूं, तो अपने को असाधारण कैसे दिखा सकता हूं?" उसने रक्त चंदन की लकड़ी से शिव, वासुदेव, नारायण और भगवान बुद्ध की मूर्तियां बनाईं और मूर्तियों के आसन के नीचे चार पाए बनाए। वह जहां जाता, उन्हें लादे अपने साथ ले जाता। उसका अहंकार इतना बढ़ गया था। उस काल में

पश्चिमी भारत में भद्ररुचि नामक भिक्षु थे। वे हेतुविद्या में पारंगत थे। तीर्थिक शास्त्रों के गहन चिंतक थे। उनका ग्राचरण विशुद्ध ग्रौर श्रेष्ठ था तथा शील एवं स्वभाव पुष्प की भांति सुगंधित था। उनमें तृष्णा-वासना नहीं थी ग्रौर वे सदैव संतुष्ट रहते थे। इस-लिए उन्हें किसी भी वस्तु का लोभ नहीं था। ग्रभिमानी ब्राह्मण के कथन सुन कर भद्ररुचि ने ग्राह भर कर कहा : "दु:ख की बात है कि ग्रब ऐसी कोई महान विभूति नहीं रह गई है। इसीलिए इस मूर्ख को उद्दंडतापूर्वक ग्रनाचार करने का साहस हुग्रा है।" वह एक दंड लिए दूर से उस राज्य में जा पहुंचा ग्रौर राजा के समक्ष ब्राह्मण के साथ शास्त्रार्थ करने की ग्रभिलाषा व्यक्त की। उसके फटे-पुराने वस्त्र देख कर राजा के मन में उसके प्रति ग्रनादर का भाव उभरा। किन्तु प्रकट में उसने भिक्षु के निश्चय की प्रशंसा ही की ग्रौर ग्रनिच्छा पूर्वक उसका सत्कार किया। फिर राजा ने शास्त्रार्थ करने का ग्रादेश दिया ग्रौर ब्राह्मण को प्रश्नोत्तर के लिए बुलावा भेजा। ब्राह्मण ने हंस कर कहा : "वह कौन है जिसे मुझको चुनौती देने का दुस्साहस हुग्रा है?" वह ग्रपने शिष्यों के साथ सभास्थल में गया। सैकड़ों लोग उसके ग्रागे-पीछे खड़े हो गए। भद्ररुचि फटे-पुराने वस्त्र पहने तृणाच्छादित भूमि पर बैठ गया। ब्राह्मण ग्रभिमान के साथ ग्रपने ग्रासन पर बैठा बौद्ध धर्म का खण्डन करता रहा ग्रौर तीर्थिक शास्त्र की व्याख्या करता रहा। भिक्षु जल-धारा की भांति ग्रखण्ड प्रवाहित तथा स्पष्ट उत्तर देता रहा। बड़ी देर तक तर्क-वितर्क चलता रहा। ग्रंत में ब्राह्मण निरुत्तर हो गया ग्रौर उसने ग्रपनी हार मान ली। राजा ने कहा : "तुम लम्बी ग्रवधि से ग्रपनी मिथ्या ख्याति से राज्य को धोखा देते ग्रौर प्रजा को भ्रम में डालते रहे हो। राजनियमों के ग्रनुसार तर्क-वितर्क में परास्त व्यक्ति को मृत्यु दण्ड देना होगा।" राजा के ग्रादेशानुसार लोहा ग्राग से तपाया गया ग्रौर ब्राह्मण को उस पर बैठने को कहा गया। ब्राह्मण ग्रत्यन्त घबरा गया ग्रौर उसने भद्ररुचि से सहायता की याचना की। भद्ररुचि को उस पर दया ग्रा गई ग्रौर उसने राजा से कहा : "महाराज, ग्रापकी सहृदयता से दूरस्थ क्षेत्र भी प्रभावित हैं। जगह-जगह ग्रापका गुण गाया जाता है। प्रजा को समझाने-बुझाने के लिए दयालुता से काम लेना चाहिए ग्रौर क्रूरतापूर्ण कर्म से बचना चाहिए। ग्राप उसे क्षमा कर दें ग्रौर उसे स्वयं निश्चय करने दें।" राजा ने ग्रभिमानी ब्राह्मण को ग्रादेश दिया कि वह गधे पर सवार हो कर राजधानी तथा गांवों में इसकी सूचना दे। मृत्यु दण्ड से ग्रपमानित हुए ब्राह्मण ने क्रोधाग्नि से रक्त का वमन किया। यह जान कर भिक्षु उसके वहां गया ग्रौर उसे सांत्वना देते हुए कहा : "तुम्हारा ज्ञान सर्वव्यापी है ग्रौर तुम्हारी ख्याति समस्त संसार में निकट व दूर तक फैली है। सम्मान ग्रौर ग्रपमान के समक्ष तुम्हें सही मार्ग ग्रपनाना जानना चाहिए। तथाकथित प्रतिष्ठा की क्या महत्ता है?" ब्राह्मण को बड़ा क्रोध ग्राया ग्रौर उसने भिक्षु को पानी पी-पी कर कोसते हुए महायान पर कलंक लगाया ग्रौर पूर्ववर्ती धर्मात्माग्रों को ग्रपशब्द कहे। उसकी बात ग्रभी पूरी भी नहीं

हुई थी कि धरती फट गई और ब्राह्मण भूमि के अन्दर धंस गया। अब भी उस गढ़े का अवशेष वहां स्थित है।

इस राज्य के दक्षिण-पश्चिम में समुद्री खाड़ी थी। उत्तर-पश्चिम में दो हजार चार-पांच सौ ली चलने के बाद मैंने अटली की सीमा में प्रवेश किया। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

अटली

अटली का घेरा छः हजार ली से अधिक था। राजधानी की परिधि बीस ली थी। इस राज्य की जनसंख्या अधिक थी और वहां मूल्यवान वस्तुओं का भंडार था। नाना प्रकार की फसलों की खेती होती थी, लेकिन मुख्य धंधा व्यापार था। अधिकांश भूमि रेतीली और क्षारयुक्त थी। फल व फूल दुर्लभ थे। यहां जो काली मिर्च के पेड़ थे, उनके पत्ते चीन के सछ्वान प्रांत की काली मिर्च के पत्तों की तरह थे। यहां कुदरू का पत्ता नाशपाती के वृक्ष के पत्ते के समान था। बारहों मास जलवायु उष्ण रहती थी और रेत और धूल उड़ती रहती थी। स्थानीय निवासी स्वार्थी, धन के लोभी और नैतिकता की उपेक्षा करने वाले थे। लिपि, बोलचाल, सामाजिक व्यवस्था तथा विधि-नियम प्रायः मालव के समान ही थे। अधिकांश लोग कर्म-फल में विश्वास नहीं करते थे। जो धर्मावलंबी थे वे भी देवताओं के भक्त थे। दस-बारह देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

मालव से उत्तर-पश्चिम में तीन सौ ली चलने के बाद मैं कच्छ राज्य पहुंचा। (यह राज्य दक्षिणापथ में स्थित था)।

कच्छ[1]

कच्छ की परिधि तीन हजार से अधिक ली थी। राजधानी का घेरा बीस से अधिक ली था। जनसंख्या अधिक थी और लोग संपन्न थे। इस राज्य में राजा नहीं था। वह मालव के अधीन था। यहां की प्रथाएं और फसलें भी मालव जैसी ही थीं। दस से अधिक संघाराम थे। एक हजार से अधिक भिक्षु थे। वे महायान एवं हीनयान दोनों का अध्ययन करते थे। दसियों देव-मंदिर थे और तीर्थिकों की संख्या अधिक थी।

---

1. कुछ विद्वानों के विचार में इस राज्य का नाम खेड़ होना चाहिए।

इस राज्य से उत्तर की दिशा में एक हजार ली की दूरी पर वलभी था। (यह राज्य उत्तर लाट भी कहलाता था और दक्षिणापथ में स्थित था)।

वलभी

वलभी की परिधि छ: हजार से अधिक ली थी। राजधानी का घेरा तीस ली था। कृषि-उपजें, ऋतुएं और जलवायु, प्रथा और प्रजा का स्वभाव सब मालव के समान था। जनसंख्या बहुत अधिक थी तथा लोग संपन्न थे। ऐसे परिवारों की संख्या सौ से अधिक थी जिनकी संपत्ति दस कोटि तक जा पहुंची थी। सुदूर प्रदेशों से दुर्लभ वस्तुओं को ला-ला कर इस राज्य में एकत्रित किया जाता था। यहां सौ से अधिक संघाराम थे और छ: हजार से अधिक भिक्षु थे। उनमें से अधिकतर सम्मतीय थे। कई सौ देव-मंदिर थे और तीर्थिकों के अनेक संप्रदाय थे।

एक. निकट के अवशेष

अपने जीवन काल में तथागत ने अनेक बार इस राज्य का भ्रमण किया था। इसलिए सम्राट अशोक ने जहां-जहां बुद्ध ने पदार्पण किया था वहां स्मारक और स्तूप खड़े करवा दिए थे। तीन भूत बुद्धों के आसनों, चंक्रमण तथा प्रवचन के स्थानों के अवशेष अवराल में सुरक्षित थे।

दो. बौद्ध धर्म में राजा ध्रुवभट्ट का दृढ़ विश्वास

वर्तमान राजा क्षत्रिय है। वह मालव के पूर्ववर्ती राजा धर्मादित्य का भतीजा और कान्यकुब्ज के वर्तमान राजा शिलादित्य का दामाद है। उसका नाम ध्रुवभट्ट है। वह स्वभाव से उग्र और विवेकहीन है, किन्तु वह त्रिरत्न में दृढ़ विश्वास रखता है। वह प्रति वर्ष सात दिन की परिषद आयोजित करता है और भिक्षुओं को दुर्लभ व स्वादिष्ट भोजन खिलाता है और उन्हें चीवर-काषाय, औषधि तथा सप्तरत्न का दान करता है। फिर दुगुना मूल्य चुका कर वह इन वस्तुओं को वापस ले लेता है। वह सद्‌गुणों को महत्व देता है, ऋषि-मुनियों का सम्मान करता है, सद्धर्म में आस्था रखता है और विद्या को महत्व देता है। दूर से आने वाले ज्ञानी भिक्षुओं का वह विशेष सम्मान करता है।

तीन. आचार संघाराम

राजधानी से थोड़ी दूरी पर एक बृहदाकार संघाराम स्थित था जिसे अर्हंत आचार ने बनवाया था। बोधिसत्व गुणमति और स्थिरमति ने इसमें वास किया था और बौद्ध सूत्रों के भाष्य लिखे थे। उन भाष्यों का व्यापक प्रचार हुआ था।

इस राज्य से उत्तर-पश्चिम की ओर सात सौ से अधिक ली चलने के बाद मैं आनंदपुर पहुंचा। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

आनंदपुर

आनंदपुर की परिधि दो हजार ली से अधिक थी और राजधानी का घेरा था बीस ली। जनसंख्या अधिक थी और लोग धनी थे। राज्य में राजा नहीं था। वह मालव राज्य के अधीनस्थ था। फसलें, ऋतुएं और जलवायु, लिपि और राजनियम भी मालव के समान ही थे। दसेक संघाराम थे। भिक्षुओं की संख्या हजार से भी कम थी। वे हीनयान के सम्मतीय थे। दसियों देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

वलभी से पश्चिम की दिशा में पांच सौ ली से अधिक दूरी पर सुराष्ट्र स्थित था। (यह राज्य पश्चिमी भारत में अवस्थित था)।

सुराष्ट्र

सुराष्ट्र का घेरा चार हजार ली से अधिक था। राजधानी की परिधि तीस ली से अधिक थी। नगर के पश्चिम में महानदी बहती है। जनसंख्या अधिक थी और लोग संपन्न थे। यह राज्य वलभी के अधीनस्थ था। भूमि क्षारयुक्त होने के कारण फल-फूल बहुत कम मिलते थे। बारहों मास का तापमान समान तो था, परन्तु हवा तेज बहती थी। स्थानीय निवासी स्वार्थी तथा उग्र और तीक्ष्ण स्वभाव के थे। वे विद्याएं और शिल्प नहीं सीखते थे और बौद्ध धर्म तथा परधर्म दोनों में उनकी आस्था थी। पचास से अधिक संघाराम थे और तीन हजार से अधिक भिक्षु। वे अधिकतर महायानी स्थविरवादी थे। एक सौ से अधिक देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे।

सुराष्ट्र पश्चिमी समुद्र जाने के मार्ग में अवस्थित था। निवासी समुद्र से लाभ उठाते थे और व्यापार कर माल का अभाव पूरा करते थे।

राजधानी के निकट उज्जंत पर्वत खड़ा था। इसकी चोटी पर एक संघाराम था जिसके भवन और बरामदे बहुधा चट्टानों को खोद कर बनाए गए थे। यहां वृक्ष अधिक थे और चारों ओर झरने बहते थे। यह मुनियों के विहार एवं वास का स्थल था और यहां प्राय: ऋषियों की सभा लगती रहती थी।

वलभी से उत्तर में अठारह सौ ली चलने के बाद मैं गुर्जर पहुंचा। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

गुर्जर

गुर्जर की परिधि पांच हजार ली से अधिक थी। राजधानी का नाम था भिल्लमाल, जिसका घेरा तीस ली था। फसलें और प्रथा सुराष्ट्र के समान थीं। जनसंख्या अधिक थी और लोग संपन्न थे। अधिकांश स्थानीय निवासी तीर्थिक थे। बौद्ध धर्म के अवलंबियों की संख्या बहुत कम थी। एक संघाराम था और सौ से अधिक भिक्षु थे। वे हीनयानी सर्वास्तिवादी थे। दसियों देव-मंदिर थे और विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। राजा क्षत्रिय था। वह अब बीस वर्ष का था। वह विवेकशील और पराक्रमी था। बौद्ध धर्म में उसका दृढ़ विश्वास था। वह उदात्त और असाधारण क्षमतायुक्त था।

गुर्जर से दक्षिण-पूर्व की दिशा में दो हजार आठ सौ ली से अधिक चलने के बाद मैं उज्जयनी पहुंचा। (यह राज्य दक्षिणापथ में अवस्थित था)।

उज्जयनी

उज्जयनी का घेरा छ: हजार ली से अधिक था। राजधानी की परिधि तीस ली से अधिक थी। फसलें और प्रथा सुराष्ट्र के समान थीं। जनसंख्या अधिक थी और लोग धनी थे। दसियों संघाराम थे, पर अधिकांश गिर कर ढह चुके थे। केवल तीन-चार अभी भी सुरक्षित अवस्था में थे। तीन सौ से अधिक भिक्षु थे जो महायान व हीनयान दोनों का अध्ययन करते थे। दसियों देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। राजा ब्राह्मण था और तीर्थिक शास्त्रों में पारंगत थे। वे बौद्ध धर्म को नहीं मानते थे। राजधानी के निकट एक स्तूप खड़ा था। यह वह स्तूप था जिसे सम्राट अशोक ने कारागार के रूप में बनवाया था।

उज्जयनी के उत्तर-पूर्व में हजार ली की दूरी पर चित्तौड़ राज्य स्थित था। (यह राज्य दक्षिणापथ में अवस्थित था)।

चित्तौड़

चित्तौड़ राज्य का घेरा चार हजार ली से अधिक था। राजधानी की परिधि पन्द्रह-सोलह ली थी। भूमि उर्वर थी, फसलों के लहलहाते खेत थे और गेहूं व दाल मुख्य उपज थी। फल-फूल प्रचुरता में मिलते थे। चारों ऋतुओं में जलवायु सुहावनी रहती थी। स्थानीय निवासी सहृदय और मिलनसार थे। अधिकांश निवासी तीर्थिक थे। बहुत कम लोग बौद्ध धर्म को मानते थे। दसियों संघाराम थे, लेकिन भिक्षुओं की संख्या बहुत कम थी। दस से अधिक देव-मंदिर थे जिनमें हजार अनुयायी रहते थे। राजा ब्राह्मण था। वह भगवान बुद्ध का भक्त था और सदाचारी व्यक्तियों का सम्मान करता था। इसलिए विभिन्न स्थानों से ज्ञानी यहां आ कर एकत्रित होते थे।

यहां से उत्तर में नौ सौ ली चलने के बाद मैंने महेश्वरपुर में प्रवेश किया। (यह राज्य मध्य भारत में स्थित था)।

महेश्वरपुर

महेश्वरपुर की परिधि तीन हजार ली से अधिक थी। राजधानी का घेरा तीस ली से अधिक था। फसलें, मान्यताएं एवं प्रथाएं उज्जयनी के समान ही थीं। तीर्थिकों का सम्मान किया जाता था और बौद्ध धर्म के अनुयायी नहीं थे। दसियों देव-मंदिर थे। पाशुपती बहुसंख्यक थे। राजा ब्राह्मण था और बौद्ध धर्म को नहीं मानता था।

इस राज्य से लौट कर मैं फिर गुर्जर गया। फिर उत्तर की ओर वीरान मैदान और दुर्गम मरुभूमि से गुजर कर एक हजार नौ सौ ली चलने के बाद मैं सिंधु नदी के उस पार सिंधु पहुंचा। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

सिंधु

सिंधु का घेरा सात हजार ली से अधिक था, राजधानी का नाम विचवापुर[1] था। उसकी परिधि तीस ली से अधिक थी। भूमि धान, बाजरे और गेहूं की खेती के लिए उपयुक्त थी। उनका उत्पादन बहुत अधिक था। सोना, चांदी और तांबा खूब मिलता था। गायें,

1. इस नगर के संस्कृत नाम पर विद्वानों में मतभेद है।

भेड़ें, ऊंट और खच्चर पाले जाते थे। ऊंट छोटा होता था और उसका केवल एक ही कूबड़ होता था। इस राज्य में लाल रंग के पत्थर की तरह लाल रंग का नमक भी उपलब्ध होता था, इसके अतिरिक्त सफेद, काला तथा सफेद शिला-नमक भी मिलता था। विदेशों के लोग इसका दवा के रूप में प्रयोग करते थे। स्थानीय निवासियों का स्वभाव उग्र, किन्तु सरल था। वे लड़ाकू और झगड़ालू होते थे तथा द्वेष-बैर पालते थे। वे अध्ययन तो सतही करते थे, परन्तु बौद्ध धर्म में गहरी आस्था रखते थे। कई सौ संघाराम थे, दस हजार से अधिक भिक्षु थे जो हीनयान के सम्मतीय थे। परन्तु वे आलसी, शीलहीन और भ्रष्ट थे। ऐसे भिक्षु भी थे जो अध्ययनशील थे, सच्चरित्र थे। वे दूरस्थ वनों में एकांतवास करते थे और दिन-रात ध्यान लगाने से उनमें से बहुतों को अर्हत-फल प्राप्त हुआ था। तीस से अधिक देव-मंदिर थे और विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक अव्यवस्थित रूप से बसे हुए थे। राजा शूद्र था। वह स्वभाव से ईमानदार और शुद्धहृदय था। यह बौद्ध धर्म में विश्वास करता था। तथागत ने कई बार इस राज्य का भ्रमण किया था। इसलिए सम्राट अशोक ने उन सभी स्थानों में दसियों स्तूप बनवाए थे जहां बुद्ध ने पदार्पण किया था। अर्हत उपगुप्त ने इस राज्य की अनेक बार यात्रा की थी और उपदेश दे कर स्थानीय निवासियों का मार्गदर्शन किया था। वह जहां-जहां गया, वहां-वहां स्मारक, संघाराम अथवा स्तूप बनाए गए। वे बहुधा एक दूसरे के निकट बनाए गए थे। उनका कुछ न कुछ विवरण आज भी मिल जाता है।

एक. चीवर पहने गृहस्थ

सिंधु नदी के तट पर एक हजार ली से अधिक लम्बी दलदली भूमि में सैकड़ों परिवार आबाद थे। स्थानीय निवासी स्वभाव से उग्र थे। वे मात्र मारपीट करना जानते थे और अपनी आजीविका के लिए केवल गाय पालते थे। इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई धंधा नहीं करते थे। स्त्री-पुरुष, ऊंच-नीच के भेद के बिना, सभी के सिर मुंडे हुए थे और वे काषाय-चीवर पहनते थे। देखने में वे भिक्षु-भिक्षुणी लगते थे, किन्तु वे थे गृहस्थ और हीनयान के मतों पर स्थिर रह कर महायान का खण्डन करते रहते थे। वृद्ध लोगों के अनुसार अतीत में यहां के निवासी क्रूर और निर्मम थे और उन्हें दुष्कर्म करने की लत पड़ी हुई थी। उस समय एक अर्हत को उनके पतन पर दया आई। उन्होंने स्थानीय निवासियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने के लिए आकाश में एक चमत्कार दिखा कर मनुष्यों के सम्मुख आश्चर्य प्रस्तुत किया और स्थानीय निवासियों को वशीभूत किया। धीरे-धीरे उन्होंने उपदेश दे कर स्थानीय निवासियों का मार्गदर्शन किया। सभी निवासी प्रसन्न हो उनका सम्मान करने लगे और उनके उपदेशों पर चलने को प्रस्तुत हो गए। स्थानीय निवासियों की

आस्था देखने के बाद अर्हत ने उन्हें विशरणगमन की दीक्षा दी। उनकी निर्ममता का अंत किया। वे सब अहिसक बन गए, सिर मुंड़ाए, चीवर पहने बौद्ध धर्म के भक्त बने। किन्तु समय बीतने के साथ-साथ कालांतर में सांसारिक परिवर्तन के चलते पुण्य कर्मों के प्रति उनकी आस्था क्षीण होती चली गई। परन्तु पुरानी प्रथा पूर्णत: लुप्त नहीं हुई। लोग चीवर तो अवश्य पहनते हैं, परन्तु शील का पालन एवं पुण्य कर्म नहीं करते। पीढ़ियों से यह प्रथा बन गई है।

यहां से पूर्व की दिशा में नौ सौ ली से अधिक चल कर मैं सिंधु नदी के पूर्वी तट पार कर मूलस्थानपुर पहुंचा। (यह राज्य पश्चिमी भारत में अवस्थित था)।

मूलस्थानपुर

मूलस्थानपुर का घेरा चार हजार ली से अधिक था। राजधानी की परिधि तीस ली से अधिक थी। यहां जनसंख्या अधिक थी और लोग धनी थे। यह राज्य टक्क के अधीन था। इस राज्य में भूमि उर्वर थी और चारों ऋतुओं में जलवायु अनुकूल और सुहावनी रहती थी। स्थानीय लोग ईमानदार और शुद्धहृदय थे। वे अध्ययनशील थे और पुण्य कर्मों को महत्व देते थे। उनमें अधिकांश तीर्थिक थे। बहुत कम लोग बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे। यहां दसेक संघाराम थे, किन्तु अधिक संघाराम गिर कर नष्ट हो गए थे। भिक्षुओं की संख्या अत्यन्त कम थी। वे किसी एक निकाय विशेष के नहीं थे। आठ देव-मंदिर थे और विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक मिल कर रहते थे।

एक. सूर्य देव मंदिर

यहां एक सूर्य देव मंदिर था जो अत्यन्त सुंदर तथा सुसज्जित था। सूर्य देवता की मूर्ति सोने की थी। उस पर अनूठे रत्न और मणियां जड़ित थीं। उसमें चमत्कार दृष्टिगोचर हुआ करता था और उसकी शक्ति और प्रभाव दूर तक फैला हुआ था। मंदिर में वादिकाएं निरंतर संगीत प्रस्तुत करती रहती थीं, बड़ी-बड़ी मोमबत्तियां दिन-रात जलती रहती थीं और ताजा फूल चढ़ाये जाते थे। यह क्रम कभी नहीं टूटा था। पूरे भारत के राजा और अभिजात वर्गों के लोग सूर्य देव मंदिर में मूल्यवान वस्तुओं का दान करते थे। धर्मशालाएं स्थापित कर गरीबों और रोगियों को भोजन और औषधि प्रदान किए जाते थे। विभिन्न देशों से बहुधा हजारों की संख्या में लोग वरदान मांगने आते थे। सूर्य देव मंदिर के चारों ओर तालाब और उपवन थे जो अत्यन्त दर्शनीय थे।

इस राज्य से उत्तर-पूर्व में सात सौ से अधिक ली चलने के बाद मैं पर्वत राज्य आया। (यह राज्य उत्तरापथ में स्थित था)।

पर्वत राज्य

पर्वत राज्य की परिधि पांच हजार ली थी। राजधानी का घेरा बीस ली से अधिक था। राज्य में जनसंख्या बहुत अधिक थी। यह राज्य टक्क के अधीन था। यहां उच्च स्तरीय धान की खेती बहुत होती थी। भूमि दाल और गेहूं की खेती के लिए उपयुक्त थी। बारहों मास में जलवायु अनुकूल और समान रहती थी। राज्य के लोग ईमानदार और निष्कपट थे। स्थानीय निवासी स्वभाव से उग्र थे। उनकी वाणी कटु थी, किन्तु वे ज्ञान तथा शिल्प से युक्त थे। बौद्ध और तीर्थिक दोनों धर्मों के अवलंबी थे। दसेक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या एक हजार से अधिक थी। वे हीनयान और महायान दोनों का अध्ययन करते थे। राज्य में चार स्तूप थे जो सभी सम्राट अशोक द्वारा बनवाए गए थे। बीस देव-मंदिर थे और विभिन्न संप्रदायों के तीर्थिक मिल कर रहते थे।

एक. राजधानी के समीप का संघाराम

राजधानी के निकट एक बड़ा संघाराम था जिसमें एक सौ से अधिक भिक्षु रहते थे। वे महायानी थे। इसी संघाराम में शास्त्राचार्य जिनपुत्र ने "योगाचार्य भूमि सूत्र के भाष्य" लिखे थे और शास्त्राचार्य भद्ररुचि और गुणप्रभ ने प्रव्रज्या की थी। बिजली गिरने से इस संघाराम में आग लगी और वह जल कर राख हो गया।

सिंधु से दक्षिण-पश्चिम में एक हजार पांच-छः सौ ली चलने के बाद मैं औदुमबतिर पहुंचा। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

औदुमबतिर[1]

औदुमबतिर का घेरा पांच हजार ली से अधिक था। राजधानी का नाम कच्छेश्वर था। उसकी परिधि तीस ली से अधिक थी। राजधानी राज्य के पश्चिमी भाग में सिंधु नदी के तट पर स्थित थी। उसके सामने समुद्र फैला था। भवन बहुत सुंदर ढंग से बनाए

1. इस राज्य के संस्कृत नाम पर मतभेद है।

गए थे और उनमें प्रायः दुर्लभ वस्तुएं उपलब्ध थीं। वर्तमान काल में इस राज्य में कोई राजा नहीं था। वह सिंधु के अधीनस्थ था। भूमि नीची और आर्द्र थी एवं बहुधा क्षारयुक्त थी। ऊसर भूमि पर घास उगी रहती थी। खेती बहुत कम भूमि पर की जाती थी। धान की खेती भी होती थी, किन्तु दाल व गेहूं की उत्पादन-मात्रा अधिक थी। जलवायु में थोड़ी ठंडक थी और तेज तूफान आते रहते थे। गाय, बकरी, ऊंट और खच्चर आदि पशुओं के पालन के लिए स्थितियां अनुकूल थीं। स्थानीय निवासी कठोर और उग्र स्वभाव के थे। पढ़ने-लिखने में उनकी रुचि नहीं थी। भाषा मध्यदेश से थोड़ी भिन्न थी। लोग ईमानदार और निष्कपट थे और बौद्ध धर्म को मानते थे। यहां अस्सी से अधिक संघाराम थे, पांच हजार से अधिक भिक्षु थे। अधिकांश हीनयानी सम्मतीय थे। दस देव-मंदिर थे जिनमें अधिकांश पाशुपती रहते थे।

एक. महेश्वर मंदिर और बुद्ध संबंधी अवशेष

राजधानी में एक महेश्वर मंदिर था जिसके भवन-मण्डपों पर उत्कृष्ट तराशी का काम था। महेश्वर की प्रतिमा अलौकिक शक्ति प्रदर्शित करती रहती थी। जब यहां पाशुपत लोग आते तो इसी मंदिर में ठहरते थे। तथागत ने कई बार इस राज्य का भ्रमण किया था। उन्होंने सूत्र सुना कर और उपदेश दे कर प्राणियों को उपसंपन्न किया था तथा गृहस्थों का मार्गदर्शन किया था। अतः सम्राट अशोक ने तीर्थों पर छः स्तूप खड़े करवाए थे।

यहां से पश्चिम में बढ़ते हुए दो हजार ली से कम चलने के बाद मैं लंगल पहुंचा। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

लंगल[1]

लंगल पूर्व से पश्चिम तक एवं उत्तर से दक्षिण तक कई हजार ली के लम्बे क्षेत्र में फैला था। राजधानी का घेरा तीस ली से अधिक था। उसका नाम सम्भुरिश्वर[2] है। इस राज्य में भूमि उर्वर थी, फसलों की प्रचुर खेती होती थी। जलवायु और मान्यताएं तथा प्रथाएं औदुमबतिर के समान थीं। जनसख्या खासी घनी थी और यहां दुर्लभ वस्तुएं एकत्रित थीं। यह राज्य समुद्र के तट पर स्थित था और पश्चिमी नारी राज्य जाने का एक मार्ग था। राज्य में राजा नहीं था। विभिन्न शासक घाटियों में अलग-अलग अपना आधिपत्य

1. इस राज्य के संस्कृत नाम पर विद्वानों में मतभेद है।
2. इस राजधानी के संस्कृत नाम पर भी मतभेद है।

स्थापित कर एक दूसरे से स्वतंत्र थे, किन्तु वे सभी पारस के ग्रधीन थे। इस राज्य की लिपि मोटे तौर पर भारतीय ही थी, किन्तु बोली में थोड़ा ग्रन्तर था। लोग बौद्ध धर्म ग्रौर परधर्म दोनों को मानते थे। एक सौ से ग्रधिक संघाराम थे ग्रौर छः हजार से ग्रधिक भिक्षु थे। वे महायान तथा हीनयान दोनों का ग्रध्ययन करते थे। सैकड़ों देव-मंदिर थे ग्रौर पाशुपतियों की संख्या बहुत ग्रधिक थी। नगर में एक महेश्वर मंदिर था जिसकी वास्तुकला भव्य थी। पाशुपत संप्रदाय के ग्रनुयायी उसमें उपासना करते थे।

यहां से उत्तर-पश्चिम की ग्रोर बढ़ते हुए मैं पारस पहुंचा। (यह भारत का राज्य नहीं था। यात्रा के समय पारस के विषय में जो कुछ सुना था वह यहां लिपिबद्ध किया गया है)।

पारस

पारस का घेरा दसियों हजार ली था। राजधानी का नाम सुरस्थान था। उसकी परिधि चालीस ली से ग्रधिक थी। भूभाग विशाल था ग्रौर विभिन्न स्थानों की जलवायु भी भिन्न-भिन्न थी, किन्तु बहुधा वह शीतोष्ण रहती थी। खेत सींचे जाते थे ग्रौर स्थानीय निवासी समृद्ध थे। सोना, चांदी, तांबा, कांच, स्फटिक ग्रौर दुर्लभ व मूल्यवान रत्न-मणि उपलब्ध थे ग्रौर गलीचे व भूरे रंग के ऊनी कंबलों की बुनाई का काम ग्रत्यन्त उत्कृष्ट था। बड़ी संख्या में हृष्ट-पुष्ट घोड़े ग्रौर ऊंट पाले जाते थे। राज्य में चांदी का सिक्का चलता था। स्थानीय निवासी उग्र स्वभाव वाले, क्रोधी एवं ग्रशिष्ट थे। लिपि ग्रौर बोली दूसरे राज्यों से भिन्न थी। विद्याग्रों ग्रौर कलाग्रों का ग्रभाव था, परन्तु लोग शिल्प में कुशल थे। जो वस्तुएं यहां बनाई जाती थीं, वे पड़ोसी राज्यों में ऊंची कीमत पर बिकती थीं। विवाह में ग्रव्यवस्था थी। शव वीरान मैदानों में ही छोड़ दिए जाते थे। स्थानीय लोग लम्बे थे। बाल छोटे काट कर, सिर का ऊपरी भाग मुंड़ा दिया जाता था। उनके वस्त्र चमड़े ग्रौर ऊन से बने होते थे। प्रत्येक परिवार को कर देना पड़ता था ग्रौर प्रति व्यक्ति पर चार चांदी के सिक्के का कर लगता था। देव-मंदिरों की संख्या ग्रधिक थी, जहां सूर्य धर्म के ग्रनुयायी उपासना करते थे। यहां दो-तीन संघाराम थे ग्रौर कई सौ भिक्षु थे। वे हीनयान के सर्वास्ति-वादी थे। गौतम बुद्ध का भिक्षापात्र इस राज्य के प्रासाद में सुरक्षित था। इस राज्य के पूर्वी भाग में एक ग्रोमूर्स नगर स्थित था। उसका क्षेत्रफल तो विशाल नहीं था, परन्तु उसके बाह्य प्राचीर की परिधि साठ ली से ग्रधिक थी। उस नगर की जनसंख्या ग्रधिक थी ग्रौर लोग धनी थे।

पारस की उत्तर-पश्चिम सीमा से फ्रोम लगा था। फ्रोम की भूस्थिति ग्रौर प्रथाएं

पारस के समान ही थीं। लोगों की ग्राकृति ग्रौर भाषा थोड़ी भिन्न थी। वहां मूल्यवान वस्तुएं बहुत मिलती थीं ग्रौर समृद्धि भी थी।

फ्रोम के दक्षिण-पश्चिम में एक समुद्री द्वीप पर पश्चिमी नारी राज्य ग्रवस्थित था। वहां केवल स्त्रियां ही रहती थीं। कोई भी पुरुष नहीं था। इस राज्य में विभिन्न प्रदेशों की दुर्लभ वस्तुग्रों का भण्डार था। नारी राज्य फ्रोम के ग्रधीनस्थ था, इसलिए फ्रोम का राजा प्रति वर्ष वहां नारियों के संग के लिए पुरुष भेजता था। जो भी लड़का पैदा होता था, उसे परंपरा के ग्रनुसार बड़ा नहीं होने दिया जा सकता था।

ग्रौदुमबतिर से उत्तर की दिशा में सात सौ ली से ग्रधिक चलने के बाद मैं पाटासिल राज्य पहुंचा। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

पाटासिल[1]

पाटासिल की परिधि तीन हजार ली से ग्रधिक थी। राजधानी का घेरा बीस ली से ग्रधिक था। जनसंख्या ग्रधिक थी ग्रौर वर्तमान काल में कोई राजा नहीं था। यह राज्य सिंधु के ग्रधीनस्थ था। भूमि रेतीली ग्रथवा क्षारयुक्त थी। वहां ठंडी एवं तेज हवाएं चलती रहती थीं। दाल ग्रौर गेहूं की खेती ग्रधिक थी ग्रौर फल-फूलों की कमी थी। स्थानीय लोग वीर ग्रौर कठोर स्वभाव के थे ग्रौर उनकी भाषा मध्यदेश से भिन्न थी। विद्याग्रों ग्रौर कलाग्रों में उनकी रुचि नहीं थी, किन्तु वे श्रद्धापूर्वक बौद्ध धर्म को मानते थे। पचास से ग्रधिक संघाराम थे ग्रौर तीन हजार से ग्रधिक भिक्षु। वे सभी हीनयान के सम्मतीय थे। बीस से ग्रधिक देव-मंदिर थे, जिनमें रहने वाले सभी पाशुपती थे।

एक. राजधानी के उत्तर में ग्रवशेष

राजधानी से पन्द्रह-सोलह ली दूर उत्तर में घने जगलों में एक सैंकड़ों छि ऊंचा स्तूप था जिसे सम्राट ग्रशोक ने बनवाया था। स्तूप में बुद्ध के शरीरावशेष सुरक्षित थे। वह स्तूप समय-समय पर प्रकाश फेंकता रहता था। यह वही स्थल था जिसमें जब तथागत ऋषि बन कर जन्मे थे, उनकी इस राज्य के राजा द्वारा हत्या कर दी गई थी। इस स्थल से थोड़ी दूर पूर्व में एक पुराना संघाराम ग्रवस्थित था। यह महाकात्यायन ग्रर्हत द्वारा बनवाया गया था। उसके निकट चार भूत बुद्धों के ग्रासनों ग्रौर चंक्रमण का स्थान था ग्रौर उस पर स्मारक बनाया गया था।

1. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस राज्य का संस्कृत नाम पीतशैल होना चाहिए।

यहां से उत्तर-पूर्व में तीन सौ ली चलने के बाद मैं अवंड में प्रविष्ट हुआ। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

अवंड

अवंड की परिधि दो हजार चार-पांच सौ ली थी। राजधानी का घेरा बीसेक ली था। राज्य में कोई राजा नहीं था। वह सिंधु के अधीनस्थ था। यहां की भूमि फसल उपजाने के लिए अनुकूल थी। दाल और गेहूं की पैदावार अधिक होती थी। फल-फूल कम मिलते थे और घास एवं वृक्ष भी विरल ही थे। वर्ष भर जलवायु बहुधा ठंडी रहती थी और हवा चलती रहती थी। स्थानीय निवासी स्वभाव से रूखे और उग्र थे। उनकी बोली सीधी-सादी थी और वे अध्ययनशील नहीं थे। किन्तु वे बौद्ध धर्म के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। बीस से अधिक संघाराम थे और दो हजार से अधिक भिक्षु। वे अधिकांश हीनयान के सम्मतीय थे। यहां पांच देव-मंदिर थे जो सभी पाशुपत सम्प्रदाय के थे।

एक. विस्तृत वेणुवन के समीप के अवशेष

राजधानी के उत्तर-पूर्व में निकटस्थ विशाल वेणुवन में एक संघाराम का खण्डहर अभी भी दिखाई पड़ता था। यह वह स्थान था जहां तथागत ने भिक्षुओं को जूता पहनने की अनुमति दी थी। संघाराम के पास एक स्तूप था जिसे सम्राट अशोक ने बनवाया था। स्तूप का आधार भूमि के अन्दर धंस गया था किन्तु उसका ढूह फिर भी सौ छि से अधिक ऊंचा था। स्तूप के पास एक चैत्य था जिसमें कालापन लिए नीले रंग के पत्थर की एक खड़ी बुद्ध-मूर्ति सुशोभित थी। उपवास के दिन मूर्ति से कभी-कभी दिव्य प्रभा निकलती थी। चैत्य से आठ सौ कदम दूर दक्षिण में वेणुवन में एक अशोक स्तूप था। तथागत ने एक रात्रि उस वन में वास किया था। आधी रात को ठंड लगने पर उन्होंने तीनों चीवर ओढ़ लिए। जब सुबह हुई तो उन्होंने भिक्षुओं पर लगा वह प्रतिबंध हटा दिया जिसके अनुसार भिक्षुओं के लिए दुहरा चीवर पहनना मना था। वेणुवन में बुद्ध के चक्रमण का स्थान सुरक्षित था। बहुत से स्तूप शल्कों की भांति एक दूसरे से सटे दिखाई देते थे। इन्हीं स्थलों पर चार भूत बुद्धों के आसन थे। स्तूपों में तथागत के केश और नख रखे गए थे। उपवास के दिन वे प्राय: प्रकाश फेंकते थे।

यहां से उत्तर-पूर्व की दिशा में नौ सौ ली चलने के बाद मैंने वर्णु की सीमा मे प्रवेश किया। (यह राज्य पश्चिमी भारत में स्थित था)।

वर्णु

वर्णु की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। राजधानी का घेरा बीसेक ली था। जनसंख्या घनी थी। यह राज्य कापिशी के अधीनस्थ था। राज्य में घने जंगल और अनेक पर्वतमालाएं थीं। फसलों की खेती समय पर होती थी। बारह मास में जलवायु थोड़ी ठंडी रहती थी। लोग उग्र और हिंसक प्रवृत्ति के थे। वे निडर, क्रूर तथा नीच थे। बोलचाल मध्यदेश के समान थी और स्थानीय निवासी परधर्म और बौद्ध धर्म दोनों पर आस्था रखते थे। वे कलाओं में रुचि नहीं लेते थे। दसियों संघाराम थे पर उनमें से अधिकांश नष्ट हो चुके थे। तीन सौ से अधिक भिक्षु थे। वे अधिकांश महायानी थे। पांच देव-मंदिर थे। अधिकांश पाशुपत मत के थे।

राजधानी के दक्षिण में थोड़ी दूरी पर एक पुराना सघाराम था, जहां तथागत ने धर्मोपदेश देकर लोगों को उपसंपन्न किया था और उन्हें सुखी और जागृत बनाने के लिए प्रेरित किया था। संघाराम के समीप चार भूत बुद्धों के आसनों और चंक्रमण के अवशेष थे।

किंवदंती के अनुसार इस राज्य की पश्चिमी सीमा किकान राज्य से लगी थी। किकान पहाड़ों के बीच स्थित था। वहां राजा की जगह अनेक स्थानीय शासक थे। बकरी और घोड़े बड़ी संख्या में उपलब्ध थे। एक बढ़िया नस्ल का घोड़ा डोलडोल था जो अन्य राज्यों में भी दुर्लभ और बहुमूल्य माना जाता था।

यहां से उत्तर-पश्चिम की दिशा में ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों और लम्बी-चौड़ी नदियों को पार करने के बाद मैं एक छोटे कस्बे से गुजरा और फिर दो हजार ली से अधिक चलने के बाद उत्तरापथ से निकल कर जागुड पहुंचा।

खण्ड बारह

जागुड

जागुड राज्य की परिधि सात हजार ली से अधिक थी और इसकी राजधानी गजनी की परिधि तीस ली। वहां गजनी के क्षेत्रफल के बराबर ही गुजर नामक एक अन्य राजधानी भी थी। दोनों नगर दुर्लभ स्थानों पर स्थापित थे। राज्य में जहां पर्वत और नदियां थीं, वहां की भूस्थिति बहुत ऊंची थी जिससे खेतों में मिट्टी शुष्क रहती थी। उपजों की खेती समय पर होती थी। विशेष कर शीतकालीन गेहूं की तो वहां बाढ़ सी थी। वनस्पतियां हरी-भरी रहती थीं, फल-फूल प्रचुर मात्रा में मिलते थे। केसर की खेती के लिए उपयुक्त स्थितियां थीं और हींग का उत्पादन होता था। हींग हेलमुन्द नदी की घाटी में उगता था। गुजर नगर में कई जलस्रोत थे जिनसे निकलते हुए पानी को स्थानीय निवासी सिंचाई के काम में लाते थे और इस प्रकार उन्हें बड़ा लाभ होता था। जलवायु अत्यन्त ठंडी थी। तुषार और हिमपात बहुधा होता रहता था। लोग छिछोरे और उतावले थे और कभी-कभी चालें चलने में भी नहीं चूकते थे। वे कलाएं सीखने के लिए प्रयत्नशील रहते थे और शिल्प में कुशल थे। वे कार्यदक्ष परन्तु मंदबुद्धि थे। प्रति दिन वे सहस्रों शब्दों का पाठ कर सकते थे। लिपि और बोलचाल की भाषा अन्य राज्यों से भिन्न थीं। लोग शब्दाडंबर पर अधिक बल देते थे, जबकि ठोस काम करने में जी चुराते थे। यद्यपि वे देवों को पूजते थे, तथापि त्रिरत्न अर्थात बुद्ध, धर्मोपदेश और धर्मप्रणाली के प्रति भी श्रद्धालु थे। राज्य में सैकड़ों संघाराम थे और दस हजार से अधिक भिक्षु थे जो सब के सब महायानी थे। वर्तमान राजा सच्चरित्र था, बौद्ध धर्म में आस्था रखता था और राजवंश की परम्परा ग्रहण कर मुक्त हाथों से दान देता था। वे बुद्धिमान और अध्ययनशील भी थे। राज्य में सम्राट अशोक द्वारा स्थापित दस से अधिक स्तूप थे।

एक. शुन देव की पूजा

राज्य में दसियों देव-मंदिर थे। विभिन्न संप्रदायों के विधर्मी एक साथ घुल-मिल कर

रहते थे। उनमें तीर्थिकों की बहुलता थी और उनके अनुयायी भी बड़ी संख्या में थे। वे शुन देव की पूजा करते थे। शुन देव ने कापिशी राज्य के अरुणाचल से इस राज्य के दक्षिण भाग में आ कर शुनशिर में वास किया था। वे मनमानियां एवं अन्याय करते रहते थे। उनकी पूजा करने वालों का मनोरथ पूरा हो जाता था जबकि उनकी उपेक्षा करने वालों पर विपत्तियों का पहाड़ टूट गिरता था। अत: निकट एवं दूर के लोग उनकी पूजा करते रहते थे। सभी ऊंच-नीच लोग उनके आतंक के कारण उनका आदर करते थे। पड़ोसी राज्यों के राजा-महाराजा, मंत्री, पदाधिकारी और प्रजा प्रति वर्ष निश्चित मुहूर्त पर बिना बुलाए वहां एकत्रित हो जाते थे। वे सोना, चांदी और अनोखे मणि-माणिक अथवा बकरी, घोड़ा आदि पालतू पशु ले कर देव को चढ़ा कर अपनी श्रद्धा प्रकट करते थे। अत: इस राज्य में यत्र-तत्र सोना एवं चांदी पाए जाते थे और घाटियां बकरियों और घोड़ों से भरी रहती थीं, परन्तु किसी को भी उन पर हाथ डालने का साहस नहीं था। वे बड़ी श्रद्धा से शुन देव की पूजा करते थे। तीर्थिकों की पूजा करने वालों और घोर तपस्या करने वालों को शुन देव तंत्र-मंत्र सिखाते थे। इन तंत्र-मंत्रों का प्रभाव बहुधा पड़ता था। इन मंत्रों से रोगियों का उपचार किए जाने पर अनेक रोगी पुन: स्वस्थ हो जाते थे।

यहां से उत्तर की ओर कोई पांच सौ ली लम्बी यात्रा कर मैं वर्दस्थान पहुंचा।

वर्दस्थान[1]

वर्दस्थान राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई दो हजार ली लम्बा था और दक्षिण से उत्तर तक प्राय: एक हजार ली चौड़ा। राजधानी का नाम हूपियन[2] था एवं उसकी परिधि बीसेक ली थी। उपज एवं प्रथाएं जागुड राज्य के समान थीं, परन्तु भाषाओं में भेद था। जलवायु शीतल थी और लोग स्वभाव से कठोर एवं उग्र थे। राजा तुर्क था। वह त्रिरत्न में विश्वास करता था, बौद्ध धर्म का अनुमोदन करता था तथा सच्चरित्र भिक्षुओं का आदर करता था।

बालसेन पर्वतश्रृंखला[3]

वर्दस्थान से उत्तर-पूर्व की दिशा में बढ़ते हुए मैं नदियों एवं पर्वतों को पार करते हुए

1.2. इस राज्य और उसकी राजधानी के नामों को ले कर विद्वानों में मतभेद है।
3. इसका नाम भी सुनिश्चित नहीं है और वरसेन भी हो सकता है।

कापिशी के दसियों सीमावर्ती नगरों एवं छोटे-छोटे कस्बों से गुजरा और अन्त में हिमगिरि बालसेन पर्वतश्रृंखला तक जा पहुंचा। यह पर्वतश्रृंखला अत्यन्त ऊंची थी। सीधी चट्टानों पर बनी सीढ़ियां ऐसी लगती थीं मानों वे अभी गिर पड़ेंगी। पगडंडियां पर्वतों पर चक्कर काटती हुई और खड़ी चट्टानों पर बल खाती हुई कभी नीचे घाटियों में उतर जातीं, तो कभी ऊपर ऊंचे कगारों पर चढ़ जाती थीं। मध्य ग्रीष्म में भी यत्र-तत्र हिम जमा पाया जाता था और यात्रियों को हिम की कड़ी परतों को तोड़-तोड़ कर आगे बढ़ना पड़ता था। यात्री तीन दिन तक कठिन यात्रा करने के पश्चात् ही चोटी पर चढ़ पाते थे। चोटी पर प्रचण्ड ठंडी हवा चलती रहती थी। जमा हुआ हिम घाटियों को पाट देता था। किसी भी यात्री के लिए चोटी पर देर तक रुकना असंभव था। यहां तक कि चीलें भी यहां आ कर चक्कर मारती रह जाती थीं और चोटी पार न कर सकती थीं। वे उतर कर पृथ्वी पर गिरती-पड़ती चलती हुई चोटी के उस पार जाती थीं और फिर पंख फड़फड़ाती हुई उड़ जाती थीं। चोटी से नीचे दृष्टि डालने पर पर्वत मिट्टी के ढेर जैसे छोटे-छोटे लगते थे। दक्षिण जम्बूद्वीप में यह चोटी सर्वाधिक ऊंची थी। उस पर पेड़-पौधे न थे। चट्टानों के ढेर ही दीखते थे, जिनमें से कुछ सीधे और कुछ तिरछे खड़े थे। देखने पर वे घने वन जैसे लगते थे। फिर तीन दिन तक चलने पर ही यात्री तलहटी में पहुंच पाते थे और अंदराब राज्य की सीमा में प्रविष्ट होते थे।

अंदराब

अंदराब राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की सीमा के अन्दर अवस्थित था। उसकी परिधि तीन हजार ली के लगभग थी और राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह ली। राज्य में राजा न था और वह तुर्कों के अधीनस्थ था। राज्य में पर्वतों एवं टीलों की श्रृंखलाएं फैली हुई थीं और तराई के क्षेत्र संकीर्ण थे। जलवायु अत्यधिक शीतल थी एवं हिमपात के साथ प्रचण्ड आंधी चलती थी। उपजों का उत्पादन बहुत होता था तथा फल-फूलों की खेती के लिए उपयुक्त स्थितियां थीं। लोग स्वभाव से निष्ठुर एवं क्रोधी थे। उनका कोई नीति-दर्शन न था। उन्हें ज्ञात न था कि क्या पाप है और क्या पुण्य। वे बौद्ध मतों के अध्ययन को महत्व न देते थे और देव-मंदिरों में ही जा कर पूजा करते थे। पूरे राज्य में मात्र तीन संघाराम और दसियों भिक्षु थे। सभी भिक्षु महासांघिक थे। एक संघाराम के निकट एक स्तूप था जो सम्राट अशोक ने बनवाया था।

यहां से उत्तर-पश्चिम में बढ़ते हुए मैं एक घाटी में पहुंचा। फिर पर्वतों को पार कर कुछ छोटे-छोटे नगरों से गुजरा। इस प्रकार चार सौ ली से अधिक लम्बी पद-यात्रा के उपरांत

ही खोस्त पहुंचा।

खोस्त

खोस्त राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की सीमा में स्थित था। उसकी परिधि एक हजार ली से कम थी और राजधानी की परिधि कोई दस ली। खोस्त में राजा नहीं था एवं राज्य तुर्कों के अधीन था। राज्य में पर्वत ही पर्वत थे एवं मैदान संकीर्ण थे। वायु चलती रहती थी एवं उसमें शीतलता थी। उपजों का उत्पादन बहुत होता था एवं फल-फूलों की प्रचुरता थी। लोग निष्ठुर एवं क्रोधी थे। कोई विधि न थी। राज्य में तीन संघाराम थे और भिक्षु इने-गिने ही थे।

यहां से उत्तर-पश्चिम की दिशा में पर्वतों व घाटियों को पार कर कुछ छोटे-बड़े नगरों से हो कर मैंने तीन सौ ली लम्बी यात्रा के पश्चात् वरवालीज की सीमा में प्रवेश किया।

वरवालीज[1]

वरवालीज राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य में स्थित था। उसकी परिधि कोई दो हजार ली थी एवं राजधानी की परिधि बीसेक ली। राज्य का अपना शासक न था। वह तुर्कों के अधीन था। भूमि समतल थी। उपजों की खेती समय पर होती थी। वनस्पतियां बहुतायत से होती थीं। अनोखे फल-फूल जहां-तहां पाए जाते थे। जलवायु नम थी। लोग सीधे-सादे परन्तु उग्र स्वभाव के थे। वे ऊनी वस्त्र पहनते थे। अधिकांश लोग त्रिरत्नों की पूजा करते थे। कुछ अल्पसंख्यक ही देवों के भक्त थे। दस से अधिक संघाराम थे और भिक्षुओं की संख्या कई सौ थी। वे महायान एवं हीनयान दोनों का अध्ययन करते थे। राजा तुर्क था और वह दरबंद-ए-आहनीन के दक्षिण में स्थित छोटे-छोटे राज्यों पर शासन चलाता था। वे प्रवासी पक्षियों की भांति अपने वास-स्थान बदलते रहते थे और किसी एक बस्ती में स्थाई रूप से नहीं बसते थे।

प्लांडु पर्वतमाला

यहां से पूर्व की दिशा में चलते हुए मैं प्लांडु पर्वतमाला तक पहुंच गया। यह पर्वतमाला दक्षिण जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित थी। दक्षिण में वह बृहद हिमगिरि से जुड़ी हुई थी,

---

1. इसका दूसरा नाम वाल्वालिज भी था।

उत्तर में इसिक कुल एवं बिंगयुल तक फैली हुई थी, पश्चिम में वरवालीज श्रौर पूर्व में उशर तक समाप्त होती थी। यह पर्वतमाला पूर्व से पश्चिम तक एवं दक्षिण से उत्तर तक दोनों दिशाश्रों में सहस्रों ली लम्बी थी। यह वास्तव में सैकड़ों पहाड़ों एवं ऊंची चोटियों की श्रृंखला थी। इसकी गहन एवं श्रगम्य घाटियों में वर्षों से हिम जमा रहता था श्रौर शीतल वायु का वेग श्रत्यधिक प्रचण्ड था। यहां प्याज का प्रचुर उत्पादन होता था, श्रतएव पर्वतमाला का नाम प्लांडु पर्वतमाला पड़ गया। एक श्रन्य मान्यता के श्रनुसार यहां की ढलानें प्याज के पौधों की सी हरियाली से ढंकी रहती थीं, इसलिए पर्वतमाला का यह नाम रखा गया था।

यहां से पूर्व की दिशा में कोई सौ ली चलने के श्रनंतर मैं मुंजान पहुंचा।

मुंजान

मुंजान राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की भूमि पर स्थित था। उसकी परिधि चार सौ ली से श्रधिक थी श्रौर राजधानी की परिधि पन्द्रह-सोलह ली। उपजें एवं प्रथाएं प्रायः वरवालीज के समान थीं। राज्य का श्रपना शासक न था श्रौर वह तुर्कों के श्रधीनस्थ था।

यहां से उत्तर की श्रोर बढ़ते हुए मैंने श्राहंन की सीमा में प्रवेश किया।

श्राहंन

श्राहंन राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की भूमि पर स्थित था। उसकी सीमाएं वंक्षु नदी के दोनों तटों के साथ-साथ बढ़ जाती थीं। उसकी परिधि तीन सौ ली से श्रधिक थी एवं राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह ली। उपजें एवं प्रथाएं प्रायः वरवालीज से मिलती-जुलती थीं।

यहां से पूर्व में चलते हुए मैं राहुल पहुंच गया।

राहुल

राहुल राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की भूमि पर श्रवस्थित था। उसके उत्तर में वंक्षु नदी थी श्रौर उसकी परिधि कोई दो सौ ली थी। राजधानी की परिधि चौदह-पन्द्रह ली थी। उपजें व प्रथाएं प्रायः वरवालीज के समान ही थीं।

मुंजान से पूर्व में ऊंचे पर्वतों और गहन घाटियों को पार कर मैं तराई क्षेत्रों में अनेक नगरों से गुजरा और तीन सौ ली की पद-यात्रा के उपरांत किश्म पहुंचा।

किश्म

किश्म राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की सीमा के भीतर स्थित था। उसकी सीमा पश्चिम से पूर्व तक एक हजार ली के लगभग थी और दक्षिण से उत्तर तक तीन सौ ली से अधिक। राजधानी की परिधि पन्द्रह-सोलह ली थी। उपजें व प्रथाएं बहुधा मुंजान के समान थीं, परन्तु लोग स्वभाव से निष्ठुर एवं क्रूर थे। दोनों राज्यों में यही मुख्य अन्तर था।

उत्तर-पूर्व की ओर चलते हुए मैं पारघर की सीमा में प्रविष्ट हुआ।

पारघर

पारघर राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की भूमि पर स्थापित था। उसकी सीमा पश्चिम से पूर्व तक सौ ली से अधिक थी और दक्षिण से उत्तर तक तीन सौ ली से अधिक। राजधानी की परिधि बीस ली के लगभग थी। उपजें एवं प्रथाएं बहुधा किश्म से मिलती-जुलती थीं।

किश्म से पूर्व की दिशा में बढ़ते हुए पर्वतों व घाटियों को पार कर तीन सौ ली से अधिक लम्बी यात्रा के पश्चात् मैं हिमतल की सीमा में प्रविष्ट हुआ।

हिमतल

हिमतल राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की सीमा के भीतर स्थित था। उसकी परिधि तीन हजार ली थी। हिमतल राज्य में पर्वतमालाएं फैली हुई थीं। भूमि उर्वर थी, जो अनाजों की खेती के लिए उपयुक्त थी। शीतकालीन गेहूं का अत्यधिक उत्पादन होता था। नाना प्रकार के फूल प्रचुरता से पाए जाते थे। सभी जातियों के फल भी बहुतायत से मिलते थे। जलवायु अत्यन्त शीतल थी। लोग उग्र स्वभाव के थे। उन्हें पाप-पुण्य का ज्ञान नहीं था। वे कुरूप होते थे। उनकी चाल-ढाल और चमड़े एवं मोटे कपड़े के वस्त्र तुर्कों से बहुत मिलते-जुलते थे। विवाहित स्त्रियां सिर पर काष्ठ के सींग पहनती थीं। सींग तीन छि से अधिक ऊंचे होते थे और उसकी दो शाखाएं होती थीं, जो क्रमशः ससुर एवं सास का

प्रतिनिधित्व करती थीं। ऊपरी शाखा ससुर की प्रतीक होती थी और निचली शाखा सास की। सास-ससुर में से किसी एक का देहावसान हो जाने पर तद्नुरूप एक शाखा काट दी जाती थी। यदि सास-ससुर दोनों का निधन हो जाता, तो सींग सहित टोपी उतार फेंक दी जाती थी।

हिमतल अतीत में एक शक्तिशाली राज्य था। राजा शाक्य वंश का था और उसने पामीर के पश्चिम में अनेक राज्यों को अपने अधीन कर लिया था। चूंकि इस राज्य की सीमा के उस पार तुर्क ही थे, इसलिए इसकी प्रजा तुर्कों की रीतियों से प्रभावित थी। हिमतल अपनी ही शक्ति के भरोसे अपनी सीमाओं को तुर्कों के अतिक्रम एवं लूट-पाट से सुरक्षित रखता था। यही कारण था कि इसकी प्रजा इधर-उधर मारी-मारी फिरती थी और पर-देशों में बिखर कर बसी हुई थी। जो दसियों अभेद्य नगर सुरक्षित रह सके थे, उनके अपने-अपने शासक थे। लोग कंबलों के तंबुओं में रहते थे और विभिन्न स्थानों में स्थानान्तरित हुआ करते थे। हिमतल की पश्चिम सीमा किश्म से लगी हुई थी।

पूर्व की घाटियों में दो सौ ली से अधिक चलने पर मैं बदख्शान पहुंचा।

बदख्शान

बदख्शान राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की ही भूमि पर स्थित था। उसकी परिधि दो हजार ली के लगभग थी। राजधानी एक पर्वत की ढलान पर स्थापित थी और उसकी परिधि छः-सात ली थी। राज्य में पर्वतश्रृंखलाएं फैली हुई थीं और यत्र-तत्र रेत व कंकड़ पाए जाते थे। भूमि दलहन व गेहूं की खेती के लिए उपयुक्त थी। अंगूर, अखरोट, नाशपाती एवं वन्य सेवों का बहुत उत्पादन होता था। जलवायु अत्यन्त शीतल थी। लोग कर्मठ तथा पराक्रमी थे। नीति शिष्ट नहीं थी। लोग कलाएं सीखना नहीं जानते थे। वे कुरूप होते थे और उनके वस्त्र अधिकांशतः ऊनी कपड़ों से बने हुए होते थे। राज्य में तीन-चार संघाराम थे और कुछ ही भिक्षु थे। राजा सदाचारी था और त्रिरत्न में श्रद्धा रखता था।

यहां से दक्षिण-पूर्व में आगे बढ़ते हुए मैं घाटियों में दो सौ ली चलने के पश्चात् यमगान पहुंचा।

यमगान[1]

यमगान राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य की भूमि पर अवस्थित था। उसकी परिधि एक

1. इस राज्य का दूसरा नाम हमकान भी था।

हजार ली से अधिक थी और राजधानी की परिधि दसेक ली। राज्य में पर्वत ही पर्वत फैले हुए थे और मैदान एवं खेत संकीर्ण थे। उपजे, जलवायु व लोगों का स्वभाव सभी बदख्शान के समान थे, मात्र भाषा में थोड़ा अन्तर था। राजा क्रूर व निष्ठुर था और भले-बुरे में भेद करने में असमर्थ था।

यहां से दक्षिण-पूर्व में मैंने पर्वतों व घाटियों को पार किया। घाटियों में पगडंडियां संकटमय थीं। तीन सौ ली की पद-यात्रा के उपरांत मैं कुरान पहुंचा।

कुरान

कुरान राज्य भूतपूर्व तुखार राज्य में स्थित था। उसकी परिधि कोई दो हजार ली थी। उसकी प्राकृतिक स्थिति एवं जलवायु यमगान के समान थीं। राज्य में विधि-नियम नहीं थे। लोग लोभी एवं उग्र थे। अधिकतर लोग पुण्य-फलों की प्राप्ति के लिए भगवान बुद्ध की पूजा करना नहीं जानते थे। कतिपय लोग बौद्ध धर्म को मानते थे। उनका रूप भद्दा था और उनके अधिकांश वस्त्र ऊनी होते थे। एक पर्वत में स्वर्ण सार का समृद्ध भण्डार था। इसे खनिज पत्थरों को तोड़ कर प्राप्त किया जाता था। राज्य में कुछ ही संघाराम थे और भिक्षु भी इने-गिने ही थे। राजा सदाचारी था और त्रिरत्न में श्रद्धा रखता था।

यहां से उत्तर-पूर्व की दिशा में पर्वतों व घाटियों को पार करते हुए कठिन व संकटमय रास्ते पर पांच सौ ली चलने के उपरांत मैं दर-ए-मस्तित पहुंचा।

दर-ए-मस्तित[1]

दर-ए-मस्तित राज्य दो पर्वतमालाओं के मध्य स्थित था। उसका क्षेत्र भी भूतपूर्व तुखार राज्य के भीतर था। यह राज्य पूर्व से पश्चिम तक कोई एक हजार पांच सौ ली लम्बा और दक्षिण से उत्तर तक चार-पांच ली चौड़ा था। सबसे संकीर्ण भाग तो एक ली से भी कम चौड़ा था। राज्य की भूमि वंक्षु नदी के साथ-साथ बल खाती हुई फैली हुई थी तथा टीलों के साथ-साथ कभी ऊंची, कभी नीची होती रहती थी। वायु के साथ रेत व कंकड़ चारों ओर फैल जाते थे। जलवायु ठंडी थी। मात्र गेहूं एवं दलहन की खेती होती थी। वृक्ष कहीं-कहीं दिखाई पड़ते थे और कोई फल-फूल न था। यहां बढ़िया जाति के घोड़ों का उत्पादन होता था। घोड़ों की काया बड़ी तो नहीं थी, परन्तु वे लम्बी यात्रा के

1. किसी विद्वान की मान्यता है कि इसका नाम संस्कृत में धर्मस्थिति होना चाहिए।

लिए सक्षम होते थे। प्रथाओं में शिष्ट नीति नहीं थी और लोगों का स्वभाव खुला एवं उग्र था। उनका रूप भद्दा था और उनके वस्त्र ऊनी होते थे। अधिकतर लोगों की आंखों का रंग हरितमणि का सा था। यह उनकी अन्य राज्यों से एक अलग विशेषता थी। राज्य में दस से कुछ अधिक संघाराम थे। भिक्षु बहुत कम थे।

एक. खम्दाध नगर का संघाराम

खम्दाध दर-ए-मस्तित की राजधानी था। उसमें एक संघाराम था जिसका निर्माण भूतपूर्व राजा ने करवाया था। पर्वत पर चट्टानों को खोद कर और घाटी को पाट कर ही इस संघाराम के भवन एवं कक्ष खड़े किए गए थे। प्रारंभ में यह राज्य बौद्ध धर्म की पहुंच से बाहर था और देवों की ही पूजा करता था। कुछ शताब्दी पूर्व ही इस राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार होने लगा था। उस समय राजा का प्यारा पुत्र रोगग्रस्त हो गया था। राजा ने उसे रोगमुक्त करने के लिए भरपूर प्रयास किए, परन्तु विफल रहा। पुत्र की स्थिति बिगड़ती गई। तब राजा ने देव-मंदिर जा कर देवों से अपने पुत्र के प्राण बचाने की प्रार्थना की। देव-मंदिर के महंत ने देवों की ओर से वरदान दिया : "तुम्हारा पुत्र अवश्य पुनः स्वस्थ हो जाएगा। तुम्हें चिंतित रहने की आवश्यकता नहीं।" यह सुन कर राजा निश्चिंत व प्रसन्न हुआ और अपने प्रासाद रवाना हुआ। रास्ते में उसका एक श्रमण से सामना हुआ जिसका रूप, रंग व आचरण ध्यानाकर्षक था। इस श्रमण की चाल-ढाल व पहनावा राजा को अनोखा सा लगा। राजा ने उससे पूछा : "आप किधर से आए हैं ?" यह श्रमण अर्हत्व प्राप्त था। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए ही उसने ऐसा रूप धारण कर लिया था। उसने राजा के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा : "मैं तथागत का शिष्य हूं अर्थात् भिक्षु कहलाता हूं।" राजा जो अपने पुत्र के रोग के कारण चिंतातुर था, बोला : "मेरा पुत्र रोगशय्या पर पड़ा है। अभी ज्ञात नहीं हो सका है कि वह बच जाएगा कि नहीं।" श्रमण बोला : "महाराज, आपके पूर्वजों की आत्माओं को तो वापस बुलाया जा सकता है, परन्तु आपका पुत्र नहीं बचेगा।" राजा ने कहा : "देवों ने कहा है कि वह नहीं मरेगा, और यह श्रमण कह रहा है कि उसके प्राणों का अंत अवश्य हो जाएगा। यह गृहस्थों को भ्रम में डाल रहा है। भला उसकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?" वह चितारहित हो अपने प्रासाद में लौटा। परन्तु तब तक उसका पुत्र मर चुका था। राजा ने अपने पुत्र की मृत्यु की बात को गुप्त रख उसका अंतिम संस्कार नहीं किया। वह फिर देव-मंदिर के महंत के पास गया। महंत अपनी बात पर अड़ा रहा: "वह नहीं मरेगा, बल्कि अवश्य नीरोग हो जाएगा।" यह सुन कर राजा क्रोधित हो उठा। उसने महंत को रस्सी से बंधवा कर उसके पाप गिनाते

हुए कहा : "तुम लोग परस्पर साठ-गांठ कर अत्याचार और अन्याय करते फिरते हो। मेरे पुत्र की मृत्यु हो चुकी है, और तुम फिर भी बकते जा रहे हो कि वह रोग से छुटकारा पा लेगा। तुम तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर लोगों को झांसे में डालने की इतनी धृष्टता कर रहे हो। यह नितांत असहनीय है। इस महंत को मृत्युदण्ड देना होगा तथा इस देव-मंदिर को भी गिराना होगा।" तब महंत को मार डाला गया और देव-मूर्ति को तोड़ कर वंक्षु नदी में बहा दिया गया। जब राजा अपने प्रासाद की ओर जा रहा था, तब रास्ते में वह उस श्रमण से फिर मिला। उसके मन में श्रमण के प्रति आदर-भाव उत्पन्न हुआ। उसने श्रमण को प्रणाम किया और क्षमा मांगते हुए कहा : "अतीत में किसी विवेकी सत्पुरुष से उपदेश ग्रहण करने का अवसर न पा सकने के कारण मैं वर्षों से कुपथ पर भटक रहा हूं। यद्यपि उथलेपन का दोष वर्षों से बना रहा है, तथापि मैं प्रार्थना करता हूं कि आप कृपया मेरे प्रासाद में जाने का कष्ट करें।" श्रमण राजा की प्रार्थना स्वीकार कर उसके साथ प्रासाद गया। राजा ने अपने पुत्र का अंतिम संस्कार कर देने के उपरांत श्रमण से कहा : "मनुष्य लोक में नाना विवाद उठते ही रहते हैं एवं प्रव्रजन होता ही रहता है। जब मेरा पुत्र रोग से पीड़ित था, तब मैंने देवों से पूछा था कि उसके जीवन का दीपक बुझेगा कि नहीं, और देवों ने मुझे यह झूठा विश्वास दिलाया था कि वह रोग से अवश्य मुक्ति पाएगा। सौभाग्यवश मुझे आप से उपदेश ग्रहण करने का अवसर मिला, और आप की भविष्यवाणी सत्य भी निकली। इससे सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्म में विश्वास किया जा सकता है। अब आप से यही विनती है कि आप करुणा कर मुझ जैसे पथभ्रष्ट शिष्य का दिग्दर्शन करें।" राजा के अनुरोध पर श्रमण ने संघाराम के निर्माण की योजना बनाई। फिर नियमानुसार यह संघाराम स्थापित कर दिया गया। तब से ही इस राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार होने लगा। संघाराम में इस अर्हंत के लिए एक चैत्य भी निर्मित किया गया।

इस संघाराम के एक वृहद चैत्य में एक ऐसी प्रस्तर बुद्ध-प्रतिमा सुशोभित थी जिस पर स्वर्ण एवं ताम्र से बने चक्र लटके हुए थे। चक्र नाना मणियों से जड़ित थे। जब भक्त लोग बुद्ध-प्रतिमा की प्रदक्षिणा करते, तब ये चक्र भी घूमने लगते थे। प्रदक्षिणा समाप्त हो जाने पर चक्र भी रुक जाते थे। यह सचमुच एक अनोखी बात थी। स्थानीय वृद्धों का कहना था कि इस पर दो मत थे। कुछ लोगों की मान्यता थी कि यह भगवान बुद्ध का वरदान है। अन्य कुछ लोगों का विचार है कि इस में गोपनीय रूप से कोई यंत्र लगाया हुआ है। मैंने देखा कि इस संघाराम के सभी भवन व कक्षों की भीत प्रस्तर से बनी और अत्यन्त पक्की थी। उपर्युक्त दोनों मतों पर विचार करने के उपरांत भी मैं निश्चित न कर सका कि उनमें से कौन-सा मत सत्य था।

इस राज्य की पर्वतशृंखलाओं को पार कर उत्तर की दिशा में बढ़ते हुए मैं सिकनी पहुंचा।

सिकनी[1]

सिकनी राज्य की परिधि कोई दो हजार ली थी और राजधानी की परिधि पांच-छः ली। राज्य में पर्वत ही पर्वत दिखाई देते थे और यत्र-तत्र रेत व कंकड़ फैले हुए थे। दलहन व गेहूं का उत्पादन होता था। अन्य उपजों का उत्पादन कम था। वृक्ष विरल ही देखने को मिलते थे और फल-फूल बहुत थोड़े थे। जलवायु अत्यन्त ठंडी थी। लोग निष्ठुर एवं साहसी थे। वे मार-काट में निर्दय होते थे और विशेष रूप से चोरी करने में लगे रहते थे। वे कोई नीति-दर्शन नहीं मानते थे और न ही पाप-पुण्य में भेद कर सकते थे। वे भावी शुभाशुभ में अंधविश्वास करते थे तथा वर्तमान विपत्तियों से डरते थे। उनका रंगरूप भद्दा था और वस्त्र ऊनी होते थे। लिपि तुखार की लिपि के समान थी, लेकिन बोलचाल की भाषा में कुछ अंतर था।

दर-ए-मस्तित में स्थित पर्वतश्रृंखला के उस पार दक्षिण की दिशा में शाङ्मी अवस्थित था।

शाङ्मी[2]

शाङ्मी राज्य की परिधि दो हजार पांच-छः सौ ली थी। राज्य में मैदानी क्षेत्रों के बीच में उत्तुंग पर्वत खड़े दिखाई देते थे। भूस्थिति टीलों व पहाड़ियों के साथ-साथ कभी ऊंची, कभी नीची होती रहती थी। सभी प्रकार की उपजों की खेती होती थी और शीतकालीन गेहूं की तो विशेष कर बाढ सी होती थी। अंगूर का उत्पादन अत्यधिक होता था। मैनसिल पाई जाती थी। पर्वतों पर चट्टानों को तोड़ कर ये खनिज पदार्थ मिल सकते थे। इस राज्य का पर्वत-देवता निर्दय था और उत्पात मचाया करता था। जब लोग उस पर बलि चढ़ाने पर्वतीय क्षेत्र में जाते थे, तब तो वे सुरक्षित रूप से आ-जा सकते थे, अन्यथा वह अचानक आंधी उठा देता था या फिर ओले बरसाता था। जलवायु बहुत ठंडी थी। लोग उग्र स्वभाव के परन्तु सदाचारी थे। प्रथाओं में शिष्ट नीति न थी। लोगों की बुद्धि मंद और कुशलता नीची थी। लिपि तुखार के समान थी, जबकि बोलचाल की भाषा में अंतर था। लोग अधिकांशतः ऊनी कपड़े पहनते थे। राजा शाक्य वंश का था और बौद्ध धर्म मानता था। उसके प्रभाव में आ कर सभी लोग भक्त बने थे। राज्य में दो ही संघाराम

---

1. इसका अन्य एक नाम शुघना भी है।
2. इस राज्य का नाम चीनी उच्चारण के अनुरूप दिया गया है।

थे और भिक्षु इने-गिने थे।

पामीर घाटी

शाङ्मी की उत्तर-पूर्व सीमा से निकल कर मैं दुर्गम रास्तों से पर्वतों एवं घाटियों को पार कर सात सौ ली लम्बी यात्रा करने पर पामीर घाटी पहुंच गया। पामीर घाटी पूर्व से पश्चिम तक कोई एक हजार ली लम्बी और दक्षिण से उत्तर तक लगभग सौ ली चौड़ी थी। उसका सर्वाधिक संकीर्ण भाग दस ली से कम चौड़ा था। घाटी दो हिमाच्छादित पर्वतों के मध्य स्थित थी, अतः ठंडी हवा वेगपूर्वक चलती रहती थी। वसन्त और ग्रीष्म में भी हिमपात होता था और दिन-रात बवंडर उठता रहता था। भूमि क्षारयुक्त थी और सभी ओर कंकड़ ही कंकड़ बिखरे पड़े थे। बोए जाने पर बीज अंकुरित न हो सकते थे। वनस्पतियां कम ही देखने को मिलती थीं। यह ऊसर धरती नितान्त निर्जन थी।

घाटी में एक बृहद नागताल था। उसका घेरा पूर्व से पश्चिम तक कोई तीन सौ ली और दक्षिण से उत्तर तक कोई पचास ली था। ताल प्लांडु पर्वत के केंद्र अर्थात जम्बूद्वीप के मध्य में सर्वाधिक ऊंचाई पर स्थित था। ताल का जल कांच की भांति निर्मल था और उसकी थाह लेना असंभव था। जल का रंग नीलापन लिए श्याम था और स्वाद मीठा था। जल की गहराइयों में मछली, नाग, कछुए एवं अन्य अद्भुत जल-जन्तु वास करते थे और जल की सतह पर चकवा, जंगली बत्तख, हंस एवं सारस इत्यादि जल-पक्षी तैरते दीखते थे। पक्षियों के बड़े-बड़े अंडे और पक्षियों के बच्चों के निकलने के उपरांत गिरे खोल वीरान भूमि, दलदल अथवा पुलिनों पर बिखरे पड़े रहते थे। इस ताल से पश्चिम में एक बड़ी नदी निकलती थी। यह नदी पश्चिम की दिशा में बहती हुई दर-ए-मस्तित के पूर्व में पहुंच कर वंक्षु नदी में मिल जाती थी और फिर पश्चिम की ओर बहती थी। अतएव ताल के दाईं ओर की सभी जल-धाराएं पश्चिम की ओर प्रवाहित होती थीं। ताल से पूर्व में भी एक बड़ी नदी निकलती थी, जो उत्तर-पूर्व की दिशा में बहती हुई काशगर के पश्चिम में पहुंच कर शीत नदी में मिल जाती थी और फिर पूर्व की ओर मुड़ती थी। अतएव ताल के बाईं तरफ की सभी जल-धाराएं पूर्व की दिशा में प्रवाहित होती थीं।

पामीर घाटी से दक्षिण में ऊंचे-ऊंचे पर्वतों के उस पार बलूर राज्य स्थित था। उस राज्य में सोने और चांदी का उत्पादन बहुत होता था। सोने का रंग इतना शुद्ध था कि वह अग्नि की भांति लाल दीखता था।

पामीर घाटी के मध्य भाग से उसके दक्षिण-पूर्व भाग की ओर जाते समय दुर्गम पर्वतीय

मार्गों पर चलते हुए मैंने कहीं कभी कोई बस्ती नहीं देखी। मात्र दूर क्षितिज तक फैला जमा हुआ हिम ही दिखाई दिया। पांच सौ ली चलने पर मैंने तशकुरगान में प्रवेश किया।

तशकुरगान

तशकुरगान राज्य की परिधि कोई दो हजार ली थी। उसकी राजधानी एक शैल पर स्थापित थी। उसके पीछे शीत नदी थी। परिधि बीस ली से कुछ अधिक थी। राज्य में पर्वतमालाएं फैली हुई थीं और तराई के क्षेत्र एवं खेत संकीर्ण थे। दलहन एवं गेहूं का उत्पादन बहुत होता था, परन्तु अन्य उपजें कम मिलती थीं। वृक्ष थोड़े थे और फल-फूलों का अभाव था। भूमि चाहे ऊंची हो या नीची, सभी ऊसर थी। यहां तक कि नगर एवं कस्बे भी प्रायः निर्जन थे। प्रथा में शिष्ट नीति न थी। लोग कलाएं कम ही सीखते थे। वे स्वभाव से निष्ठुर थे और हृष्ट-पुष्ट थे। उनका रूप भद्दा था और वस्त्र ऊनी होते थे। उनकी लिपि व बोलचाल की भाषा काशगर के समान थीं। वे भगवान बुद्ध के भक्त थे और बौद्ध धर्म में श्रद्धा रखते थे। समूचे राज्य में दस से अधिक संघाराम थे और पांच सौ से अधिक भिक्षु। भिक्षु हीनयानी सर्वास्तिवादी थे।

एक. राज्य की स्थापना के संदर्भ में कथा

वर्तमान राजा बड़ी श्रद्धा से त्रिरत्न में विश्वास करते थे। वे शालीन, एकाग्रचित्त एवं अध्ययनशील थे। इस राज्य की स्थापना हुए बहुत से वर्ष बीत चुके थे। स्थानीय लोग अपने आप को चीनदेवगोत्र का बताते थे। उसके पूर्वज पामीर की एक वीरान घाटी में बसे हुए थे। भूत काल में पारस के एक राजा ने चीन की एक कुमारी से विवाह का संबंध निश्चित किया। जब बराती कुमारी को ले कर यहां पहुंचे, तब सशस्त्र उपद्रव के कारण पूर्व से पश्चिम जाने वाला रास्ता कट गया। ऐसे में कुमारी के लिए एक अलग-थलग पहाड़ी की चोटी पर वास का प्रबंध किया गया। पहाड़ी की चट्टानें नितांत सीधी थीं। उसके उतरने-चढ़ने में सीढ़ियों का सहारा लेना पड़ता था। पहाड़ी के नीचे कड़ी सुरक्षा व्यवस्था की गई। दिन में पहरा बिठाया जाता था और रात में गश्त लगाई जाती थी। तीन मास के उपरांत ही उपद्रव शांत किया जा सका। जब बराती इस कुमारी को ले कर स्वदेश जाने के लिए तैयार हुए, तब यह कुमारी गर्भवती पाई गई। राजा का दूत बहुत घबरा गया और अपने अर्दलियों से बोला: "राजा ने हमें इस कुमारी को लिवा

लाने का आदेश दिया था। रास्ते में उपद्रव हो जाने के कारण हमें इस वीरान स्थान में पड़ाव डालना पड़ा। हमें उसकी एवं अपनी सुरक्षा की सदैव चिंता लगी रहती थी। सौभाग्य की बात है कि हमारे राजा के प्रभाव के कारण उपद्रवियों पर विजय मिली। आज हम स्वदेश जा रहे हैं, परन्तु जिस कुमारी से राजा विवाह करेगा, उसके गर्भ में बच्चा है। मैं अत्यन्त चिंतित हूं कि न जाने मेरा शव कहां पड़ेगा। अब आवश्यक यह है कि मुख्य अपराधी को ढूंढ़ निकाला जाए ताकि उसे मृत्युदण्ड दिया जा सके।" संदिग्ध अपराधी की धर-पकड़ के लिए हो-हल्ला मच गया, परन्तु अपराधी न मिल सका। तब कुमारी की दासी ने आ कर दूत से कहा: "आप लोग एक दूसरे को दोषी ठहराना बन्द करिए। यह देव के समागम का फल है। प्रत्येक दिन जब सूर्य मध्य आकाश में पहुंचता था, तब एक वीर पुरुष सूर्य के पिंड से निकल कर घोड़े पर सवार हो कर राजकुमारी से मिलने आता था।" दूत बोला: "यदि यह सत्य हो, तो हम अपने को निर्दोष कैसे सिद्ध कर सकेंगे? स्वदेश लौटने पर हमें अवश्य ही मृत्युदण्ड मिलेगा। यदि हम यहीं रह जाएं, तो भी राजा के आक्रमण से बच नहीं पाएंगे। ऐसी दुविधा में हम क्या करें?" सभी ने कहा: "यदि इस कार्य में कहीं थोड़ी सी भी चूक हुई, तो कौन खुशी-खुशी मौत को गले लगाएगा? अच्छा यही होगा कि हम देश के बाहर ही रहें और यहीं अपने दिन काट दें।" तब उन्होंने पहाड़ी की चोटी पर एक प्रासाद बनाया, जिसकी परिधि तीन सौ कदम से अधिक थी। प्रासाद के चारों ओर एक प्राचीर खड़ा कर दिया गया। फिर कुमारी को राजसिंहासन पर बिठा दिया गया और अधिकारियों के पद नियत किए गए एवं विधियां बनाई गईं। गर्भावस्था की समाप्ति पर कुमारी ने एक बच्चे को जन्म दिया। बड़ा होने पर वह अत्यन्त सुंदर निकला। उसकी माता प्रशासनिक कार्यों की देखभाल करती थी और पुत्र को राजा की उपाधि मिली। वह आकाश में वायु एवं मेघ पर सवार हो कर उड़ सकता था। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। दूरस्थ राज्य उसके राजनीतिक प्रभाव में आए और पड़ोसी राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। बहुत लम्बी आयु तक जीने के उपरांत उसका निधन हुआ। उसका शव इस नगर के दक्षिण-पूर्व में एक सौ ली दूर पर्वत पर एक गुहा में दफन किया गया। शव सूख गया था किन्तु आज तक भी सड़ा नहीं था। देखने पर लगता था मानों एक जर्जर पुरुष सो रहा हो। लोग समय-समय पर उसके वस्त्र बदल देते थे और फूल चढ़ाते थे। यह प्रथा अब भी प्रचलित थी। उसकी माता चीन की नारी थी और पिता सूर्य देव था। अतः वे अपने आप को चीनदेवगोत्र के कहते थे। राजवंश के लोग रंगरूप में चीनियों से मिलते-जुलते थे। वे चौकोनी टोपी पहनते थे, जबकि उनके वस्त्र परदेशी शैली के थे। कालांतर में यह राजवंश क्षीण होता गया था और उस पर शक्तिशाली राज्य अत्याचार करते रहते थे।

दो. कुमारलब्ध संघाराम

राजा अशोक जब विश्वविख्यात हो चुके, उन्होंने अपने प्रासाद में एक स्तूप बनवाया था। कालांतर में उन्होंने अपना निवास प्रासाद के उत्तर-पूर्व कोने में स्थानान्तरित कर दिया और पुराने प्रासाद को आयुष्मान कुमारलब्ध के लिए एक संघाराम में बदलवा दिया। संघाराम में ऊंचे-ऊंचे भवन एवं कक्ष थे और बुद्ध-मूर्ति की मुद्रा गांभीर्यपूर्ण थी। आयुष्मान कुमारलब्ध तक्षशिला के निवासी थे। बचपन से ही उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था। उन्होंने बहुत पहले ही मोक्ष प्राप्त कर लिया। वे अपना मन बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन में लगाते एवं सद्धर्म के गूढ़ार्थों पर सोच-विचार करने में लीन रहते थे। वे प्रत्येक दिन बत्तीस हजार शब्दों के बौद्ध सूत्रों का पाठ करते थे एवं उतने ही शब्द लिखते थे। अत: ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वे अन्य समकालीन विद्वानों से बढ़ कर थे और सर्वाधिक प्रतिष्ठित थे। उन्होंने बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांतों का प्रचार किया तथा विधर्मियों के मिथ्या तर्कों का खण्डन किया। वे गूढ़ सिद्धांतों को समग्र रूप से स्पष्ट करने में सक्षम थे और ऐसी कोई कठिन समस्या नहीं थी, जिसका वे संतोषजनक समाधान न कर सकते हों। भारत के सभी राज्यों में उनका सर्वाधिक सम्मान किया जाता था। उन्होंने दसियों अभिधर्म शास्त्र प्रतिपादित किए, जो बहुत ही प्रचलित हुए। तब ऐसा कोई न था जो गंभीरता से उन शास्त्रों का अध्ययन न करता हो। वास्तव में वे सम्मतीय के संस्थापक ही थे। उस समय पूर्व में अश्वघोष, दक्षिण में देव, पश्चिम में नागार्जुन और उत्तर में कुमारलब्ध थे। उन्हें जगत को आलोकित करने वाले चार सूर्यों की संज्ञा दी गई। इस राज्य के राजा ने जब आयुष्मान कुमारलब्ध की प्रतिष्ठा के संदर्भ में सुना, तो सेना ले कर तक्षशिला पर चढ़ाई की और वह कुमारलब्ध को अपने राज्य में लिवा लाया। उन्हीं के लिए यह संघाराम स्थापित किया गया, ताकि लोग उनके दर्शन कर सकें।

तीन. दो शैलगृहों में समाधिस्थ अर्हत

राजधानी से कोई तीन सौ ली दूर दक्षिण-पूर्व में एक ऊचा पर्वत था। उसमें दो शैलगृह थे और उनमें एक-एक समाधिस्थ अर्हत रहता था। वे आसन जमाए बैठे रहते थे और उनसे हिला-डुला भी नहीं जा सकता था। वे जर्जर दीखते थे, परन्तु उनकी त्वचा एवं हड्डियां सड़ी नहीं थीं। उन्हें समाधि लगाए सात सौ वर्ष से अधिक समय बीत गया था। उनके बाल व दाढ़ियां बढ़ते ही रहते थे, अत: भिक्षु प्रति वर्ष उनके बाल मूंड़ देते एवं उनके वस्त्र बदल देते थे।

चार. पुण्यशाला

इस पर्वत से उत्तर-पूर्व की दिशा में दुर्गम पहाड़ी पगडंडियों पर दो सौ ली चल कर मैं पुण्यशाला पहुंचा। यह स्थान पामीर के पूर्वी भाग में चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ था। क्षेत्रफल कोई 14 बीघा था। इसका मध्य भाग धंसा हुआ था। हेमंत एवं ग्रीष्म ऋतुओं में उसमें हिम की परत जमी रहती थी। प्रचण्ड ठंडी वायु चला करती थी। भूमि की सतह पर खारी-लवण दिखाई पड़ता था। अतएव यहां उपज नहीं हो सकती थी। कोई वृक्ष न था, केवल क्षीण घास ही उगती थी। ग्रीष्म में भी यहां आंधी के साथ हिमपात हुआ करता था। यात्री ज्योंही इस क्षेत्र में कदम रखते, त्योंही कोहरा छा जाता था। आने-जाने वाले व्यापारियों को इस संकटमय क्षेत्र से गुजरते हुए बड़े कष्ट झेलने पड़ते थे। स्थानीय वृद्धों ने बताया कि पुराने समय में एक व्यापारी दस हजार व्यक्तियों और कई हजार वस्तुओं से लदे ऊंटों को ले कर यहां से गुजरा। तब प्रचण्ड आंधी के साथ हिमपात हुआ, जिससे सभी व्यक्ति एवं ऊंट मर गए। तशकुरगान के एक अर्हत ने दूर से यह सब कुछ देखा और इन विपत्तिग्रस्त लोगों पर करुणा कर अपनी ऋद्धि शक्ति से उन्हें विपत्तियों से उबारना चाहा। परन्तु उनके पहुंचते-पहुंचते ही व्यापारी एवं उनके साथी ठंडे पड़ चुके थे। अर्हत ने नाना मणियां एवं व्यापारी की वस्तुएं एकत्रित कर एक पुण्यशाला स्थापित कर दी। उन्होंने उस पुण्यशाला में नाना पदार्थ एवं धन सुरक्षित रखा, पड़ोस के राज्य से भूमि खरीद कर सीमांत नगर में निवासियों के लिए जीविका जुटाई तथा यात्रियों की सहायतार्थ प्रबंध किया। अत: अर्वाचीन काल में यात्री अथवा व्यापारी इस प्रबंध से लाभ उठा सकते थे।

यहां से पूर्व की दिशा में पामीर के पूर्वी भाग से नीचे उतर कर मैंने संकटमय पगडंडियों से दुर्गम पर्वतों और गहरी घाटियों को पार किया और पूरे रास्ते में आंधी व हिमपात का समाना किया। इस प्रकार मैंने आठ सौ ली चल कर पामीर से निकल कर उशर में प्रवेश किया।

उशर

उशर राज्य की परिधि कोई एक हज़ार ली थी। उसकी राजधानी की परिधि दसेक ली थी। वह दक्षिण में शीत नदी से मिली थी। भूमि उर्वर थी। उपजों की बाढ़ होती थी। वृक्ष एवं फल-फूल बहुतायत से मिलते थे। श्वेत, श्याम और कालापन लिए नीले आदि विविध रंगों की मणियों का अत्यधिक उत्पादन होता था। जलवायु नम थी और वर्षा

समय पर होती थी। प्रथाओं में शिष्ट नीतियां नहीं थीं। लोग स्वभाव से कठोर व साहसी थे। वे निर्लज्जतापूर्वक अपनी चालें चला करते थे। उनकी लिपि और बोली प्रायः काशगर के समान थी। लोग कुरूप थे और पशु के चमड़े से बने वस्त्र पहनते थे। लेकिन वे भगवान बुद्ध के भक्त थे और बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे। राज्य में दस से अधिक संघाराम थे जिनमें हीनयान के सर्वास्तिवादी संप्रदाय के लगभग एक हजार भिक्षु थे। राजवंश की समाप्ति हो चुकी थी और गत कई शताब्दियों से किसी अन्य को राजसिंहासन पर नहीं बैठाया गया था। यह राज्य तशकुरगान के अधीन बना रहा था।

एक. निरोध समाप्ति समाधि से उठ कर दिव्य शक्ति प्रदर्शित करने वाले अर्हत की कथा

राजधानी से पश्चिम की ओर दो सौ ली दूर चलने पर ऊंचा पर्वत दिखाई देता था। घाटियों में उठता घना कोहरा चट्टानों से स्पर्श होते ही बादलों का रूप धारण कर लेता था। विचित्र रूपाकार की तिरछी चट्टानें मानों फट कर गिरने वाली थीं। चोटी पर एक विलक्षण स्तूप था। स्थानीय निवासियों के अनुसार सदियों पहले यहां चट्टानें टूट कर गिरीं और उनके अन्दर एक भिक्षु आंखें मूंदे बैठा दिखाई पड़ा। उसकी काया ऊंची और मुखमंडल कांतिहीन था। बाल और दाढ़ी इतने लम्बे थे कि उसके कंधे और मुखमंडल भी ढक गए थे। उसे देख कर एक शिकारी ने राजा तक यह संवाद पहुंचा दिया। राजा स्वयं वहां देखने गया। उसने भिक्षु को प्रणाम किया। राजधानी के निवासी एवं बुद्धिजीवी भी बिना बुलाए ही वहां आ गए और उसे श्रद्धा अर्पित करने हेतु बढ़-चढ़ कर धूपबत्तियां जलाने और फूल बिखेरने लगे। राजा ने पूछा : "यह कौन है? इसकी काया इतनी उंची क्यों है?" एक भिक्षु ने उत्तर दिया : "यह लम्बे बालों व दाढ़ी वाला, काषाय-चीवर पहने व्यक्ति विमुक्ति का आनंद लेते हुए एक आसन से बैठा अर्हत है। विमुक्ति का आनंद लेते हुए समाधि लगाने की एक निश्चित अवधि होती है। उसे सचेत करने हेतु कोई कहते हैं कि घंटा बजाने की आवश्यकता पड़ती है, तो कोई कहते हैं कि धूप में स्नान कराने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार का संकेत मिलने पर ही वह समाधि से उठता है। बिना इस प्रकार के संकेत के वह एक आसन से बैठा रहता है और समाधि के बल पर उसका शरीर अक्षत रह सकता है। उसका जैसा शरीर साधारण व्यक्ति के लिए प्रति दिन आहार लेने से ही जीवित रह पाता है। जब एक बार वह समाधि से उठेगा, तो उसका शरीर निश्चय ही जीर्ण-शीर्ण हो जाएगा। इसलिए उसके शरीर में चिकनाई उत्पन्न करने हेतु उस पर घी लगाना चाहिए। इसके अनंतर घंटा और ढोल बजा कर इसे जगाया जा सकेगा।"

राजा ने कहा : "ऐसा ही हो।" उसने घंटा और ढोल बजाने का आदेश दिया। घंटा बजते ही अर्हंत ने आंखें खोल दीं। बड़ी देर बाद उसने कहा : "तुम लोग कौन हो ? इतने कुरूप क्यों हो ? फिर चीवर भी पहने हुए हो।" उस भिक्षु ने उत्तर में कहा : "मैं एक भिक्षु हूं।" अर्हंत बोला : "ओह, आचार्य काश्यप तथागत अब कहां हैं ?" भिक्षु ने उत्तर दिया : "उनका बहुत पहले ही महानिर्वाण हो चुका है।" यह सुन कर अर्हंत आंखें मूंद कर किसी विचार में खो गया। थोड़ी देर बाद उसने पुनः पूछा : "क्या शाक्य तथागत का जगत में अवतार हुआ है ?" भिक्षु ने कहा : "जगत में आ कर प्राणियों को उपदेश देने के बाद भगवान का भी परिनिर्वाण हो गया है।" यह सुन कर अर्हंत ने सिर पुनः नीचे किया और बड़ी देर बाद फिर उठाया। उसने आकाश में उड़ कर दिव्य शक्ति प्रदर्शित की और अग्नि समाधि ली। उसकी अस्थियां धरती पर गिर गईं। राजा ने उन्हें एकत्रित कर वहां एक स्तूप बनवाया।

यहां से उत्तर में पर्वतों, रेगिस्तान और वीरान मैदान को पार कर पांच सौ ली चलने के बाद मैं काशगर पहुंचा।

काशगर

काशगर राज्य की परिधि कोई पांच हजार ली थी। राज्य में प्रायः मरुभूमि फैली हुई थी। खेती के लिए भूमि कम थी। उपजों की बाढ़ थी और फल-फूल प्रचुर मात्रा में मिलते थे। महीन ऊन का उत्पादन होता था जिससे कंबल और कालीन बुने जाते थे। जलवायु सुहावनी थी और वर्षा समय पर होती थी। स्थानीय निवासी स्वभाव से उग्र और क्रोधी थे तथा कपटी भी। वे शिष्टाचार को महत्व नहीं देते थे। विद्या और शिल्प के कम ज्ञानी थे। यहां ऐसी प्रथा थी कि जन्म होने पर बच्चे के सिर को दो पट्टों से दबा कर चपटा बना दिया जाता था। लोग कुरूप होते थे। बदन पर गोदना गोदे जाने की भी प्रथा थी। उनकी आंखें हरी थीं। लिपि भारतीय लिपि की अनुकृति थी। यद्यपि कुछ अक्षर छूट गए थे और अन्य कुछ में विकृति आ गई थी, तथापि भारतीय लिपि का मूलरूप प्रायः बना रहा था। शब्दावली और उच्चारण दूसरे राज्यों से भिन्न थे। स्थानीय लोग बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे और पुण्य कर्मों में संलग्न रहते थे। राज्य में सैकड़ों संघाराम थे जिनमें दस हजार से अधिक भिक्षु थे। वे हीनयान के सर्वास्तिवादी थे। वे बौद्ध मतों का गहन अध्ययन नहीं करते थे, बल्कि अधिक से अधिक सूत्र कंठस्थ करने पर बल देते थे। अतः ऐसे भिक्षुओं की संख्या बहुत अधिक थी जो त्रिपिटक और "अभिधर्म महा विभाषा शास्त्र" को आरंभ से अत तक पढ़ने में सक्षम थे।

काशगर राज्य से दक्षिण-पूर्व की दिशा में शीत नदी और विशाल रेतीली पर्वतशृंखला को पार कर पांच सौ ली की पद-यात्रा के बाद मैं चकुकल्क पहुंचा।

चकुकल्क[1]

चकुकल्क राज्य की परिधि एक हजार ली से अधिक थी, राजधानी की परिधि दस ली से अधिक थी। नगर अभेद्य स्थान पर स्थित था एवं सुदृढ़ था। जनसंख्या अधिक थी और लोग संपन्न थे। यत्र-तत्र कंकड़ दीखते थे, पर्वतों की शृंखलाएं फैली थीं। दो बड़ी नदियों के तटों पर स्थित होने के कारण चकुकल्क में कृषि विकसित थी। अंगूर, नाशपाती और वन्य सेव का उत्पादन बहुत होता था। वायु बहुत चलती थी और उसमें शीतलता थी। लोग स्वभाव से उग्र थे। स्थानीय निवासी निष्ठुर और कपटी थे तथा खुलेआम डाका डालते थे। लिपि खोस्तन से मिलती-जुलती थी, पर बोलचाल की भाषा में भेद था। निवासी अपरिष्कृत थे और अल्प-संस्कृत एवं अल्प-शिक्षित थे। लेकिन वे त्रिरत्न में पूरा विश्वास करते थे और पुण्य कर्म के प्रति उत्साही थे। राज्य में दसियों संघाराम थे। उनमें से अधिकांश नष्ट-भ्रष्ट हो चुके थे। कोई सौ भिक्षु थे। वे महायानी थे।

चकुकल्क के दक्षिण भाग में एक गगनचुंबी पर्वत खड़ा था। उसकी चट्टानें सीधी-खड़ी थीं और चोटियों की लम्बी शृंखला थी। वनस्पतियां ठंड सहन कर सकती थीं और वसंत से शरद तक हरी-भरी रहती थीं। घाटियों में झरनों का जल वेगपूर्ण प्रवाह के साथ चारों दिशाओं में बहता चला जाता था। चट्टानों पर यत्र-तत्र शैलकक्ष दीखते थे। भारत के अनेक फलाहारी अर्हंत दिव्य शक्ति से आकाश में उड़ते हुए दूर-दूर तक प्रव्रज्या करते थे और यहां आ कर वास करने लगे थे। बहुत से अर्हंतों का यहां निर्वाण हो गया था। उनकी स्मृति में बड़ी संख्या में स्तूप बनाए गए थे। अब भी तीन अर्हंत शैलकक्षों में वास करते थे। वे विमुक्ति का आनंद लेते हुए समाधि लगाए हुए थे। देखने में वे जर्जर जान पड़ते थे, लेकिन उनके बाल बढ़ते जाते थे। अतः भिक्षु उनके बाल मूंड़ने जाते थे। चकुकल्क में महायानी सूत्र ऐसे किसी भी स्थान से अधिक थे जहां बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था। ऐसे दसेक बौद्ध सूत्र उपलब्ध थे। उनमें एक लाख श्लोक थे। एक लाख से कम श्लोकों वाले शास्त्र तो और भी अधिक प्रचलित थे।

यहां से पूर्व की ओर पर्वतों और घाटियों को पार करते हुए आठ सौ ली चलने के बाद मैं खोस्तन पहुंचा।

---

1. इस राज्य के अन्य नाम चुकुप, चुकुबन भी थे।

खोस्तन

खोस्तन राज्य की परिधि चार हजार ली से अधिक थी। उसका आधे से अधिक भूभाग रेतीला था। खेतों का क्षेत्रफल बहुत छोटा होता था। मिट्टी खेती के लिए उपयुक्त थी और नाना प्रकार के फलों का उत्पादन होता था। कालीन और महीन ऊनी कंबल बुने जाते थे। स्थानीय निवासी मोटे रेशमी कपड़ों की बुनाई में निपुण थे। श्वेत और श्याम मणियों के भण्डार थे। जलवायु सुहावनी थी, पर बवंडर उठते रहते थे। बवंडर के झोंकों के साथ धूल भी उड़ती थी। स्थानीय निवासी भद्र और शिष्ट, विनम्र एवं विनयशील थे। शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन में रुचि लेते थे एवं विभिन्न कलाओं में सिद्धहस्त थे। वे संपन्न व प्रसन्न बने सुख-चैन से जीवन बिताते थे। इस राज्य में संगीत को बड़ा महत्व दिया जाता था और लोग नृत्य-गान के प्रेमी थे। वे ऊनी व फ़र के कपड़े कम, अधिकतर रेशमी व सूती वस्त्र पहनते थे। वे सुसंस्कृत थे तथा नीति-दर्शन के अनुरूप आचरण करते थे। लिपि भारतीय लिपि की अनुकृति थी। अक्षरों की संरचना में कुछ हेर-फेर अवश्य हुआ था, परन्तु समूची लिपि मूलतः भारतीय लिपि के समान ही थी। बोलचाल की भाषा अन्य राज्यों से अलग थी। स्थानीय निवासी बौद्ध धर्म मानते थे। राज्य में सौ से अधिक संघाराम थे और पांच हजार से अधिक भिक्षु थे। उनमें से अधिकांश महायानी थे।

एक. राज्य की स्थापना की कथा

खोस्तन का राजा पराक्रमी था। वह बौद्ध धर्म को मानता था और अपने आप को वैश्रवण का वंशज बताता था। अतीत में यह राज्य एक निर्जन क्षेत्र था, परन्तु इसमें वैश्रवण देवता ने वास किया था। सम्राट अशोक अपने पुत्र को तक्षशिला में अंधा किया जाने का समाचार पाकर क्रोधित हो उठे थे। उन्होंने अनेक मंत्रियों को निष्कासित कर दिया और तक्षशिला के अनेक कुलीनों को हिमगिरि के उत्तर में वीरान घाटियों में निर्वासित कर दिया था। निर्वासित लोग घुमंतू हो, खोस्तन की पश्चिमी सीमा में आ कर बस गए। उन्होंने अपने में से एक को चुन कर राजसिंहासन पर बैठा दिया। उसी समय पूर्व का एक राजकुमार अपराधी करार दिया जा कर निष्कासित किया गया और वह खोस्तन की पूर्वी सीमा में रहने लगा। अधिकारियों के परामर्श पर राजकुमार ने स्वयं को राजा घोषित किया। वर्षों तक इन दो राज्यों की प्रथाएं व प्रशासन की अपनी-अपनी पहचान बनी रहीं। एक दूसरे से घुल-मिल नहीं पाए। एक बार जब दोनों राजा आखेट के लिए निकले, तो वे एक निर्जन स्थान में मिले। वंश-वरीयता पर दोनों राजाओं के बीच वाद-

विवाद छिड़ गया और कटु वाग्युद्ध करते-करते वे लड़ने पर उतारू हो गए। किसी ने परामर्श दिया : "इस समय लड़ने की इतनी उतावली क्या है ? आखेट के लिए ही तो निकले हैं, युद्ध के लिए पूरी सैन्य शक्ति साथ थोड़े ही लाई गई है। लौट कर आप दोनों को अपनी-अपनी सेना प्रशिक्षित करनी चाहिए। फिर आप कोई तिथि निश्चित कर युद्ध करने आमने-सामने आ जाएं।" दोनों राजा सहमत हो गए और अपने-अपने प्रदेश लौट आए। दोनों राजाओं ने सैन्य शक्ति जुटाई और युद्धाभ्यास किया तथा सैनिकों को वीरता-पूर्वक लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। निश्चित तिथि पर दोनों राज्यों की सेनाएं आमने-सामने डट गईं। अगले दिन युद्ध आरंभ हुआ। पश्चिम का राजा हार गया और भागते समय उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। पूर्व का राजा विजय का झण्डा गाड़ते हुए आगे बढ़ता गया। उसने पराजित राज्य की प्रजा को ढाढ़स बंधाया। उसने अपनी राजधानी दोनों प्रदेशों के मध्य में स्थानान्तरित की और नया नगर खड़ा करने की योजना बनाई। प्राचीर बनाने के लिए चिकनी मिट्टी के अभाव पर राजा चिंतित हो उठा। उसने भूगोल शास्त्र के ज्ञाताओं को ढूंढ़ने का आदेश दिया। तब एक पाशुपत पानी से भरा तुम्बा पीठ पर लादे राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और बोला : "मैं भूगोल शास्त्र जानता हूं।" यह कह कर उसने तुम्बे में से पानी गिराते हुए एक घेरा बनाया। पूरा घेरा बनने के बाद उसने एक बार फिर वैसा ही किया और अचानक झटपट तेज दौड़ने लगा और देखते ही देखते अदृश्य हो गया। लोगों ने उसके द्वारा खींची गई जल की रेखा पर प्राचीर की नींव डाली और फिर उसी आधार पर भवनों का निर्माण किया। इस तरह नई राजधानी तैयार हो गई। वर्तमान राजा ने इस नगर को अपनी राजधानी बनाया। प्राचीर ऊंचा नहीं था, परन्तु नगर अभेद्य था। प्राचीन काल से अब तक कोई भी इस पर चढ़ाई करने में सफल नहीं हो सका था।

पूर्व के राजा ने जब राजधानी के स्थानान्तरण, नगर के निर्माण, राज्य की स्थापना और प्रजा के पुनर्वास का महान कार्य पूरा किया, तब तक वह सत्तर-अस्सी वर्ष का वृद्ध हो चुका था। किन्तु उसके कोई संतान नहीं हुई थी। वंश की समाप्ति की आशंका से उसने वैश्रवण देव के यहां जा कर पुत्र-लाभ के लिए प्रार्थना की। उसे देव-मूर्ति के मस्तक में एक शिशु मिला जिसको उसने निकाल लिया। राजा शिशु को उठाए वापस चला गया। इस समाचार से सारे राज्य में खुशी की लहरें दौड़ गईं। परंतु शिशु मानवी दूध नहीं पीता था। उसकी अकाल मृत्यु की आशंका से राजा ने पुन: देव के वासस्थान जा कर वैश्रवण देव से शिशु के पालन-पोषण के लिए प्रार्थना की। इतने में देव के वासस्थान के सामने भूमि ऊंची हो गई। उसका आकार स्तन जैसा था। शिशु इसी स्तन से दूध पी कर वयस्क हुआ। बड़ा होने पर उसने असाधारण बुद्धिमत्ता और पराक्रम का परिचय दिया। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। वैश्रवण देव की पूजा के लिए उसने एक मंदिर बनवाया। कालांतर

में उसके वंश में वृद्धि होती रही और वंश-परम्परा कभी नहीं टूटी। अतएव अब इस मंदिर में बड़ी मात्रा में दुर्लभ रत्न एवं मणियां सुरक्षित हो गई थीं। मंदिर में पूजा-पाठ व चढ़ावे का क्रम चलता रहा। चूंकि शिशु का पालन-पोषण धरती के दूध से हुआ था, इसलिए इस राज्य का नाम खोस्तन पड़ गया।

दो. वैरोचन संघाराम

राजधानी से दसेक ली दूर दक्षिण में एक विशाल संघाराम अवस्थित था। उसका निर्माण एक पूर्ववर्ती राजा ने वैरोचन अर्हंत के लिए करवाया था। उस काल में खोस्तन में सद्धर्म का प्रभाव नहीं था, वैरोचन अर्हंत काश्मीर से आ कर यहां वन में समाधि लगाने लगे। किसी ने उन्हें देखा और उनके रंगरूप और परिधान पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने राजा के समक्ष उपस्थित हो कर अर्हंत की कहानी सुनाई। राजा ने स्वयं वन में जा कर अर्हंत का रंगरूप एवं आचरण देखा और पूछा : "तुम कौन हो? अकेले ही ऐसे घने वन में क्यों वास करते हो?" अर्हंत ने उत्तर दिया : "मैं तथागत का शिष्य हूं। मनुष्य लोक से अलग हो कर मैं ध्यान लगाए बैठा हूं। आप को पुण्य-प्राप्ति के लिए बौद्ध धर्म का प्रचार करना चाहिए, संघाराम बनवा कर भिक्षुओं को आमंत्रित करना चाहिए।" राजा ने फिर प्रश्न किया : "तथागत में ऐसा कौन सा सद्‌गुण और दिव्य शक्ति है जिससे प्रभावित हो तुम पक्षी की भांति वन में रहते हो और इतनी निष्ठा से उनके उपदेशों का अनुसरण करते हो?" अर्हंत बोला : "तथागत समानता और दयालुता का ध्यान रख कर चतुर्योनि पर करुणा करते हैं और त्रिलोक के प्राणियों को प्रबुद्ध करते हैं। वे कभी प्रकट, कभी अदृश्य हो जीवन व मरण का प्रदर्शन करते हैं। जो सद्धर्म को मानता है वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है। जो बौद्ध धर्म पर शंका करता है, वह तृष्णा के जाल में फंसा रहेगा।" राजा ने कहा : "यदि बात वैसी ही है जैसी कि तुम कहते हो, तो यह बात चर्चा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। जब तुम कहते हो कि तथागत महात्मा हैं तो मेरी आशा है कि वे अवश्य ही दृष्टिगोचर हो जाएंगे। यदि मैं उनके दर्शन कर सकूं तो अवश्य ही उनके लिए एक संघाराम बनवाऊंगा, उनका श्रद्धालु भक्त बनूंगा और सद्धर्म का प्रचार करूंगा।" इस पर अर्हंत बोला : "आप संघाराम बनाएं। जब काम पूरा होगा, तो भगवान का प्रादुर्भाव हो जाएगा।" राजा ने अर्हंत की बात मान कर एक संघाराम बनवाया। राज्य के सभी निवासी दूर और निकट से आ कर संघाराम में एकत्रित हो गए और बुद्ध-अभिनंदन हेतु धर्मसभा आयोजित की गई। परंतु लोगों को बुलाने के लिए घंटी नहीं थी जिसे बजाया जा सके। राजा ने अर्हंत से पूछा : "संघाराम तो बन गया है, परंतु भगवान बुद्ध कहां हैं?" अर्हंत बोला :

"आपको श्रद्धापूर्वक बुद्ध की पूजा करनी चाहिए। तब वे महात्मा दर्शन देने में अधिक विलंब नहीं करेंगे।" राजा बुद्ध की कर्मकांड सहित पूजा करने लगा। सहसा एक बुद्ध-प्रतिमा आकाश से उतरी और उसने एक घंटा राजा के सुपुर्द कर दिया। तभी से राजा बुद्ध का श्रद्धालु भक्त बन गया और बौद्ध धर्म का प्रचार करने में संलग्न हो गया।

तीन. गोशृंग पर्वत

राजधानी से बीसेक ली दूर दक्षिण - पश्चिम में गोशृंग पर्वत स्थित था। पर्वत की दो उत्तुंग चोटियां थीं। वे चारों ओर से चट्टानों से घिरी हुई थीं। खड़ी चट्टानों एवं घाटी के मध्य एक संघाराम था। उसमें सुशोभित बुद्ध-मूर्ति प्रभा फेंका करती थी। तथागत यहां पधारे थे। उन्होंने देवों और मनुष्यों को संक्षेप में सद्धर्म के मुख्य मत समझाए थे और यह भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में इस क्षेत्र में एक राज्य की स्थापना होगी जिसमें बौद्ध धर्म पर विश्वास किया जाएगा तथा महायानी सूत्रों का अध्ययन किया जाएगा।

पर्वत की चट्टान पर एक विशाल शैलकक्ष था। उसमें एक अर्हत मोक्ष का आनंद लेते हुए समाधि लगाए मैत्रेय बुद्ध के अवतरण की प्रतीक्षा में था। सदियों तक उसकी सेवा-सुश्रूषा की जाती रही। गत वर्षों में भू-स्खलन से शैलकक्ष का द्वार बन्द हो गया था। राजा के आदेश पर सेना ने यहां आ कर टूटे पत्थरों को हटाने का काम अभी आरंभ किया ही था कि भौरों का एक झुण्ड उड़ आया और सैनिकों पर डंक मारने लगा। अत: शैलकक्ष का द्वार अब भी बन्द ही रहा।

चार. दित्कबानी[1] संघाराम

राजधानी से दसेक ली दूर दक्षिण-पश्चिम में दित्कबानी संघाराम स्थित था। संघाराम में सूखे लाख से बनी बुद्ध-मूर्ति सुशोभित थी। यह बुद्ध-मूर्ति कुचि राज्य से यहां लाई गई थी। अतीत काल में खोस्तन के एक मंत्री को देश निकाला दिया गया था और वह कुचि में निर्वासित जीवन बिताने लगा था। वह प्राय: इस बुद्ध-मूर्ति की पूजा करता था। बाद में अनुमति पा कर वह स्वदेश लौट गया। फिर भी वह एकाग्रचित्त हो दूर से ही इस बुद्ध-मूर्ति की पूजा करता रहा। एक दिन आधी रात के पश्चात् यह बुद्ध-मूर्ति स्वयं खोस्तन चली आई। तब उस मंत्री ने अपने आवास का दान कर यह संघाराम बनवाया।

1. कुछ विद्वानों का मत है कि इसका नाम दीर्घभवन, दीर्घभावन या तिकभावन होना चाहिए।

पांच. भगय नगर

राजधानी से कोई तीन सौ ली दूर पश्चिम में भगय नगर स्थित था। नगर में सात छि ऊंची बुद्ध की आसीन मूर्ति सुशोभित थी। द्वात्रिंश महापुरुषलक्षण और अशीत्यानुव्यंजनानी युक्त इस प्रकांड मूर्ति के सिर पर मुकुट सुशोभित था और यह बुद्ध-मूर्ति यदा-कदा आलोंकित होती रहती थी। स्थानीय निवासियों के अनुसार यह बुद्ध-मूर्ति पहले काश्मीर में थी। बाद में यहां लाई गई थी। पुरातन युग में एक अर्हत था। उसके एक श्रामणेर ने मरणासन्न अवस्था में चावल के आटे से बनी खट्टी रोटी खाने की इच्छा व्यक्त की। अर्हत ने दिव्य चक्षुओं से देखा कि खोस्तन में ही ऐसी रोटी मिल सकती थी। तब दिव्य शक्ति प्रदर्शित कर वह वहां से रोटी ले गया। रोटी खाने के पश्चात् श्रामणेर ने खोस्तन में अपना पुनर्जन्म होने की इच्छा प्रकट की। उसका मनोरथ सिद्ध हो गया और उसका खोस्तन के राजकुमार के रूप में पुनर्जन्म हुआ। राजगद्दी पर बैठने के उपरांत उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैला। उसने हिमगिरि को पार कर काश्मीर पर चढ़ाई की। काश्मीर के राजा ने उसका प्रतिरोध करने के लिए सेना को सुसज्जित किया। इतने में अर्हत ने राजा को रोकते हुए कहा : "युद्ध की आवश्यकता नहीं है। मैं उसे हटा सकता हूं।" अर्हत ने खोस्तन के राजा को सद्धर्म के प्रमुख सिद्धांत सुनाए। आरंभ में खोस्तन के राजा को विश्वास नहीं आया और वह युद्ध पर उतारू ही रहा। तब अर्हत ने उसे वह चीवर दिखाया जिसे वह राजा पूर्वजन्म में श्रामणेर के रूप में पहनता था। चीवर को देखने पर राजा को अपना पूर्वजन्म जानने की बोधि प्राप्त हुई। उसने काश्मीर के राजा से क्षमा मांगी। दोनों राजाओं ने मैत्री स्थापित की। खोस्तन के राजा ने अपनी सेना को स्वदेश वापस भेज दिया। सेना के साथ-साथ वह उस बुद्ध-मूर्ति को भी स्वदेश ले गया जिसकी पूजा वह पूर्वजन्म में किया करता था। भगय नगर पहुंचने के अनंतर वह बुद्ध-मूर्ति आगे नहीं ले जाई जा पाई। तब बुद्ध-मूर्ति के चारों ओर संघाराम बनाया गया और भिक्षुओं को बुलाया गया। राजा ने दान-स्वरूप अपना मुकुट बुद्ध-मूर्ति के सिर पर पहना दिया। आज भी इस बुद्ध-मूर्ति के सिर पर वही मुकुट था।

छः. मूषक टीला

राजधानी के पश्चिम में कोई एक सौ साठ ली की दूरी पर रेगिस्तान से गुजरने वाले मार्ग पर कई टीले दिखाई देते थे। ये सभी चूहों की समाधियां थीं। स्थानीय निवासियों ने बताया कि इस मरुभूमि में चूहे साही जितने बड़े होते थे। उनके शरीर पर साधारण चूहों से भिन्न सुनहरे और रुपहले रंगों के बाल उगे रहते थे। वे मूषक-संसार के राजा थे। जब

वे अपने बिलों से बाहर क्रीड़ा करने निकलते थे, तो अन्य साधारण चूहे दासों के रूप में झुण्ड के झुण्ड में उनके पीछे जाते थे। भूत काल में लाखों हूणों ने खोस्तन के सीमावर्ती नगरों में लूटमार मचाई और इन मूषक टीलों के निकट ही पड़ाव डाले। खोस्तन के तात्कालिक राजा के पास मात्र कुछ दसेक हजार सैनिक ही थे। उसे आशंका थी कि उसकी सेना हूणों के सामने टिक नहीं सकेगी। उसे पहले से ही मालूम था कि मरुभूमि में चूहे चमत्कार कर दिखाते थे। किन्तु उसने उन्हें अलौकिक जंतु नहीं माना था। अब जबकि शत्रु सेना सामने आ खड़ी हुई, किसी से मदद नहीं ली जा सकी। राजा और मंत्री अत्यन्त चिंतातुर हो निस्सहाय से रह गए। विवश हो कर उन्होंने धूपबत्ती जला कर चूहों से सहायता देने की प्रार्थना की। वे आस लगाए हुए थे कि चूहे कुछ चमत्कार करके सेना का साथ देंगे। उसी रात खोस्तन के राजा ने स्वप्न में देखा कि एक भीमकाय चूहे ने आ कर उससे कहा : "हम आपकी सेवा हेतु उद्यत हैं। आप शीघ्रातिशीघ्र अपनी सेना तैयार कर कल प्रातःकाल ही शत्रुओं से लडें। आप अवश्य ही उन पर विजय पाएंगे।" खोस्तन के राजा ने देव का वरदान पा कर तुरंत सेना को प्रस्तुत किया और मुंह अंधेरे ही शत्रु शिविरों पर आकस्मिक प्रहार करने का आदेश दिया। खोस्तन की सेना के आक्रमण का संवाद पा कर हूण हक्के-बक्के रह गए। वे घबरा कर घोड़ों व रथों पर चढ़ने और कवच पहनने लगे। किन्तु उन्होंने पाया कि उनकी घोड़ों की काठियां, वस्त्र, धनुष की तांतें, कवच की कड़ियां और सभी बांधने के काम आने वाली डोरियां चूहों द्वारा कुतर-कुतर कर काट दी गई थीं। इतने में खोस्तन की सेना हूणों पर टूट पड़ी और हूणों को मुंह की खानी पड़ी। खोस्तन की सेना ने हूणों के सेनानायकों को मौत के घाट उतार दिया और हूण सैनिकों को पकड़ लिया। हूण स्तंभित हो कर समझ गए कि यह देव की इच्छा थी। खोस्तन के राजा ने चूहों के उपकार का बदला चुकाने हेतु एक संघाराम बनवाया और चढ़ावा अर्पित किया। तभी से खोस्तन के लोग चूहों का आदर करते रहे थे और उन्हें अलौकिक जंतु मान कर उनकी रक्षा के लिए तत्पर रहते थे। राजा से लेकर प्रजा तक सभी चूहों की पूजा करते थे और उनसे वरदान मांगते थे। जो भी चूहों के बिलों के पास से गुजरता था, वह अपने घोड़े से उतर कर पैदल अवश्य चलने लगता था। वे चूहों को श्रद्धा अर्पित करते थे और पूजोपहार चढ़ा कर सुख-सुविधा की प्रार्थना करते थे। चढ़ावे में प्रायः वस्त्र, धनुष, बाण या सुगंधित फूल एवं स्वादिष्ट खाद्य सम्मिलित होते थे। चूहों की पूजा से लोगों का बड़ा हित हुआ। यदि चूहों की पूजा न की जाती, तो विपत्तियां उत्पन्न हो जातीं।

सात. समाज्ञा संघाराम

राजधानी के पश्चिम में पांच-छः ली की दूरी पर समाज्ञा संघाराम स्थित था। संघाराम

में सौ छि ऊंचा एक स्तूप था जिससे अलौकिक शक्तियां प्रदर्शित होती रहती थीं एवं दिव्य प्रकाश फैलता रहता था। पहले एक अर्हत दूरस्थ प्रदेश से आ कर यहां वन में वास करने लगा। उसने अपनी सिद्धि द्वारा प्रखर प्रकाश फेंका। रात को राजा दुतल्ले भवन में खड़ा था। उसे दूर से वन आलोकित होता दिखाई दिया। उसने एक-एक कर अपने सभी मंत्रियों से इसका कारण पूछा। सभी मंत्रियों ने एक स्वर में कहा : "दूर से एक श्रमण यहां आया है। वह वन में समाधि लगाते समय इस प्रकार की दिव्य शक्ति प्रदर्शित करता है।" यह सुन कर राजा प्रासाद से निकल कर वन में गया। जब उसने इस अर्हत्व प्राप्त श्रमण को देखा तो उसके हृदय में अर्हत के प्रति असीम आदर का भाव उत्पन्न हुआ और उसने उसके सदाचार की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसने अर्हत से प्रासाद में वास करने की प्रार्थना की। किन्तु अर्हत ने कहा : "प्रत्येक वस्तु का अपना समुचित स्थान होता है और प्रत्येक व्यक्ति का अपना आदर्श होता है। एकांत वन मुझे बहुत जंचता है। प्रासाद मेरे लिए उचित नहीं है।" यह सुन कर अर्हत के प्रति राजा की श्रद्धा और भी बढ़ गई। उसके प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करने के लिए राजा ने एक संघाराम और एक स्तूप बनवाया। राजा के अनुरोध पर श्रमण संघाराम में वास करने लगा। कुछ समय के पश्चात् अपनी अपार श्रद्धा के फलस्वरूप राजा को बुद्ध के बहुत से शरीरावशेष प्राप्त हुए। इस पर राजा प्रसन्न हुआ। उसने मन ही मन सोचा : "मुझे ये शरीरावशेष इतनी देर से क्यों मिले हैं? यदि पहले मिले होते, तो इन्हें स्तूप के अन्दर रखा जा सकता था। फिर यह स्तूप एक दर्शनीय स्मारक बन गया होता।" राजा ने संघाराम में जा कर अपने मन की बात अर्हत को सुनाई। अर्हत ने कहा : "महाराज, आपको चिंतित होने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं अभी इन शरीरावशेषों को स्तूप के अन्दर रख कर आपका मनोरथ पूरा किए देता हूं। आप सोने, चांदी, तांबे, लोहे और पत्थर की मंजूषाएं बनवाएं और उनमें क्रमशः बुद्ध के शरीरावशेष रख दें।" राजा ने शिल्पकारों को मंजूषाएं बनाने की आज्ञा दी। कुछ दिनों पश्चात् सभी मंजूषाएं बन कर तैयार हो गईं। उन्हें एक अलंकृत रथ पर संघाराम में पहुंचाया गया। जब प्रासाद से बुद्ध के शरीरावशेष निकाले गए तब उनके आगे-पीछे मंत्री, पदाधिकारी एवं साधारण लोग हो लिए। रास्ते में हजारों लोग बुद्ध के शरीरावशेषों के दर्शन के लिए खड़े थे। अर्हत ने अपने दाएं हाथ से स्तूप को ऊपर उठा कर हथेली पर रखा और राजा से कहा : "अब बुद्ध के शरीरावशेषों को स्तूप के नीचे रख दें।" लोगों ने भूमि खोद कर बुद्ध के शरीरावशेषयुक्त मंजूषाओं को रख दिया। उसके बाद ही अर्हत ने स्तूप को यथा-स्थान रखा। स्तूप तनिक भी तिरछा न हुआ और न ही उसे थोड़ी ही भी क्षति पहुंची। घटना स्थल पर उपस्थित सभी लोग इस अभूतपूर्व बात की प्रशंसा करते नहीं थक रहे थे। बुद्ध के प्रति उनकी आस्था और भी अधिक बढ़ गई तथा सद्धर्म में उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। राजा ने अपने पदाधिकारियों से कहा : "मैंने सुना था कि बुद्ध की शक्ति

कल्पनातीत है। बुद्ध की ऋद्धि-सिद्धि अथाह है। बुद्ध के करोड़ों अवतार हो सकते हैं और वे मनुष्य लोक एवं स्वर्ग में प्रकट भी हो सकते हैं। बुद्ध पृथ्वी को अपनी हथेली पर रख सकते हैं जिससे सभी प्राणियों को गति का अनुभव नहीं होता। बुद्ध सुबोध भाषा में धर्मतत्वों पर प्रकाश डाल सकते हैं जिससे सभी प्राणियों को अपनी-अपनी स्थितियों के अनुरूप चैतन्य प्राप्त होता है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो बुद्ध की दिव्य शक्ति के समकक्ष हो सके और ऐसा कोई शब्द नहीं है जो बुद्ध की प्रज्ञा का वर्णन कर सके। यह सत्य है कि बुद्ध का निर्वाण हो चुका है, परन्तु उनके उपदेश अभी तक उपलब्ध हैं। हम शीतल, मंद समीर और अमृत की भांति बुद्ध के उपदेशों से लाभ उठाते हैं और उनके गुणों का आदर करते हैं। हमने कभी सोचा भी न था कि हमें बुद्ध के ये पवित्र शरीरावशेष भी मिलेंगे और उनकी कृपा से हमारा हित होगा। मेरी प्रजा और पदाधिकारियो, पुण्य कर्म करो एवं श्रद्धापूर्वक सद्धर्म में विश्वास करो। बौद्ध मत गुह्य हैं, यह आज की घटना से सिद्ध हो गया है।"

आठ. माजा संघाराम एवं रेशमी कीड़े का प्रवेश

राजधानी से पांच-छः ली दूर दक्षिण-पूर्व में माजा संघाराम स्थित था। यह खोस्तन की भूतपूर्व रानी ने बनवाया था। अतीत में खोस्तन के लोगों को शहतूत की खेती और रेशमी कीड़े पालने का ज्ञान नहीं था। यह जानने के बाद कि पूर्व के राज्य में रेशमी कीड़ा पाला जाता था, राजा ने वह कीड़ा लाने के हेतु अपना दूत वहां भेजा। किन्तु पूर्वी राज्य का राजा रेशमी कीड़ा पालने का कौशल गोपनीय रखता था। उसने खोस्तन के दूत को खाली हाथों वापस भेज दिया और सीमान्त की चौकियों के पदाधिकारियों को सचेत कर दिया कि वे रेशमी कीड़ों को देश के बाहर ले जाने से रोक दें। ऐसी स्थिति में खोस्तन के राजा ने पूर्वी राजा के समक्ष उसकी राजकुमारी के साथ विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। पूर्वी राजा ने दूरस्थ राज्यों के साथ मैत्री स्थापित करने की इच्छा से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। खोस्तन के राजा ने अपने दूत को दुल्हन लाने का आदेश दिया और उससे कहा कि "तुम पूर्वी राजा की पुत्री को बतलाओ कि हमारे राज्य में शहतूत की खेती और रेशमी कीडा पालने का ज्ञान नहीं है, अपने वस्त्र के लिए वह कुछ रेशम, शहतूत के बीज और रेशमी कीड़ों की नस्लें ले आए।" यह संवाद पा कर राजकुमारी ने गुप्त रूप से शहतूत के बीज और रेशमी कीड़ों की नस्लें खोज लीं और उन्हें रुईदार टोपी के अन्दरूनी भाग में छिपा दिया। सीमावर्ती चुंगीघर पर पहुंचने के बाद उसके अन्य माल-असबाब की कड़ी जांच-पड़ताल की गई, किन्तु उसकी टोपी की जांच नहीं की गई। इस तरह राज-कुमारी और उसके आदमी खोस्तन की सीमा में प्रविष्ट हो गए। उन्होंने उस स्थल पर पड़ाव

डाला जहां बाद में माजा संघाराम का निर्माण हुआ, और विवाहोत्सव के लिए तैयारियां आरंभ कीं। राजकुमारी का राजप्रासाद में स्वागत किया गया और शहतूत के बीज और रेशमी कीड़ों की नस्लें भी खोस्तन में लाई गईं। अगले वर्ष के वसन्त में राजकुमारी ने शहतूत के बीज बोवाए और रेशमी कीड़ा पालने का समय आते ही रेशमी कीड़े पाले जाने लगे। आरंभ में अन्य वनस्पतियों के पत्तों से रेशमी कीड़े पाले गए थे। कुछ समय बीतने के बाद जब शहतूत के पत्ते उग आए तो शहतूत के पत्तों से रेशमी कीड़े पाले जाने लगे। रेशमी कीड़े पालने के लिए राजकुमारी ने एक नियम बनाया और उसे एक शिला पर अंकित करा दिया : रेशम के पतंगे की हत्या करना मना है। जब तक सभी पतंगे रेशम-कोषों से निकलें, तब तक रेशम-कोषों से रेशा नहीं काता जा सकता। जो कोई इस नियम का उल्लंघन करेगा उसे सजा मिलेगी। इसके अतिरिक्त राजकुमारी ने प्रथम किस्त के रेशमी कीड़ों के लिए यह माजा संघाराम भी खड़ा करवा दिया। कहा जाता था कि वहां जो थोड़े से शहतूत के सूखे वृक्ष खड़े थे, वे उसी समय के थे। खोस्तन में पतंगों को कोष के साथ न मारने की प्रथा आज भी प्रचलित थी। यदि कोई जीवित पतंगों-युक्त रेशम-कोष से चोरी-छिपे रेशा कातता पकड़ा जाता, तो अगले वर्ष उसे कीड़े पालने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था।

नौ. नाग-ढोल की कथा

राजधानी के दक्षिण-पूर्व में सौ ली से अधिक दूरी पर एक बड़ी नदी थी जो उत्तर-पश्चिम की दिशा में बहती थी। खोस्तन के निवासी इस नदी के पानी से अपने खेतों की सिंचाई कर बहुत लाभ प्राप्त करते थे। बाद में यह नदी अचानक सूख गई। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह घोड़े पर सवार हो कर अर्हत के यहां गया और उससे पूछने लगा : "नदी के पानी से सदा ही निवासियों द्वारा खेतों की सिंचाई की जाती रही थी। अब जलप्रवाह अचानक ही कट गया है। न जाने हमने कौन सा पाप कर डाला है जिससे यह हुआ है? क्या मैंने कोई अन्याय किया है या फिर मेरे उपकार में कमी आई है? अन्यथा भगवान ने इतना कठोर दण्ड क्यों दिया है?" अर्हत बोला : "महाराज, आपका शासन स्वच्छ है और न्यायपूर्ण भी। जलप्रवाह काटने का यह कुकर्म नाग ने किया है। आप शीघ्र ही एक मंदिर बनवा कर नाग की पूजा करें, तब सिंचाई की सुविधा पूर्ववत् प्राप्त हो जाएगी।" राज-प्रासाद लौट कर राजा ने मंदिर बनवा कर नदी के नाग को पूजोपहार चढ़ाए। देखते-देखते एक स्त्री लहरों पर चलती हुई आई और बोली : "मेरा पति चल बसा है। फलतः मैं अपने स्वामी के आदेश का पालन करने से वंचित हूं। यही कारण है कि नदी में जलप्रवाह

कट गया है और कृषकों को भी सिंचाई की सुविधा नहीं मिल रही है। महाराज, यदि आप किसी एक मंत्री को चुन मेरे साथ उसका विवाह करा दें तो यह जलप्रवाह पूर्ववत् बहता रहेगा।" राजा ने कहा: "आपकी इच्छा अवश्य ही पूरी होगी।" नाग-स्त्री ने ध्यान से सबों को निहारने के उपरांत एक मंत्री पर अपनी दृष्टि डाली। राजा ने राजप्रासाद में लौट कर अपने मंत्रियों से कहा: "मंत्री राज्य का स्तंभ होता है और खेती प्रजा के प्रतिपालन हेतु अन्न प्रदान करती है। स्तंभ खो बैठने पर राज्य संकट में पड़ जाएगा और अन्न न मिलने से लोगों का प्राणान्त हो जाएगा। या तो राज्य संकटग्रस्त हो जाएगा अथवा मेरी प्रजा की मृत्यु हो जाएगी। ऐसी विषम परिस्थिति में हमें क्या करना उचित है?" नाग-स्त्री द्वारा चुने हुए मंत्री ने आगे बढ़ कर राजा के सामने घुटने टेक कर कहा: "मैं दीर्घकाल से ही उतना कार्य नहीं कर पा रहा हूं जितना मेरे महत्वपूर्ण पद के लिए आवश्यक है। मैं सदा राज्य की सेवार्थ कुछ करने की बात सोचता रहा हूं, परन्तु मुझे अवसर नहीं मिल पा रहा है। जब नाग-स्त्री ने मुझे ही चुन लिया है, तो मैं इस दायित्व को कैसे टाल सकता हूं? जब कोई कार्य प्रजा के हित में हो, तो महाराज, आपको एक मंत्री के खो बैठने पर हिचकिचाहट करने की क्या आवश्यकता है? मंत्री राजा का सहायक मात्र होता है, जबकि प्रजा राज्य का आधार है। महाराज, आपको दुविधा में नहीं पड़ना चाहिए। मेरी मात्र यही प्रार्थना है कि मेरी पुण्य-फल प्राप्ति के लिए एक संघाराम बनाया जाए।" राजा ने उसका अनुरोध स्वीकार कर लिया तथा बहुत ही अल्प समय में एक संघाराम निर्मित करवा दिया। फिर उस मंत्री ने शीघ्रातिशीघ्र नाग प्रासाद जाने का अनुरोध किया। राज्य भर के पदाधिकारियों और प्रजा ने वाद्ययंत्र बजाते हुए उसके सम्मान में भोज आयोजित किया। मंत्री ने श्वेत वस्त्र पहने और एक श्वेत घोड़े पर सवार हो राजा से प्रस्थान करने की अनुमति मांगी तथा राज्य के सभी निवासियों के प्रति आभार प्रकट किया। इसके उपरांत उसने घोड़े को नदी की दिशा में डाल दिया। घोड़ा नदी में पानी पर चलता रहा और नीचे डूबा नहीं। मंझधार तक पहुंचने पर मंत्री ने चाबुक से पानी में एक रेखा खींची और पानी रेखा के दोनों ओर पीछे हट गया। उसी स्थल पर मंत्री जलमग्न हो गया। कुछ क्षणों के पश्चात् वह श्वेत घोड़ा पानी के ऊपर आ गया। उसकी पीठ पर चंदन का एक बड़ा ढोल लदा हुआ था। ढोल के साथ एक पत्र संलग्न था। पत्र में लिखा था कि "महाराज, आपने मुझे जैसे तुच्छ व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की और मुझ पर देवता की कृपादृष्टि पड़ गई। मैं शुभकामना करता हूं कि महाराज, आप अधिकाधिक पुण्य कर्म करें क्योंकि इससे राज्य और प्रजा दोनों का ही हित होगा। आप इस ढोल को नगर के दक्षिण-पूर्वी कोने में लटका दें। यदि शत्रु चढ़ाई करने आएं तो ढोल पूर्व सूचना के लिए स्वत: बज उठेगा।" उस समय से नदी में जल पुन: प्रवाहित होने लगा और आज तक स्थानीय लोग उसका लाभ उठाते रहे थे। कालांतर में वह ढोल अनुपलब्ध हो गया। उसके स्थान

पर एक अन्य ढोल लटकाया गया। ताल के निकट वह संघाराम अभी तक स्थित था, परन्तु अब वह जर्जर हो चुका था और उसमें कोई भिक्षु नहीं रहता था।

दस. प्राचीन रणक्षेत्र

राजधानी से तीन सौ ली दूर पूर्व में फैले निर्जन क्षेत्र में तीसियों हेक्टर ऊसर भूमि थी जिसकी मिट्टी का रंग गहरा लाल था। स्थानीय वृद्धों के अनुसार इसी स्थान पर खोस्तन की सेना हारी थी। अतीत में जब पूर्व राज्य के दस लाख सैनिक पश्चिम की दिशा में अभियान करते जा रहे थे, तब खोस्तन का राजा शक्तिशाली शत्रु सेना का प्रतिरोध करने हेतु कई लाख सैनिकों को ले कर पूर्व की दिशा में बढ़ा। इस स्थान पर दोनों राज्यों की सेनाएं आमने-सामने खड़ी हुईं। भीषण युद्ध हुआ। अन्त में खोस्तन की सेना के पैर उखड़ गए। पूर्व राज्य की सेना विजय का झण्डा गाड़ते हुए आगे बढ़ती गई। उन्होंने खोस्तन के राजा को पकड़ लिया और उसके सेनानायकों और सभी सैनिकों को मार डाला। एक भी प्राणी को नहीं छोड़ा गया। खून की नदी बह गई और यहां की भूमि रक्त में रंग गई। तब से ही यह निशानी बनी रही थी।

ग्यारह. भीम्माम्ना नगर और चंदन की बुद्ध-मूर्ति

रणक्षेत्र से पूर्व की ओर तीस ली दूर चलने पर भीम्माम्ना नगर आया। नगर में चंदन की दो चाङ से अधिक ऊंची खड़ी-मुद्रा में बुद्ध मूर्ति सुशोभित थी। यह बुद्ध-मूर्ति जब-तब अलौकिक शक्ति प्रदर्शित करती रहती थी और प्रायः प्रभा विकीर्णित करती रहती थी। जिस किसी रोगी के शरीर में जहां भी पीड़ा होती थी, बुद्ध-मूर्ति के उसी स्थान पर स्वर्ण की पन्नी लगा देने से वह तुरन्त नीरोग हो जाता था। जो कोई बुद्ध-मूर्ति से वर मांगता, उसका मनोरथ भी बहुधा पूरा हो जाता था। किंवदंती के अनुसार यह बुद्ध-मूर्ति बुद्ध के जीवन काल में कौशांबी के राजा उदयन द्वारा बनवाई गई थी। बुद्ध के निर्वाण के बाद यह बुद्ध-मूर्ति आकाश में उड़ती हुई खोस्तन के उत्तर भाग में रौरक नगर में आ कर उतर गई। उस समय इस नगर के निवासी सुख-चैन का जीवन बिताते थे। किन्तु वे परधर्म के झूठे मतों के चक्कर में फंसे हुए थे, अतएव उन्होंने इस बुद्ध-मूर्ति पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने यह सुना तो था कि यह मूर्ति स्वतः आकाश से उड़ कर यहां आई है, पर उन्होंने इसे मात्र एक आश्चर्य माना था और उसका सम्मान नहीं किया था। बाद में एक अर्हत ने आ कर इस बुद्ध-मूर्ति के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। राज्य के निवासी अर्हत

के विचित्र वस्त्र एवं रंगरूप को देख कर चकित रह गए। उन्होंने यह सवाद नगरपाल तक पहुंचाया और नगरपाल ने इस विलक्षण व्यक्ति के शरीर को रेत और मिट्टी से पोतने की आज्ञा दी। अर्हंत की पूरी देह रेत व मिट्टी से ढक गयी और खाने को अन्न भी न मिल सका। यह देख कर एक नगरनिवासी अधीर हो गया। वह पहले से ही श्रद्धापूर्वक बुद्ध-मूर्ति की पूजा करता था। वह औरों की दृष्टि बचा कर अर्हंत को खाना खिलाता रहा। जब अर्हंत इस नगर को छोड़ने को था, तब उसने इस निवासी से कहा : "मेरे चले जाने के सात दिन बाद यहां रेत की भारी वर्षा होगी और नगर रेत के नीचे दब जाएगा। कोई भी प्राणी नहीं बचेगा। तुम्हें इसका स्मरण रखना चाहिए और इस नगर को छोड़ देने के लिए शीघ्र ही तैयारी कर लेनी चाहिए। यह दैवी प्रकोप इसलिए पड़ेगा क्योंकि यहां के निवासियों ने मुझ पर रेत और मिट्टी पोती थी।" यह कह कर अर्हंत तुरन्त ही अदृश्य हो गए। उस नगर-वासी ने लौट कर अपने सभी संबंधियों एवं मित्रों को चेताया। परन्तु उन सबने उसकी हंसी उड़ाई। अगले दिन एकाएक आंधी चल पड़ी। नगर में कूड़ा-करकट उड़ा ले जाया गया, आकाश से रंगबिरंगे रत्नों की वर्षा हुई और सभी मार्ग रत्नों से ढक गए। तब तो लोग पूर्व सूचना देने वाले उस निवासी को कहीं अधिक कोसने लगे। उस निवासी को ज्ञात था कि विपत्ति उत्पन्न हो कर ही रहेगी। उसने लोगों की दृष्टि बचा कर एक सुरंग खोद ली थी जो नगर से बाहर जाती थी। सातवें दिन आधी रात के उपरांत आकाश से रेत की भारी वर्षा हुई जिसके नीचे पूरा नगर दब गया। वह निवासी सुरंग से नगर के बाहर निकल आया और पूर्व की दिशा में बढ़ते हुए भीम्मामना नगर में आ गया। वह अभी भीम्मामना पहुंचा ही था कि वह बुद्ध-मूर्ति भी वहां आ पहुंची। फिर उसकी पूजा की जाने लगी। किसी में भी उसे हटाने का साहस नहीं था। मैंने पूर्ववर्ती मुनियों के उल्लेखों में पढ़ा है कि जब बौद्ध धर्म का अन्त होगा, तब यह बुद्ध-मूर्ति नाग प्रासाद में चली जाएगी। अब रौरक नगर एक विशाल टीला बन गया। राजा-महाराजा एवं स्थानीय धनी दुष्ट जन इस टीले को खोद कर रत्न-मणियां खोज निकालने की कुचेष्टाएं करते थे। लेकिन वे जब भी इस टीले के पांस पहुंचते, तो तुरंत ही भीषण आंधी उठ जाती और घना कोहरा छा जाता था जिससे वे भटक जाते थे।

बारह. निना नगर

भीम्मामना घाटी से पूर्व की ओर बढ़ते हुए मरुभूमि में दो सौ ली चलने के बाद मैं निना नगर पहुंचा। निना नगर की परिधि तीन-चार ली थी। वह एक विशाल दलदल में अव-स्थित था। दलदल में दम घोंट देने वाली उमस और गीलापन था। उसे पार करना दुष्कर

था। दलदल में नरकट ही नरकट उगे हुए थे। कोई दूसरा रास्ता नहीं था। मात्र एक रास्ता था जो निना नगर तक जाता था। अतः सभी यात्रियों को इसी नगर से गुजरना पड़ता था। निना नगर खोस्तन की पूर्वी सीमा पर एक चुगीघर था।

चलती रेत की विस्तृत भूमि से पूर्व में यात्रा

यहां से पूर्व की ओर चलते हुए मैं चलती रेत की विस्तृत भूमि में प्रविष्ट हुआ, जहां रेत के ढेर हवा के झोंकों के साथ बनते-बिगड़ते रहते थे। यात्री जहां से भी गुजरता था वहां पदचिह्न नहीं पड़ते थे। अतएव यात्री रास्ता भटकते रहते थे। चारों ओर दृष्टि डालने पर दूर-दूर तक रेत का सागर ही दिखाई देता था। उसका न ओर था न छोर, और दिशा का ज्ञान नहीं हो पाता था। आने-जाने वाले यात्रियों ने मृतकों की अस्थि-पंजरों के ढेर लगा कर मार्ग चिह्नित किया था। यहां पानी और घास का अभाव था और वायु उष्ण थी। जब उष्ण अंधड़ उठता, तब यात्री और पशु मूर्छित हो कर रोगग्रस्त हो जाते थे। जब-तब गीत व रुदन के शब्द और चीत्कार सुनाई दिया करते थे और चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर भी पता नहीं लग पाता था कि वे शब्द किधर से आ रहे थे। बहुत से यात्रियों ने यहीं अपनी जानें गंवाई थीं। यह भूत-प्रेतों का शाप था।

चलती रेत की विस्तृत भूमि में चार सौ ली से अधिक रास्ता तय करने के उपरांत मैं भूतपूर्व तुखार राज्य पहुंचा। यह राज्य कब का उजड़ चुका था। सभी नगर निर्जन थे।

यहां से पूर्व की ओर छः सौ ली की दूरी पर पुराना सर्मदन राज्य अर्थात चर्चेन की भूमि स्थित थी। नगर का प्राचीर सुरक्षित स्थिति में था, किन्तु नगर कब का निर्जन हो चुका था।

यहां से उत्तर-पूर्व की ओर एक हजार ली से अधिक यात्रा करने के बाद मैं पुराने नवाप राज्य पहुंचा। यह रोरैन की सीमा के अन्दर स्थित था।

परिशिष्ट

इस यात्रा-वृत्तांत के लिखने का उद्देश्य प्राकृतिक स्थितियों का चित्रण करना, विभिन्न स्थानों की अवस्थाओं का विवरण देना, सीमान्त विभाजनों का सर्वेक्षण करना, अलग-अलग राज्यों की प्रथाओं एवं परम्पराओं का विस्तृत वर्णन करना और नाना स्थलों की जलवायु एवं भूमि की स्थितियों का उल्लेख करना है। चूंकि ये वस्तुएं परिवर्तनशील रहती थीं, इसलिए उन्हें चुन-चुन कर प्रत्येक को उल्लिखित करना पड़ा है। यद्यपि प्रत्येक बात

की सामग्रिक परख ग्रसंभव है, तथापि मनगढ़त रूप से लिख डालना ग्रनुचित है। यात्रा के समय मैं जहां-जहां पहुंचा, वहां-वहां की मुख्य स्थितियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। जो कुछ मैंने देखा ग्रौर सुना था, केवल उसी का उल्लेख किया गया है, ग्रौर विभिन्न स्थानों में बौद्ध धर्म के प्रचार की स्थितियां लिपिबद्ध की गई हैं। यह सब इसलिए संभव हो सका कि दूरस्थ पश्चिम में सूर्यास्त के स्थल तक ऐसा कोई स्थान न था जिसका हमारे सम्राट के उपकार से हित न हुग्रा हो। ग्रौर, जिन स्थानों पर उनका प्रभाव पड़ा है, उनमें से ऐसा कोई भी स्थान न था जो हमारे सम्राट के सद्‌गुणों की स्तुति न करता हो। संसार एक सूत्र में बंधा है एवं समूचा जग एकीकृत है। ग्रतः मेरी यह यात्रा सफल हो सकी है। ग्रन्यथा, भला मैं ग्रकेले हजारों ली लम्बी यात्रा निर्बाध रूप से कैसे कर सकता था।

उपसंहार

यह कितनी महिमामयी बात है कि धर्मराज का मनुष्य लोक में जन्म हुआ था ! अन्तःकरण में परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से होता है और अद्भुत सिद्धांत शून्य है। गंगा की रेणु-कणों जितने विस्तृत जगत में कार्य एवं चित्त का प्रत्यक्षीकरण हुआ एवं मनुष्य लोक में उत्पत्ति तथा विनाश की प्रक्रिया का अंत हुआ है। जब कार्य और चित्त नहीं रह गया, तो जिसकी उत्पत्ति होनी चाहिए थी, उसकी उत्पत्ति नहीं हुई और जब उत्पत्ति व विनाश की प्रक्रिया बंद हो गई, तो निर्वाण होने पर भी नाश नहीं हुआ। कपिलवस्तु में भगवान का जन्म और कुशीनगर के शालवन में उनका परिनिर्वाण भी ऐसा ही है। इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने सत्वों की इच्छानुरूप अपनी दिव्य शक्ति का प्रदर्शन किया है और हेतु-प्रत्यय के अनुरूप अपने लक्षण छोड़ रखे हैं। वे क्षत्रिय और शाक्य वंश के थे। उन्हें कपिलवस्तु में राज्यारोहण करना था, परन्तु उनका मन अलौकिक शास्त्रों में लग गया। राजसिंहासन का परित्याग कर, प्रव्रज्या प्राप्त कर उन्होंने बौद्ध धर्म को निर्दिष्ट किया एवं सूर्य की प्रखर किरणों की भांति प्राणियों का पालन-पोषण किया और उन्हें सद्धर्म में दीक्षित किया। बौद्ध धर्म दस दिशाओं तक जा पहुंचा है और उसकी प्रज्ञा से सभी सत्वों का हित हुआ है। यद्यपि वे निस्तब्ध एवं निर्वाण शून्यता से परे तो हैं ही, तथापि उन्हें सभी प्राणी दृष्टिगोचर व श्रवणगोचर हैं। उन्होंने जगत में तीन बार धर्मचक्र पवर्तन किया और अपनी वाक्पटुता से धर्मोपदेश दे कर मनुष्य लोक को कंपित कर दिया। उन्होंने चौरासी हजार उपदेश दे सद्धर्म का विस्तृत वर्गीकरण किया और सद्धर्म के समूचे प्रमुख तत्वों को बारह शास्त्रों में संगृहीत किया। उनके स्वर दूर-दूर तक फैलते गए और पुण्य-फलों के वन में गूंजते रहे। उनके आदर्श आचरण से दीर्घायु के लोक को प्रेरणा मिली। संत के पुण्य-कार्य कितने महान हैं और शास्ता देवमनुष्याणाम के गुण कितने संपूर्ण हैं ! परन्तु जब भविष्य एवं अतीत को मायामय लोक में छोड़ उन्होंने शालवन में निर्वाण प्राप्त किया, तब से मनुष्य लोक में उनके उत्तराधिकारी नहीं रहे और किसी ने भी गुह्य अर्थों का अध्ययन नहीं किया। पूज्य काश्यप ने गंभीरता से अर्हंतों को चुना और उन्होंने बुद्ध के उपकार का बदला चुकाने हेतु बुद्ध के उपदेशों एवं सूत्रों का संकलन किया। चतुरागम में बौद्ध धर्म की उत्पत्ति और विकास की स्थिति और त्रिपिटक में उसके प्रमुख तत्व समाविष्ट किए गए। यद्यपि विभिन्न निकाय उभरे, तथापि बौद्ध धर्म अस्तित्व में बना रहा। बुद्ध

के जन्म से परिनिर्वाण तक सैकड़ों तीर्थस्थल प्रकाश में आए और हजारों दैवी लक्षण दिखाई दिए। अनगिनत दिव्य अभिव्यंजनाएं और अधिक स्पष्ट हुईं और परमार्थ का सिद्धांत नवीन बना रहा। यह सब कुछ सूत्रों व शास्त्रों में उल्लिखित है और कथाओं में विस्तार से वर्णित है। फिर भी अपना-अपना राग अलापा जाता रहा और असंगत एवं अशुद्ध बातें जहां-तहां फैलती गईं, जबकि सद्धर्म के मूल सिद्धांतों के संदर्भ में शुद्ध विचार थोड़े ही मिल पाते थे। जब तथ्यों पर आधारित इन अभिलेखों पर भी भिन्न-भिन्न मत हैं, तो फिर यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि सद्धर्म के गुह्य सिद्धांतों एवं गूढ़ परमार्थों के संदर्भ में अभिलेखों के अभाव की स्थिति में क्या हुआ होगा। इसलिए पूर्ववर्ती विद्वानों ने क्रमश: बौद्ध सूत्रों का अनुवाद किया और परवर्ती ज्ञानियों ने पूर्ववर्तियों के अपूर्ण अभिलेखों का संकलन किया। बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांत फिर भी स्पष्ट न किए जा सके और सूक्ष्म बातें छूट जाने पर कोई पूछने वाला नहीं रहा। हान राजवंश काल में बौद्ध धर्म का प्रचार आरंभ हुआ था और तब से वर्तमान राजवंश तक तो अनेक वर्ष बीत चुके हैं। बौद्ध सूत्रों के अनुवाद का महान कार्य निर्झर की भांति निरन्तर चलता रहा और उसी प्रकार चला जाता रहा है, जिस प्रकार सूर्यास्त के उपरांत चन्द्रोदय होता है और चन्द्रमा के अस्त होने के उपरांत फिर सूर्य का उदय होता है। तिस पर भी गुह्य सिद्धांत स्पष्ट न हो पाए और परमार्थ पर प्रकाश न डाला जा सका। इसका कारण सद्धर्म की प्रत्यक्षता एवं परोक्षता नहीं है, बल्कि है हमारे राजवंश का सुशासन। हमारे थाङ राजवंश ने जगत में आधिपत्य स्थापित किया है और समुद्र के उस पार भी प्रतिष्ठा स्थापित की है। संतों द्वारा छोड़ी गई व्यवस्थाओं की परख की गई और भूतपूर्व राजनियमों को दोषमुक्त किया गया। बुद्ध-मूर्तियों एवं शास्त्रों का प्रचार-प्रसार किया गया, महत्वपूर्ण निर्देशक उल्लेख बनाए गए, मतों पर मात्र दिखावटी रूप से अमल नहीं किया गया और सदाचार का व्यापक रूप से अनुमोदन किया गया। परिणामस्वरूप तीन यानों के गहन एवं गुह्य सिद्धांत हजार वर्ष के पश्चात् भी सुरक्षित रह सके हैं और दशबल की अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन दस हजार ली के बाहर गुप्त रखा जा सका है। दैवी शक्ति तो सर्वविद्यमान है, परन्तु सद्धर्म का कोई न कोई सहारा होता है और एक निश्चित स्थिति में उसका प्रत्यक्षीकरण होता है। यह बात नितान्त सत्य है।

धर्माचार्य श्वेन त्साङ का वंश लेजे में आरंभ हुआ था और उनके गोत्र का नाम छन, वेइछ्वान में समाप्त हो गया। उन्होंने उत्तम गुणों का परिचय दिया, विनम्रता का सार अर्जित किया, नीति-दर्शन के अनुरूप मार्ग अपनाया और सत्कृति की मांग के अनुसार आचरण किया। उनकी धर्म-निष्ठा का चिरंतन कारण है और उन्हें देश की समृद्धि के काल में रहने का सौभाग्य मिला है। सांसारिक जीवन से परे हो वे बहुत पहले से ही संघाराम में रहने लगे थे। वे पूर्ववर्ती आचार्यों के उपदेशों के अनुरूप व्यवहार करते थे और पूर्वगामी ज्ञानियों

के सद्गुणों के प्रशंसक थे। वे पुस्तकों का पिटारा पीठ पर लादे जहां-तहां घूमते हुए विख्यात आचार्यों से शिक्षा लेते रहे। उन्होंने उन क्षेत्रों का भ्रमण किया, जहां पहले येन, चाओ, लू एवं वेइ आदि पुरातन राज्य स्थित थे। फिर वे सानह से छिनचुङ में प्रविष्ट हुए और पद-यात्रा करते हुए सछ्वान से ऊह्वेइ पहुंच गए। उन्होंने मेधावी विद्वानों से किसी बात की तह तक पहुंचने के लिए प्रश्नों की झड़ियां लगाईं और अनेक अवसरों पर समकालीन सर्वश्रेष्ठ ज्ञानियों से परदेश जा कर बौद्ध धर्म का अध्ययन करने की अभिलाषा व्यक्त की। लोगों की चर्चाएं सुन कर उन्होंने विभिन्न शाखाओं के सिद्धांतों के संदर्भ में जांच-पड़ताल की और पाया कि वे सभी अपनी ही विजय के लिए जी तोड़ चेष्टाएं कर रही थीं और अन्य शाखाओं के मतों से घृणा करती थीं। धर्माचार्य श्वेन त्साङ की हार्दिक आशा थी कि उन्हें बौद्ध धर्म की उत्पत्ति पर अध्ययन का अवसर मिलेगा और वे इस संदर्भ में विस्तृत जांच करने को कृतसंकल्प हुए। जब देश एकीकृत हुआ और सभी स्थानों में थाङ राजवंश का शासन स्थापित हुआ, उन्होंने सम्राट थाए चुङ के शासनकाल के तीसरे वर्ष में मध्य शरद की प्रथम तिथि की भोर वेला में यष्टि लिए अपना अभियान आरंभ किया। वे सम्राट की प्रतिष्ठा के सहारे रास्ता पूछते हुए आगे बढ़ते गए और देवों का अप्रत्यक्ष संरक्षण पा कर अकेले ही साहसिक यात्रा करते गए। उन्होंने दरबंद-ए-आहनीन एवं प्रस्तर द्वार दर्रों से निकल दुर्गम मुज-अर्त और हिमगिरि को पार किया। समय बीतता गया और अंत में वे भारत पहुंच गए। उन्होंने परदेश में चीन की प्रथाओं का प्रचार किया एवं देशांतर में चीन की गौरवमय संस्कृति का परिचय दिया। उन्होंने संस्कृत विद्याएं ग्रहण कीं और सुविज्ञ सदाचारियों से साक्षात्कार किया। सूत्रों के संस्कृत पाठ पढ़ने पर ही उन्होंने अपनी वर्षों पुरानी शंकाएं दूर कर लीं और ज्ञानियों से शिक्षा ले कर गूढ़ार्थ समझ लिए। उन्होंने प्रबुद्ध हो कर सिद्धांतों को आत्मसात किया और मेधा का विकास कर बौद्ध धर्म को हृदयस्थ किया। उन्हें जो कुछ पहले सुनने को नहीं मिला था, वह मिल गया और जो कुछ उपलब्ध नहीं हुआ था, वह उपलब्ध हो ही गया। वे सच्चे अर्थों में संघ के हितैषी और धर्म के महान शिल्पी हैं! उनकी कर्मठता सर्वविदित थी, गुण उत्तम था, ज्ञान वर्षों तक अध्ययन के उपरांत अर्जित हुआ था एवं ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी। भारत के विद्वान उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें बौद्ध सूत्रों से भरा पिटारा अथवा बौद्ध धर्म का सेनापति कहते थे। हीनयानियों ने उन्हें मोक्ष देव की उपाधि प्रदान की और महायानियों ने उन्हें महायान देव की उपाधि से विभूषित किया। उनके सत्कर्म की प्रशस्ति में और उनके सद्गुणों के प्रति आदर-भाव प्रकट करने के लिए ही उन्हें इन उपाधियों से सम्मानित किया गया था। श्वेन त्साङ ने बौद्ध धर्म के गूढ़ अर्थों एवं सूक्ष्म तत्वों के मूल और शाखाओं का गहन अध्ययन कर प्रज्ञा प्राप्त की और सहज ही मतों को सुव्यवस्थित किया। सैद्धांतिक समस्याओं के समाधान का विस्तृत उल्लेख अन्य कृतियों में किया जा चुका है। जब वे सिद्धांतों में पारंगत

हुए, गूढ़ार्थ समझने में समर्थ हुए, उनकी प्रसिद्धि वायु के साथ फैल गई, ज्ञान परिपूर्ण और सत्कर्म पर्याप्त हो गए, तब वे भ्रमण के लिए निकले। उन्होंने पर्वतों एवं नदी-नालों के सौम्य दृश्य देखे और नगरों एवं उनके उपनगरों के चक्कर लगाए। उन्होंने कुशाग्रपुर से निकल मृग-दाव में प्रवेश किया, यष्टिवन का भ्रमण कर कुक्कुटाराम में विश्राम किया, कपिलवस्तु पर दृष्टिपात किया और कुशीनगर के उपनगर का पूरा नजारा लिया। जहां बुद्ध का जन्म हुआ था, वहां उन्हें अब उर्वर मैदान दिखाई दिया ; जहां दिव्य शक्ति का प्रदर्शन हुआ था, वहां निस्तब्धता छाई हुई थी। तीर्थस्थलों के दर्शन कर उन्होंने बुद्ध का स्मरण किया और वे सद्धर्म के प्रचार पर गर्व कर प्रभावित भी हुए। वे चीचि की तरह नहीं थे, जो इन राजवंश के प्रासाद के खण्डहरों पर उगे गेहूं के पौधों को देख एक कविता लिख इन राजवंश के पतन पर दुख व्यक्त कर ही रह गया था[1], और वे चओ राजवंश के उस मंत्री के समान भी नहीं थे, जो राजवंश के पैतृक मंदिर में उगे पौधों को देख एक कविता लिख चओ राजवंश की हीन अवस्था पर स्तंभित रह गया था। उन्होंने तो शाक्यमुनि की कथाएं विस्तृत रूप से लिपिबद्ध कीं, भारत के अनेक ऐतिहासिक तथ्य उपस्थित किए, प्रथाओं एवं लोकाचार के संदर्भ में बहुत सी सामग्री संकलित की और अनेक अनोखी अनुश्रुतियां उल्लिखित कीं। समय बीतता गया और अनजाने ही अनेक गर्मियां एवं सर्दियां बीतती गईं। यद्यपि धर्माचार्य को भारत की पवित्र भूमि से लगाव था, तथापि जन्मभूमि की स्मृति उनके हृदय में सदा जीवित रही थी। तब उन्होंने बड़ी श्रद्धा से ये वस्तुएं इकट्ठी कीं : तथागत के शरीर के एक सौ पचास अवशेष ; एक स्वर्ण बुद्ध-प्रतिमा, जो आसन सहित एक छि छः छुन[2] ऊंची थी ; मगध में प्रागबोधि पर्वत में नाग शैलगृह में बुद्ध की छाया-मूर्ति की स्वर्ण अनुकृति, जो आसन सहित तीन छि तीन छुन ऊंची थी ; वाराणसी के मृग-दाव में प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन करते हुए बुद्ध की चंदन मूर्ति, जो आसन सहित एक छि पांच छुन ऊंची थी, कौशांबी के राजा उदयन द्वारा बनवाई गई तथागत की चंदन मूर्ति की चंदन अनुकृति, जो आसन सहित दो छि नौ छुन ऊंची थी ; कपिथ में सोपान से देवपुर से नीचे उतरते हुए तथागत की मूर्ति की रजत अनुकृति, जो आसन सहित चार छि ऊंची थी ; मगध के गृध्रकूट में "सद्धर्म पुंडरीक सूत्र" सुनाते हुए बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति, जो आसन सहित तीन छि पांच छुन ऊंची थी ; नगरहार में गोपाल नाग को वश में करने के उपरांत बुद्ध द्वारा छोड़ी गई छाया-मूर्ति की चंदन अनुकृति, जो आसन सहित एक छि तीन छुन ऊंची थी ; वैशाली का भ्रमण करते हुए बुद्ध की मूर्ति ; महायान सूत्रों के 224 ग्रंथ ;

1. चीचि इन राजवंश का एक अभिजात था। उसने राजा चऊ को कुशासन समाप्त करने का परामर्श दिया था। राजा ने उसे जेल में डाल दिया। बाद में चओ राजवंश के सम्राट ऊवाङ ने इस राजवंश पर विजय पाने के बाद उसे मुक्ति दिला दी।

2. एक छुन एक इंच से कम है।

महायान शास्त्र के 192 ग्रंथ ; स्थविरवादी सूत्र, शास्त्र व विनय के 14 ग्रंथ ; महासांघिक सूत्र, शास्त्र व विनय के 15 ग्रंथ ; सम्मतीय सूत्र, शास्त्र व विनय के 15 ग्रंथ ; महीशासक सूत्र, शास्त्र व विनय के 22 ग्रंथ ; काश्यपीय सूत्र, शास्त्र व विनय के 17 ग्रंथ ; धर्मगुप्त सूत्र, शास्त्र व विनय के 42 ग्रंथ ; सर्वास्तिवादी सूत्र, शास्त्र व विनय के 67 ग्रंथ ; हेतुविद्या के 36 ग्रंथ ; शब्दविद्या के 13 ग्रंथ। कुल 657 ग्रंथ थे जो 520 पिटारों में सुरक्षित थे। महा बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए वे पुनः संकटों एवं कष्टों से भरे मार्ग पर चल निकले। गाड़ी में सवार हो उन्होंने स्वदेश लौटने की यात्रा आरंभ कर दी। उन्होंने श्रावस्ती छोड़ कर गया से प्रस्थान किया, पामीर के हिमाच्छादित ढालों पर चढ़, संकटमय रास्ता अपना कर, रेगिस्तान को पार किया। सम्राट थाए चुङ के शासन के उन्नीसवें वर्ष के प्रथम मास में वे राजधानी छाङ्आन वापस पहुंचे। फिर उन्होंने ल्वोयाङ में सम्राट थाए चुङ के दर्शन किए। उन्होंने आदरपूर्वक वह राजाज्ञा ग्रहण कर ली जिसमें उन्हें बौद्ध सूत्रों का अनुवाद करने का आदेश दिया गया था। तब उन्होंने ज्ञानियों को बुला कर उनके साथ मिल कर यह सत्कर्म पूरा कर लिया। सद्धर्म के मेघ ने एक बार फिर पृथ्वी को आच्छादित किया और प्रज्ञा का सूर्य पुनः प्रकाश की रश्मियां विकीर्णित करने लगा। चीन में गृध्रकूट में दिए गए धर्मोपदेशों का प्रचार हुआ और देश में नाग प्रासाद में सुरक्षित सूत्र लोकप्रिय बने। यह एक ऐसा युग रहा है जिसमें बौद्ध धर्म सबसे अधिक विकसित हुआ है।

धर्माचार्य संस्कृत विद्या में पारंगत थे और संस्कृत में गुह्य बौद्ध सूत्रों की प्रशस्ति करने में सक्षम थे। वे अपनी मातृभाषा की भांति संस्कृत सूत्र पढ़ते हुए उन्हें चीनी में सुनाने में समर्थ थे और उनके स्वर अब भी हमारे कानों में गूंजते हैं। वे बुद्ध के उपदेशों का बिना उन्हें अलंकृत किए अनुवाद करते थे। जो भी श्लोक संस्कृत में नहीं, बल्कि किसी स्थानीय बोली में अंकित था, उसका अनुवाद करने से पूर्व धर्माचार्य अवश्य सोच-विचार करते थे और अन्य बौद्ध सूत्रों का बार-बार तुलनात्मक अध्ययन कर उसका सटीक अर्थ निकालते थे ताकि अनुवाद में कोई दोष या त्रुटि न रहे।

एक वरिष्ठ अधिकारी भावावेश में आ कर गंभीर मुद्रा में बोले : "भारत एक ऐसा देश है, जहां महात्माओं के अवतार हुए हैं और मुनि उत्पन्न हुए हैं। वहां पुस्तक देवपुस्तक और भाषा देवभाषा कहलाती है। भाषा नपी-तुली एवं उच्चारण पुनरावृत्त है। या तो एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं या फिर अनेक शब्दों का एक ही अर्थ रहता है। किसी शब्द के उच्चारण पर आघात होता है तो किसी पर नहीं, और कोई स्वर अघोष है तो कोई स्वर सघोष। संस्कृत दुर्बोध है, उसका अनुवाद विद्वानों पर निर्भर है और शास्त्रों का अर्थ गुह्य है, उसका स्पष्टीकरण सुयोग्य व्यक्तियों पर निर्भर है। यदि उसके अनुवाद में काट-छांट की जाए और फिर चीनी ध्वनि विज्ञान के अनुसार उसका उच्चारण बिगाड़ दिया

जाए, तो यह नितान्त अनुचित होगा। हमें यह मत नहीं जंचता। शास्त्रों के गुह्य अर्थों को सुबोध भाषा में अनूदित करना आवश्यक है। उत्तम यही होगा कि मूल अभिप्राय का हनन न हो। भाषा की शैली अतिरंजित होने से वह भारी-भरकम हो जाती है, जबकि वह आवश्यकता से अधिक सरल रहने से असभ्य हो जाती है। अच्छा अनुवाद तभी हो सकेगा जब भाषा सटीक हो परन्तु अलंकारयुक्त न हो, सुबोध हो परन्तु असभ्य न हो और इस प्रकार कोई बड़ा दोष न हो। ली लाओ[1] ने कहा : 'जो चिकनी-चुपड़ी बातें करता है, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता, और जो अपनी बात का पक्का होता है उसकी बात अप्रिय सी लगती है।' और हान चि[2] ने कहा : 'जो सत्य बोलता है उसकी बात सीधी सी होती है, और जिसकी बात अलंकृत होती है वह असत्य बोलता है।' उनकी उक्तियों से सीख ली जा सकती है। सभी वस्तुओं के लिए मानक होते हैं और उनके सिद्धांत समान ही तो हैं। यदि दुरूह एवं अशुद्ध बातों को काट निकालने में सफलता मिले, तो इससे प्राणियों का हित होगा और वह लोकप्रिय होगा। मूल पाठ को विकृत कर मात्र शब्द योजना की सुंदरता पर बल देने से अनेक हानियां होंगी। 'पुराने विधि-नियमों का अनुसरण करो', यही धर्मराज का उपदेश है।" प्रव्रजकों एवं गृहस्थों दोनों ने कहा : "जी हां, यही बात ठीक है। अतीत में जब कंफ्यूशियस जीवित थे, तब वे दूसरों के साथ मिल कर कृतियां रचते थे। स्वयं अकेले नहीं लिखते थे। परन्तु 'छुनछू' लिखते समय उन्होंने जिस किसी बात को लिपिबद्ध करना चाहा, कर लिया और जिस किसी बात को काटना चाहा, काट दिया। इस पर उनके चियू और चिश्या जैसे साहित्य में निपुण शिष्यों को भी बोलने की अनुमति नहीं दी गई। बौद्ध सूत्रों का अनुवाद करते समय हमारे धर्माचार्य भी ऐसा ही कर रहे हैं। वे कुमारजीव का सा व्यवहार नहीं करते जिसने श्याओयाओय्वान (क्रीड़ा उद्यान) में बौद्ध सूत्रों का अनुवाद करते समय ताओ शङ, शङ चाओ, ताओ युङ और शङ रुइ इत्यादि शिष्यों को मनचाहे काट-छांट करने की अनुमति दी थी। अब तो बौद्ध सूत्रों का चीनी में सटीक अनुवाद करने और मात्र शब्दयोजना की सुंदरता के बदले सरलता पर बल देने

---

1. ली लाओ अर्थात लाओ चि, अनुश्रुतियों के अनुसार, वसंत-शरद काल (770–476 ईसापूर्व) में चीनी विचारक और ताओ धर्म के संस्थापक थे। "लाओ चि" (नीति-शास्त्र) उनकी कृति बताई जाती है। इस कृति में कुछ सरल द्वंद्वत्ववादी तत्व हैं। उनके विचार का चीनी दर्शन के विकास पर बहुत भारी प्रभाव रहा है। उनका "नीति-शास्त्र" ताओ अनुयायियों का धर्मग्रंथ है।

2. हान चि अर्थात हान फ़ेइ (280–233 ईसापूर्व) चीन के युद्धरत राज्यकाल (475–221 ईसापूर्व) के उत्तरकालीन विचारक थे। वे विधि शाखा के प्रतिनिधि थे। उनकी मान्यता थी कि युद्ध के माध्यम से देश का एकीकरण हो और विधियों के सहारे शासन ऐतिहासिक विकास की प्रवृत्ति के अनुकूल हो। उनकी कृति "हान फ़ेइचि" में विधि शाखा की एक संपूर्ण वैचारिक व्यवस्था प्रस्तुत की गई है, जिसने चीन में केंद्रीय सामंती सत्ता की स्थापना के लिए सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया।

का समय है, बुद्ध के धर्मोपदेशों को बढ़ा-चढ़ा कर या फिर काट-छांट कर मात्र भाषा की सुंदरता को महत्व देने की मूर्खता कैसे की जा सकती है ?"

मैं, प्येन ची, ने किशोरावस्था में ही पूर्ववर्ती महात्माओं का अधूरा कार्य पूरा करने और एकांत वास करने का संकल्प किया था। पन्द्रह वर्ष की आयु में मैंने सिर मुंड़वा कर प्रव्रज्या प्राप्त की और ताचुङ छी संघाराम में सर्वास्तिवादी आचार्य ताओ ग्वे का शिष्य बन गया। एक प्रसिद्ध आचार्य तो मिल गया, परन्तु मैं ऐसी सड़ी हुई लकड़ी जैसा था, जो एक कुशल शिल्पी के हाथों में आ कर भी कोई सुंदर वस्तु नहीं बन सकती। मुझे संघ में सम्मिलित होने का सौभाग्य तो मिल गया, परन्तु मैं खुङ फ़ङ की भांति चिकनाइयों में रहते हुए भी स्वयं चिकना न हुआ।[1] खा-पीकर योंही दिन काटता था और प्राचीर के उन्मुख हो बैठे-बैठे व्यर्थ ही जीवन व्यतीत करता रहता था। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे इस अनुवाद-शाला की विराट सभा में सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त हो सका। मैं अपनी गौरैया जैसी योग्यता से जैसे-तैसे गिद्धों एवं गरुड़ों का अनुसरण करता था। मुझे जैसे अयोग्य व्यक्ति से यह विवरण लिखवाया गया। मेरा ज्ञान इतना व्यापक नहीं है और न ही मेरे लेखन में शब्द सौष्ठव है। मैंने तो मानो कुंद छुरी को सान दे कर सड़ी हुई लकड़ी को तराशने की चेष्टा की है, और मैं उस व्यक्ति जैसा हूं जो थका-मांदा हो और ऊपर से लंगड़ा भी। मैंने बड़ी श्रद्धा से आदेश का पालन कर यह विवरण लिपिबद्ध किया, क्रम के अनुसार लेखों का संपादन किया। मंत्री के लिखित आदेश पर यह उपसंहार लिखा है। मैं मंदबुद्धि जो हूं, अतएव इस में दोष एवं त्रुटियां अवश्य हैं। यह भी हो सकता है कि इसमें व्यर्थ शब्द न भी काटे गए हों। भूत काल में समा छ्येन[2] एक सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार थे। उन्होंने अपने पूज्य पिता का अधूरा कार्य पूरा करते हुए "शाही इतिहासकार का अभिलेख" लिखा। तिस पर भी वे कहीं केवल किसी का नाम लिख कर उपनाम लिखना भूल गए और कहीं

1. खुङ फ़ङ चीन के हान राजवंश काल का था। सन 29 में वह कूत्साङ का मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। उस समय कूत्साङ एक संपन्न नगर था। जो भी अधिकारी बन इस नगर में जाता था, वह कुछ ही मासों के अन्दर मालामाल हो जाता था। परन्तु खुङ फ़ङ सच्चरित्र था। इस नगर में जा कर उसकी धन-संपत्ति में कुछ भी वृद्धि न हुई। सो उसका उपहास किया गया : "वह चिकनाइयों में रहते हुए भी स्वयं चिकना न हुआ।" यहां प्येन ची ने इस पद का प्रयोग कर यह जताना चाहा है कि संघाराम में रह कर भी उसने बौद्ध मत के अध्ययन में कोई विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त नहीं की।

2. समा छ्येन (145 ?–87 ईसापूर्व) चीन के हान राजवंश के इतिहासकार, साहित्यकार और विचारक थे। उन्होंने अपने पिता के बाद शाही इतिहासकार का पद संभाला और उनके द्वारा अधूरा छोड़ा गया "शाही इतिहासकार का अभिलेख" अर्थात "ऐतिहासिक अभिलेख" पूरा कर दिया। वह चीन का सर्वप्रथम सुव्यवस्थित इतिवृत्त है। इस प्रकार जीवनी के रूप में इतिहास के लेखन का श्रीगणेश हुआ। समा छ्येन की यह कृति एक उत्तम साहित्यिक रचना भी है।

काउंटी का नाम तो अवश्य लिखा, किन्तु जिले का नाम अंकित न किया। इस प्रकार अकेले एक व्यक्ति की शक्ति से बात जटिल एवं लेख अधिक होने की स्थिति में कुछ न कुछ छूट ही जाता है। फिर मैं जो इतना अक्षम हूं, इस विवरण को संपूर्णता कैसे प्रदान कर सकता हूं ? उदाहरणार्थ, प्रथाओं और रीति-नीतियों में भिन्नता, राज्यों की सीमाओं एवं वस्तुओं, लोगों के स्वभाव एवं बुद्धि में भेद, ऋतुओं और जलवायु के तो ब्योरेवार विवरण दिए गए हैं जो वस्तु स्थिति पर आधारित हैं। परदेशियों के नाम उन्हीं के देशों की प्रथाओं के अनुसार दिए गए हैं। भारत की प्रथाओं और संस्कृति में उत्तम-अनुत्तम का अंतर है और उनके मात्र संक्षिप्त विवरण दिए गए हैं। यह तो प्राक्कथन में बताया जा चुका है। जहां तक अभिवादन, शिष्टाचार, जनसंख्या, सैनिकों एवं भिक्षुओं का संबंध है, उनका विस्तृत उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु भगवान बुद्ध ऋद्धि शक्ति से वस्तुओं को ग्रहण करते थे एवं अपनी दिव्य शक्ति का प्रदर्शन कर उपदेश देते थे। इसीलिए हम कहते हैं कि सद्धर्म के सिद्धांत गूढ़ हैं, जो मनुष्य लोक से नितान्त भिन्न हैं और दिव्य शक्ति का स्वर्गलोक से सूक्ष्म प्रदर्शन होता रहता है। जहां-जहां बुद्धों ने मंगल लक्षण दिखाए थे और संतों ने अपने पीछे सुंदर कथाएं छोड़ रखी हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है और रूपरेखा उपस्थित कर दी गई है। रास्ते टेढ़े-मेढ़े थे और राज्यों की सीमाएं परस्पर उलझी हुई थीं। अतएव धर्माचार्य यात्रा में जिस क्रम से उन राज्यों में गए थे, उसी क्रम के अनुसार उल्लेख किया गया है, उससे अलग क्रम से नहीं। प्रस्तुत विवरण में "प्रवेश" शब्द का प्रयोग करने का अर्थ है कि वहां स्वयं धर्माचार्य गए थे और "पहुंचना" शब्द का प्रयोग करने का अभिप्राय है कि उल्लेख अनुश्रुतियों के अनुसार किया गया है। इसमें कहीं प्रत्यक्ष रूप से ऐतिहासिक तथ्य उपस्थित किए गए हैं, कहीं मृदुल भाषा प्रयुक्त की गई है। काट-छांट कर समुचित ढंग से क्रम रखा गया है, नपे-तुले शब्दों में वर्णन किया गया है, तथ्यों के आधार पर उल्लेख किया गया है, जिससे सम्राट के समक्ष विश्वसनीय संदर्भ-सामग्री प्रस्तुत की जा सके। सम्राट थाए चुङ के शासन के बीसवें वर्ष के शरद में सातवें महीने में लेखन का कार्य पूरा हो गया और उजले रेशमी कपड़े पर यह विवरण अंकित किया गया। सम्राट की निषेधाज्ञा का उल्लेख कर इस यात्रा को उनकी इच्छानुरूप कहने की धृष्टता कहां ? परन्तु सुदूर निर्जन परदेश जाने का साहस वास्तव में वर्तमान राजवंश के प्रभाव के सहारे ही हो सका था और खोज-यात्रा कर परदेशों का विवरण देना सम्राट की प्रतिष्ठा से संभव हो सका था। सुनसान मैदान में सूर्य का पीछा करना मात्र ख्वाफ़ू[1] का सामर्थ्य नहीं है और दूर

---

1. ख्वाफ़ू "शानहाए चिङ" में उल्लिखित एक अद्‌भुत पुरुष का नाम है। कहते हैं कि वह सूर्य का पीछा करते हुए आगे बढ़ता चल गया। आधे रास्ते में घोर प्यास लगने के कारण वह मर गया और उसकी लाठी ने बाद में एक वन का रूप ले लिया।

पश्चिम क्षेत्र में यात्रा करना मात्र चाङ छ्येन का योगदान थोड़े ही है। गृध्रकूट को मध्य चीन में ले आया गया है और मृग-दाव को शाही उद्यान बना दिया गया है। गत हजार वर्षों की बातें जैसे आपकी आंखों के सामने उभरती हैं और लगता है मानों दूर-दूरान्तर के दृश्य आपने अपनी आंखों से ही देखे हों। ऐसी बात आज तक कभी सुनने में न आई थी और न किसी ऐतिहासिक लेख में ऐसा उल्लेख मिल सकता है। इस सर्वोच्च उपकार से सभी का हित हुआ है। भिन्न प्रथाओं वाले परदेशों ने थाङ राजवंश की अधीनता स्वीकार कर ली है। सदाचार से दूरस्थ स्थान भी प्रभावित हुए हैं और निर्जन और दूरांतरित क्षेत्र भी इसके अपवाद नहीं हैं। संभव है कि यह विवरण "शानहाए चिङ" की त्रुटियों को पूर्ण कर सके और इतिवृत्त की भांति प्रकाशित किया जाए, ताकि सबंधित अधिकारियों को इससे लाभ मिल सके।

"महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" के नए संस्करण का पश्चलेख

महा थाङ राजवंश काल के श्वेन त्साङ न केवल प्रतिष्ठित बौद्ध भिक्षु थे, अपितु एक श्रेष्ठ सांस्कृतिक दूत भी थे। उनकी कृति ("महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत") आज भी विश्व-साहित्य में मूल्यवान सामग्री समझी जाती है। यह प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के शोधकार्य के लिए अत्यावश्यक और अद्वितीय रचना है। प्रसिद्ध चीनी विद्वान दिवंगत ची श्येनलिन ने सन् 1977 और 1983 के मध्य दस संबंधित विशेषज्ञों को संयोजित करके इस रचना का भाष्य तैयार किया और उसकी प्रस्तावना भी लिखी, जिसमें एक लाख से भी अधिक चीनी अक्षर थे। साथ ही उन विद्वानों ने इस रचना का समकालीन चीनी भाषा में अनुवाद भी किया। अतः "महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत" के प्रकाशन के बाद ये भाष्य, प्रस्तावना और समकालीन चीनी भाषा का अनूदित संस्करण उनकी नवीनतम और सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं।

इन्हीं उपलब्धियों के कारण श्री छन शय्वे के समायोजन में, चीन के हिन्दी अनुवादक छन चुङरूङ, छन लीशिङ और सुन पाओकाङ ने हिन्दी विशेषज्ञ मनमोहन ठाकुर के सहयोग से इस रचना का अनुवाद हिन्दी में किया, जो सन् 1991 में प्रकाशित हुआ। क्योंकि इस संस्करण में अनेक व्यक्तियों, देवी-देवताओं और स्थानों के संस्कृत नाम तथा अन्य संस्कृत शब्दों के प्रत्यावर्तित रूपों का समावेश है, अतः यह हिन्दी संस्करण अन्य विदेशी भाषाओं के संस्करणों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है।

इस रचना के प्रथम हिन्दी संस्करण के प्रकाशन को बीस वर्षों से अधिक समय हो गए हैं, अतः पुस्तक-बिक्रेताओं के पास उसका मिलना कठिन हो गया है। इसलिए विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह (फॉरिन लैंग्वेजिज प्रेस) ने शनचन विश्वविद्यालय के भारतीय अध्ययन केन्द्र (सेन्टर फॉर इंडियन स्टडीज) के सहयोग से उसे पुनः प्रकाशित करने का निश्चय किया है। हमें विश्वास है कि सन् 2014 में चीन-भारत मैत्री आदान-प्रदान वर्ष मनाए जाने के दौरान, इस रचना के हिन्दी संस्करण के पुनः प्रकाशन का बहुत शैक्षिक महत्व और व्यावहारिक मूल्य होगा। श्वेन त्साङ की इस रचना में बौद्ध सूत्रों की खोज के उनके दृढ़ संकल्प से चीन और भारत के विद्वानों तथा आम लोगों को यह प्रेरणा मिलती रहेगी कि वे दोनों देशों के बीच संबंधों का विकास करें, जिससे हमारे दोनों महान राष्ट्र मैत्रीपूर्ण सहयोग और परस्पर समृद्धि का उदाहरण बन जाएं।

ग्वी लुङग्वी और शुभ्रा त्रिपाठी

जुलाई 2014

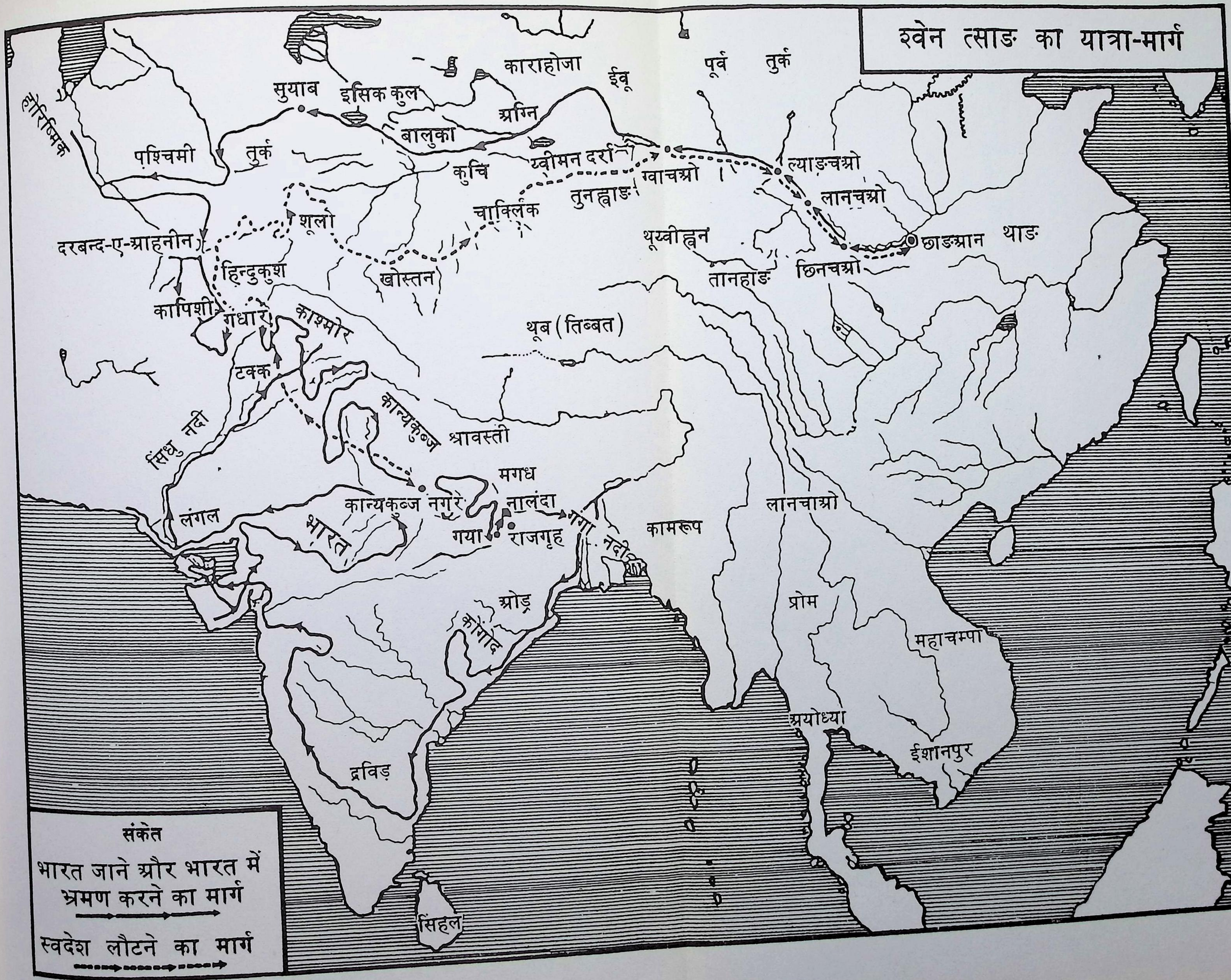
श्वेन तसाङ का यात्रा-मार्ग
काराहोजा
ईवू
पूर्व तुर्क
सुयाब
इसिक कुल
अग्नि
बालुका
पश्चिमी
तुर्क
कुचि
ख्वीमन दर्रा
ग्वाचश्रो
ल्याङ्चश्रो
लानचश्रो
तुनह्वाङ
चार्क्लिक
शूलो
दरबन्द-ए-आहनीन
हिन्दुकुश
खोस्तन
थूय्वीह्वन
तानहाङ
छिनचश्रो
छाङश्रान थाङ
कापिशी
गंधार
काश्मीर
थूब (तिब्बत)
टक्क
सिंधु नदी
कान्यकुब्ज
श्रावस्ती
मगध
नालंदा
लंगल
कान्यकुब्ज नगर
भारत
गया
राजगृह
गंगा नदी
कामरूप
लानचाश्रो
श्रोड्र
कोंगोद
प्रोम
महाचम्पा
अयोध्या
ईशानपुर
द्रविड़
सिंहल
संकेत
भारत जाने श्रौर भारत में भ्रमण करने का मार्ग
स्वदेश लौटने का मार्ग

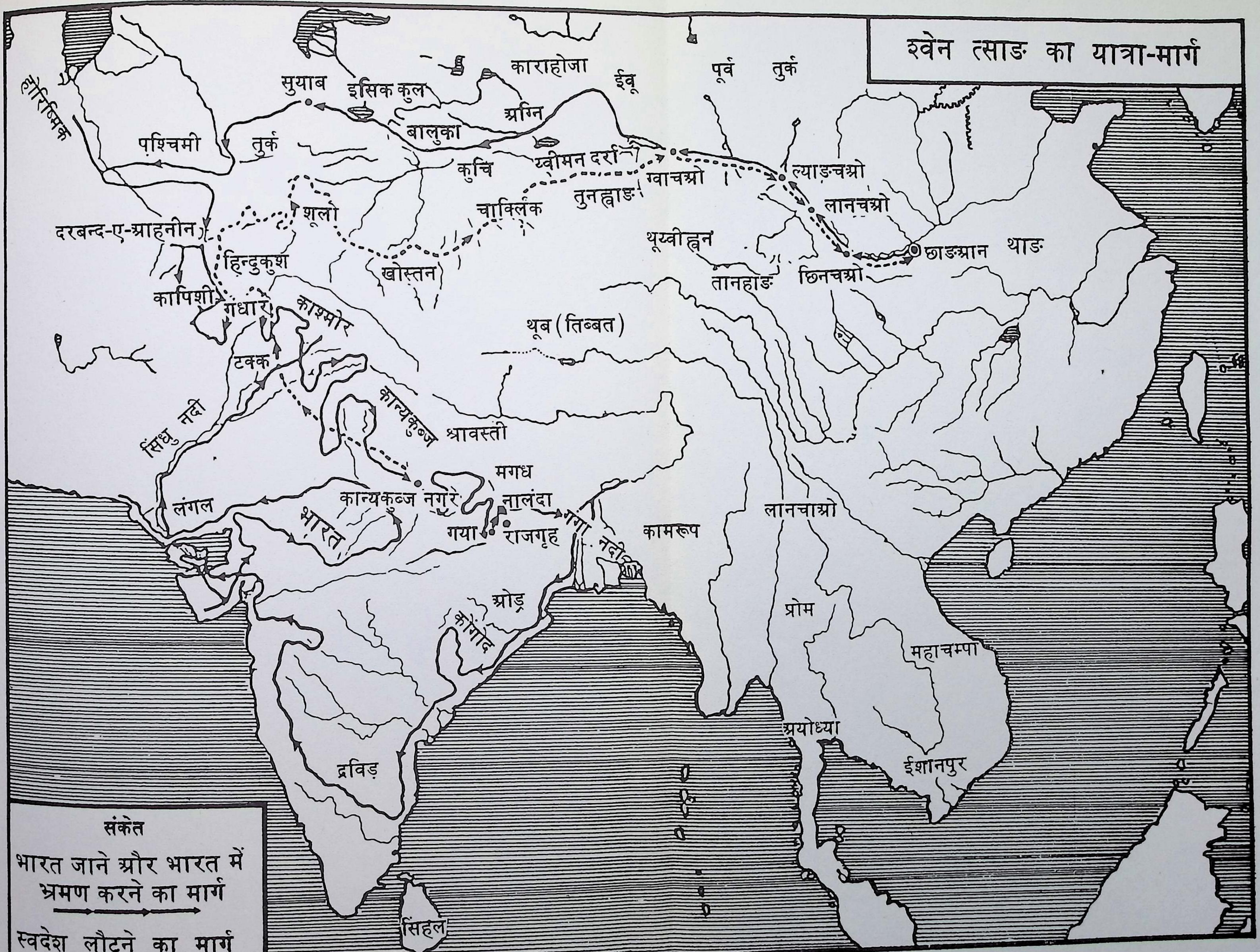

श्वेन तसाङ का यात्रा-मार्ग

图书在版编目（CIP）数据
大唐西域记 ：印地文 / (唐) 玄奘, (唐) 辩机著; 陈宗荣, 陈力行, 孙宝纲译.
— 北京 ：外文出版社, 2014
ISBN 978-7-119-08966-9
Ⅰ. ①大… Ⅱ. ①玄… ②辩… ③陈… ④陈… ⑤孙…
III. ①西域—历史地理—唐代—印地语 Ⅳ.①K928.6②K935.06
中国版本图书馆 CIP 数据核字(2014)第 175266 号

印地文翻译：陈宗荣　陈力行　孙宝纲
印地文改稿：门莫汗 · 塔古尔
印地文审定：李忠义　李隆昌
印地文编辑：陈士樾　刘明珍

选题策划：胡开敏
责任编辑：范淑娟
印刷监制：冯　浩

本书的出版得到深圳大学印度研究中心
及杭州佛学院的鼎力支持，特此鸣谢。

大唐西域记
（唐）玄奘　辩机 著

©2015 外文出版社有限责任公司
出版人：徐 步
出版发行：
外文出版社有限责任公司（中国北京西城区百万庄大街 24 号）
http://www.flp.com.cn
电　话：008610-68996047（总编室）
008610-68996189（发行部）
008610-68326174（版权部）

印　制：深圳市彩覇美印刷有限公司
开　本：787mm×1096mm　1/16
印　张：24.75
2015 年第 1 版 2015 年第 1 版 第 1 次印刷
ISBN 978-7-119-08966-9
（平）
09000

版权所有　侵权必究

"महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थ-यात्रा का वृत्तांत"

यह बारह खंडों वाला वृत्तांत थाङ राजवंश के वृद्ध भिक्षु, बौद्ध विद्वान श्वेन त्साङ (600? –664) ने सुनाया है और श्रामणेर प्येन ची ने इसे लेखबद्ध एवं संकलित किया है। यह यात्रा-वृत्तांत पश्चिम के इतिहास और भूगोल के संदर्भ में एक सुप्रसिद्ध रचना है। इस यात्रा-वृत्तांत में भारत की तीर्थ-यात्रा के समय श्वेन त्साङ ने जिन 110 राज्यों का भ्रमण किया तथा जिन 28 राज्यों के बारे में सुना, उनका उल्लेख है। इस यात्रा-वृत्तांत में असंख्य बौद्ध तीर्थों और पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त उक्त स्थानों के इतिहास, राजनीति, भूगोल, उपजों, जातियों और प्रथाओं के संदर्भ में भी व्यापक एवं प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इस वृत्तांत में सातवीं शताब्दी में मध्य एशिया और दक्षिण एशिया आदि क्षेत्रों के इतिहास के संबंध में विपुल मात्रा में मूल्यवान उल्लेख होने के कारण भारत, बांगलादेश, नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका एवं मध्य एशिया के प्राचीनकालीन इतिहास, वहां के धर्मों के इतिहास एवं चीन तथा विदेशों के बीच संबंधों के इतिहास के अध्ययन के लिए आज भी यह एक महत्वपूर्ण अभिलेख और पुरातत्व के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री है।

ISBN 978-7-119-08966-9